

Śrī VAIDYANÂTHA DIXITA'S
SMRTIMUKTĀ PHALAM

PART I

YARNÂS'RAMADHARMA KÂṆDA

~~~~~

EDITED BY

J. R. GHARPURE, B. A., LL. B., Honours-in-Law  
Principal, Law College Poona, Advocate, High Court,  
Fellow of the University of Bombay.

BOMBAY.

First Edition

=====

( All rights Reserved. )

धर्मशास्त्रग्रन्थमाला [ ग्रन्थाङ्कः २५ (१) ]

श्री

वैद्यनाथ दीक्षितीय

स्मृतिमुक्ताफलम्

( प्रथमः खंडः )

वर्णाश्रमधर्मकाण्डम्



जगन्नाथ रघुनाथ घासपुरे

बी. ए., एलएल. बी., ऑनर्स इन् लॉ.

पुण्यपत्तनस्थव्यवहारधर्मशालायां मुख्याध्यापकः

मुंबई विश्वविद्यालयसदस्यः

इत्यनेन संपादितः ।



प्रथमावृत्तिः



शकाब्दाः १८५८ क्रिस्ताब्दाः १९३७.



( सर्वेऽधिकाराः स्वायत्तीकृताः )

# श्री वैद्यनाथ दीक्षितीय स्मृतिमुक्ताफलस्थ वर्णाश्रमधर्मकाण्डस्य विषयानुक्रमिका

| विषयाणि                             | पृष्ठम् | विषयाणि                               | पृष्ठम् |
|-------------------------------------|---------|---------------------------------------|---------|
| मंगलाचरणम् ...                      | १       | सृष्टिप्रकारः ...                     | १६      |
| धर्मप्रमाणानि ...                   | "       | वर्णधर्माः ...                        | १७      |
| श्रुतिस्मृतिप्रामाण्यम् ...         | २       | यजनम् ...                             | "       |
| धर्मनिरूपणम् ...                    | "       | यज्ञमहिमा ...                         | १८      |
| धर्ममूलानि ...                      | "       | श्रौतस्मार्तयज्ञाः ...                | १९      |
| शिष्टाः, तेषां लक्षणम् ...          | ३       | यजनप्रशंसा, अयजननिन्दा ...            | २०      |
| स्ववर्णाश्रमधर्मानुष्ठानफलम् ...    | "       | यज्ञे दाक्षिणा-भोजनादि ... २०, २१, २२ |         |
| आचारप्रशंसा ...                     | ४       | आधानकर्तृणाम् ...                     | २३      |
| सदाचारलक्षणम् ...                   | ५       | पितुर्वैधुर्यं ...                    | "       |
| स्मृतिप्रशंसा ...                   | ६       | अग्रजानुजयोः ...                      | "       |
| श्रुतिस्मृत्यादीनां बलाबलनिरूपणम्   | ७       | परिवेत्तृणाम् ...                     | "       |
| श्रुतिद्वैधे, स्मृतिद्वैधे ...      | "       | विधुराचारः, विधुराग्निः ...           | २५      |
| स्मृतिकर्तारः ...                   | ८       | मृतपत्नीकस्य ...                      | २६      |
| धर्मदेशाः ...                       | ९       | अग्न्युत्पत्तिप्रकारः ...             | २७      |
| निषिद्धदेशाः ...                    | "       | याजनम् ...                            | "       |
| „ अपवादाः ...                       | १०      | तत्राधिकृताः ...                      | २८      |
| युगधर्माः ...                       | ११      | वेदाध्ययनम् ...                       | २९      |
| कलिसामर्थ्यम् ...                   | १२      | सार्धवेदोऽध्येतव्यः ...               | "       |
| युगसामर्थ्यवर्णनप्रयोजनम् ...       | १३      | अध्यापनम् ...                         | ३०      |
| कर्मपरिभाषा ...                     | १४      | गुरुशिष्ययोः ...                      | "       |
| मुख्यगौणकालयोः ...                  | "       | विद्यादाने पात्रापात्राणि ...         | ३१      |
| कर्मकर्तृप्रतिरूपकानाम् ...         | "       | अपात्रे अर्थकरणाद्वा ...              | "       |
| दिवारात्रौ-कर्तव्यानाम् ...         | "       | उपाकरणम् ...                          | ३२      |
| दिङ्मयमाभावे... ...                 | १५      | उपाकर्मकालः ...                       | "       |
| स्वशास्त्रोक्त-परशास्त्रोक्तयोः ... | "       | उत्सर्जनम्, तत्कालश्च ...             | ३३      |
| आसनानि ...                          | "       | तेषां ज्यैष्ठे ...                    | "       |
| प्रतिनिधिमुख्ययोः ...               | १६      | उपवीतधारणम् ...                       | ३४      |
| वासोवेष्टने ...                     | "       | अनध्यायाः ...                         | ३५      |
|                                     |         | नित्याः, नैमित्तिकाः ...              | ३४      |

| विषयाणि                          | पृष्ठम् | विषयाणि                      | पृष्ठम् |
|----------------------------------|---------|------------------------------|---------|
| आकामिकाः ...                     | ३४      | आपद्रवृत्तयः ...             | ६०      |
| तत्र अर्थवादाः ...               | ३५      | अविहितवृत्तयः ...            | ६१      |
| युगादयः ...                      | ३७      | पातनीयाः ...                 | ६२      |
| अनध्यायापवादाः ...               | ३८      | आपत्तौ जीवनानि ...           | ६३      |
| नैत्यकादौ नानध्यायः ...          | ३९      | प्राण्युपघातदोषापनुत्तये ... | ६३      |
| दानम् ...                        | ४०      | क्षत्रियधर्माः ...           | ६४      |
| तत्रैविध्यम् ...                 | ४१      | नृपस्य व्रतानि ...           | ६५      |
| गोदानम्, तत्फलम् ...             | ४२      | वैश्यधर्माः ...              | ६६      |
| विद्यादानम् ...                  | ४३      | शूद्रधर्माः ...              | ६६, ६७  |
| भीतानामभयदानम् ...               | ४४      | शूद्रापराधे ...              | ६८      |
| महीवस्त्रप्रतिमादानानि ...       | ४५      | शूद्राणां वृत्तयः ...        | ६९      |
| दशदानानि ...                     | ४५      | ब्राह्मणानां श्रैष्ठ्यम् ... | ७०      |
| विविधदानमन्त्राः ...             | ४६      | जातिविवेकः ...               | ७०      |
| दानस्य देशकालौ ...               | ४७      | अनुलोम-प्रतिलोमाः ...        | ७१      |
| प्रतिश्रुत्य अप्रदानम् ...       | ४८      | तज्जाः ...                   | ७१      |
| पात्रापात्रविचारः ...            | ४९      | कुण्डगोलकादयः ...            | ७२      |
| षट् अब्राह्मणाः ...              | ४९      | सावर्ण्यप्राप्तौ कारणानि ... | ७३      |
| पात्रे एव दानम् ...              | ५०      | संस्काराः ...                | ७३      |
| पात्रनिरूपणम् ...                | ५१      | तेषां भेदाः ...              | ७४      |
| देवलकाः वार्धुषिकाः ...          | ५२      | गर्भादानम् ...               | ७४      |
| पाषाण्डिनः ...                   | ५२      | तत्कालः ...                  | ७५      |
| पुरुषाधमाः ...                   | ५२      | ऋतुयौगपथे ...                | ७६      |
| सप्तविधं धनम् ...                | ५३      | ज्येष्ठपुत्रस्य ...          | ७७      |
| अदेयानि, देयानि, च ...           | ५३      | ऋतौ गमनमवश्यम् ...           | ७७      |
| प्रतिग्रहः ...                   | ५२, ५५  | गर्भोत्पत्त्यनुकूलकालः ...   | ७८      |
| प्रतिग्राह्याणि ...              | ५४      | पुंसवनम् ...                 | ७८      |
| तत्र प्रतिषेधाः पर्युदासाश्च ... | ५६      | तत्कालः ...                  | ७९      |
| कुटुंबार्थं ग्राह्याणि ...       | ५७      | सीमंतोन्नयनम् ...            | ७९      |
| केभ्यः प्रतिग्राह्यम् ...        | ५८      | अकृतसीमंतायाः प्रसवे ...     | ८०      |
| कदा ...                          | ५८      | जातकर्म ...                  | ८१      |
| असत्प्रतिग्रहः ...               | ५९      | नामकरणम् ...                 | ८२      |
| तत्प्रकाराः ...                  | ५९      | नामधेयानि ...                | ८२      |
| प्रतिग्रहविधिः ...               | ५९      | कर्णविधः ...                 | ८३      |
| ब्राह्मणस्य वृत्त्यंतराणि ...    | ५९      |                              |         |



| विषयाणि                         | पृष्ठम् | विषयाणि                               | पृष्ठम् |
|---------------------------------|---------|---------------------------------------|---------|
| निष्क्रमणम् ...                 | ८२      | पितुर्गरीयस्त्वम् ...                 | १०५     |
| अन्नप्राशनम् ...                | "       | पितरौ सर्वथा न त्याज्यावुपेक्षणीयौ वा | १०६     |
| चूडाकरणम् ...                   | ८३      | एतदपवादाः ...                         | "       |
| तत्कालः ...                     | ८४      | मान्यतानिमित्तानि ...                 | "       |
| संस्काराणां फलम् ...            | "       | मार्गप्रदानार्हाः ...                 | १०७     |
| अक्षरन्यासः ...                 | "       | अभिवादनम् ...                         | "       |
| तत्कालः ...                     | ८६      | गुरोः पादोपसंग्रहणम् ...              | १०८     |
| उपनीतधर्माः ...                 | "       | पूज्याः ...                           | १०९     |
| उपनयनम् ...                     | "       | अभिवादनप्रकारः ...                    | ११०     |
| काम्योपनयनम् ...                | ८७      | गुरुसंनिहिते ...                      | १११     |
| उपनयनकालः ...                   | ८८      | गुरुवत्पूज्या गुरुपत्न्यादयः ...      | ११५     |
| वृषस्य व्रतानि ...              | ८९      | प्रत्यभिवादनम् ...                    | ११२     |
| गौणकालः ...                     | ९०      | ब्रह्मचारिधर्माः ...                  | ११३     |
| यज्ञोपवीतम् ...                 | ९१      | गुरुसमीपे नम्रभावः ...                | ११४     |
| उपवीत-निवीत-प्राचीनावीतानि      | ९२      | भक्ष्यभोज्यानि ...                    | "       |
| वाससोऽसंभवे अनुकल्पः ...        | ९३      | सार्थवेदोऽध्येतव्यः ...               | ११५     |
| दंडधारणम् ...                   | "       | विद्याधिगमोपायाः ...                  | ११६     |
| अजिनानि ...                     | "       | अध्यापनम् ...                         | "       |
| वासांसि ...                     | ९४      | तत्र विशेषाः ...                      | "       |
| पालाशकर्म ...                   | ९५      | वेदव्रतानि ...                        | ११७     |
| मेखला ...                       | "       | पुनरुपनयनम् ...                       | "       |
| भिक्षाचर्या ...                 | ९६, ९७  | पुनः संस्काराः ...                    | ११८     |
| संध्योपक्रमः ...                | ९८      | तत्र वर्ज्याः ...                     | "       |
| कालातिक्रमप्रायश्चित्तम् ...    | ९९      | ब्रह्मचर्यकालावधिः ...                | "       |
| ब्राह्मणभोजनसंख्या ...          | "       | अध्येतृसामर्थ्यान्नरूपतः ...          | "       |
| उपनयनकर्तारः ...                | "       | गोदानविधिः ...                        | ११९     |
| यमलयोः ...                      | १००     | स्नातकानाम् ...                       | ११९     |
| मूकोन्मत्तादीनाम् ...           | "       | तेषां भेदाः ...                       | "       |
| जडबधिराधीनाम् ...               | १०१     | स्नातकविधिः ...                       | १५०     |
| औरसादयः ...                     | "       | नैष्ठिकधर्माः ...                     | "       |
| क्षेत्रजाः; नियोगः ...          | १०२     | नैष्ठिकव्रतानि ...                    | १२१     |
| ज्येष्ठपुत्रस्य दानस्वीकारौ ... | १०३     | अवकीर्णी ...                          | १२२     |
| गुर्वादिनिरूपणम् ...            | १०४     | तत्प्रायश्चित्तानि ...                | "       |
| माता सदैव पूज्या ...            | १०५     | आपस्तम्ब-गौतम-मन्वाबुक्तानि           | "       |

| विषयाणि                            | पृष्ठम् | विषयाणि                       | पृष्ठम् |
|------------------------------------|---------|-------------------------------|---------|
| स्नातकधर्माः ...                   | १२३     | कन्यादूषणे ...                | १३९     |
| विवाहः ...                         | १२३     | अनाख्याय दुष्टकन्यादाने ...   | ”       |
| कन्यालक्षणानि ...                  | ”       | वृथादूषणे ...                 | १४०     |
| कन्यादोषाः ...                     | १२४     | कन्यादातारः ...               | ”       |
| सापिण्ड्यम् ...                    | १२४     | विवाहभेदाः ...                | ”       |
| वधूवरयोर्वयःप्रमाणम् ...           | १२५     | ” प्रकाराः लक्षणानि ...       | १४१     |
| पुत्रिकाकरणम् ...                  | १२६     | ” फलानि च ...                 | ”       |
| सगोत्रत्वसप्रवरत्वादि ...          | ”       | धर्म्यविवाहाः अधर्म्याश्च ... | १४२     |
| सगोत्रविवाहे ...                   | १२७     | शुल्कदानम् ...                | १४३     |
| सपिण्डविवाहे ...                   | १२८     | ” ग्रहणम् ...                 | ”       |
| मातुःसपत्न्याः ...                 | ”       | तद्दोषः ...                   | ”       |
| ग्रामुध्यायणके ...                 | ”       | कन्याविक्रये ...              | १४४     |
| मातुलकन्यापरिणयः ...               | १३०     | विवाहे होमः कर्तव्यैव ...     | १४५     |
| देशजातिकुलधर्माणां प्रामाण्यम् ... | १३१     | शोभनद्वयसन्निपाते ...         | ”       |
| विवाहे वर्जनीयानि ...              | १३२     | एकमातृप्रसूतानाम् ...         | ”       |
| ” कुलानि ...                       | १३३     | यमलयोः ...                    | ”       |
| असवर्णाविवाहे ...                  | ”       | ” ज्यैष्ठ्यनिरूपणम् ...       | १४६     |
| शूद्राविवाहे ...                   | ”       | सिंहस्थे गुरौ ...             | १४७     |
| वरलक्षणम् ...                      | १३३     | जन्मनक्षत्रे ...              | ”       |
| वरपरीक्षा ...                      | १३४     | त्रिज्यैष्ठ्ये ...            | ”       |
| षट्भेदाः । तेषां लक्षणानि च ...    | ”       | ज्येष्ठानां ज्येष्ठमासे ...   | ”       |
| त्याज्यवराः ...                    | १३५     | ऋद्धिपरीक्षा ...              | १४८     |
| कन्यादानकालाः ...                  | ”       | “ आपस्तम्बेनोक्ता ...         | ”       |
| गौरी—रोहिण्यादिकन्याभेदाः ...      | ”       | “ आश्वलायनोक्ता ...           | ”       |
| तेषां विवाहे ...                   | ”       | कन्यादानकालनियमक्रमः ...      | १४९     |
| रजोदर्शनादुपरि ...                 | १३६     | पुनर्विवाहः ...               | ”       |
| बालिशविवाहे ...                    | ”       | औपासनारंभकालः ...             | ”       |
| दात्रभावे कन्यया वरणम् ...         | ”       | स्थालीपाकोपक्रमः ...          | १५०     |
| विवाहमध्ये रजोदर्शने ...           | १३७     | अन्वारंभणेष्टिः ...           | ”       |
| आसप्तमपदान्न विवाहः ...            | १३८     | अधिवेदनम् ...                 | १५१     |
| तत्पूर्वं विवाहविधेर्भंगे वा ...   | १३८     | अधिवेदनार्हा ...              | ”       |
| शुल्कम् ...                        | ”       | द्वितीयाविवाहकालः ...         | १५२     |
| तत्र विशेषः ...                    | ”       | अर्कविवाहः ...                | ”       |
| क्षेत्रजोत्पत्तिः ...              | १३९     | तृतीयाविवाहः ...              | ”       |

| विषयाणि                        | पृष्ठम्  | विषयाणि                     | पृष्ठम्  |
|--------------------------------|----------|-----------------------------|----------|
| उन्मत्तादीनां विवाहनिराकरणम्   | १५३      | हंसः ...                    | १८४      |
| पतितादीनां धर्मनिरूपणम् ...    | "        | " धर्माः ...                | "        |
| दारसंग्रहस्य फलम् ...          | १५४      | परमहंसः ...                 | १८५      |
| स्त्रीरक्षणक्रमः ...           | १५५      | " धर्माः ...                | "        |
| ग्रहाश्रमसाफल्यम् ...          | "        | यत्यान्हिकधर्माः...         | १८७      |
| दम्पत्योर्मिथ आचरणम् ...       | १५६      | एकरात्रमेव वासः ...         | १९०      |
| प्रोषितभर्तुः स्त्रीधर्माः ... | "        | दिगम्बरलक्षणम्...           | १९३, १९४ |
| पतिव्रताधर्मः ...              | १५७      | ज्ञानस्य मोक्षहेतुत्वम् ... | १९५      |
| स्त्रीपातनीयानि ...            | १५८      | दन्तधावनम् ...              | १९६      |
| गर्भिणीधर्माः ...              | १५९      | स्नानादि ...                | १९७      |
| गर्भावस्था ...                 | १६०      | विष्णुपूजाक्रमः ...         | १९८      |
| विधवाधर्माः ...                | १६१      | भिक्षाचर्या ...             | १९९      |
| अनुगमनम् ...                   | १६२      | माधुकरश्रैष्ठ्यम् ...       | २००      |
| देशान्तरगते प्रेते पत्यौ ...   | १६२      | माधुकरभेदाः ...             | "        |
| गूढव्यभिचारिणींप्रति ...       | १६३      | माधुकरम् ...                | "        |
| गृहस्थधर्मचर्या ...            | १६४      | प्राक्प्रणीतम् ...          | "        |
| गृहस्थाश्रमप्रशंसा ...         | १६६ १६७  | अयाचितम् ...                | "        |
| वानप्रस्थधर्माः ...            | १६९ १७०  | तात्कालिकम् ...             | "        |
| यतिधर्माः ...                  | १७१      | उपपन्नम् ...                | "        |
| यतिभेदाः ...                   | १७२      | केभ्यो भिक्षा ग्राह्या ...  | २०१      |
| आतुरसंन्यासः ...               | १७३      | सार्ववर्णिकभिक्षानिषेधः ... | "        |
| " विधिः ...                    | १७४      | भिक्षापात्राणि ...          | २०२      |
| संन्यासफलम् ...                | १७५, १७६ | भिक्षापात्रभोजननिषेधः ...   | "        |
| जीवच्छ्रान्दम् ...             | १७७      | आहारशुद्धिः ...             | २०३      |
| तत्र विधिः ...                 | १७८, १८१ | भिक्षाप्रशंसा ...           | २०४      |
| आतुरसंन्यासक्रमः ...           | १८२      | चातुर्मास्यविधिः ...        | २०५      |
| संन्यासभेदाः ...               | १८३      | प्राणायामविधिः ...          | २०६      |
| चत्वारः ...                    | "        | यतेर्निषिद्धानि ...         | २०७      |
| कुटीचकः ...                    | "        | आरूढपतितादीनाम् ...         | २०८      |
| बह्वदकः ...                    | १८४      | संन्यासदीक्षाफलम् ...       | "        |
| " धर्माः ...                   | "        | मोक्षाचारफलम् ...           | "        |

एतत्पुस्तकसंशोधने यानि पुस्तकानि यैश्च सुमनस्कतया

प्रेषितानि तेषां नामानि संज्ञाश्च यथा

क—भारतमंत्रिसंग्रहात् आंग्लदेशतः प्रेषितानि ग्रन्थलिप्यां लिखितानि—

ख—मद्रपुरसंग्रहात्प्राप्तानि ग्रन्थलिप्याम्.

क्ष— { सप्तपुरस्थ श्रीद्राविडमहाशयसंग्रहात् रावबहादुर भिकाजी व्यंकटेश द्रवीड  
इत्येतैः प्राप्तम् ।

ग—मुद्रितानि—

परमुपकृतं नो यैरिमानि प्रेषितानि—

जगन्नाथ रघुनाथ धारपुरे

# अथ स्मृतिमुक्ताफलम्

श्रीगणेशाय नमः । हरि ओम् ।

अंके विहारिणमनुक्षणमाद्रिजायास्तं केवलं कलभमद्भुतमाश्रयामः ॥

नित्यं ए एष बहुभिर्निजसेवकानां प्रत्यूहपुंजकवलैः परितोषमेति ॥ १ ॥

पारावती विधिमुखावलि सौधपंक्तेर्मायाविहीनजनमानसराजहंसी ॥

योगीश्वरैरपि विमृग्यनिजस्वरूपा वागीश्वरी दिशतु मे वचसां समृद्धिम् ॥ २ ॥

श्रीरामचंद्रचरणद्वयपद्मकोशान्मां यातु मे चपलमानसचंचरीकः ॥

मुक्तेर्वशीकरणचूर्णमहो यदीयं गात्रेषु बिभ्रति रजोऽपि रजोविहीनाः ॥ ३ ॥

भवकोदंडदलनं भवबंधविमोचनं । दशकण्ठरिपुं वंदे दशस्यंदननंदनम् ॥ ४ ॥

शरणं तमुपैमि साधुसेव्यं सदयं कञ्चन देवताविशेषम् ।

सहसा चरणान्बुजं यदीयं मुनिवैधुर्यनिरासहेतुरासीत् ॥ ५ ॥

उरुविस्तरधर्मशास्त्रवोद्धैरुपलब्धं महता परिश्रमेण ॥

श्रवणेषु निधीयतां किमन्यैः स्मृतिमुक्ताफलमेकमेव सद्भिः ॥ ६ ॥

वैद्यनाथाध्वरी नाम दासो बाधूलवंशजः । स्मृतिमुक्ताफलं नाम कुरुते सारसंग्रहम् ॥ ७ ॥

क नु विशकलितं तु धर्मशास्त्रं क च पुनराकलने मम प्रवृत्तिः ॥

सरलमतिजुषस्तथाऽपि संतः सततमिदं मम साहसं सहंताम् ॥ ८ ॥

धर्मप्रमाणनिरूपणम् । तत्रादौ धर्मप्रमाणानि निरूप्यन्ते । तत्र मनुः ( २।६ )

“ वेदोऽसिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम् । आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ” इति ।  
जातावेकवचनं । धर्ममूलं धर्मस्य प्रमाणं । न केवलं विध्यात्मक एव वेदो धर्मप्रमाणं किं तु  
मंत्रार्थवादात्मकोऽपीत्युक्तमसिल इति । अथ यत्र प्रत्यक्षो वेदो नोपलभ्यते तत्र कथमित्यतः २०

उक्तं ‘ स्मृतिशीले च तद्विदाम् ’ इति । तद्विदां वेदार्थविदां स्मृतिः धर्मशास्त्रेतिहासपुराणानि; शीलं  
च धर्ममूलं सद्भिः संभावनीयताहेतुरात्मगुणसंपच्छीलं । तदुक्तं महाभारते ( शां. प. १२।४।६८ )

“ तत्तर्कम तथा कुर्याद्येन श्लाघ्येत संसदि । शीलं समासेनैतत्ते कथितं कुरुनंदन ” इति ।

अत्रोदाहरणं युधिष्ठिरस्य यक्षरूपधारिधर्मात् स्वसोदरानादरेण नकुलस्य जीवितवरणम् । तद्विदा-

माचारश्चैव धर्ममूलम् । धर्माधिकारनिमित्तशौचाचमनादिलक्षणाक्रियाविशेष आचारः । साधूनां २५

परमधार्मिकाणामात्मनस्तुष्टिः मनसो रुचिः । सा च धर्ममूलं । प्रमाणांतरागोचरत्वेन धर्मं प्रति  
संशायितेष्वर्थेषु यो धर्मत्वेन मनसं रोचते स धर्म इत्यर्थः ।

यद्यप्यप्रत्यक्षो वेदो धर्मस्य मूलभूतोऽस्मदादिभिर्नोपलभ्यते तथापि मन्वादय उपलब्ध-

वंत इत्यनुमीयते । यथाहापस्तंबः “ तेषामुत्सन्नाः पाठाः प्रयोगादनुमीयन्ते ” इति । तथा

च प्रत्यक्षो वेदस्तेषां धर्मप्रमाणम् । अन्येषां वेदाः स्मृत्यादिकं च प्रमाणमित्यर्थः । ३०

याज्ञवल्क्यश्च ( आचारे श्लो. ७ )

“ श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः । सम्यक्संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम् ” इति ।

सम्यक्संकल्पजः कामः शास्त्राविरुद्धं यथा स्वर्गकामेन मया ज्योतिष्टोमयागः कर्त्तव्य

इत्यादिः । व्यासः

“ धर्ममूलं वेदमाहुर्गृथराशिमकृत्रिम् । तद्विदां स्मृतिशीले च साध्वाचारं मनः प्रियम् ” इति । ३५

हारीतः

“वेदाः प्रमाणं स्मृतयः प्रमाणां प्रमार्थयुक्तं वचनं प्रमाणम् ।

यस्य प्रमाणं न भवेत् प्रमाणं कस्त्वस्य कुर्याद्वचनं प्रमाणम् ” ॥ इति ।

आपस्तम्बः ( १।२-३ ) “धर्मज्ञसमयः प्रमाणं वेदाश्चेति” । गौतमः ( १।१ ) “वेदो धर्ममूलं । तद्विदां च स्मृतिशीले ” इति । तेन नित्यनिर्दोषवेदमूलकत्वाद्गुणग्रनादिरेव धर्मः । न

शाक्यादिकल्पितागममूलकचैत्यवन्दनकेशोल्लुञ्छनादिरिति ।

इति धर्मप्रमाणनिरूपणम् ।

अथ स्मृतेः प्रामाण्यम् । तत्र शंखः “वेदमूलाः स्मृतयः ” इति । मसीचिः

“दुर्बोधा वैदिकाः शब्दाः प्रकीर्णत्वाच्च येऽखिलाः । तत्रैव एव दृष्टार्थाः स्मृतितंत्रे प्रतिष्ठिताः” ॥ इति ।

मनुः ( अ. २ ) —

१० “श्रुतिं पश्यन्ति मुनयः स्मरन्ति च तथा स्मृतिम् । तस्मात्प्रमाणमुभयं प्रमाणैः ग्रामितं भुवि ॥

“योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्विजः । स साधुभिर्बाहिष्कार्यो नास्तिको वेदविद्वजः” ॥ ११ ॥ इति ।

हारीतः —

“न यस्य वेदा न च धर्मशास्त्रं न वृद्धवाक्यं हि भवेत्प्रमाणम् ॥

“सोऽधर्मकृद्दृष्टिहतो दुरात्मा नात्माऽपि तस्येह भवेत्प्रमाणम् ” ॥ इति । वेङ्कटः —

१५ “मन्वादयः प्रयोक्तारो धर्मशास्त्रस्य कीर्तिताः । तत्प्रयुक्तप्रयोक्तारो गृह्यकारास्तु मंत्रतः ” ॥ इति ।

अंगिराः —

“प्रमाणानि प्रमाणज्ञैः परिपाल्यानि यत्नतः । सीदन्ति हि प्रमाणानि प्रमाणैरव्यवस्थितैः” ॥ इति ।

इति स्मृतिप्रामाण्यम्

अथ धर्मनिरूपणम्

२० “वाक्कर्मजन्योऽभ्युदयनिःश्रेयसहेतुरपूर्वाख्य आत्मगुणो धर्मः ” इति हरदत्तः ।

अत्र मनुः ( २।१ )

“विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः । हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यस्तं धर्मं व्यवस्यत ” ॥ इति ।

विद्वद्भिर्वेदार्थविद्विद्वद्वेषरागिभिः सद्भिर्धर्मो नित्यं सेवितः धर्मत्वेन नित्यमनुष्ठितः न शोक-

मोहादिना कादाचित्कनिमित्तेन । किञ्च हृदयेनाभ्यनुज्ञातः । इदमेव श्रेय इति स्वारस्ययुक्तेन

२५ हृदयेन स्वीकृतः । एवंभूतो योऽर्थस्तं धर्मं व्यवस्यत हे महर्षयो निश्चिनुतेत्यर्थः । स एव ( १।१०८ )

“आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च । तस्मादस्मिन्मये युक्ते नित्यं स्यादात्मवान्निद्विजः” ॥ इति ।

त्रये श्रौतस्मार्ताचारेष्वित्यर्थः । याज्ञवल्क्यः ( १।६ )

“देशे काल उपायेन द्रव्यं श्रद्धासमन्वितं । पात्रे प्रदीयते यत्तत्सकलं धर्मलक्षणम् ” ॥

देशः कुरुक्षेत्रादि । काल उपरागादिः । उपायः शास्त्रोक्तैतिकर्तव्यताकलापः । द्रव्यं गवादि ।

३० श्रद्धा आस्तिक्यबुद्धिः । तदन्वितं यथा भवति तथा पात्रे प्रदीयते यत्तद्धर्मस्योत्पादकम् ।

किमेतावदेव धर्मस्योत्पादकम् । नेत्याह सकलमिति । अन्यदपि यागादि । तत्सकलं धर्मस्य

कारकम् । विश्वामित्रः —

“यमार्याः क्रियमाणं हि शंसन्त्यागमवेदिनः । स धर्मो, यं विगर्हति तमधर्मं प्रचक्षते ” ॥ इति ।

व्यासः —

३५ “सत्यं दमस्तपः शौचं संतोषो ह्रीः क्षमाऽऽर्जवम् । ज्ञानं शमो दया ध्यानमेष धर्मः सनातनः” ॥ इति ।

१ ख-विकल्पित । २ क्ष-तूमे । ३ क्ष-दुष्ट । ४ क्ष-समन्ततः; कग-स्तु तन्त्रतः । ५ ‘निबो-

धत’ इति पाठः । ६ क-परतो; खग-प्रथमो । ७ ‘सदायुक्तो’ इति मुद्रितमानवे । ८ क्ष-चारात्तामि ।

९ क्ष-एतद् । १० ख-कारणं ।

बृहस्पतिः—

“दानं यज्ञः सतां पूजा वेदधारणमार्जवम् । एष धर्मः परो ज्ञेयः फलवान्प्रेत्य चेह च ॥

“भोगेष्वसक्तिः सततं तथैवात्मावलोकनम् । श्रेयः परं मनुष्याणां प्राह पंचशिखो मुनिः” ॥ इति ।  
परं धर्ममाह याज्ञवल्क्यः ( १।८ )—

“इज्याचारदमार्हिसादानस्वाध्यायकर्मणाम् । अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम् ” ॥ इति ५  
योगेन चित्तवृत्तिनिरोधेन । आपस्तम्बः ( १।२०।६-७ ) “न धर्माधर्मौ चरत आवं स्व इति ।  
न देवगंधर्वा न पितर इत्याचक्षतेऽयं धर्मोऽयं धर्म इति । यत्त्रार्याः क्रीयमाणं प्रशंसन्ति स धर्मो  
यद्गृह्णन्ति सोऽधर्मः” इति । आवामिति छांदसं रूपम् । आवामित्यर्थः । यदि हि धर्माधर्मौ विग्रहवतावावां  
स्व इति ब्रुवाणौ चरेताम् यदि वा देवादयः प्रकृष्टज्ञाना ब्रूयुरिमौ धर्माधर्माविति तदोपलब्धिः  
स्यात्; तदभावाच्छिष्टा यं प्रशंसन्ति स धर्मः । यद्गृह्णन्ति सोऽधर्म इत्यर्थः । इति धर्मनिरूपणम् ॥ १०

शिष्टलक्षणमाह बौधायनः ( १।१।५ ) “शिष्टाः खलु विगतमत्सरा निरहंकाराः  
कुंभीधान्या अलोलुपाः । दंभदर्पलोभमोहक्रोधविवर्जिताः ” इति । स एव—

“धर्मशस्त्ररथारूढा वेदखड्गधरा द्विजाः । क्रीडार्थमपि यं ब्रूयुः स धर्मः परमः स्मृतः ॥” इति ।  
याज्ञवल्क्यः ( १।९ )—

“चत्वारो वेदधर्मज्ञाः पर्षत त्रैविद्यमेव वा । सा ब्रूते यं स धर्मः स्यादेको वाऽध्यात्मवित्तमः” ॥ इति १५  
तिस्रो विद्या अधीयत इति त्रैविद्यास्तेषां समूहः त्रैविद्यमित्यर्थः । पराशरः ( ८।१५ )—

“चत्वारो वा त्रयो वाऽपि यं ब्रूयुर्वेदपारगाः । स धर्म इति विज्ञेयो नेतरैस्तु सहस्रशः” ॥ इति ।  
आपस्तम्बः ( १।२०।८-९ )—“सर्वजनपदेष्वेकांतसमाहितमार्याणां वृत्तं सम्यक् विनीतानां  
वृद्धानामात्मवतामलोलुपानामदांभिकानां वृत्तसादृश्यं भजेतैवमुभौ लोकावभिजयति ” इति ।  
विनयशमादिगुणोपेतानामार्याणां सर्वजनपदेषु यदेकांतनाव्यभिचारेण समाहितमनुष्ठितं वृत्त- २०  
मनुष्ठानं, न मातुलसुतापरिणयनवत्कतिपयविषयं, तद्वृत्तसादृश्यं भजेत; एवं कुर्वन्मुभौ लोकाव-  
भिजयतीत्यर्थः ।

सर्ववर्णानां स्वस्वधर्मानुष्ठाने फलनिरूपणम् । स एव ( २।१।२।२-३ )—

“सर्ववर्णानां स्वधर्मानुष्ठाने परमपरिमितं सुखम् । ततः परिवृत्तौ कर्मफलशेषेण जाति रूपं  
वर्णं बलं मेधां प्रज्ञां द्रव्याणि धर्मानुष्ठानमिति प्रतिपद्यते । तच्चक्रवदुभयोल्लोकयोः सुख एव वर्त्तते” २५  
इति । अस्यार्थः—सर्वेषां वर्णानां वर्णाश्रमप्रयुक्तधर्मानुष्ठाने परमपरिमितमुत्कृष्टमक्षय्यं सुखं  
स्वर्गाख्यं भवति; न केवलमेतावत्किंतहि, ततः परिवृत्तौ पुनर्जन्मनि कर्मफलशेषेणाभुक्तां-  
शेनाभिजात्यादीनि प्रतिपद्यते; तस्माच्चक्रवदुभयोल्लोकयोरिह चामुष्मिश्च सुख एव वर्त्तते  
न जातुचिददुःख इति । तैत्तिरीयकोपनिषदि श्रूयते “धर्म इति धर्मेण सर्वमिदं परिगृहीतं  
धर्माज्ञाति दुश्चरं तस्माद्धर्मे रमते ” इति । धर्म इति धर्मो नाम नित्यनैमित्तिकादि श्रौतं स्मार्तं ३०  
च कर्म; तेन धर्मेण सर्वमाध्यात्मिकादिभेदभिन्नमिदं जगत्परिगृहीतं स्थितम् तस्माद्धर्मात्पुं-  
नास्ति वैदिकैर्मुमुक्षुभिः श्रेयार्थीभिश्च धर्म एव कर्तव्यः; तस्माद्धर्मे रमत इत्यर्थः तत्रैव  
पुनः श्रूयते—“धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा । लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पति । धर्मेण  
पापमपनुदति । धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम् । तस्माद्धर्मे परमं वदंतीति ” । अयमर्थः । धर्मः पूर्वोक्तः,  
विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा प्रतिष्ठित्यनेनेति प्रतिष्ठा; श्रौतस्मार्तकर्मभिः समस्तजगद्ब्रूयत ३५  
इत्यर्थः । लोके धर्मिष्ठमतिशयेन धर्मानुष्ठातारं प्रजा धर्मावाप्त्यर्थमधर्मापाकरणार्थं वोपसर्पति ।

धर्मेण विहिताकरणप्रतिषिद्धसेवननिमित्तं पापमपनुदति । धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितमितरथा बाधितं स्यात् तस्माद्धर्मं परमं वदंतीति धर्मविद इति । चंद्रिकायाम्

“वर्णत्वमेकमाश्रित्य यो धर्मः संप्रवर्त्तते । वर्णधर्मः स उक्तस्तु यथोपनयनं किल ॥

“तथैवाश्रममाश्रित्य अधिकारः प्रवर्त्तते । स एवाश्रमधर्मः स्याद्विक्षादंडादिको यथा ॥

“वर्णत्वमाश्रमत्वं च योऽधिकृत्य प्रवर्त्तते । स वर्णाश्रमधर्मस्तु यथा मौंजी तु मेखला” ॥ इति

मनुः ( ४।२३८-२४३ )—

“धर्मं ज्ञानैः संचिनुयाद्वल्मीकमिव पुत्तिकाः । परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥

“नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः । न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥

“एकः प्रजायते तंतुरेक एव प्रमीयते । एकोऽनुभुंक्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥

“मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं क्षितौ । विमुखा बांधवा यांति धर्मस्तमनुगच्छति ॥

“तस्माद्धर्मं साहायार्थं नित्यं संचिनुयाच्छनैः । धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ॥

“धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा वीतकल्मषम् । परलोकं नयत्याशु भास्वंतं से शरीरिणम् ॥

“श्रुतिस्मृत्युदितं कुर्वन्निबद्धः स्वेषु कर्मसु । धर्ममूलं निषेवेत सदाचारमतद्रितः” ॥ इति ॥

धर्मस्य मूलं धर्ममूलम् । धर्मस्याचाराधीनत्वम् । आचारप्रशंसा । स एव ( १।११० )—

“एवमाचरतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयो गतिम् । सर्वस्य तपसो मूलमाचारं जगृहुः परम्” ॥

“आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते । आचारेण तु संयुक्तः संपूर्णफलभागभवेत्” ॥

( ४।१५६-१५८ ) .

“आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः । आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हंत्यलक्षणम् ॥

“दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निंदितः । दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥

“सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः । श्रद्धयानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति” ॥

वसिष्ठः ( ६।३ )—

“आचारहीनं न पुनंति वेदा यद्यप्यधीताः सह षड्विंशैः ॥

“छंदांस्येन मृत्युकाले त्यजंति नीढं शकुंता इव जातपक्षाः ॥

“कपालस्थं यथा तोयं श्वहतौ च यथा पयः । दुष्टं स्यात्स्थानदोषेण वृत्तहीने तथा श्रुतम् ॥

“ब्राह्मणस्य तु देहोऽयं नोपभोगाय कल्पते । इह क्लेशाय महते प्रेत्यान्तंसुखाय च” ॥

पराशरः ( ६।३ )

“चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपालकः । आचारभ्रष्टदेहानां भवेद्धर्मः पराङ्मुखः” ॥

“शिष्टानामभिमतो दयादाक्षिण्याद्यन्वितो वृत्तिविशेष आचारः” इति माधवीये । बृहस्पतिः—

“शौर्यवीर्यार्थरहितस्तपोज्ञानविवर्जितः । आचारहीनः पुत्रस्तु मूत्रोच्चारसमः स्मृतः” ॥

शौर्यादिरहितः क्षत्रियपुत्रः अर्थरहितो वैश्यपुत्रः तपोज्ञानाचाररहितो ब्राह्मणपुत्र इति विवेकः ॥

भगवान्—

“वर्णानामाश्रमाणां च या मर्यादा मया कृता । तां ये समनुवर्तते प्रसादस्तेषु संभवेत्” ॥

आश्वमेधिके—

“श्रुतिः स्मृतिर्मैवाज्ञा यस्तामुल्लंघ्य वर्तते । आज्ञाछेदी मम द्रोही मद्भक्तोऽपि न वैष्णवः” ॥ इति”

३५ स्मृत्यन्तरे—

“यथेक्षुहेतोः सलिलं निषेचितं वृणानि वल्लीरपि च प्रसिंचति ।



एवं नरो धर्मपथेन वर्तयन्त्यशश्च कामांश्च वसूनि सोऽश्रुते ” ॥ नारदः—

“ धिग्जन्माचाररहितं जन्म धिङ्मानवर्जितम् । शूद्रेऽपि दृश्यते वृत्तं ब्राह्मणे न तु दृश्यते ॥

“ शूद्रोऽपि ब्राह्मणो ज्ञेयो ब्राह्मणः शूद्र एव सः । हरिभक्तिर्परो वाऽपि हरिध्यानरतोऽपि वा ॥

“ भ्रष्टो यः स्वाश्रमाचारात्पतितः सोऽभिधीयते ॥

“ वेदो वा हरिभक्तिर्वा भक्तिर्वाऽपि महेश्वरे । स्वां चारात्पतितं मूढं न पुनाति द्विजोत्तमम् ॥

“ पुण्यक्षेत्राभिगमनं पुण्यतीर्थनिषेवणम् । यज्ञो वा विविधो ब्रह्मस्त्यक्ताचारं न रक्षति ॥

“ आचारात्प्राप्यते स्वर्ग आचारात्प्राप्यते सुखम् । आचारात्प्राप्यते मोक्ष आचारात्किं न सिध्यति ” ॥

महाभारते आनुशासनिके—

“ आचाराल्लभते चायुराचाराल्लभते श्रियम् । आचाराल्लभते कीर्तिं पुरुषः प्रेत्य चेह च ॥

“ ये नास्तिका निष्क्रियाश्च गुरुशस्त्रातिलंघिनः । अधर्मज्ञा दुराचारास्ते भवंति गतायुषः ” ॥ इति । १०

पारिजाते—

“ सदाचारेण देवत्वमृषित्वं च तथैव च । प्राप्नुवंति कुयोनिष्वं मनुष्यास्तद्विपर्यये ” ॥

सदाचारलक्षणम् विष्णुपुराणे ( तृतीयांशे अ. ११ श्लो. २-३ )—

“ सदाचारवतां पुंसां जितौ लोकावुभावपि ।

“ साधवः क्षीणदोषास्तु सच्छब्दः साधुवाचकः । तेषामाचरणं यत्तु सदाचारः स उच्यते ” ॥ १५

संस्कारमंजरीम्

“ यस्मिन्देहे य आचारः पारंपर्यक्रमागतः । श्रुतिस्मृत्यविरोधेन सदाचारः स उच्यते ” ॥

मनुः—

“ धर्मव्यतिक्रमो दृष्टो महतां साहसं तथा । तदन्वीक्ष्य प्रयुंजानः संसीदत्यवरोऽबलः ॥

“ तेजोमयानि पूर्वेषां शरीराणीन्द्रियाणि च । दोषैस्ते नोपलिप्यन्ते पद्मपत्रमिवांभसा ” ॥ २०

कतकभरद्वाजावन्योन्यं व्यत्यस्य भार्ये जग्मतुः । वसिष्ठश्चांडालीमक्षमालीं प्रजापतिश्च स्वां  
दुहितरमित्यादि धर्मव्यतिक्रमो दृष्टः । जामदग्न्येन रामेण पितृवचनादविचारेण मातुः शिर-

श्छिन्नमित्यादि साहसं दृष्टम् । तदन्वीक्ष्य प्रयुंजानः । तदिति “ नपुंसकमनपुंसकेनेकवच्चास्यान्यतर-  
स्याम् ” ( १।२।६९ ) इत्येकशेष एकवद्भावश्च । तं व्यतिक्रमं तच्च साहसमन्वीक्ष्य दृष्ट्वा स्वयमपि

तथा प्रयुंजानोऽवर इदानींतनः अबलः दुर्बलः संसीदति प्रत्यवैति । तेषामपि किं दोषः । नेत्याह २५

तेजोमयानीति । तद्यथैषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयत एवं ह्यस्य सर्वं पाप्मानः प्रदूयंत इति श्रुतेः ।

अत्रापस्तंबः—( २।१३।७-९ ) “ दृष्टो धर्मव्यतिक्रमः साहसं च पूर्वेषाम् । तेषां तेजोविशेषेण

प्रत्यवायो न विद्यते तदन्वीक्ष्य प्रयुंजानः सीदत्यवरः ” इति । गौतमः ( १।३-४ ) “ दृष्टो धर्म-

व्यतिक्रमः साहसं च महताम् । न तु दृष्टार्थे । अवरदौर्बल्यात् ” इति । न तु दृष्टार्थे धर्मव्यति-

क्रमादाविदानींतनस्य साधीयसी प्रवृत्तिरित्यर्थः । बोधायनः—

“ अनुष्ठितं तु यद्वैर्भुनिभिर्यदनुष्ठितम् । नानुष्ठेयं मनुष्यैस्तदुक्तं कर्म समाचरेत् ” ॥

याज्ञवल्क्यः ( आ. १।५६ )—

“ कर्मणा मनसा वाचा यत्नाद्धर्मं समाचरेत् । अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्ममप्याचरेन्न तु ” ॥

धर्मं विहितमपि लोकविद्विष्टं यस्मादस्वर्ग्यमित्यर्थः ।

इति धर्मनिरूपणम् ॥ सदाचारनिरूपणम् ॥

अथ स्मृतिप्रशंसा । मनुः ( १।१०३ )—

“ धर्मशास्त्रमधीयानो ब्राह्मणः संशितव्रतः । मनोवाग्देहजैर्नित्यं कर्मदोषैर्न लिप्यते ॥

“ अर्हः स्याद्धव्यकव्यानामर्हश्च पृथिवीमिमाम् । ग्रहणाद्धर्मशास्त्रस्य ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥

“ विदुषा ब्राह्मणेनेदमध्येतव्यं प्रयत्नतः । शिष्येभ्यश्च प्रवक्तव्यं सम्यङ् नान्येन केनचित् ॥

५ “ इदं स्वस्त्ययनं श्रेष्ठमिदं बुद्धिविवर्धनम् । इदं यशस्यं सततमिदं नैश्रेयसं परम् ॥

“ धर्मशास्त्रमधीयानो ब्राह्मणः क्षत्रियोऽथ विट् । पुनाति हि पितृन्सर्वान्सप्तसप्तावरस्तथा ॥

“ अमार्गेण प्रवृत्तानां व्याकुलैर्द्रियचेतसाम् । निवर्त्तकं धर्मशास्त्रं व्याधीनामिव भेषजम् ॥

“ श्रुतिस्मृती चक्षुषी द्वे द्विजानां न्यायवर्त्मनि । मार्गमुज्झति तद्धीना प्रयतंति पथश्च्युताः ” ॥

हारीतः—

१० “ यथा हि वेदाध्ययनं धर्मशास्त्रमिदं तथा । अध्येतव्यं ब्राह्मणेन नियतं स्वर्गमिच्छता ” ॥

शंखलिखितौ—

“ रागद्वेषाभिदग्धानामज्ञानविषपायिनाम् । चिकित्सा धर्मशास्त्राणि व्याधीनामिव भेषजम् ” ॥

स्मृतिरत्नावल्याम्

“ स्मृतिं विना न हि ज्ञानं धर्मस्य भवति कचित् । न जातु ज्ञायते रूपमालोकेन विना यथा ” ॥

१५ याज्ञवल्क्यः ( आ. ३ )—

“ पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्रांगमिश्रिताः । वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ” ॥

विद्यानां स्थानानि चतुर्दश धर्मस्य स्थानानि हेतवः । एतानि त्रैवर्णिक्कैरध्येतव्यानि तदंतर्गत-  
त्वाद्वर्द्धमानाध्वेतव्यम् । शूद्रं प्रकृत्य यमः—“ तस्मादस्याधिकारोऽस्ति न वेदेषु न तु स्मृतौ ” इति ।

मंजुः ( २।१६ )—

२० निषेकादिश्मशानांतो मंत्रैर्यस्योदितो विधिः । तस्य शास्त्रेऽधिकारोऽस्मिन् ज्ञेयो नान्यस्य कस्यचित् ॥

मानवस्य धर्मशास्त्रस्य श्रेष्ठ्यं दर्शयत्यंगिराः—

“ यत्पूर्वं मनुना प्रोक्तं धर्मशास्त्रमनुत्तमम् । न हि तत्समतिक्रम्य वचनं हितमात्मकम् ॥

“ वेदादुपनिबद्धत्वात्प्राधान्यं तु मनोः स्मृतम् । मन्वर्थविपरीता तु या स्मृतिः सा न शस्यते ” ॥

श्रुतिरपि —“ यद्वै किंच मनुर्वदत्तद्वेषजम् ” इति । व्यासहारीतौ—

२५ “ अवैशेत च शास्त्राणि मन्वादीनि द्विजोत्तमः । वैदिकान्नियमान्वेदान् वेदांगानि च सर्वशः ॥

“ धर्मशास्त्रं सदा पाठ्यं ब्राह्मणैः शुद्धमानसैः । वेदवत्पठितव्यं च श्रोतव्यं च दिवानिशम् ॥

“ स्मृतिहीनाय विप्राय श्रुतिहीने तथैव च । दानं भोजनमन्यच्च दत्तं कुलविनाशनम् ॥

“ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन धर्मशास्त्रं पठेत् द्विजः ॥

“ श्रुतिस्मृती च विप्राणां चक्षुषी द्वे विनिर्मिते । काणस्तत्रैकया हीनो द्वाभ्यामंधः प्रकीर्तितः ” ॥

३० विष्णुः ( ९।६२ )—

“ पुराणं मानवो धर्मः सांगो वेदचिकित्सितम् । आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हंतव्यानि हेतुभिः ” ॥

वसिष्ठः—

“ अप्रामाण्यं च वेदानामार्षाणां चैवं कुत्सनम् । अव्यवस्था च सर्वत्र एतन्नाशनमात्मनः ” ॥

व्यासः—

३५ “ तेन स्मार्तमनुष्ठानमंतरेण न वैदिकम् । प्रवर्त्तने द्विजातीनां कर्मशुद्धिमभीप्सताम् ” ॥

प्रचेताः—

“असीमांसा बहिःशाला ये चान्ये वेदवर्जिताः । यत्ते ब्रूयुर्न तत्कुर्याद्विदाद्धर्मो विधीयते”॥ इति चतुर्विंशतिमते—

“अहंज्ञावर्कवाक्यानि बौद्धादिपठितानि च । विप्रलंभकवाक्यानि तानि सर्वाणि वर्जयेत्” ॥ इति ।  
इति स्मृतिप्रशंसा

अथ श्रुतिस्मृत्यादीनां बलाबलनिरूपणम् । मनुः ( २।१४ )

“श्रुतिद्वैधं तु यत्र स्यात्तत्र धर्माविभौ स्मृतौ । उभावपि हि तौ धर्मौ सम्यगुक्तौ मनीषिभिः” ॥  
अत्रोदाहस्पन्नाह स एव ( २।५ )—

“उदितेऽनुदिते चैव समयाविष्टिते तथा । सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः” ॥

समयाविष्टिते उदितानुदित इत्यर्थः । अयं च यथाकल्पसूत्रं व्यवस्थितविकल्पः ।

तथा च सुमंतुः—

“धर्मशास्त्रमतिभिन्ना सर्वकर्मसु भारत । उदितेऽनुदिते चैव होमभेदौ यथा भवेत् ॥

“तस्मिन्कुलक्रमायातमाचारं त्वाचरेद् बुधः । सै गरीयान्महाबाहो सर्वशास्त्रोदितादपि” ॥ इति ।  
मनुः ( ४।१७८ )—

“येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः । तेन यायात्सतां मार्गस्तेन गच्छन्न रिष्यति” ॥ इति ।  
स्मृत्यादिद्वैधेऽपि विकल्प एव द्रष्टव्यः । तथा च गौतमः ( १।५ )—“तुल्यबलविरोधे विकल्पः” इति । तुल्यबलयोः श्रुत्योः स्मृत्योश्च विरोधे विकल्प इत्यर्थः । लौगाक्षिः

“श्रुतिस्मृतिविरोधे तु श्रुतिरेव गरीयसी । अविरोधे सैदा कार्यं स्मार्त्तं वैदिकवत्तदा” ॥

विरोधाधिकरणन्यायोऽत्रानुग्राहको द्रष्टव्यः । तथाहि—अध्वरे महावेद्यां सदोनामकस्य मंडपस्य मध्ये काचिदुदुंबरशाखा स्तंबत्वेन निखाता भवति तामुद्दिश्य वस्त्रवेष्टनं स्मर्यते—  
“औदुंबरी सर्वा वेष्टयितव्या” इति । तत्र संशय एषा स्मृतिः प्रमाणं न वेति । तत्र “अष्टका कर्तव्या” ३१

इत्यादिस्मृतेर्मूलवेदानुमापकत्वेन यथा प्रामाण्यम् तथैव सर्ववेष्टनस्मृतिः प्रमाणमिति पूर्वपक्षः ।

“औदुंबरीं स्पृष्ट्वा द्वायेत्” इति प्रत्यक्षश्रुतौ स्पर्शो विधीयते । न चासौ सर्ववेष्टने सत्युपपद्यते । तथा च सर्ववेष्टनस्मृतिर्मूलभूतवेदानुमानस्य प्रत्यक्षश्रुतिविरुद्धस्य कालात्ययापदिष्टत्वेन निर्मूला सर्ववेष्टनस्मृतिरप्रमाणमिति सिद्धांत इति । संग्रहे

“श्रुतिस्मृतिपुराणेषु विरुद्धेषु परस्परम् । पूर्वं पूर्वं बलीयः स्यादिति न्यायविदो विदुः” ॥ इति । २५  
चतुर्विंशतिमते—

“स्मृतेर्वैदिकविरोधेन परित्यागो यथा भवेत् । तथैव लौकिकं वाक्यं श्रुतिबाधात्परित्यजेत्” ॥ इति ।  
व्यासः—

“धर्मं यो बाधते धर्मः स न धर्मः कदाचन । अविरोधी तु यो धर्मः स धर्मः सद्भिर्बुध्यते ॥

“तस्माद्विरोधे धर्मस्य निश्चित्य गुरुलाघवम् । तयोर्भूयस्तनं विद्वान्कुर्याद्धर्मविनिर्णयः” ॥ इति । ३०

एवं स्मृत्याचारयोर्विरोधे स्मृतिर्बलीयसी । “श्रुतिस्मृतिविहितो धर्मस्तदलाभे शिष्टाचारः प्रमाणम्” इति बसिष्ठस्मरणात् ( १।४-५ ) । सदाचारद्वैविध्ये तु यस्मिन्देशे यस्मिन्काले यस्मिन्पुरुषे रागद्वेषरहितस्य शिष्टत्वातिशयबुद्धिः तादृशस्याचारो मुख्यत्वेन ग्राह्यः । एतदेवाभिप्रेत्य गुरोः शिष्यानुशासने तैत्तिरीयाः समामनन्ति—

“अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् । ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः । युक्ता आयुक्ताः । अलूक्षा धर्मकामाः स्युः । यथा ते तत्र वर्तेरन् । तथा तत्र वर्तेथाः” इति । संमर्शिनः युक्तिकुशलाः । युक्ताः शास्त्रतत्परा आयुक्ताः तदर्थानुष्ठाननिरताः । अलूक्षाः क्रोधादिवर्जिताः । धर्मकामाः जीवनमुक्तवत्कर्मण्यौदासीन्यमकुर्वाणाः उक्तरीत्या कस्यचिच्छिष्टा-  
 ५ चारविशेषस्य मुख्यत्वे सत्यपरो गौणो भविष्यति न तु सर्वथैवानाचारः । एवं च सत्येकमेव तैत्तिरीयशास्त्रमधीत्य बोधायनापस्तंबादिमन्त्रभेदेन परस्परविरुद्धमनुष्ठानमाचरतामुभयविधानां पुरुषाणां स्वस्वपुरुषपारंपर्यक्रमागत एवाचारो मुख्यः । कदाचित्तदसंभवे मतांतरेणाप्यनुष्ठानमेव श्रेयो न तु सर्वथा तल्लोपो युक्तः । इति श्रुत्यादीनां बलाबलम् ।

अथ स्मृतिकर्तृनिरूपणम् । पराशरः ( १।२० )—

१० “कल्पे कल्पे क्षयोत्पत्त्या ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । श्रुतिस्मृतिसमाचारनिर्णेतारश्च सर्वदा” ॥ क्षयसहिता उत्पत्तिः क्षयोत्पत्तिः । तयोपलक्षिता भवन्ति कल्पे कल्पे महाकल्पे अवांतरकल्पे च । ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा महाकल्पावसाने क्षीयन्ते महाकल्पादावुत्पद्यन्ते । एवमवांतरकल्पानामवसाने प्रारंभे च स्मृत्यादीनां निर्णेतारो मन्वादयः क्षयोत्पत्तिभ्यामुपलक्ष्यन्ते । चकरेणानुक्तो धर्मः समुच्च्रीयते । सर्वदेत्यनेन सृष्टिसंहारप्रवाहस्यानादित्वमनंतत्वं च दर्शितम् । स एव ( १।२१ )

१५ “न कश्चिद्वेदकर्ता च वेदं श्रुत्वा चतुर्मुखः । तथैव धर्मान् स्मरति मनुः कल्पांतरे तथा” ॥ कल्पांतरे धर्मान् स्मरति इति पदत्रयं पूर्वार्धेऽपि संबध्यते । महाकल्पे चतुर्मुखः परमेश्वरेण दत्तं वेदं श्रुत्वा तत्र विप्रकीर्णान्वर्णाश्रमादिधर्मान्स्मृतिग्रंथरूपेण उपनिबध्नाति तथैव स्वायंभुवो मनुः प्रत्यवांतरकल्पं वेदोक्तधर्मान्ग्रन्थाति । मनुग्रहणेनात्रिविष्णवादय उपलक्ष्यन्ते । मन्वादीनाह याज्ञवल्क्यः ( आ. ४-५ )—

२० “मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोऽगिराः । यमापस्तंबसंवर्ताः कात्यायनबृहस्पती ॥

“पराशरव्यासशंखलिखिता दक्षगौतमौ । शातातपो वसिष्ठश्च धर्मशास्त्रप्रयोजकाः” ॥

उशनःशब्दांतस्य द्वैकवद्भावः । स्मृतिरत्ने—

“मनुर्बृहस्पतिर्दक्षो गौतमोऽथ यमोऽगिराः । योगीश्वरः प्रचेताश्च शातातपपराशरौ ॥

“संवर्त्तोऽशनसौ शंखलिखितावत्रिरेव च । विष्णवापस्तंबहारीता धर्मशास्त्रप्रवर्तकाः ॥

२५ “एते ह्यष्टादश प्रोक्ता मुनयो नियतव्रताः” ॥ अंगिराः—

“जाबालिर्नाचिकेतश्च स्कंदो लोकाक्षिकाश्यपौ । व्यासः सनत्कुमारश्च शंतनुर्जनकस्तथा ॥

“व्याघ्रः कात्यायनश्चैव जातुकर्णिः कर्पिजलः । बोधायनश्च काणादो विश्वामित्रस्तथैव च ॥

“पैठीनसिर्गोभिलश्चेत्युपस्मृतिविधायकाः” ॥ शंखः—“मनुयमदक्षविष्णवंगिरोबृहस्पत्युशनापस्तंब-  
 गौतमसंवर्त्तत्रियहारीतकात्यायनशंखलिखितपराशरव्यासशातातपप्रचेतोयाज्ञवल्क्यादयः” इति ।

३० तथा—

“वसिष्ठो नारदश्चैव सुमंतुश्च पितामहः । बभ्रुः काष्णार्जिनिः सत्यव्रतो गार्ग्यश्च देवलः ॥

“जमदग्निर्भरद्वाजः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः । आत्रेयश्छागलेयश्च मरीचिर्मत्स्य एव च ॥

“पारस्करो ऋष्यशृंगो वैजावापस्तथैव च । इत्येते स्मृतिकर्तार एकविंशतिरीरिताः” ॥ संग्रहे—

“अष्टाशीतिसहस्राणि मुनयो गृहमेधिनः । पुनरावर्तिनो बीजभूता धर्मप्रवर्तकाः ॥

३५ “एतैर्यानि प्रणीतानि धर्मशास्त्राणि वै पुरा । तान्येतानि प्रमाणानि न हन्तव्यानि हेतुभिः ॥

“यस्तानि हेतुभिर्हन्यात्सोऽप्ये तमसि मज्जति” । अग्निवेद्यः “बोधायनमापस्तंबं सत्या-  
षाढं द्वाह्यायणमागस्त्यं शाकल्यमाश्वलायनं शांभवीयं कात्यायनमिति नवानि पूर्वसूत्राणि ।  
वैखानसं शौनकीयं भारद्वाजमाग्निवेद्यं जैमिनीयं माधुर्यं माध्यंदिनं कौण्डिन्यं कौषीतकमिति  
नवान्यपरसूत्राण्यष्टादशसंख्याकाः शारीराः संस्काराः” इति । इति स्मृतिकर्तृनिरूपणम् ॥

अथ धर्मदेशः । याज्ञवल्क्यः ( १।२ ) “यस्मिन्देसे मृगः कृष्णः तस्मिन्धर्माग्नि- ५  
बोधत” । कृष्णसारो मृगो यस्मिन्देसे स्वच्छंदं विहरति तस्मिन्देसे धर्मा अनुष्ठेया इत्यर्थः ।  
तथा संवर्त्तः—

“स्वभावाद्यत्र विचरेत्कृष्णसारः सदा मृगः । धर्मदेशः स विज्ञेयो द्विजानां कर्मसाधनम्” ॥  
स्मृतिचंद्रिकायां

“कृष्णसारैर्यवैर्देमैश्चातुर्वर्ण्याश्रमैस्तथा । समृद्धो धर्मदेशः स्यादाश्रयेरन्विपश्चितः” ॥ १०  
मनुः ( २।१७-१८ )—

“सरस्वतीद्विषद्वत्योर्देवनयोर्दंतरम् । तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्त्तं प्रचक्षते ॥  
“यस्मिन्देसे य आचारः पारंपर्यक्रमागतः । वर्णानां सांतरालानां स सदाचार उच्यते” ॥  
सांतरालानां वर्णसंकरजसहितानां । स सदाचारः तस्य धर्मं प्रति प्रामाण्यमित्यर्थः ।  
स एव ( २।१९-२३ )—

“कुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पांचालाः शूरसेनयः । एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्त्तादनंतरः” ॥  
अनंतरः किञ्चिन्न्यूनः ।

“एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः । स्वं स्वं चरित्रं शिक्षते पृथिव्यां सर्वमानवाः” ॥  
अग्रजन्मनः ब्राह्मणस्य । शिक्षतेऽवगच्छति ।

“हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि । प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः” ॥ २०  
विनशनं सरस्वत्या अंतर्धानदेशः ।

“आ समुद्रात्तु वै पूर्वादा समुद्रात्तु पश्चिमात् । तयोरेवांतरं गिर्योरार्यावर्त्तं विदुर्बुधाः ॥  
“कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः । स ज्ञेयो याज्ञिको देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परम्” ॥  
अतःपरं एभ्यो ब्रह्मावर्त्तादिभ्योऽन्यः । म्लेच्छा यज्ञानधिकृताः ।

“एतान्द्विजातयो देशान्संश्रयेरन्प्रयत्नतः । शूद्रस्तु यस्मिन्कर्त्स्निश्चिन्निवसेद्वृत्तिकर्षितः” ॥ २५  
हारीतः ( १।१६ )—

“कृष्णसारो मृगो यत्र स्वभावेन प्रवर्त्तते । तस्मिन्देसे वसन्धर्मैः सिध्यन्ति द्विजपुंगवाः” ॥  
व्यासः

“ब्रह्मावर्त्तः परो देशो ऋषिदेशस्त्वनंतरः । मध्यदेशस्ततो न्यून आर्यावर्त्तस्त्वनंतरः ॥  
“चातुर्वर्ण्यव्यवस्थानं यस्मिन्देसे न विद्यते । तं म्लेच्छदेशं जानीयादाार्यावर्त्तमतः परम्” ॥ ३०  
न म्लेच्छदेशे श्राद्धं कुर्यान्न गच्छेन्म्लेच्छविषयमिति ॥ आदिपुराणे—

“अधर्मदेशमध्ये तु कृत्वा क्रतुशतान्यपि । न गच्छति द्विजश्रेष्ठ स्वर्गमार्गं महानपि” ॥  
चंद्रिकायां—

“आर्यावर्त्तमतिक्रम्य विना तीर्थक्रियां द्विजः । आज्ञां चैव तथा पित्रेरैदमेन विशुध्यति” ॥  
आपस्तंबः ( १।१५।२२ ) “प्रभूतैर्बोधकग्रामे यत्रात्माधीनं प्रयमणं तत्र वासो धर्म्यो ३५  
ब्राह्मणस्य” । प्रभूतानि एधांसि उदकं च यस्मिन् तस्मिन्ग्रामे ब्राह्मणस्य वासो धर्म्यः । तत्रापि

न सर्वत्र । किं तर्हि यत्रात्माधीनं प्रयमणं प्रायत्यं मूत्रपुरीषप्रक्षालनादीनि यत्रात्माधीनानि तत्र । यत्र तु कूपेष्वैवोदकं तत्र बहुकूपेष्वपि न वस्तव्यम् । यदाह बोधायनः

“उदपानोदके ग्रामे धार्मिको वृषलीपतिः । उषित्वा द्वादशसमाः शूद्रसाधर्म्यमृच्छति” ॥ यथा वृषलीपतिः शूद्रसाधर्म्यमृच्छति तथा धार्मिकोऽपि एवंविधे ग्रामे वसन्शूद्रसाधर्म्यं

प्राप्नोतीत्यर्थः । संग्रहे—

“कूपस्नानं तु यो विप्रः कुर्याद्द्वादशवार्षिकम् । स तेनैव शरीरेण शूद्रत्वं यात्यसंशयः” ॥ इति ।  
मैनुः ( ४।६०-६१ )

“नाधार्मिके वसेद्ब्रामे न व्याधिबहुले भृशम् । नैव प्रपद्येताध्वानं न चिरं पर्वते वसेत् ॥

“न शूद्रराज्ये निवसेन्नाधार्मिकजनावृत्ते । न पाषंडजनैकीर्णे नोपमृष्टेऽत्यजैर्नरैः” ॥

१० उपसृष्टे गृहीते उपद्रुते वा । व्यासः—

“पापदेशाश्च ये केचित् पापैरध्युषिता जनैः । गत्वा देशानपुण्यांस्तु कृत्स्नं पापं समश्रुते” ॥  
चंद्रिकायां—

“सौराष्ट्रं सिंधुसौवीरमावंत्यं दक्षिणापथम् । गत्वैतान्कामतो देशान्कलिंशांश्च पतेद्विजः ॥

“अंगवंगकलिंशांश्चान्पार्वतीयान् खषांस्तथा । सिंधुसौवीरसौराष्ट्रान्पारदानांश्चमालवान् ॥

१५ “निवासाय द्विजो नित्यमनापदि विवर्जयेत् । एतानप्यापदि” गृही संश्रयेद्वृत्तिकर्षितः” ॥

बोधायनः ( १।१।२९-३१ )

“आवंतयौऽग्रा मगधा सौराष्ट्रा दक्षिणापथाः । उपावृत्तिस्सिंधुसौवीरा एते संकीर्णयोनयः ॥

“सिंधुसौवीरसौराष्ट्रांस्तथा प्रत्यंतवासिनः । अंगवंगकलिंशांश्च गत्वा संस्कारमर्हति ॥”

प्रत्यन्तवासिनः चंडालप्रदेशाः “आरट्टान्कारस्करान्पुण्ड्रान् सौवीरान् वंगकलिंशान् प्राग्यूनानि

२० च गत्वा पुनस्तोमेन यजेत् सर्वपृष्ठ्या वा ( ३० )” । अथाप्युदाहरंति ( ३१ )

“पदभ्यां स कुरुते पापं यः कलिंशान् प्रपद्यते । ऋषयो निष्कृतिं तस्य प्राहुर्वैश्वानरं हविः” ॥ इति ।

इति धर्मदेशनिरूपणम् । अथ निषिद्धदेशापवादाः । व्यासः—

“ते देशास्ते जनपदास्ते शैलास्ते तथाश्रमाः । पुण्यत्रिपथगा येषां मध्ये याति सरिद्वरा ॥

“प्रसासे पुष्करे काश्यां निमेषेऽमरकंटके । गंगायां सरयूतीरे निवसेद्धार्मिको जनः ॥

२५ “अंतर्वेदिर्मध्यदेशो ब्रह्मावर्त्त च यज्ञियम् । मिश्रकं सरयूतीरं पुष्करं नैमिषं तथा ॥

“देशानेतास्त्रिवासाय संश्रयेरन् द्विजातयः” ॥ धर्मशास्त्रसारे—

“चांद्रायणानि कुच्छ्राणि महासांतपनानि च । प्रायश्चित्तानि दीयंते यत्र गंगा न विद्यते ॥

“कावेरी तुंगभद्रा च कुष्णा वेणी च गौतमी । भागीरथी च विख्याताः पंचगंगाः प्रकीर्तिताः” ॥

पितामहः—

३० “शूद्रराज्येऽपि निवसेद्यदि मध्ये तु जान्हवी । सोऽपि पुण्यतमो देशो नार्यैरपि समाश्रितः” ॥

गौतमः ( १।६५ ) “प्रभूतैर्बोदकयवसकुशमाल्योपनिष्क्रान्णमार्यजनभूयिष्ठमनलसमृद्धं धार्मिका-

धिष्ठितं निकेतमावसितुं यतेत” । एषाः काष्ठादीनि । ‘इधममेधः समित्’ इत्यमरकोशे ( २।४।१३ ) ।

साहचर्यनियमेन नपुंसकलिङ्गत्वमेवोचितमेधःशब्दस्य । तथाहि पांड्यकुलोदये “स्थापिते

संदसि जातवेदसि प्रापितैर्धसमभीरतेजसि” इति । अत्र तु आर्षोऽयमेधःशब्द अकारांतः । एषाः

३५ काष्ठादीनि । पाकाद्यर्थमुदकं स्नानपानयोग्यम् । यवसः स्तृणानि गवाद्यर्थम् । अत्रापि समाधानं तु पूर्ववत् । कुशा दर्भा इष्ट्याद्यर्थमाल्यानि पुष्पाणि देवतार्चनार्थम् । उपनिष्क्रमणं बाह्यसंचारार्थमव-

काशः । एधादीनि प्रभूतानि यत्र । आर्यास्त्रैवर्णिकाः, तैर्जनैर्भूयिष्ठं व्याप्तम् । अलसाः कृत्येषु निरुद्यमाः । तद्विपरीता अनलसास्तैः समुद्धम् । धार्मिकैरधिष्ठातृभिरधिष्ठितमेवंभूतं निकेतनं स्थान-  
मावसितुं यतेत । एवंभूते स्थाने यत्नैरपि निवसेदित्यर्थः । इति निषिद्धदेशापवादाः ।

अथ युगधर्माः । मनुः ( १।६७, ६९ )

“दैवे राज्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः । अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्विक्षिणायनम् ॥

“चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम् । तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः” ॥

वर्षाणां देववर्षाणाम् । संध्या युगारंभकालः । संध्यांशः युगावसानकालः ।

“इतरेषु ससंध्येषु ससंध्यांशेषु च त्रिषु । एकापायेन वर्तते सहस्राणि शतानि च” ( १।७० ) ॥

इतरेषु त्रेताद्वापारकलियुगेषु । एकापायेन एकलोपेन । पराशरः—

“कृतं त्रेता द्वापरं च कलिञ्चेति चतुर्युगम् । दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तु तद्वादशमिरुच्यते ” ॥ १०

मनुः ( १।८३ )—

“अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः । कृते त्रेतादिषु त्वेषां वैयो ऋसति पादशः” ॥

यत्पुनः इतिहासपुराणेषु बहुवर्षसहस्रजीवित्वमुक्तं तत्तेषां श्रद्धातपसा साधितमिति वेदितव्यम् ।

तथा च महाभारते कृतयुगपुरुषानधिकृत्योच्यते

“यावद्यावदभूच्छ्रद्धा देहं धारयितुं नृणाम् । तावत्तावदजीवंस्ते नासीद्यमकृतं भयम् ॥” इति । १५

स एव ( १।८४—८६ )—

“वेदोक्तमायुर्मर्त्यानामाशिषश्चैव कर्मणाम् । भवंत्यनुयुगं लोके प्रभावाश्च शरीरिणाम् ” ( ८४ ) ॥

आयुश्चतुर्वर्षशतादि । आशिषः फलानि । प्रभावः शापानुग्रहादिशक्तिः । अनुयुगं युगानुरूप्येण पूर्णानि । हीनानि हीनतराणि हीनतमानीत्यर्थः ।

“अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरे परे । अन्ये कलियुगे नृणां युगन्नासानुरूपतः ( ८५ ) ॥ २०

“तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते । द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेव कलौ युगे” ( ८६ ) ॥

परं प्रधानमित्यर्थः । युगस्वभावकृतेतरधर्मानादर एवकाराभ्यां सूचितः । पराशरः ( १।२३ )—

“कृते तु मानवा धर्मास्त्रेतायां गौतमाः स्मृताः । द्वापरे शंखलिखितौ कलौ पाराशराः स्मृताः” ॥

“अभिगम्य कृते दानं त्रेतास्वाहूय दीयते । द्वापरे याचमानाय सेवया दीयते कलौ” ॥

युगस्वभावेनैवमेव दीयत इत्यर्थः । स एवाह ( १।२९, २५ )—

“अभिगम्योत्तमं दानमाहूयैव तु मध्यमम् । अधमं याचमानाय सेवादानं तु निष्फलम् ॥

“त्यजेद्देशं कृतयुगे त्रेतायां ग्राममुत्सृजेत् । द्वापरे कुलमेकं तु कर्तारं तु कलौ युगै” ॥

पतितो यस्मिन्देसे निवसेत्तं देशं वर्जयेत् । कुलत्यागो नाम पतितस्य कुले विवाहभोजनाद्य-

प्रवृत्तिः । कर्मत्यागः संभाषणादिवर्जनम् ।

“कृते संभाषणादेव त्रेतायां स्पर्शनेन च । द्वापरे त्वन्नामादाय कलौ पतति कर्मणा ( २६ ) ॥ ३०

“कृते तत्क्षणैतः शापस्त्रेतायां दशभिर्दिनैः । द्वापरे त्वेकमासेन कलौ संवत्सरेण तु ( २७ ) ॥

“कृते त्वस्थिगताः प्राणास्त्रेतायां मांसमाश्रिताः । द्वापरे रुधिरं चैव कलौ त्वन्नादिषु स्थिताः” ( ३२ ) ॥

इति युगधर्मनिरूपणम्,

कलिसामर्थ्यं प्रपञ्चयति स एव ( अ. १ श्लो. ३०—३१ )

“जितौ धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं चैवानृतेन च । जिताश्चौरैस्तु राजानः स्त्रीभिश्च पुरुषाः कलौ ॥ ३५



“सीदन्ति चाग्निहोत्राणि गुरुपूजा प्रणश्यति । कुमार्यश्च प्रसूयन्ते तस्मिन्कलियुगे सदा ” ॥  
अधर्मस्य जयो नाम पादत्रयोपेतत्वम् । एकेन पादेन वर्तमानत्वं धर्मस्य पराजयः ॥  
तथा माधवीये पराशरे ( पृ. ८२. पं १-५ )

- “कृते चतुष्पात्सकलो व्याजोपाधिविवर्जितः । वृषः प्रतिष्ठितो धर्मो मनुष्येष्वभवत्पुरा ॥  
५ “धर्मः पादविहीनस्तु त्रिभिरंशैः प्रतिष्ठितः । त्रेतायां द्वापरेऽर्धेन व्यामिश्रो धर्म इष्यते ॥  
“त्रिपादहीनस्तिष्ये तु सत्तामात्रेण तिष्ठति” । विष्णुपुराणे मैत्रेयं प्रति पराशरः ( ६।१ )—  
“सर्वे ब्रह्म वदिष्यन्ति संप्राप्ते तु कलौ युगे । नानुतिष्ठन्ति मैत्रेय शिश्रोदरपरायणाः ॥  
“यदा यदा सतां हानिर्वेदमार्गानुसारिणाम् । तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणैः ॥  
“मुखं दग्धं परात्नेन हस्तौ दग्धौ प्रतिग्रहात् । मनो दग्धं परस्त्रीभिर्ब्रह्मशापः कुतः कलौ ॥  
१० “वर्णाश्रमाचारवती प्रवृत्तिर्न कलौ नृणां । न सामयजूक्धर्मविनिष्पादनहेतुकी ॥  
“विवाहा न कलौ धर्म्यां न शिष्यगुरुसंस्थितिः । न दांपत्यक्रमो नैव बन्हिदेवार्चनक्रमः ॥  
“सर्वमेव कलौ शास्त्रं यस्य यद्रोचते द्विज । देवताश्च कलौ सर्वाः सर्वः सर्वस्य चाश्रमः ॥  
“धर्मो यथाभिरुचितैरनुष्ठानैरनुष्ठितः । वित्तेन भविता पूसां स्वल्पेनादृढ्यमदः कलौ ॥  
“परित्यजन्ति भर्तारं वित्तहीनं तथा स्त्रियः । भर्ता भविष्यति कलौ वित्तवानेव योषिताम् ॥  
१५ “अर्थाश्चात्मोपभोगार्था भविष्यन्ति कलौ युगे । स्त्रियः कलौ भविष्यन्ति स्वैरिण्यो ललितस्पृहाः ॥  
“अस्नानभोजिनो नाग्निदेवतातिथिपूजकाः । करिष्यन्ति कलौ प्राप्ते न च पिंडोदकक्रियाः ॥  
“दुर्भिक्षभयपीडाभिरतीवोपद्रुता जनाः । गोधूमान्नयवान्नाढ्यं देशं यास्यन्ति दुःखिताः ॥  
“वेदमार्गे प्रलीने तु पाषंडाढ्ये ततो जने । अधर्मवृत्त्या लोकानामल्पमायुर्भविष्यति ॥  
“श्वश्रूश्चशुरभूयिष्ठा गुरवश्च नृणां कलौ । स्यादाद्याहार्यभार्याश्च सुहृदो मुनिसत्तम ॥  
२० “कस्य माता पिता कस्य सदा कर्मात्मकः पुमान् । इति चोदाहरिष्यन्ति श्वशुरादिगता नराः ॥  
“निःस्वाध्यायवषट्कारे स्वधास्वाहाविवर्जिते । तदा प्रविरलो धर्मः कचिल्लोकेऽपि वत्स्यति ॥  
“तत्राल्पेनैव यत्नेन पुण्यस्कंधमनुत्तमम् । करोति तं कृतयुगे क्रियते तपसा हि यः ” ॥ इति ।  
कूर्मपुराणे ( पूर्वार्ध अ. ३० )  
“राजानः शूद्रभूयिष्ठा ब्राह्मणान्धातयन्ति च । भ्रूणहत्यावीरहत्या प्रजायेते प्रजासु वै ॥ ७ ॥  
२५ “विनिन्दन्ति महादेवं ब्रह्माणं पुरुषोत्तमम् । आम्नायं धर्मशास्त्राणि पुराणानि कलौ युगे ॥ ९ ॥  
“शुक्रदंता धृताक्षाश्च मुंडाः काषायवाससः । शूद्रा धर्मं चरिष्यन्ति युगांते समुपस्थिते ॥ १३ ॥  
“ताडयन्ति द्विजेंद्रांश्च शूद्रा राजोपसेविनः । सेवावसरमालोक्य द्वारि तिष्ठन्ति वै द्विजाः ॥ १७, २० ॥  
“वाहनस्थान् समावृत्य शूद्रान् शूद्रोपसेविनः । सेवन्ते ब्राह्मणास्तत्र स्तुवंति स्तुतिभिः कलौ ॥ २१ ॥  
“अध्यापयन्ति वै वेदान् शूद्राणां शूद्रसेवकाः । पठन्ति वैदिकान् शब्दान् नास्तिका घोरमाश्रिताः ॥ २२ ॥  
३० “तपोयज्ञफलानां च विक्रेतारो द्विजोत्तमाः । यतयश्च भविष्यन्ति शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २३ ॥  
“नाशयन्ति ह्यधीतानि नाधिगच्छन्ति चानघ । गायन्ति लौकिकैर्गानैर्देवतानि नराधिप ॥ २४ ॥  
“वामाः पाशुपताचारास्तथा वै पांचरात्रिकाः । भविष्यन्ति कलौ तस्मिन्ब्राह्मणाः क्षत्रियास्तथा ॥ २५ ॥  
“कुर्वन्ति चावताराणि ब्राह्मणानां कुलेषु वै । दधीचिशापनिर्दग्धाः पुरा दक्षाध्वरे द्विजाः ॥ २७ ॥  
“निन्दन्ति च महादेवं तमसाविष्टचेतसः । ये चान्ये शापनिर्दग्धा गौतमस्य महात्मनः ॥ २८ ॥  
३५ “सर्वे तेऽवतरिष्यन्ति ब्राह्मणाद्यासु योनिषु । विनिन्दन्ति हृषीकेशं ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ” ॥ ३० ॥



युगसामर्थ्यवर्णनस्य प्रयोजनमाह पाराशरः ( १।३३ )

“युगे युगे च ये धर्मास्तत्र तत्र च ये द्विजाः । तेषां निंदा न कर्त्तव्या युगरूपा हि ते द्विजाः” ॥  
युगरूपा युगानुरूपाः कालपरतंत्रा इति यावत् । अत्र माधवीये-नन्वेवं कलौ पापिनां अनिर्द्यत्वा-  
त्कृत्स्नं धर्माधर्मव्यवस्थापकं शास्त्रं विप्लवेत । अतः कथमनिदेति । तत्रोच्यते-नानामुनिभि-  
स्तत्तद्युगसामर्थ्यस्य उचितप्रायश्चित्तस्य प्रपञ्चितत्वात्तदुभयं पर्यालोच्य निंदानिंदयोर्व्यवस्था ५  
कल्पनीया । यः पुरुषो युगे सामर्थ्यमनुसृत्य विहितानुष्ठानं प्रतिषिद्धवर्जनं प्रमादतः कृत-  
पापस्य प्रायश्चित्तं यः कर्तुं शक्नोऽपि न कुर्यात्तद्विषयाणि ‘भ्रूणहत्या पितुस्तस्य सा कन्या  
वृषली स्मृता’ इत्यादीनि निंदावचनानि । अशक्तविषयं तेषां निंदा न कर्त्तव्येतिवचनम् । तस्मान्न  
कोऽपि धर्मशास्त्रस्य विप्लव इति । तदाह पाराशरः ( १।३४ )—

“युगे युगे तु सामर्थ्यं शेषं मुनिविभाषितं । पराशरेण चाप्युक्तं प्रायश्चित्तं विधीयते” ॥ इति । १०  
शेषं विशिष्टम् । तत्तद्युगसामर्थ्यं मन्वादिमुनिभिर्विशेषेण भाषितं पराशरेणाप्युक्तं प्रायश्चित्तं  
च तैर्विधीयते । अतः शक्ताशक्तविषये निंदानिंदे इत्यर्थः । व्यासः—

“यत्कृते दशभिर्वर्षेभ्योऽपि हायनेन तत् । द्वापरे तच्च मासेन ह्यहोरात्रेण तत्कलौ ॥

“ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैरेतायां द्वापरेऽर्चयन् । यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥

“अनेकदोषयुक्तस्य कलेरेष महान्गुणः । विशेषाद्ब्राह्मणो रुद्रमीशानं शरणं व्रजेत्” ॥ १५

शिवसर्वस्वे

“यावन्न कीर्त्तयेद्रामं कलिकल्मषसंभवम् । तावत्तिष्ठति देहेऽस्मिन्भयं चात्र प्रवर्त्तते” ॥

च्यवनस्मृतौ—

“श्रुतिस्मृतिपुराणेषु रामनाम समीरितम् । तन्नामकीर्तनं भूयस्तापत्रयविनाशनम्” ॥ बृहस्पतिः

“कृते यद्वधर्मः स्यात्त्रेतायां तु ऋतुत्रयात् । द्वापरे तु त्रिपक्षेण कलावन्हा च तद्भवेत् ॥ २०

“न च वृत्तं न शुद्धार्थो न शुद्धिर्मनसः कलौ । यतोऽतः सत्यमेवैकं नराणामुपकारकम्” ॥

अथ कलियुगनिषिद्धधर्माः । पाराशरः—

“ऊढायाः पुनरुद्धाहो ज्येष्ठांशं गोवधं तथा । कलौ पञ्च न कुर्वीत भ्रातृजायां कमंडलुम्” ॥

स्मृत्यर्थसारे—

“देवरेण सुतोत्पत्तिर्वानप्रस्थीश्रमग्रहः । दत्ताक्षतायाः कन्यायाः पुनर्वानं परस्य च ॥ २५

“समुद्रयात्रास्वीकारः कमंडलुविधारणम् । महाप्रस्थानगमनं गोपशुश्च सुराग्रहः ॥

“अग्निहोत्रहवण्याश्च लेहोलौढापरिग्रहः । असवर्णासु कन्यासु विवाहश्च द्विजातिषु ॥

“वृत्तस्वाध्यायसापेक्षमघसंकोचनं तथा । अस्थिसंचयनाद्दूर्ध्वमंगस्पर्शनमेव च ॥

“प्रायश्चित्तविधानं च विप्राणां मरणातिक्रमः । संसर्गदोषः पापेषु मधुपर्कं पशोर्वधः ॥

“दत्तोरसेतरेषां तु पुत्रत्वेन परिग्रहः । शामित्रं चैव विप्राणां सोमविक्रयणं तथा ॥ ३०

“दीर्घकालं ब्रह्मचर्यं नरमेधाश्वमेधकौ । कलौ युगे त्विमान्धर्मान्वज्यानाहुर्मनीषिणः” ॥ इति ।

धर्मशास्त्रसुधानिधौ

“गोत्रान्मातृसर्पिण्डात्तु विवाहो गोवधस्तथा । विधवायां प्रजोत्पत्तिर्देवरस्य नियोजनम् ॥

“आततायिद्विजाभ्याणां धर्मयुद्धेन हिंसनम् । द्विजस्याब्धौ तु निर्याणं शोधितस्यापि संग्रहः ॥

“सत्रदीक्षा च सर्वेषां कमंडलुविधारणम् । महाप्रस्थानगमनं गोसंज्ञाश्च गोसेवे ॥ ३५

- “सौत्रामण्यामपि सुराग्रहणस्य च संग्रहः । संसर्गदोषः स्तेनाद्यैर्महापातकनिष्कृतिः ॥  
 “वरातिथिपितृभ्यश्च पशुपाकरणक्रिया । सवर्णानां तथा दुष्टैः संसर्गः शोधितैरपि ॥  
 “अयोनी सङ्ग्रहे वृत्ते परित्यागो गुरुस्त्रियाः । शूद्रेषु दासगोपालकुलमित्रार्धसीरिणाम् ॥  
 “भोज्यान्नता गृहस्थस्य तीर्थसेवा च दूरतः । शिष्यस्य गुरुदारेषु गुरुवद्वृत्तिरीरिता ॥  
 ५ “आपद्वृत्तिर्द्विजाग्रच्याणामश्वस्तनिकता तथा । ब्राह्मणानां प्रवासित्वं मुस्त्राग्निधमनक्रिया ॥  
 “बलात्कारादिदुष्टस्त्रीसंग्रहो विधिचोदितः । यतेस्तु सर्ववर्णेषु भिक्षाचर्या विधानतः ॥  
 “नवोदके दशाहं च दक्षिणा गुरुचोदिता । ब्राह्मणादिषु शूद्रस्य पचनादिक्रियाऽपि च ॥  
 “भृग्वग्निपतनैश्चैव वृद्धादिमरणं तथा ॥  
 “गोतृप्तिशिष्टे पयसि शिष्टैराचमनक्रिया । पितापुत्रविरोधेषु साक्षिणां दंडकल्पनम् ॥

- १० “यत्र सायं गृहस्थत्वं सूरिभिस्तत्त्वतत्परैः । एतानि लोकगुप्त्यर्थं कलेरादौ महात्माभिः ॥  
 “निवर्तितानि कर्माणि व्यवस्थापूर्वकं बुधैः । समयश्चापि साधूनां प्रमाणं वेदवद्भवेत् ” ॥  
 कलौ देवरेण पुत्रोत्पादनं प्रतिषेधत्यापस्तम्बः (२।२।७।२-६) “सगोत्रस्थानीयां न परेभ्यः  
 समाचक्षीत । सगोत्रायैव तु समाचक्षीत । कुलायैव हि स्त्री प्रदीयत इत्युपदिशन्ति । तदिन्द्रिय-  
 दौर्बल्यं विप्रतिपन्नमविशिष्टं हि परत्वं पाणेस्तव्यातिक्रमे खलु पुनरुभयोर्नरकः” इति । अनपत्यो  
 १५ भर्ता तत्पित्रादिर्वा सगोत्रस्थानीयां भार्या स्नुषां वा न परेभ्योऽसगोत्रेभ्यः समाचक्षीत । अस्या-  
 मपत्यमुत्पाद्यमिति स्वगोत्राय देवराय सपिण्डेभ्यो वा समाचक्षीत । कुलायैव हि स्त्री प्रदीयत इति ।  
 तद्व्य विप्रतिपन्नं विप्रतिषिद्धं भर्तुर्व्यतिक्रमे इन्द्रियपारंतव्यादतिप्रसंगः स्यादिति देवरादि-  
 पाणेरपि गृहीतात्पाणेरन्यत्वाविशेषादित्यर्थः ॥

### अथ कर्मपरिभाषा

- २० “मुख्यकाले यदावश्यं कर्म कर्तुं न शक्यते । गौणकालेऽपि कर्त्तव्यं गौणोऽप्यत्रेदृशो भवेत्” ॥ इति ।  
 स्मृतिरत्नावल्याम्—

- “स्वकालादुत्तरो गौणः कालः पूर्वस्य कर्मणः । यद्वाऽऽगामिक्रियामुख्यकालस्याप्यन्तरालवत् ॥  
 “गौणकालत्वमिच्छति केचित्प्राक्तनकर्मणि । गौणेष्वेतेषु कालेषु कर्म चोदितमाचरन् ॥  
 “प्रायश्चित्तप्रकरणे प्रोक्तां निवृत्तिमाचरेत् । प्रायश्चित्तमकृत्वा न गौणकाले समाचरेत् ॥  
 ३५ “दिवोदितानि कर्माणि प्रमादादकृतानि वै । यामिन्याः प्रहरो यावत्तावत्कर्माणि कारयेत् ॥  
 “मुख्यकाले हि मुख्यं चेत्साधनं नैव लभ्यते । तत्कालद्रव्ययोः कस्य मुख्यत्वं गौणताऽपि वा ॥  
 “मुख्यं कालं समाश्रित्य गौणमप्यस्तु साधनम् । न मुख्यद्रव्यलोभेन गौणकालप्रतीक्षणम्” ॥ इति ।  
 स्कान्दे—

- “आत्मा पुत्रः पुरोधाश्च भ्राता पत्नी पिता सखा । इज्यायां धर्मकार्ये च जायन्ते प्रतिरूपकाः ॥  
 ३० “एभिः कृतं महादेवि स्वयमेव कृतं भवेत् ” ॥ इति । संग्रहे—  
 “रात्रौ प्रहरपर्यन्तं दिवाकृत्यानि कारयेत् । ब्रह्मयज्ञं च सौरं च वर्जयित्वा विशेषतः” ॥ इति ।  
 कात्यायनः—  
 “यत्रोपदिश्यते कर्म कर्तुंगं न तूच्यते । दक्षिणस्तत्र विज्ञेयः कर्मणां पारगः करः ” ॥ इति ।

### मनुः

- ३५ “कुत्सिते वामहस्तः स्यादक्षिणः स्यादकुत्सिते । यज्ञोपवीतिना कार्यं सर्वं कर्म प्रदक्षिणम् ॥  
 “आसीन ऊर्ध्वः प्रव्हो वा नियमो यत्र नेदृशः । तदासीनेन कर्त्तव्यं न प्रव्हेन न तिष्ठता ” ॥

**कात्यायनः—**

“यत्र द्विद्धिनयमो न स्याज्जपहोमादिकर्मसु । तिस्रस्तत्र दिशः प्रोक्ता ऐंद्री सौमी तदंतरा” ॥ इति ।

**स्मृतिचंद्रिकायाम्—**

“मनः प्रसादात्सत्योक्त्या तपसा स्नानकर्मणा । आचम्य चात्मनः शुद्धिं कृत्वा कर्म समाचरेत् ॥

“संकल्पः कर्मणामादौ वैदिकानां विधीयते । ईदं कर्म करिष्यामीत्युच्चार्य त्वाचरेत्ततः” ॥ इति । ५

**आश्वलायनः—**

“प्रधानस्य क्रियायां तु सांगं तत्क्रियते पुनः । तदंगाकरणे कुर्यात्प्रायश्चित्तं न कर्म तत् ॥

“प्रवृत्तमन्यथा कुर्याद्यदि मोहात्कथंचन । यतस्तदन्यथाभूतं तत एव समापयेत् ॥

“समाप्तं यदि जानीयान्मयैतदयथाकृतम् । तावदेव पृथक्कुर्यान्निवृत्तिं सर्वकर्मणाम्” ॥ शातातपः—

“बह्वल्पं वा स्वगृह्योक्तं यस्य कर्म प्रचोदितम् । तस्य तावति शास्त्रार्थे कृते सर्वं कृतं भवेत् ॥ १४

“श्रौतेषु सर्वशाखोक्तं सर्वस्यैव यथोचितम् । स्मार्त्तं साधारणं तेषु गार्ह्येष्वपि च कर्मसु ॥

“सर्वशाखोपसंहारादुक्तः श्रौतो यथाविधिः । सर्वस्मृत्युपसंहारात्स्मार्त्तोऽप्युक्तस्तथा विधिः” ॥ इति ।

**स्मृत्यर्थसारे**

“प्राचीदिशामनुकौ स्यादुदीचीशानदिक् तथा । तिष्ठत्वप्रवृत्तानुक्तावासीनत्वं च कर्मसु ॥

“प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वर्त्तते । स नाप्नोति फलं तस्य परत्रेति श्रुतिस्मृती ” ॥ १५

“न सांपरायिकं तस्य दुर्मतेर्विद्यते फलमिति ” पाठांतरम् ।

“सामयाचारिका धर्मा जातिभेदकुलोद्भवाः । ग्रामाचाराः परिग्राह्या ये च विध्यविरोधिनः ॥

“युगधर्माः परिग्राह्याः सर्वत्रैव यथोचितम् ” । इति । **कात्यायनः—**

“यन्नाम्नातं स्वशाखायां पारक्यं न विरोधि च । विद्वद्भिस्तदनुष्ठेयमग्निहोत्रादि कर्मवित् ॥

“आत्मतंत्रे तु यन्नोक्तं तत्कुर्यात्पारतंत्रिकम् ” इति ॥ पारक्यं परकीयम् । स्वसूत्रोक्तं कर्म २०

परित्यज्य पारक्यं कर्म कुर्वतो दोषमाह दक्षः—

“स्वकं कर्म परित्यज्य यदन्यत्कुर्वते द्विजः । अज्ञानादथवा ज्ञानात्त्यकेन पतितो भवेत् ” ॥

**स्वसूत्रालाभे वृद्धमनुः—**

“स्वसूत्रेऽविद्यमाने तु परसूत्रेण वर्त्तते । बोधायनमतं कृत्वा स्वसूत्रफलभागभवेत् ॥

“विधिदृष्टं तु यत्कर्म करोत्यविधिना तु यः । फलं न किंचिदाप्नोति क्लेशमात्रं तु तस्य तत्” ॥ इति । २५

**स्मृत्यंतरे—**

“अकाले यत्कृतं कर्म कालं प्राप्य पुनः क्रिया । कालातीतं तु यत्कुर्यादकृतं तद्विनिर्दिशेत्” ॥ इति ।

**आश्वलायनः**

“श्रौतं वा यत्र पौराणं स्मार्त्तं वापि विनिर्णये । गीर्हटा तत्र न चलेन्न्यायाद्वा स्वानुमानतः ॥

“यत्र गीर्हटा तत्र कुर्याच्चैवानुमानतः ॥

“यत्र यद्यथया प्रोक्तं तत्र कुर्यात्तथा च तत् । नान्यथा स्वानुमानेन कुर्यात्प्राज्ञोऽपि मानवः” ॥ इति । ३०

**भारद्वाजः—**

“आसनं स्वस्तिकं प्रोक्तं जपादीनि प्रकुर्वतः । कुशे शय्यासनं वापि वीरासनमथापि वा ॥

“जानूर्वरंतरे सम्यक् कृत्वा पादतले उभे । ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥

“एकं पादमथैकस्मिन्विन्यस्योरौ तु संस्थितः । इतरस्मिंस्तथा चोरं वीरासनमुदीरितम् ॥ ३५

“उर्वोरुपरि विप्रेन्द्र कृत्वा पादतले उभे । अंगुष्ठौ चानुबन्नीयाद्धस्ताभ्यां व्युत्क्रमेण तु ॥

“पद्मासनं वदेदेतत्सर्वेषामपि पूजितम् ” ॥

स्मृत्यर्थसारे—

“उपात्ते तु प्रतिनिधौ मुख्यार्थो यदि लभ्यते । तत्र मुख्यमनादृत्य गौणेनैव समापयेत् ॥

“मुख्याभावे यदा गौणमुपात्तं सद्दिनश्यति । तत्र मुख्योपमं गौणं ग्राह्यं गौणोपमं न तु ॥

“यस्मिन्कस्मिन्नुपात्ते तु मुख्ये प्रचरिते सति । अन्यत् द्रव्यं विजानीयं सजातीयमथापि वा ॥

५ “उपादाय प्रयुजानो द्रव्यं कृत्स्नमवाप्नुयात्” ॥ भरद्वाजः—

“अज्ञाता यदि वा मंत्राः स्वस्वगृह्येषु चोदिताः । उपवीतप्रमुख्यानां तेषां वै धारणे द्विजाः ॥

“केवलं प्रणवो वापि व्याहृतित्रितयं तु वा । स्यातां विप्रादिवर्णेषु द्वावेतौ सर्वशास्त्रिणाम्” ॥ इति ।

शांडिल्यः—

“प्रदक्षणे प्रणामे च पूजायां हवने जपे । न कण्ठावृतवस्त्रः स्याद्दर्शने गुरुदेवयोः” ॥

१० बोधायनः ( २।६।५८-५९ )—

“कर्तव्यमुत्तरं वासः पंचस्त्रेतेषु कर्मसु । स्वाध्यायोत्सर्गदानेषु भोजनाचमयोस्तथा ॥

“हवनं भोजनं दानमुपहारः प्रतिग्रहः । बहिर्जानु न कार्याणि तद्वदाचमनं स्मृतम्” ॥ इति ।

अन्यैश्च—

“स्नानमाचमनं होमं भोजनं देवतार्चनम् । प्रौढपादो न कुर्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम् ॥

१५ “आसनारूढपादस्तु जान्वोर्वा जंघयोस्तथा । कृतावसक्थिको यस्तु प्रौढपादः स उच्यते” ॥

वस्त्रादिना कृतपादबंधः कृतावसक्थिकः ।

“होमः प्रतिग्रहो दानं भोजनाचमने जपः । बहिर्जानु न कार्याणि सांगुष्ठानि सदा चरेत्” ॥

“तद्वदाचमनं स्मृतिमिति” ॥ इति परिभाषा ॥

अथ सृष्टिप्रकारः । तत्र मनुः ( १।७ )—

२० “योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः । सर्वभूतमयोऽर्चित्यः स एव स्वयमुद्भवौ” ॥

अव्यक्तः अविदितस्वभावः । सनातनः अनादिनिधनः । योऽसौ केवलं योगशास्त्रप्रसिद्धः ।

स एष परमः पुमान्सर्वभूतमयः प्रपंचस्वरूपः । स्वयं न कस्यचिन्नियोगेन नापि कर्मवशेन ।

उद्भवौ व्यक्तीबभूव ।

“सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्वीविधाः प्रजाः । अप एव ससर्जदौ तासु वीर्यमवासृजत्” ( १।८ ) ॥

२५ अवासृजदुप्तवान् । अंशेनानुप्राविशदित्यर्थः ।

“आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः । ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः” ( १।१० ) ॥

नरस्य पुरुषस्य सूनवः भगवता सृष्टा इत्यर्थः । वै शब्दो हेतौ । ता आपः अस्य नरस्य पूर्वं

प्रथममयनमनुप्रवेशस्थानमासीद्यत्नेन नारायणः स्मृतः ।

“तदंडमभवद्द्वैमं सहस्रांशुसमप्रभम् । तस्मिन्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वभूतपितामहः” ( १।९ ) ॥

३० तज्जलानुप्रविष्टं भगवद्दीर्यं हैमं हेममयं अत एव ब्रह्मा हिरण्यगर्भाख्यः तस्मिन्जज्ञे स्वयं भगवान्ब्रह्म-

रूपधारी जज्ञे ।

“यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् । तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते” ( १।११ ) ॥

कारणशब्देन नारायण उच्यते । सदसदात्मकं सत्कारणं प्रकृत्यादिकं असत्कार्यं प्रपंच उभ-

यात्मा देहो यस्य तस्य तत्तथोक्तम् । तद्विसृष्टेन कारणारख्येन भगवता सृष्टः । पुरुषशब्दोऽयं

३५ राजपुरुषशब्दवदधिकारिवचनः । भगवान्नियोगकर इत्यर्थः ।

“तस्मिन्नङ्गे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम् । स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदङ्गमकरोद्विधा” (१।१२) ॥  
भगवान्भगवन्मयो ब्रह्मा ।

“ताभ्यां स शकलाभ्यां तु दिवं भूमिं च निर्ममे । मध्ये व्योमदिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम्” ॥  
दिवं स्वर्गादिलोकपञ्चकम् । भूमिं सपातालां मध्ये व्योम अंतरिक्षलोकं अष्टौ दिशश्च शाश्वतं  
यावत्प्रलयावस्थानं अपां स्थानं समुद्रं च निर्ममे ।

सर्वभूतानि सिमृक्षतो हिरण्यगर्भस्योपादानं शरीरांश इति श्लोकत्रयेणाह मनुः (१।१४-१६)

“उद्बर्होऽत्मनश्चैव मनः सदसदात्मकम् । मनसश्चाप्यहंकारमभिमन्तारमीश्वरम् ॥

“महांतमेव चात्मानं सर्वाणि त्रिगुणानि च । विषयाणां गृहीतृणि ज्ञानैः पञ्चेन्द्रियाणि च ॥

“तेषामवयवान्सूक्ष्मान् षण्णामप्यमितौजसा । संनिवेश्यात्ममात्रासु सर्वभूतानि निर्ममे” ॥

मनः महत्तत्त्वं सदसदात्मकं प्रकृतिविकृत्यात्मकं मनसो महत्त्वादनन्तरमभिमन्तारमस्मिताप्रत्यय- १०  
रूपमीश्वरम् । सर्वकर्मप्रवर्तकमहंकारं च उद्बर्ह उद्धृतवान् । महान्तमात्मानं स्थूलमतःकरणं मन  
इति यावत् । स्वरूपेण विषयरूपेणैन्द्रियरूपेण च त्रिगुणीभूयावस्थानान्निगुणानीति तन्मात्राणि  
शब्दान्युच्यन्ते । तथा विषयाणां गृहीतृणि पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि चकारात्मकैर्द्रियाणि ज्ञानैः क्रमादु-  
द्बर्ह । तेषां महदहंकारं मनस्तन्मात्रज्ञानकर्मैन्द्रियाणि षण्णामप्यमितौजसामुपयुज्यमानेष्वप्यवयवेषु  
दीपवदक्षयवीर्याणामवयवानामंशेनात्ममात्रासु स्वजीवांशेषु संनिवेश्य आकलय्य सर्वभूतानि १५  
द्वमनुष्यादीनि निर्ममे । एतदुक्तं भवति । आत्मीयानां महदहंकारमनस्तन्मात्रज्ञानकर्मैन्द्रियाणा-  
मंशाः सर्वभूतोपादानमिति ।

“सर्वेषां तु सनामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् । वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे (२१) ॥

“कर्मणां तु विवेकाय धर्माधर्मौ व्यवचयत् । द्वंद्वैर्योजयच्चेमाः सुखदुःखादिभिः प्रजाः (२६) ॥

“लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः । ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत् (३१) ॥ २०

“सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुण्यर्थं स महाद्युतिः । मुखबाहूरुपज्जानां पृथक्कर्मण्यकल्पयत्” ॥ इति (८७) ॥

सुबालोपनिषदि श्रूयते—“तस्मात्तमः संजायते तमसो भूतादि भूतादेराकाशमाकाशाद्वायु-  
वीर्योरग्निरग्रेरापः । अद्भ्यः पृथिवी । तदङ्गं समभवत्तत्संवत्सरमात्रमुषित्वा द्विधाकरोदधस्ताद्भू-  
मिमुपरिष्ठादाकाशं मध्ये पुरुषः” इति । तैत्तिरीयश्रुतिरपि “ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् । बाहू  
राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पथ्याः शूद्रो अजायत” इति च । तथा महोपनिषदि २५  
“एको ह वै नारायण आसीत् । सोऽन्यं कामं मनसाऽध्यायत् । तस्य ध्यानस्थस्य ललाटस्वेदो-  
त्पससार ता आपोऽभवन् । तासु वीर्यमवासृजत्तद्विरणमयमण्डमभवत् । तस्मिन् ब्रह्मा चतुर्मुखोऽ-  
जायत ” इति । नारायणोपनिषदि च “अथ पुरुषो ह वै नारायणोऽकामयत् । प्रजाः सृजे-  
येति । नारायणाद्ब्रह्माऽजायत ” इति । हारीतः (१।१-१३)

“नारायणः परो देवो जगत्सृष्ट्वा जलोपरि । सुष्वाप भोगिपर्यंकशयने तु श्रिया सह ॥

“तस्य सुप्तस्य नाभौ तु महत्पद्ममभूत्किल । पद्ममध्येऽभवद्ब्रह्मा वेद्वेदांगभूषणः ॥

“स चोक्तस्तेन देवेन जगत्सृष्टौ पुनः पुनः । सोऽपि सृष्ट्वा जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥

“यज्ञसिद्ध्यर्थमनघान्ब्राह्मणान्मुखतोऽसृजत् । अमृजत्क्षत्रियान् बाह्वेर्वैश्यान्प्युरुदेशतः ॥

“शूद्राश्च पादयोः सृष्ट्वा तेषां चैवानुपूर्वशः । यथा प्रोवाच भनवान्ब्रह्मयोनिः पितामहः” ॥ इति ।

प्रोवाच धर्मानिति शेषः । सृष्टौ परस्परविरुद्धानां श्रुतीनां स्मृतीनां च कल्पभेदेन व्यवस्था द्रष्टव्या । इति सृष्टिः ॥

अथ वर्णधर्माः । तत्र देवलः

“ब्राह्मण्यां ब्राह्मणाज्जातः संस्कृतो ब्राह्मणो भवेत् एवं क्षत्रियविट्शूद्रा ज्ञेयाः स्वेभ्यः स्वयोनिजाः” ॥

५ इति । शातातपः

“तपो दमो दया दानं सत्यं धर्मं श्रुतं घृणा । विद्या विज्ञानमास्तिक्यमेतद्ब्राह्मणलक्षणम्” ॥

याज्ञवल्क्यः ( आचारे ९० )—

“सर्वर्णेभ्यः सवर्णासु जायंते हि सजातयः । अनिघेषु विवाहेषु पुत्राः संतानवर्धनाः” ॥

हारीतः ( १।१५, १७-१८ )—“ब्राह्मण्यां ब्राह्मणेनैव उत्पन्नो ब्राह्मणः स्मृतः ।

१० “षट्कर्माणि वै निजान्याहुर्ब्राह्मणस्य महात्मनः । तैरेव सततं यस्तु वर्तयन्सुखमेधते ॥

“अध्यापनं चाध्ययनं यजनं याजनं तथा । दानं प्रतिग्रहश्चेति षट्कर्माणीति चोच्यते” ॥

मनुः ( १।८८ )—

“अध्यापनं चाध्ययनं यजनं याजनं तथा । दानं प्रतिग्रहश्चेति षट्कर्माण्यग्रजन्मनः” ॥

याज्ञवल्क्यः ( आचारे ११८ )—

१५ “इज्याध्ययनदानानि वैश्यस्य क्षत्रियस्य च । प्रतिग्रहोऽधिको विप्रे याजनाध्यापने तथा” ॥ इति ।

तत्र ब्राह्मणस्येज्यादीनि त्रीणि धर्मार्थानि प्रतिग्रहादीनि त्रीणि वृत्त्यर्थानि

“षण्णां तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका । याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः” ॥ इति

मनुस्मरणात् ( १०।७३ ) । अत इज्यादीन्यावश्यकर्तव्यानि न प्रतिग्रहादीनि ।

तदाह गौतमः ( १०।१-३ )—“द्विजातीनामध्ययनमिज्यादानं ब्राह्मणस्याधिकाः प्रवचनयाजन-

२० प्रतिग्रहाः । पूर्वेषु नियमः” इति । आपस्तम्बः ( २।१३।१ )—“सवर्णापूर्वाशास्त्रविहितायां यथर्तु

गच्छतः पुत्रास्तेषां कर्मभिः संबंधः” इति । सवर्णा च अपूर्वा च शास्त्रविहिता चेति कर्म-

धारयः । सवर्णा सजातीया । अपूर्वा अनन्यपूर्वा । शास्त्रविहिता शास्त्रोक्तब्राह्मादिविवाह-

संस्कृता । एवंभूतायां भार्यायां यथर्तुगमनकल्पेन गच्छतो ये पुत्रा जायंते तेषां कर्मभिः

संबंधो भवतीत्यर्थः । कर्माण्यपि स एवाह ( २।१०।४ ) “स्वकर्म ब्राह्मणस्याध्ययनमध्यापनं

२५ यज्ञो याजनं दानं प्रतिग्रहणं दायाद्यं सिलोच्छ” इति । दायाद्यं दायस्वीकारः । सिलोच्छः क्षेत्रादिषु

पतितानि मंजरीभूतानि ततश्च्युतानि च धान्यानि सिलशब्दार्थः । तेषामुच्छन्नमंगुलिभिर्नसैर्वा

आदानम् । एतान्यष्टौ ब्राह्मणस्य स्वकर्मैत्यर्थः । इति वर्णधर्माः ॥

अथ यजनम् । यज्ञे श्रुतिः<sup>१</sup> । “यज्ञ इति यज्ञो हि देवानां यज्ञेन हि देवा दिवं गता

यज्ञेनासुरानपानुदंत यज्ञेन द्विषंतो मित्रा भवंति यज्ञे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद्यज्ञं परमं वदंति” ॥

३० यज्ञ इति यज्ञो नामाधानाग्निहोत्रादि । स हि देवानां संबंधी । देवत्वस्य प्रापकत्वात् । तदेवाह ।

यज्ञेन हि देवा इति । अत्र श्रुत्यंतरम् । “यज्ञेन वै देवाः स्वर्गं लोकमायन्” इति । यज्ञेनासुरान-

पानुदंत । यज्ञेन द्विषंतः शत्रवः मित्राणि भवंति । ऋत्विक्प्रसर्पकादिदक्षिणादानेन दानं यज्ञानां

वरूथं गृहस्थानीयम् । दाने हि यज्ञास्तिष्ठन्ति । तदभावे कुतो यज्ञः । ‘मृतो यज्ञस्त्वदक्षिणः’ ।

“यो अदक्षिणेन यज्ञेन यजेत स यज्ञः प्रक्षामोऽनायुः” इत्यादिवाक्येभ्यो दानस्य यज्ञे अवश्य-

कर्त्तव्यत्वात् यज्ञे सर्वं प्रतिष्ठितं सर्वस्य जगतो यज्ञाधीनत्वात् यस्माद्यज्ञं परमं वदन्ति भगवंत इत्यर्थः । अत्र व्यासः ( भगवद्गीता अ. ३ श्लो. १०-१२ )—

“सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः । अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥

“देवान्भावयतानेन ते देवा भावयंतु वः । परस्परं भावयंतः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥

“इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यंते यज्ञभाविताः । तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः” इति । ५

यज्ञस्य त्रैविध्यमाह भगवान् ( भ. गी. अ. १७ श्लो. ११-१३ )—

“अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते । यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ॥

“अभिसंधाय तु फलं दंभार्थमपि चैव यत् । इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥

“विधिहीनमसृष्टान्नं मंत्रहीनमदक्षिणम् । श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ” इति ।

हारीतः—

“यज्ञेन लोका विमला विभांति यज्ञेन देवा अमृतत्वमाप्नुवन् ।

“यज्ञेन पापैर्बहुभिर्विमुक्तः प्राप्नोति लोकान्परमस्य विष्णोः ” ॥

“नास्त्ययज्ञस्य लोको वै नायज्ञो विंदते शुभं । अनिष्टयज्ञोऽपूतात्मा भ्रश्यति च्छिन्नपर्णवत्” ॥

माधवीये—

“नास्तिक्यादथ वाऽऽलस्याद्योऽग्नीन्नाधातुमिच्छति । यजेत वा न यज्ञेन स याति नरकान्वहून् ॥ १५

“तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणो हि विशेषतः । आधायग्नीन्विशुद्धात्मा यजेत परमेश्वरम्” ॥ इति ।

कार्ष्णाजिनिः—

“पुत्रमुत्पाद्य कर्मैतत्कुर्याद्वैतानिकं द्विजाः । यथाकथंचिदादध्यात्प्राप्तं चेत्साधुतो धनम्” ॥ इति ।

प्रजापतिः—

“सर्वसंस्थाधिकारी स्यादाहिताग्निर्धने सति । आदध्यान्निर्धनोऽप्यग्नीन्नित्यं पापभयाद्विजः ” ॥ २०

वसिष्ठः—“अवश्यं ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत दर्शपूर्णमासाग्रयणैश्चातुर्मास्यपशुसोमैश्च यजेत” इति ।

हारीतोऽपि—

“पाकयज्ञान्यजेन्नित्यं हविर्यज्ञान्तुनित्यशः । सौम्यास्तु विधिपूर्वेण य इच्छेद्धर्ममव्ययम्” इति ।

ते च गौतमेन दर्शिताः ( ८।१८-२४ )—“अष्टका पार्वणश्राद्धं श्रावण्याग्रहायणीचैत्र्याश्व-

युजीति सप्त पाकयज्ञसंस्थाः । अग्न्याधेयमग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासौ चार्तुमास्यान्याग्रयणेष्टि- २५

निरूढपशुबंधः सौत्रामणीति सप्त हविर्यज्ञसंस्थाः । अग्निष्टोमोऽन्यग्निष्टोम उक्थ्यः षोडशी

वाजपेयोऽतिरात्रोऽतोर्याम इति सप्त सोमसंस्थाः ” इति । अष्टका हेमंतशिशिरयोरष्टमीषु क्रिय-

माणं श्राद्धम् । पर्वणि भवः पार्वणः स्थालीपाकः । श्राद्धं मासिश्राद्धम् । श्रावणी सर्पबलिः

श्रावण्यां पौर्णमास्यां तत्क्रियते । आग्रहायणी पौर्णमासी । तस्यां क्रियमाणः सर्पबलेरुत्सर्गः ।

हेमंतप्रत्यवरोहणाख्यं च कर्म आग्रहायणीशब्देनोच्यते । चैत्री चैत्रपौर्णमास्यां क्रियमाण ३०

ईशानबलिः । आश्वयुजी आग्रयणम् । अग्न्याधेयादयः श्रुतिप्रसिद्धाः । बौधायनः (१।२।६)–

“कृष्णकेशोऽग्नीनादधीतेति श्रुतिः” इति । स एव (१।५।८२)–

“अयज्ञेनविवाहेन वेदस्योत्सादनेन च । कुलान्यकुलतां याति ब्राह्मणातिक्रमेण च ” ॥ इति ।

मर्गः—“प्रधानं वैदिकं कर्म गुणभूतं तथेतरत् । गुणनिष्ठाप्रधानं तु हित्वा गच्छत्यधोगतिम् ॥

“यो वैदिकमनादृत्य कर्म स्मार्तेतिहासिकम् । मोहात्समाचरोद्विष्टो न स पुण्येन युज्यते ॥ ३५

“श्रौतं कर्म न चेच्छक्तः कर्तुं स्मार्तं समाचरेत् । अत्राप्यशक्तः करणे कुर्यादाचारमततः” ॥ इति ।

- अग्निहोत्रदर्शपूर्णमासविषये श्रुतिः। (तै.सं. १।६।९) — “प्रजापतिर्यज्ञानसृजताग्निष्टोमं च पौर्णमासीं चोक्थ्यं चामावास्यां चातिरात्रं च । तानुदमिमीत । यावदग्निहोत्रमासीत्तावानग्निष्टोमो यावती पौर्णमासी तावानुक्थ्यो यावत्यमावास्या तावानतिरात्रः” इति ॥ प्रजापतिरग्निहोत्रादीन्षड्भागान-  
 ५ ष्टोमोक्थ्यातिरात्रयागा बहुभिर्द्रव्यमंत्रविशेषैः साध्या अधिकफलाः—इति विमर्शं सत्यनुग्रहेण तुल्या त्रीणि द्वंद्वानि उन्मितवान् । तदनुग्रहादग्निहोत्रादीन्यग्निष्टोमादितुल्यानि संपन्नानि । एवं वेदने फलमाह श्रुतिः (१।६।९) — “य एवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति यावदग्निष्टोमेनोपाप्नोति तावदुपाप्नोति । य एवं विद्वान्यौर्णमासीं यजते यावदुक्थ्येनोपाप्नोति तावदुपाप्नोति । य एवं विद्वानमावास्यां यजते यावदतिरात्रेणोपाप्नोति तावदुपाप्नोति” इति । ज्ञानयुक्तस्य कर्मणः फलाधिक्यं छंदोगा  
 १० आमनंति — “यदेव विद्यया करोति तदेव वीर्यवत्तरं भवति ” इति  
 पुनरपि दर्शपूर्णमासौ प्रशंसति ( १।६।९ ) “ परमेष्ठिनो वा एष यज्ञोऽग्र आसीत्तेन स परमां काष्ठामगच्छतेन प्रजापतिं निरवासाययत्तेन प्रजापतिः परमां काष्ठामगच्छतेनैद्रं निरवासाय-  
 १५ यत्तेनैद्रः परमां काष्ठामगच्छतेनाग्निषोमौ निरवासाययत्तेनाग्निषोमौ परमां काष्ठामगच्छताम् । य एवं विद्वान्दर्शपूर्णमासौ यजते परमामेव काष्ठां गच्छति” इति । परमे पदे सत्यलोके तिष्ठतीति पर-  
 मेष्ठी चतुर्मुखः; तस्य चाग्रे पूर्वस्मिन्कल्पे यजमानत्वेनावस्थितस्यैष दर्शपूर्णमासयज्ञः प्रवृत्तः; तेन  
 चेश्वरार्पणबुध्याऽनुष्ठितेन यजमानः परां काष्ठामिदं परमेष्ठित्वपदं प्राप्तवान् । प्रजापतिर्दक्षादिः ।  
 तं पूर्वस्मिन्जन्मनि तेनोत्तमफलहेतुदर्शपूर्णमासोपदेशेन निरवासाययत् अनुष्ठानाय प्रेरितवान् स  
 च तस्मिन्जन्मनि यजमानस्तेनानुष्ठानेन परमां काष्ठां दक्षत्वादि पदं प्राप्तवान् एवमितरत्रापि  
 २० योज्यम् । तथाऽग्निहोत्रं प्रशंसति — “ अग्निहोत्रं सायंप्रातर्गृहाणां निष्कृतिः स्विष्टं सुहुतं  
 यज्ञक्रतूनां प्रायणं सुवर्गस्य लोकस्य ज्योतिस्तस्मादग्निहोत्रं परमं वदति” इति । अग्निहोत्र-  
 मिति कर्मनाम । तत्सायंप्रातश्च निर्वर्तितं गृहाणां गृहस्थाश्रमिणामार्जितपापानां निष्कृतिः  
 प्रायश्चित्तम् । स्विष्टं शोभनयागहेतुः । सुहुतं शोभनहोमहेतुः । यज्ञक्रतूनां प्रायणम् । यज्ञा दर्श-  
 पूर्णमासादयः । क्रतवः अग्निष्टोमादयः । एतेषां यज्ञक्रतूनां प्रायणं कारणभूतम् । सुवर्गस्य  
 २५ लोकस्य ब्रह्मलोकादेः । ज्योतिः प्रकाशकम् । ब्रह्मलोकादिप्राप्तिहेतुरिति यावत् । तथाऽन्यत्र श्रूयते—  
 “तस्मादाहुरग्निहोत्रं वै देवा गृहाणां निष्कृतिमपश्यन्” इति । “अग्निहोत्रप्रायणा यज्ञाः” इति च ।  
 हारीतः—  
 “ नाग्निहोत्रात्परो धर्मो नाग्निहोत्रात्परं तपः । नाग्निहोत्रात्परं श्रेयो नाग्निहोत्रात्परं यज्ञः ॥  
 “ नाग्निहोत्रात्परा सिद्धिर्नाग्निहोत्रात्परा गतिः । नाग्निहोत्रात्परं स्थानं नाग्निहोत्रात्परं व्रतम् ॥  
 “आद्या व्याहृतयस्तिस्रः स्वधा स्वाहा नमो वषट् । यस्यैते वेश्मनि सदा ब्रह्मलोकस्थ एव सः” ॥ इति ।  
 ३० सत्यव्रतः—  
 “ सिलोञ्छिनां च यो धर्मस्त्वहन्यहनि यत्फलम् । तद्दर्शपूर्णमासं च ये यजंति द्विजातयः ॥  
 “ न तेषां पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्कदाचन ” ॥ वृद्धमनुः  
 “नित्याग्निहोत्रं दर्शश्च पूर्णमासः पितृक्रिया । आतिथ्यं वैश्वदेवं च ब्रह्मलोकस्य शाश्वतः” ॥ इति ।  
 वृद्धमनुः—  
 ३५ “ यस्य त्रैवार्षिकं धान्यं पर्याप्तं भृत्यवृत्तये । अधिकं वापि विधेत् स सोमं पातुमर्हति ॥



“पुण्यान्यन्यानि कुर्वीत श्रद्धानो जितेंद्रियः । न त्वल्पदक्षिणे यज्ञैर्यजेताथ कथंचन ॥

“इंद्रियाणि यशः स्वर्गमायुः कीर्तिं प्रजां पशून् । हन्त्यल्पदक्षिणे यज्ञस्तस्मान्नाल्पधनो यजेत् ॥

“ प्राजापत्यमदत्त्वाऽश्वमग्न्याधेयस्य दक्षिणाम् । अनाहिताग्निर्भवति ब्राह्मणो विभवे सति” ॥ इति ।

व्यासः—

“अन्नहीनो दहेद्राष्ट्रं मंत्रहीनस्त्वथर्त्विजः । आत्मानं दक्षिणाहीनो नास्ति यज्ञसमो रिपुः” ॥ ५

याज्ञवल्क्यः ( आ. १२४ )—“ प्राक्सौमिकीं क्रियां कुर्याद्यस्यान्नं वार्षिकं भवेत् ” इति ।

एतानि मन्वादिवचनानि काम्ययागविषयाणि । यतो विहितदक्षिणापर्याप्तद्रव्याभावेऽपि नित्यं न लोपयेदित्याह बोधायनः—

“ यस्य नित्यानि लुप्तानि तथैवागंतुकानि च । विपथः सोऽपि न स्वर्गं गच्छेत्तु पतितो हि सः ॥

“तस्मात्कंदैः फलैर्मूलैर्मधुनाऽथ रसेन वा । नित्यं नित्यानि कुर्वीत न च नित्यानि लोपयेत्” ॥ इति । १०

स्मृत्यर्थसारे

“ विवाहात्परमाधाय जुह्वन्देवाग्निहोत्रकम् । दर्शपूर्णमासाग्रयणसोमयागान्क्रमाच्चरेत् ॥

“ सर्वथा प्रथमः सोमयागः कार्यो द्विजातिभिः । यथासंभविनांगेन शक्त्या दत्त्वा तु दक्षिणाम् ॥

“ ब्रात्यदुर्ब्राह्मणत्वादिमहादोषोपशान्तये ” ॥ इति । संग्रहे—

“ अग्निहोत्रपरिभ्रष्टः प्रसक्तः क्रयविक्रये । वर्णसंकरकर्ता च ब्राह्मणो वृषलैः समः ” ॥ १५

प्रजापतिः—

“ अग्निहोत्रफला वेदा सषडंगपदक्रमाः । अग्निहोत्रसमो धर्मो न भूतो न भविष्यति ॥

“ दर्शं च पूर्णमासं च लुप्त्वाऽथोभयमेव वा । एकस्मिन्कृच्छ्रपादेन द्वयोरर्धेन शोभनम्” ॥ इति ।

मनुः ( ४।१० )—

“ वर्त्तयन्स्तु शिलोच्छाभ्यामग्निहोत्रपरायणः । इष्टीः पार्वीयणांतीयाः केवला निर्वपेत्सदा ” ॥ २०

पर्वचायनं च पर्वीयने । तयोरंतः पर्वीयणांतः । तत्र भवाः पार्वीयणांतीयाः । दर्शपूर्णमासाग्रयण-

लक्षणाः केवलाः फलाभिसंधिरहिताः नित्या इष्टीर्निर्वपेत्सिलोच्छवृत्तिरप्येतावच्छ्रौतं कर्म कुर्यान्न

ततोऽधिकमित्यर्थः । असंकुचितवृत्तेर्वृत्त्यंतराण्याह स एव ( ४।२५-२६ )—

“ अग्निहोत्रं च जुहुयादाद्यंते युनिशोः सदा । दर्शेन चार्धमासांते पूर्णमासेन चैव ह ॥

“सस्यांते नवसस्येष्ट्या तथर्त्विजे द्विजोऽध्वरैः । पशुनाप्ययनांते तु समांते सौमिकैर्मखैः” ॥ इति । २५

अनयोरयमर्थः । युनिशयोरहोरात्रयोरदाद्यंते । अर्धमासांते पक्षयोरंते पर्वणोरिति यावत् । सस्यांते

सस्यपाककाले । नवसस्येष्ट्याऽऽग्रयणेन अध्वरैश्चातुर्मास्यैः । पशुना निरूढपशुबंधेन । समांते संव-

त्सरांते । सौमिकैः सोमवद्भिरिति । आपस्तम्बः ( १।१३-२२; १।४।१-२ )—“ निवेशे हि वृत्ते नैयमि-

कानि श्रूयंते अग्निहोत्रमतिथयोयच्चान्यदेवं युक्तम् ” इति । निवेशे वृत्ते दारकर्मणि निर्वृत्ते नैयमि-

कानि नियमेन कर्त्तव्यानि नित्यान्यग्निहोत्राणि श्रूयंत इत्यर्थः । आथर्वणे श्रूयते—“ यस्याग्नि-

होत्रमदर्शपूर्णमासमनाग्रयणमतिथिविर्जितमहुतमवैश्वदेवमविधिना हुतं आ सप्तमांस्तस्य लोका-

न्दिनास्ति ” इति । अस्यार्थः—यस्याग्निहोत्रिणः अग्निहोत्रमदर्शम् आग्नेयोऽष्टाकपाल ऐंद्रं दधि

ऐंद्रं पय इति यागत्रयवर्जितम् अपौर्णमासमाग्नेयोपांश्वग्नीषोमीययागत्रयवर्जितम् अनाग्रयण-

माग्रयणोष्टिरहितम् अतिथिवर्जितम् आतिथ्याख्यकर्मणा सत्क्रियमाणः सोमोऽतिथिः तद्वर्जितं

सोमयागरहितमित्यर्थः । अहुतं कस्मिंश्चित्काले आलस्यादिना होमवर्जितम् । अवैश्वदेवं वैश्व-  
देवहोमरहितम् । अविधिना हुतं मंत्रदेवतादिविपर्ययेन हुतम् । आसप्तमांल्लोकान् हिनस्तीति त्रयः  
पितृपितामहप्रपितामहाः त्रयः पुत्रपौत्रप्रपौत्राः आत्मा च सप्तमः तान्पुरुषानभूरादिलोकांश्च  
हिनस्तीति । याज्ञवल्क्यः ( आ. १२५ )—

- ५ “प्रतिसंवत्सरं सोमः पशुः प्रत्ययनं तथा । कर्त्तव्याग्रयणेष्टिश्च चातुर्मास्यानि चैव हि ॥  
“एषामसंभवे कुर्यादिष्टिं वैश्वानरीं द्विजः ” ॥ इति । मनुरपि ( ४।२८; ११।२७, ४१ )—  
“नवनानार्चिता ह्यस्य पशुहव्येन चाग्रयः । प्राणानेवातुमिच्छन्ति नवान्नामिषजग्धिनः ॥  
“इष्टिं वैश्वानरीं वापि निर्वपेदब्दपर्यये । कृतानां पशुसोमानां निष्कृत्यर्थमसंभवे ॥  
“अग्निहोत्र्यपविध्याग्नीन् ब्राह्मणः कामकारतः । चांद्रायणं चरेन्मांसं वीरहत्यासमं हि तत् ” ॥

- १० श्रुतिरपि “वीरहा वा एष देवानां योग्निऽमुद्रासयते ” इति । स्मृतिभास्करे—  
“निर्धनो धनसाध्येषु नित्येष्वपि कृतेषु च । चौर्यादन्यैः कुमारैर्वा इज्यार्थं धनमाहरेत् ॥  
“सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे मषीकुष्णाजिनादिकम् । चंडालात्प्रतिगृह्यापि यजेदावश्यकैर्मसैः ” ॥ इति ।  
एतत् वचनं यत्किंचिद्धनसंपादनेनाप्यावश्यकानि कर्त्तव्यानीत्येवंपरम् । तथा च यमः—  
“धर्मविद्ब्राह्मणः शूद्रायज्ञार्थं नाहरेत् धनम् । जायते प्रेत्य चंडालः शूद्रार्थेनेष्टदेवतः ॥  
१५ “उपादाय धनं शूद्राद्योऽग्निहोत्रमुपाविशेत् । शूद्राग्निहोत्री स भवेद्ब्रह्मवादिषु गर्हितः ” ॥ इति ।  
व्यासः—“कुटुंबार्थं तु सच्छूद्रात्प्रातिग्राह्यमयाचितम् । कर्त्तव्यमात्मने चैव न हि याचेत कर्हिचित् ” ॥  
मनुरपि ( ११।२४, ४३, ४२ )—

- “न यज्ञार्थं धनं शूद्राद्विजो भिक्षेत धर्मवित् । यजमानो हि भिक्षित्वा चंडालः प्रेत्य जायते ॥  
“तेषां सततमज्ञानां वृषलाग्न्युपसेविनाम् । पदा मस्तकमाक्रम्य दांता दुर्गाणि संतरेत् ॥  
२० “ये शूद्रादधिगम्यार्थमग्निहोत्रमुपासते । ऋत्विजस्ते च शूद्रा हि ब्रह्मवादिषु गर्हिताः ” ॥ इति ।  
छागलेयः “यः शूद्रादधिगम्यार्थमग्निहोत्रमुपाचरेत् । दाता तत्फलमाप्नोति कर्ता च नरकं व्रजेत् ” ॥  
याज्ञवल्क्यः ( आ. १२७ )—“चंडालो जायते यज्ञकरणाच्छूद्रभिक्षितात् ” । एतानि शूद्रप्रतिग्रह-  
निषेधपराणि वचनानि नित्यव्यतिक्रमविषयाणि; “चंडालात्प्रतिगृह्यापि यजेदावश्यकैर्मसैः ” इति  
नित्यस्यावश्यकत्वस्मरणादिति स्मृतिरतनावल्यादावभिहितम् । मनुः—  
२५ “यज्ञार्थं भिक्षितं द्रव्यं यः सवे नोपयोजयेत् । श्वपाकयोनौ जायेत स तद्भुक्त्वा तु दुर्मतिः ” ॥ इति ।  
यमः—

“यज्ञार्थमर्थं भिक्षित्वा यो न सर्वं प्रयच्छति । स याति भासतां विप्रः काकतां वा शतं समाः ” ॥  
याज्ञवल्क्यः ( आ. १२७ ) “यज्ञार्थमददद् द्रव्यं भासः काकोऽपि वा भवेत् ” इति ॥

स्मृतिभास्करे—

- ३० “वाजपेये ऋतौ सर्वदक्षिणानामसंभवे । गावः सप्तदशैकैषां संभवेऽपीति सामगाः ॥  
“न लभ्यते यदा गावो दक्षिणात्वेन चोदिताः । प्रत्येकं तत्र निष्कं स्यात्तदर्थं पादमेव वा ” ॥  
नित्यविषयमेतत् । शंखः—  
“सहस्रं भोजयेत्सोमे ब्राह्मणानां शतं पशौ । चातुर्मास्येषु सर्वेषु शतं पर्वणि पर्वणि ” ॥  
स्मृत्यंतरे—

“द्विजभोजनमत्रैव सोमयागे सहस्रकम् । पशौ शतं दर्शष्टौ स्युः भोज्या ऋत्विज एव वा”॥

**स्मृतिभास्करे—**

“तावदन्नं विना कुर्यान्नित्येष्टिं सौमिकीं क्रियाम् । यथालब्धगुणोपेतां यथासंभवदक्षिणाम् ॥

“सन्निधौ यजमानः स्यादुद्देशत्यागकारकः । असन्निधौ तु पत्नी स्यादध्वर्युस्तदनुज्ञया ॥

“स्यादर्शपूर्णमासेष्टौ चतुर्णामृत्विजां क्रिया । चत्वारश्चेन्न लभ्यन्ते त्रयः कुर्युस्त्रयोऽपि वा ॥ ५

“न संभवति कुर्यातां द्वावेष्टेष्टिं कथंचन ॥

“यदि द्वावपि न स्यातां एकेनापि समापयेत् । यजमानः प्रयुंजीत तत्रानाज्ञातनिष्कृतिम्”॥इति ।

**अखंडादर्शे—**

“दायप्रातैः स्वकृष्या वा लब्धैः शिष्टप्रतिग्रहात् । यजेत श्रद्धया विष्णुं श्रेयोऽर्थी नान्यथा यजेत्” ॥

**व्यासः—**

१०

“संशुद्धैर्यजमानैश्च ऋत्विग्भिश्च तथाविधैः । शुद्धैर्द्रव्योपकरणैर्यष्टव्यमिति निश्चयः ॥

“तथाकृतेषु यज्ञेषु देवानां तोषणं भवेत् । तुष्टेषु देवसंघेषु यज्वा यज्ञफलं लभेत् ॥

“देवाः संतोषिता यज्ञैर्लोकान्संवर्धयंत्युत । उभयोर्लोकयोश्चैव भूतिर्यज्ञैः प्रदृश्यते ” ॥

**आधानकर्तृन्पति चतुर्विंशतिमते विशेषो दर्शितः—**

“जीवे पितरि नादध्यादग्निहोत्रं कदाचन । तथैव भ्रातरि ज्येष्ठे न यजेन्न विवाहयेत् ” ॥ यत्तु १५

“पिता पितामहो यस्य अग्रजो वाऽथ कस्यचित् । तपोग्निहोत्रमंत्रेषु न दोषः परिवेदने ” ॥ इति

तत्स्वपितृवैधुर्यादिविषयम् । तत्रैवोक्तम्—

“ज्येष्ठभ्रात्रा त्वनुज्ञातः कुर्यादग्निपरिग्रहम् । अनुज्ञातोऽपि वा पित्रा नादध्यान्मनुरब्रवीत्” ॥ इति ।

**शातातपः—**

२०

“दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते । परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥

“अज्ञे देशांतरस्थे च पतिते प्रवजितेऽपि वा । योगशास्त्रनियुक्ते च न दोषः परिवेदने ॥

“कुब्जवामनषण्डेषु गद्वदेषु जडेषु च । जात्यंधे बधिरे मूके न दोषः परिवेदने ॥

“एकमातृप्रसूतानां भ्रातृणां परिवेदने । दोषः स्यात्सर्ववर्णेषु नेतरेष्वब्रवीन्मनुः ॥

“परिवेत्तुर्न चाग्निस्तु न वेदा न तपांसि च” इति ॥ **सुमंतुः—**

“व्यसनासक्तचित्तो वा नास्तिको वाऽथ वाऽग्रजः । कनीयान् धर्मकामश्चेदाधानमथ कारयेत् ॥ २५

“पितुर्यस्य तु नाधानं कथं पुत्रस्तु कारयेत् । अग्निहोत्राधिकारोऽस्ति शंखस्य वचनं तथा ” ॥

**वृद्धवसिष्ठः**

“अग्रजस्तु यदानग्निरादध्यादनुजः कथम् । अग्रजानुमतः कुर्यादग्निहोत्रं यथाविधि ” ॥ इति ।

**शातातपः—** “नाग्रयः परिविंदति न वेदा न तपांसि च ” ॥ **हारीतः—**

“सोदराणां तु सर्वेषां परिवेत्ता कथं भवेत् । दारैस्तु परिविद्यंते नाग्निहोत्रेण नेज्यया ” ॥ इति । ३०

**पराशरोपि—**

“पितृव्यपुत्रः सापत्न्यः परनारीसुतस्तथा । दाराग्निहोत्रसंयोगे न दोषः परिवेदने ” ॥

परनारीसुतः दत्तक्रीतादिः । स एव—

“ज्येष्ठो भ्राता यदा तिष्ठेदाधानं नैव कारयेत् । अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शंखस्य वचनं तथा ” ॥

कारयेत्कुर्यादित्यर्थः । **माधवीये—** “अनुज्ञातः कनिष्ठो ज्येष्ठात्पूर्वमाधानं कुर्यात्पित्रा ३५

त्वनुज्ञातोऽपि पितुः पूर्वं न कुर्यात् । पित्रादेर्वैधुर्यादिना प्रतिबंधे कुर्यात् ” इति ॥

वृद्धयाज्ञवल्क्यस्तु ज्येष्ठस्यापि कदाचित्परिवेत्तृत्वमाह—

“ आवसथ्यमनाहत्य प्रेतायां यः प्रवर्त्तते । अनाहिताग्निर्भवति परिवेत्ता तथोच्यते ” इति ।

आवसथ्ये औपासने ब्रह्मौदनपाकमकुत्वा निर्मथ्याग्निना कुत्वा यः प्रथमाधानं करोति स  
५ परिवेत्तेत्यर्थः । “ वसंते ब्राह्मणोऽग्निमादधीत ग्रीष्मे राजन्यः शरदि वैश्यः ” इति श्रुत्युक्ते  
( तै. ब्रा. १।१।२।७ ) काले पर्वण्युक्तनक्षत्रे वाऽग्निरोधेयः । तदाह व्यासः—

“ वसंते ब्राह्मणस्य स्यादाधेयोऽग्निर्यथाविधि । क्षत्रियस्याग्निराधेयो ग्रीष्मे तु श्रेष्ठ उच्यते ॥

“ शरद्रात्रेथ वैश्यस्याप्याधानीयो हुताशनः ” इति । पुनराधाननिमित्तमाहापस्तंबः

“ अग्नीनाधायैतस्मिन्संवत्सरे यो नर्ह्युयात्स पुनरादधीत ” इति । तथा च श्रुतिः ( तै.

१० सं. १-५-१ ) “ भागधेयं वा अग्निराहित इच्छमानः प्रजां पशून्यजमान्योपदोद्रावोद्वास्य

पुनरादधीत भागधेयेनैवैनं समर्पयत्यथोशांतिरेवास्यैषा ” इति । निमित्तांतरमाह स एव

“ यदरण्योः समारूढो नश्येद्यस्य वोभावनुगतावभिनिम्रोचेदभ्युदियाद्वा पुनरोधयं तस्य

प्रायश्चित्तिः ” इति । समारूढाग्न्योररण्योर्नाशि पुनराधेयम् तथा प्रणयनात्पूर्वं केवलगार्ह-

पत्यानुगमने प्रणयनानंतरमजसे वा गार्हपत्याहवनीययोरुभयोरनुगमने प्रतिनिधौ चास्थापिते

१५ सूर्यो यद्यभिनिम्रोचेदस्तं गच्छेदुदियाद्वा तदा पुनराधेयं कार्यमित्यर्थः । केचित्तु केवलगार्हपत्या-

नुगमने प्रतिनिध्यस्थापनेऽपि न पुनराधानं किं तु प्रायश्चित्तमेवेति वदन्ति । आश्वलायनः—“सर्वी-

श्चेदनुगतानादित्योऽभ्युदियाद्वाऽभ्यस्तमियाद्वाऽग्न्याधेयं पुनराधेयं वा” इति ॥ कात्यायनः—

“ विहायाग्निं सभार्यश्चेत्सीमामुलंघ्य गच्छति । होमकालव्यपेतस्य पुनराधानमिष्यते ” ॥

शौनकः—

२० “ अग्रावनुगते यत्र होमकालद्वयं व्रजेत् । उभयोर्विप्रवासे वा लौकिकोऽग्निर्विधीयते ॥

“ प्रोषिते तु यदा पत्नी यदि ग्रामांतरं व्रजेत् । होमकाले यदि प्राप्ता न दोषेण प्रयुज्यते ॥

“ अथ तत्रैव वसति होमकालव्यतिक्रमः । लौकिकाग्निर्विधीयते काठकश्रुतिदर्शनात् ॥

“ यजमानश्च पत्नी च उभौ प्रवसतो यदि । आ होमान्न निर्वर्तेतां पुनराधानमर्हति ” ॥

संग्रहे “ केचित्तु पत्न्यस्तमयोदयोश्चेद्ग्रामादिसीमामतिलंघ्य गच्छेत् ।

२५ “समुद्रगां सिंधुं गतोऽन्यदापि स्याल्लौकिको बन्धिरिति ब्रुवन्ति” “चतुरात्रमहूयमानोऽग्निर्लौकिको

भवति ” इति श्रुतिः । आपस्तंबः—“ न ग्राममध्यादग्नीनतिहरेयुर्यद्यतिहरेयुर्लौकिकाः

संपथेरन्यावत्यारे याममर्यादा नद्यः स्युस्तावद्यतिक्रामंतावन्वारभेयातां यदि नान्वारभेयातां

लौकिकाः संपथेरन् ” इति ।

बोधायनः—

३० “ अचोदितेन पाकेन कुतेनोद्धरणेन वा । लौकिकोऽग्निः स विज्ञेयः पुनराधानमर्हति ॥

“ नैकयाऽपि विना कार्यमाधानं भार्यया द्विजः । अकृतं तद्विजानीयात्सर्वानान्वारभंत यत् ॥

“ ज्येष्ठायां दोषहीनायां कनीयस्या यदाग्निमान् । ब्रह्महत्या भवेत्तस्य प्रतिपर्वणि सर्वदा ” ॥

मनुः ( ५।१६७, १६६ )—

“ भार्यायै पूर्वमारिण्यै दत्त्वाऽग्नीनंत्यकर्मणि । पुनर्दारक्रियां कुर्यात्पुनराधानमेव च ॥

३५ “ एवं वृत्तां सवर्णां स्त्री द्विजातिः पूर्वमारिणीम् । दाहयेदग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित् ” ॥ इति ।

याज्ञवल्क्योऽपि ( आचारे ८९ )—

“दाहयित्वाऽग्निहोत्रेण स्त्रियं वृत्तवतीं पतिः । आहरेद्विधिवद्धारानग्नींश्चैवाविलंबयन्” ॥ इति ।

कात्यायनः—

“स्त्री धर्मचारिणी साध्वी मृता दाह्या तथाऽग्निना । विपरीता न दाह्या तु पुनर्दार्क्रिया तथा ॥

“मृतायां चैव भार्यायां द्वितीयायां कथंचन । समुत्सृजेदग्निहोत्रं मोहितो यो द्विजोत्तमः ॥

“ब्रह्मोज्ञं तं विजानीयान्नात्र कार्या विचारणा ॥

“द्वितीयां वै तु यो भार्या दहेद्वैतानिकाग्निभिः । तिष्ठत्यां प्रथमायां तु सुरापानसमं हि तत्” ॥ इति ।

‘एतदाधाने सहाधिकृताया अग्निदाने वेदितव्यमिति’ विज्ञानेश्वरीये (पृ. २५ पं. १४) । कपर्दी—

“यदि त्वनेकभार्यस्य कचित्पत्नी मृता तदा । निर्मथ्येनैव सा दाह्या तदग्निं धारयेत्पतिः” ॥ इति ।

“यदि त्वनेकभार्यः स्यात् विभज्याग्निं दहेन्मृताम्” इति तु स्मार्ताग्निविषयम् । तत्राग्निसंसर्गस्य विभागस्य बोधायनादिभिरुक्तत्वात्पुनर्दार्क्रियासंभवे पूर्वमृतायाः पत्न्या अग्निदानम् । असंभवे १०

तु “निर्मथ्येन पत्नीं दाहयित्वा अग्निहोत्रं यावज्जीवं यावदाश्रमांतरं वा जुहुयात्” । यदाहुर्वह्वृचाः

“अपत्नीकोऽप्यग्निहोत्रमाहरेदित्याहुः । यदि नाहरेत् अनद्धा पुरुषः । कोऽनद्धा पुरुष इति ।

न देवाञ्च पितृन् न मनुष्यानि । तस्मादपत्नीकोऽप्यग्निहोत्रमाहरेदिति ” । भारद्वाजः—

सूत्रम् “यद्यपत्नीकः स्यादुभाभ्यां तस्य संस्कारः औपासनाग्निहोत्राभ्यामिति ”

‘निर्मथ्येन पत्नीमिति’ । जैमिनिरपि सूत्रम् “आहिताग्निरुचेत्पूर्वं जाया मृयेत तां निर्मथ्येन १५

दहेत् सान्तपनेन वा ” इति । आश्वलायनः सूत्रम् “आहार्येणानाहिताग्निं पत्नीश्च ” इति ।

कपर्दी च

“अपत्नीकोऽग्निभिः कुर्यान्नित्यनैमित्तिकाः क्रियाः । अकाम्या अङ्गवैकल्या न हि काम्यासु तत्समम् ॥

“आहिताग्निः पूर्वमृतां स्वाग्निभिर्दाहयेत् स्त्रियम् । शक्ये विवाहेऽथाशक्ये नैर्मथ्येनैव दाहयेत्” ॥ इति ।

किञ्च आचारोऽप्यत्र दृष्टः शिष्टतमानां पूर्वेषां कण्वविभाण्डकादीनां यथा च भगवतो २०

दाशरथेस्तस्मादभावेऽपि पत्न्या नाग्निहोत्रादिनिवृत्तिः । तथा विष्णुः—

“मृतायामपि भार्यायां वैदिकाग्निं न संत्यजेत् । उपाधिनाऽपि तत्कर्म यावज्जीवं समापयेत् ।

“अन्ये कुशमयीं पत्नीं कृत्वा तु गृहमेधिनः । उपासते ह्यग्निहोत्रं यावज्जीवमतन्द्रिताः ॥

“रामस्तु कृत्वा सौवर्णां सीतां पत्नीं यशस्विनीम् । ईजे बहुविधैर्यज्ञैः सहितो भ्रातृभिर्वशी” ॥ इति ।

मैत्रायणीश्रुतिरपि—

“यस्तु स्वैरग्निभिर्भार्या संस्करोति कथंचन । असौ मृतः स्त्री भवति स्त्री चैषा स पुमान् भवेत्” ॥ इति ।

त्रिकाण्डी च—

“यस्य भार्याऽतिदूरस्था मृता वा व्याधिताऽपि वा । अनिच्छुः प्रतिकूला वा तस्याः प्रतिनिधौ क्रिया” ॥

इति । यत्त्वापस्तम्बवचनम् सूत्रं “दारकर्मणि यद्यशक्त आत्मार्थमग्न्याधेयं कुर्यादग्निहोत्रं

दर्शपूर्णमासावाग्रयणञ्च शेषाणि कर्माणि न भवन्तीति” तत्पत्नीमृतेः पूर्वं विच्छिन्नाग्निविषयम् । ३०

तथा च कपर्दीभाष्यम्—“विच्छिन्नाग्नेः कदाचित्पत्नीमरणे यावज्जीवं श्रुतेरवगतत्वात्

दारान्तरग्रहणे चासामर्थ्यादात्मार्थमग्न्याधेयं कार्यामिति ” । स एव—

“नष्टोत्सृष्टाऽनलसहचरी दाहकृत्येन कुर्यात्प्रेताधानं मथितदहनस्तत्क्रियायां प्रकल्प्य ” इति ॥

नष्टाग्निरुत्सृष्टाग्निर्वा पत्नीमरणे दाहार्थं प्रेताधानं कुर्यात् । किन्तु दाहकृत्ये मथिताग्निरिव

कल्प्यः । ततः आत्मार्थमग्न्याधेयं कुर्यात् । आधानप्रभृति यजमान एवाग्नयो भवन्ति । ‘यज- ३५

मानो वा अग्रेयोनिरिति’ श्रुतेः (तै. सं. ३।४।१०) । यदपि कपर्दीवचनम्—

“पत्नीदाहोपयुक्ताग्नेरग्न्याधेयात्पुरा मृतौ । प्रेताधानं तु कर्तव्यमग्न्याधानं तु जीवतः ॥

“पत्नीदाहोपयुक्ताग्नेर्विच्छिन्नाग्निसमत्वतः । नादृत्य ऋतुनक्षत्रं नारम्भार्थादिकं च न ” ॥ इति ।

तत्पुनः कृतोद्वाहविषयम् ‘पुनर्दारक्रियां कुर्यात्पुनराधानमेव च’ इति मन्वादिस्मरणात् (५।१६७) ।

न च ‘अग्न्याधानं तु जीवत’ इत्येतदशक्यविवाहविषयम् । ‘अथाशक्ये नैर्मन्थ्येनैव

५ दाहयेत्’ इति वचनात् । तदेवं शक्यविवाहः पत्नीं स्वाग्निभिर्दाहयित्वा पुनर्दारक्रियां

कृत्वा अविलंबेनाग्नीनादध्यात् । अशक्यविवाहस्तु निर्मन्थ्येन पत्नीं दाहयित्वा यावज्जीव-

मग्नीन्परिचरेदिति स्थितम् । अपरे तु पत्नीदाहोपयुक्ताग्निर्विधुर आत्मार्थमग्न्याधेयं कृत्वा याव-

ज्जीवमग्निहोत्रं कुर्यादित्याहुः । तथा च ‘अपत्नीकोऽपि अग्निहोत्रमाचरेत्’ इति, ‘दारकर्मणि

यद्यशक्तः आत्मार्थमग्न्याधेयं कुर्यात् । पत्नीदाहोपयुक्ताग्निः अग्न्याधेयं कृत्वा तत्पुरा मृतौ’

१० इत्यादीनि पूर्वोक्तानि वचनानि तद्विषयतया योजयन्ति ।

‘पत्नीदाहोपयुक्ताग्नेरग्न्याधेयं तु जीवतः’ इति वचनं यः शक्याशक्यसंशयविषयः

‘पत्नीदाहोपयुक्ताग्निः सन् विवाहं न शक्नुयात्’ तद्विषयम् । ततश्च ‘आहिताग्निः पूर्वमृताम्’

इत्यनेन न विरुध्यते । विच्छिन्नाग्नेः पत्नीमरण इत्यादि भाष्यस्यापि कदाचित्पत्नीमरणे सति

विच्छिन्नाग्नेरिति योजनेति ते वर्णयन्ति । यद्यपि ‘पाणिग्रहणाद्धि सहत्वं कर्मसु’ इत्यादिभिः

१५ पतिवत् पत्न्या अपि स्वामित्वमवगम्यते तथापि नोभयोस्तुल्यता । ‘पत्नीवदस्याग्निहोत्रम्’ इत्यादौ

यजमानस्यैव प्राधान्येन स्वामित्वावगमात् । ‘ज्योतिष्टोमेन यजेत’ इत्यादावेकवचनश्रुत्या च यज-

मानस्यैवाधिकारत्वावगमात् । तदङ्गतया पत्न्याः स्वामिकोट्यनुप्रवेशात्स्वामित्वं सहत्वं च नि-

र्वोद्व्यम् । ‘पत्नी हि पारीणह्यस्येश’ इति श्रुत्या ( तै. सं. ६।२।१ ) गृहोपकरणरूपधनैकदेश-

स्वामित्वमवगम्यते । अत एव ‘उपाधिनाऽपि तत्कर्म यावज्जीवं समापयेत्’ इति पत्न्याः

२० प्रतिनिधिः स्मर्यते । अन्यथा ‘न च प्रतिनिधिर्भन्त्रस्वामिदेवाग्निकर्मसु’ इति स्वामिप्रतिनिधि-

निषेधेनोपाधिना कर्म समापनमयुक्तं स्यात् । न च वचनात् प्रतिनिधिस्थापनमिति वाच्यम् ।

वचनादेव पत्न्याभावेऽपि अग्निहोत्रादेरनिवृत्तेः । कपर्दी च—

“आस्ति स्वामित्वलेशोऽस्यास्तत्प्राचुर्यं तु भर्तारिः स हि प्रधानं विधिभिस्तस्यैवाथ क्रिया यतः” ॥ इति ।

अनेनैव न्यायेनानाहिताग्नेरपि शक्ये विवाहे औपासनेन पूर्वमृतां पत्नीं दाहयित्वा

२५ विवाहः कार्यः । अशक्ये तु नैर्मन्थ्येन दाहयित्वा धार्यौपासन इति द्रष्टव्यम् ।

अत्र आश्वलायनो विशेषमाह—

“स्मार्तार्थेनाग्निभिर्दग्ध्वा मृतां पत्नीं च तां त्रिभिः । शिष्टार्थेनोद्गृहेद्व्यां पुनश्चैवाग्निमान्यजेत् ॥

“प्रागुद्वाहाच्च शिष्टार्थं स्मार्तस्याग्नेर्यथाविधि । शुश्रूषेदप्यपत्नीक इष्टिं कुर्याच्च वा न वा ॥

“सायंप्रातर्होमधर्ममर्धाग्नावपि सञ्चरेत्” इति ॥

३० अनाहिताग्निः पूर्वमृतां पत्नीमौपासनार्थेन दग्ध्वा शिष्टार्थं सायंप्रातर्जुह्वन् स्थाली-

पाकं च कुर्वन् तस्मिन्नग्न्यामुद्गृहेत् । पुनरुद्वाहमकुर्वन्वा सायंप्रातर्होममर्धाग्नावेव यावज्जीवं

सञ्चरेत् । आहिताग्निस्तु त्रिभिरग्निभिस्तां दग्ध्वा पुनरुद्वाहानन्तरमग्निमान् भूत्वा यजेत् ।

उद्वाहाशक्तौ निर्मन्थ्येन पत्नीं दग्ध्वा यावज्जीवमग्निहोत्रं कुर्वन् पर्वणोरिष्टिं कुर्यादित्यर्थः ।

भारद्वाजोऽपि—

३५ “दंपत्योरुभयोरेको यदि प्राणैर्वियुज्यते । भर्ता वा यदि वा पत्नी जीवन्विधुर उच्यते ॥

“द्वयोः साधारणो वक्त्रिः सहसंस्कारसंस्कृतः । प्रेतं विधिबलादेति पत्नीं भर्तारमेव वा ॥

“संस्कृत्य विधिवत्प्रेतं वह्निर्जीवन्तमश्नुते” ॥ इति । तदेवमेकाग्निः पत्न्या अग्निमदत्तार्थं दत्त्वा वा अपत्नीकोऽपि यावज्जीवमौपासनं परिचरेत् । केचित्तु औपासनाग्निना पत्नीं दग्ध्वा विधुरोऽप्यग्निमुत्पाद्यौपासनं कुर्यादिति ॥

अग्न्युत्पत्तिप्रकारः क्रियाकल्पकारिकायामभिहितः—

“उद्धृत्य वह्निं प्रणवेन पूर्वमन्वाग्निमन्त्रेण हरेत्पुरस्तात् ।

“निधाय ‘पृष्ठो दिवि’ मन्त्रकेण ततस्तु होमः शकलैश्चतुर्भिः ॥

“रेखादयो नैव च तत्सतां स ‘विश्वानिनोद्यान’ इमे च मन्त्राः ।

“आरोहणं नास्त्यवरोहणं स्यादुत्पत्तिरेवं विधुरानलस्य ॥

“नित्यानि नैमित्तिककाम्यकर्माण्यत्रैव कुर्याद्विधुरः सदैव” ॥ इति । एवमुत्पाद्य सायं-  
प्रातरौपासनं कुर्यात् । कर्मान्तेऽग्निर्लौकिक इत्याहुः । तथा च भारद्वाजः—

“आधाय विधिवद्वह्निं भर्ता पत्न्यापि वा पुनः । यावज्जीवं परिचरेदोषधीर्भिर्यथाविधि ॥

“स्थालीपाकं चाग्रयणमस्मिन्नग्नौ विधीयते । आ प्राणविप्रयोगान्तं न जहात्येष पावकः ॥

“प्राणैर्वियुक्ते संस्कुर्याद्विधुरं विधुराग्निना” ॥ इति । ‘स्त्री चैवं भर्तारं प्रेते’ इति वचना-  
द्भर्तारं प्रेते पत्न्यप्यौपासनं परिचरेदित्यर्थः । अत्र सार्वभौमीये—‘पाणिग्रहणादधिगृहमेधिनो-  
र्वतम्’ इति द्विवचनस्वारस्यादन्यतरात्यये स्मार्तकर्मानधिकारज्ञापनादावाभ्यां कर्माणि कर्तव्या-  
नीत्युभयाधिकारित्वेनैव गार्ह्यकर्मादौ सङ्कल्पाच्च विधुरस्याश्रमान्तरपरिग्रहार्हत्वाय सन्ध्या-  
वन्दनमात्रं कर्तव्यमिति ।

तथा च तस्याग्न्याभावं सिद्धवत्कृत्य मन्त्रजपेन तत्फलावाप्तिमाह शौनकः

“महत्तत्प्रजपेत्सूक्तं पञ्चवारं दिनेदिने । औपासनं विना दोषो न स्पृशेद्विधुरं ततः ॥

“अग्ने नय’जपेद्वर्चं पञ्चवारं दिनेदिने । विधुरस्याग्निकस्यैव यत्फलं तद्भवेद् ध्रुवम्” ॥ इति २०

शातातपोऽपि—

“अनग्निरपि यो विप्रः सदाचारपरो यदि । श्राद्धादिषु समस्तेषु सोऽपि ग्राह्यो मनीषिभिः ॥

“अनग्निकस्य वेदोऽग्निर्वेदहीनोऽप्यनग्निकः । साऽग्निकोऽप्यनधीतश्चेदनग्निक इति स्मृतः ॥

“वैधुर्यं न तु बाधेत पुत्रवान्यदि यो द्विजः । तथा च वेदविज्ञैव सर्वकर्मसु सोऽर्हति ॥

“पुत्रवान्मृतभार्योऽपि सोऽग्निमानिति संस्कृतः । पुत्र एवाग्निरित्याहुः पुत्रार्थं दारसङ्ग्रहः ॥

“मृतायामपि भार्यायां प्रत्यक्षाग्निर्विनश्यति । आत्मन्यग्निर्न नश्येत्तु तस्मात्कर्माहं एव सः” ॥ इति ॥

एवं चैकाग्नेर्विधुरस्याग्निस्त्रभावाऽद्वावयोः शिष्टाचारप्राचुर्येण व्यवस्थाऽवगन्तव्या । इति यजनम् ॥

अथ याजनं निरूप्यते ।

तत्र विधिः श्रूयते—“द्रव्यमार्जन्यन्वाहणः प्रतिगृहीयाद्याजयेदध्यापयेद्वा” इति । न  
चायं नित्यविधिः । अकरणे प्रत्यवायादिनित्यलक्षणाभावात् । अपि तु काम्यविधिः । ३०  
द्रव्यार्जनकामस्य तत्राधिकारात् । तत्रापि नापूर्वविधिः । जीवनोपायत्वेन याजनस्य प्राप्तत्वात् ।  
अग्निहोत्रं जुहुयादष्टकाः कर्तव्या इत्यादिवदत्यंताप्राप्त्यभावात् । अत्यंताप्राप्तप्रापणं ह्यपूर्वविधिः ।  
नापि परिसंख्या । एकस्यानेकत्र प्राप्त्यभावादिकस्योभयत्र प्राप्तस्यान्यतो निवृत्त्यर्थमेकत्र पुनर्वचनं  
परिसंख्या ।

- “ इमामगृभ्णन् रश्नामृतस्येत्यह्वाभिधानीमादत्त ” इत्यत्र मंत्रलिंगसामर्थ्यादह्वाभिधान्या गर्दभाभिधान्याश्च रश्नाया ग्रहणे विनियुक्तः पुनरह्वाभिधानीमादत्त इति वचनेनाह्वाभिधान्यां विनियुज्यमानो गर्दभाभिधान्या निवर्तते । तथा च ‘पंच पंचनखा भक्ष्या’ इत्यत्र स्वेच्छया शशादिषु श्वादिषु च प्राप्तं पुनः शशादिषु श्रूयमाणं श्वादिभ्यो निवर्तत इति । तस्मात्पक्षे ५ प्राप्तत्वात् ‘समे देशे यजेत’ ‘प्राङ्मुखोऽन्नानि भुंजीत’ इति वन्नियमाविधिरयम् । मंत्रेष्वृष्ट्यादिज्ञानं च याजनांगत्वेन छंदोगब्राह्मणे समाम्नायते “ यो ह वा अविदितार्षेयछंदोदैवतब्राह्मणेन मंत्रेण याजयति वाऽध्यापयति वा स्थाणुं वच्छति गर्तं वा पथते प्र वा मीयते पापीयान्भवति । यातया-मान्यस्य छंदांसि भवंतीति ” तदज्ञातयाजकस्य दोषाभिधानात् “ याजयित्वा प्रतिगृह्य वाऽनश्नन् त्रिः स्वाध्यायं वेदमधीयेत ” इत्यादीनि अयाज्ययाजनविषयाणि । तथा च देवलः १० “यः शूद्रान्पतितांश्चापि याजयेदर्थकारणात् याजितो वा पुनस्ताभ्यां ब्राह्मणोऽयाज्ययाजकः” इति मनुः ( ३।६५ )—
- “ अयाज्ययाजनैश्चैतैर्नास्तिक्येन च कर्मणाम् । कुलान्यकुलतां यांति यानि हीनानि मंत्रतः ॥ “संवत्सरेण पतति पतितेन समाचरन् । याजनाध्यापनाद्यौनात्स तु शय्यासनादिना” ॥ ( ११।१८० ) । पतितेन संसर्गं कुर्वन् शयनादिना संवत्सरेण पतति । याजनादिना तु संवत्सरेण न किंतु सद्यः १५ पततीत्यर्थः । यौनं विवाहः । देवलः—
- “ याजनं योनिसंबंधं स्वाध्यायं सहभोजनम् । कृत्वा सद्यः पतत्येव पतितेन न संशयः ” ॥ बोधायनः ( २।१।६२ )—
- “ संवत्सरेण पतति पतितेन समाचरन् । याजनाध्यापनाद्यौनात्सद्यो न तु शय्यासनादिभिः ” इति आपस्तम्बः ( १।२।१।५ ) “ न पतितैः संव्यवहारो विद्यते । तेषामभ्यागमनं भोजनं विवाहमिति २० च वर्जयेत् ” इति ( १।१।३३ ) । व्यासः—
- “ संवत्सरेण पतति संसर्गं कुरुते तु यः । यानशय्यासनैर्नित्यं जानन्वै पतितो भवेत् ॥ “ याजनं योनिसंबंधं तथैवाध्यापनं द्विजः । कृत्वा सद्यः पतेत् ज्ञानात्सहभोजनमेव वा ” ॥ संवर्त्तः—
- “ महापातकसंयोगी ब्रह्महत्यादिभिर्नरः । तत्संसर्गविशुध्यर्थं तस्य तस्य व्रतं चरेत् ” ॥ इति । यमः—
- “ प्रतिग्रहाध्यापनयाजनानां प्रतिग्रहं श्रेष्ठतमं वर्दति । २५ “ प्रतिग्रही शुध्यति जप्यहोमैः याज्यं तु पापैर्न पुनन्ति वेदाः ” ॥ इति याजनम् ॥ अथाध्ययनम् । “ स्वाध्यायोऽध्येतव्यो ब्राह्मणेन षडंगो वेदोऽध्येय ” इति श्रूयते ( सह वै उपनिषदि ) । अनेन अर्थज्ञानपर्यंतं अध्ययनं विधीयते इति न्यायसिद्धम् । मंत्राः पुनरविदितार्थानुष्ठाना अनुष्ठेयार्थप्रकाशनासमर्थाः । तस्मात्प्रतिपन्नवेदार्थेऽनुष्ठाताभिलषितानि कर्मफलानि प्राप्नोति न च प्रत्यवैतीति वेदोऽध्येतव्यः तदर्थश्च प्रतिपत्तव्यः । अत्र मनुः ( २।१।६५ )—
- ३० “ तपोविशेषैर्विविधैर्व्रतैश्च विधिचोदितैः । वेदः कृत्स्नोऽधिगंतव्यः सरहस्यो द्विजन्मना ” ॥ व्रतैः प्राजापत्यादिभिः । कृत्स्नः सांगः । स एव ( २।१।६६ )—
- “ वेदमेव सदाभ्यस्येत् तपस्तप्यन् द्विजोत्तमः । वेदाभ्यासे हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते ” ॥ इह वेदे । उच्यते “ तपो हि स्वाध्याय ” इति श्रूयते ।
- “ योऽनधीत्य द्विजो वेदानन्यत्र कुरुते श्रमम् । स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ” ( १।६८ ) ॥ ३५ “ कुविवाहैः क्रियालोपैर्वेदानध्ययनेन च । कुलान्याशु विनश्यति ब्राह्मणातिक्रमेण च ( ३।६३ ) ॥



“मंत्रवन्ति समृद्धानि कुलान्यल्पधनान्यपि । कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षति च महयशः ॥

“यदधीतमविज्ञानं निगदेनैष शब्द्यते । अनग्नाविव शुष्केधौ न तज्ज्वलति कर्हिचित्” ॥

श्रूयते च ( निरुक्ते १।८ )—

“स्थाणुरयं भारहावः किलाभूदधीत्य वेदान् न विजानाति योऽर्थम् । योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते स नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा” ॥ इति । **मनुरपि** ( १२।१०० )—

“सेनापत्यं च राज्यं च दंडनेतृत्वमेव च । सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदहति ॥

“इतिहासपुराणज्ञः पदवाक्यप्रमाणवित् । अंगोपकारवेदी च वेदार्थं ज्ञातुमर्हति” ॥ इति ।

इतिहासो भारतरामायणादिः । **कूर्मपुराणे** ( उत्तरार्धे अ. १४ श्लो. ८४-८७ )—

“योऽन्यत्र कुरुते यत्नमनधीत्य श्रुतिं द्विजः । स वै मूढो न संभाष्यो वेदबाह्यो द्विजातिभिः ॥

“न वेदपाठमात्रेण संतुष्टो वै द्विजोत्तमः । पाठमात्रावसानस्तु पंको गौरिव सीदति ॥ १०

“योऽधीत्य विधिवद्वेदं वेदार्थं न विचारयेत् । स सान्वयः शूद्रसमः पात्रतां न प्रपद्यते” ॥

**याज्ञवल्क्यः**—

“पारंपर्यागतो येषां वेदः सपरिव्रंढाणः । तच्छाखाकर्म कुर्वीत तच्छाखाध्ययनं तथा ॥

“यः स्वशाखां परित्यज्य पारक्यमधिगच्छति । स शूद्रवद्वहिष्कार्यः सर्वकर्मसु साधुभिः ॥

“अधीत्य शाखामात्मीयां परशाखां ततः पठेत्” ॥ **मनुः** ( २।१५७-१५८ )— १५

“यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः । ब्राह्मणश्चानधीयानः त्रयस्ते नामधारकाः” ॥ इति ।

“यथा पण्डोऽफलस्त्रीषु यथा गौर्गवि चाफला । यथा चाज्ञोऽफलं दानं तथा विप्रोऽवृचोऽफलः” ॥

**पराशरः** ( ८।२८ )—

“ये पठन्ति द्विजा वेदं पंचयज्ञरताश्च ये । त्रैलोक्यं तारयन्त्येते पंचेंद्रियरता अपि” ॥

**संवर्त्तः** “वेदं चैवाभ्यसेन्नित्यं शुचौ देशे समाहितः” इति । **दक्षः**— २०

“वेदस्वीकरणं पूर्वं विचारोऽभ्यसनं जपः । तद्दानं चैव शिष्येभ्यो वेदाभ्यासो हि पंचधा” ॥

**व्यासः**—

“वेदाभ्यासं ततः कुर्यात्प्रयत्नाच्छक्तितो द्विजः । वेदमध्यापयेच्छिष्यान् धारयेच्च विचारयेत् ॥

“अधीतमपि यो वेदं विमुंचति यदा नरः । भ्रूणहा स तु विज्ञेयो वियोनिमधिगच्छति” ॥

**मनुः** ( १।१।१९८ )— २५

“शरणागतं परित्यज्य वेदं विष्ठाव्य च द्विजः । संवत्सरं यवाहारस्तत्पापमपसेधति” ॥

**याज्ञवल्क्यः** ( आ. ४० )—

“यज्ञानां तपसां चैव शुभानां चैव कर्मणाम् । वेद एव द्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः” ॥

यज्ञादीनां बोधकत्वेन निःश्रेयसकरः । **व्यासः**—

“हरिरोमिति निर्दिश्य यत्कर्म क्रियते बुधैः । अधीयतेऽपि राजर्वे तद्धि वीर्यकरं भवेत्” ॥ ३०

**आपस्तम्बः** ( १।१।३६-७ )—“ओंकारः स्वर्गद्वारं तस्माद् ब्रह्माऽध्येष्यमाणः एतदादि प्रतिपद्येत ।

विकथां चान्यां कृत्वा एवं लौकिक्या वाचा व्यावर्त्तते ब्रह्म” ॥ इति । ब्रह्म वेदं स्वर्गसाधनम् अध्येष्य-

माणः स्वर्गद्वारं प्रणवमादौ कृत्वा प्रतिपद्येत उपक्रमेत । अध्येतुमध्ययनेन अनुपयुक्ता कथा-

विकथां चान्याकृत्वेतदादिप्रतिपद्येत । एवं सति ब्रह्म वेदः लौकिक्या वाचा व्यावर्त्तते तथा

व्यामिश्रितं न भवतीत्यर्थः । अथर्वणे श्रूयते—“प्रणवं देवा असुरजयार्थं प्रार्थयन्तः । वरं वृणी-

ष्वेत्यनुवंस्तान् प्रणवोऽब्रवीत् न मामनिरधित्वा ब्राह्मणा ब्रह्म वदेयुर्यदि वदेयुः अब्रह्मैव स्यादिति । तस्मादौकारः पूर्वमुच्यत इति । एष एव हि पुरस्तादुच्यते एष पश्चादिति च ” । इत्यध्ययनम् ।

अथाध्यापनम् । स्मृतिरत्ने—

“ याजनाध्यापने शुद्धे तथा पूतप्रतिग्रहः । एष सम्यक्समाख्याता त्रितयी तस्य जीविका ” ॥

५ अध्यापने नियमानाह यमः—

“सततं प्रातरुत्थाय दंतधावनपूर्वकम् । स्नात्वा हुत्वा च शिष्येभ्यः कुर्यादध्यापनं नरः ” ॥

मनुरपि ( २।७० )—

“ अध्येष्यमाणं तु गुरुर्नित्यकालमतंद्रितः । अधीष्व भो इति ब्रूयाद्विरामोऽस्त्विति चारमेत् ॥

“ आचार्यपुत्रः शुश्रूषुर्ज्ञानदो धार्मिकः शुचिः । शक्तोऽर्थदोऽर्थी स्वः साधुरध्याप्या दश धर्मतः ॥

१० ( २।१०९ )

“ धर्मार्थौ यत्र न स्यातां शुश्रूषा वाऽपि तद्विधा । तत्र विद्या न वक्तव्या शुभं बीजमिवोषरे ( १।१२ ) ॥

“ विद्ययैव समं कामे मर्त्तव्यं ब्रह्मवादिना । आपद्यपि च घोरायां न त्वेनामिरिणे वपेत् ( १।१३ ) ॥

“ विद्या ब्राह्मणमेत्याह शेषधित्तेऽस्मि रक्ष मां । असूयकाय मां माऽदाः तथास्यां वीर्यवत्तमा ( १।१४ ) ॥

“ यमेव तु शुचिं विद्यान्नियतं ब्रह्मचारिणम् । तस्मै मां ब्रूहि विप्राय निधिपायाप्रमादिने ” ( १।१५ ) ॥

१५ शेषधिरित्यादिविद्याया वचनं शेषधिर्निधिः । ते शेषधिरस्मि विद्या जानीयाः । निधिपालाय विद्या निधिपालाय । स एव ( २।११६ )—

“ ब्रह्म यस्त्वननुज्ञातमधीयानादवाप्नुयात् । स ब्रह्मस्तेयकृद्दिप्रो नरकं प्रतिपद्यते ॥

“ नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयात् न चान्यायेन पृच्छतः । जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत् ( १।१० ) ॥

“ अधर्मेण तु यः प्राह यश्चाधर्मेण पृच्छति । तथोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं वाऽधिगच्छति ” ( १।११ ) ॥

२० प्राह वचनं करोति । प्रैति श्रियते ।

विद्याधर्मस्त्रियो विशिष्टतराश्चेद्विशिष्टादप्यपादानादवैश्यमुपादेया इत्याह स एव ( २।२३८ )

“ श्रद्धानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि । अंत्यादपि परं धर्मः स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ” ॥

एतदेव दृष्टान्तेनोपपादयति ( २।२३९—२४३ )

“ विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम् । अमित्रादपि सद्बृत्तममेध्यादपि कांचनम् ॥

२५ “ स्त्रियो रत्नं तथा विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम् । विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः ॥

“ अब्राह्मणादध्ययनमापत्काले विधीयते । अनुव्रज्या च शुश्रूषा यावदध्ययनं गुरोः ” ॥

अब्राह्मणात्क्षत्रियवैश्याभ्याम् ।

“ अधीयीरन्स्वकर्मस्थास्त्रयो वर्णा द्विजातयः । प्रब्रूयात् ब्राह्मणस्त्वेषां नेतराविति निश्चयः ( १०।१ ) ॥

“ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः । चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पंचमः ” ॥

३० हारीतः— ( १०।५ )

“ मंत्रार्थज्ञे जपञ्जुह्वंस्तथैवाध्यापयन् द्विजः । स्वर्गलोकमवाप्नोति नरकं तु विपर्यये ” ॥

लिखितं पाठं निषेधति नारदः—

“ पुस्तकप्रत्ययाधीतं नाधीतं गुरुसंनिधौ । ब्राजते न सभामध्ये जारगर्भ इव स्त्रियाः ” ॥ इति ।

स एव—

३५ “ हस्तहीनस्तु योऽधीते स्वरवर्णविवर्जितः । ऋग्यजुःसामभिर्दग्धो वियोनिमधिगच्छति ” ॥

हारीतः—

“अध्यापनं च त्रिविधं धर्मार्थं चार्थकारणात् । शुश्रूषाकरणाच्चेति त्रिविधं परिकीर्तितम् ॥

“येषामन्यतमाभावे मृषाचारे भवेद् द्विजाः । तत्र विद्या न दातव्या पुरुषेण हितैषिणा ॥

“योग्यानध्यापयेच्छिष्यानयोग्यानपि वर्जयेत् ” ॥ याज्ञवल्क्यः ( आ. २८ )—

“कृतज्ञोऽद्रोहि मेधावी शुचिः कल्पोऽनसूयकः । अध्याप्यो धर्मतः साधुः शक्तातो ज्ञानवित्तदः” ॥  
व्यासः—

“कृतज्ञश्च तथाऽद्रोही मेधावी शुभकृन्नरः । आतः प्रियोऽथ विधिवत् षडध्याप्या द्विजोत्तमैः” ॥ इति ।

आपस्तम्बः ( २।५।१८ )—“यथागमं शिष्येभ्यो विद्यासंप्रदाने नियमेषु च युक्तः स्यादेवं वर्तमानः पूर्वापरान् संबद्धानात्मानं च क्षेमे युनक्ति ” इति । येन प्रकारेणागमपाठार्थोस्तथैव शिष्येभ्यो निरुत्सरेण विद्या संप्रदेया । एवंभूतो विद्यासंप्रदाने युक्तोऽवहितः स्यात् च गृहस्थस्य नियमाध्यापनेऽन्यत्र च तेष्वपि युक्तः स्यादेवं वर्तमानः पूर्वान्पितृपितामहप्रपितामहानपरान् पुत्रपौत्रनप्तृ- १०  
न्कर्मणिवर्तुस्वसंबन्धिनः पुरुषानात्मानं च क्षेमे अभयस्थाने नाकपृष्टे युनक्ति स्थापयतीत्यर्थः ॥

बोधायनः ( १।२।४९-५० )—

“धर्मार्थौ यत्र न स्यातां शुश्रूषा वाऽपि तद्विधा । विद्यया सह मर्तव्यं न चैनामृषरे वपेत् ॥

“अग्निरिव कक्षं दहति ब्रह्मपृष्ठमनाहतम् । तस्माद्वै शक्यं न ब्रूयाद्ब्रह्म मानमकुर्वताम्” ॥ इति ।

स एव ( १।२।४२-४३ )—“अब्राह्मणादध्ययनमापदि शुश्रूषाऽनुब्रज्या च यावदध्ययनम्” ॥ इति । १५

गौतमः ( ९।६८ )—“सत्यधर्मार्थैर्वृत्ती शिष्टाध्यापकः” इति । स एव ( ७।१ ) “आपत्कल्पो

ब्राह्मणस्याब्राह्मणाद्विद्योपयोगोऽनुगमनं शुश्रूषा समाप्ते ब्राह्मणो गुरुः” ॥ इति । न चापररात्रमधीत्य

पुनः प्रतिसंविशेन्न स्वप्यादिच्यर्थः । मनुः ( ४।९९ )

“नाविस्पष्टमधीयीत न शूद्रजनसंनिधौ । नानिशीथे परिश्रान्ते ब्रह्माधीत्य पुनः स्वपेत्” ॥ व्यासः—

“अनध्यायेष्वधीतं यद्यच्छूद्रस्य च संनिधौ । प्रतिग्रहनिमित्तं च नरकाय तदुच्यते” ॥ इति । स एव— २०

“आत्मार्यं भोजनं यस्य रत्यर्थं यस्य मैथुनम् । वृत्त्यर्थं यस्य चाधीतं स याति नरकान्बहून्” ॥

शातातपः—

“वेदाक्षराणि यावन्ति नियुंज्यादर्थकारणात् । तावन्ति भ्रूणहत्या वै वेदविक्रय्यमाप्नुयात्” ॥

छागलेयः—

“प्रख्यापनं प्राध्ययनं प्रश्नपूर्वप्रतिग्रहः । याजनाध्यापने वादः षड्विधो वेदविक्रयः” ॥ २५

प्रख्यापनं अहं चतुर्वेदीत्यादि राजमंदिरादावाक्रोशः । स्वस्योत्कर्षार्थमध्ययनं प्राध्ययनम् ।

कियन्मे दास्यतीत्युक्त्वा प्रतिग्रहो याजनमध्यापनम् । प्रश्नपूर्वाणि इतरमाधिक्षिप्य स्वविद्याख्यापने

परस्परं विवादः । शातातपः—

“प्रश्नपूर्वं तु यो दद्याद्ब्राह्मणाय प्रतिग्रहम् । स पूर्वं नरकं याति ब्राह्मणस्तदनंतरम्” ॥

स्मृतिसंग्रहे—

“गायत्रीं मूल्यमादाय यः परस्मै प्रयच्छति । स जीवन्नन्त्यैजातित्वं संप्राप्नोति न संशयः” ॥ ३०

शौनकः—

“वेदाक्षराणि यावन्ति नियुंक्ते त्वर्थकारणात् । तावन्ति भ्रूणहत्या वै लभते नात्र संशयः ॥

“अर्थार्थं भोजनार्थं वा यो वेदाक्षरमुच्चरेत् । चांडालः स तु विज्ञेयः सर्वकर्मबहिष्कृतः” ॥ इति ।

भृतकाध्ययनभृतकाध्यापने उपपातकेषु पठति याज्ञवल्क्यः ( प्रा. २.३५ )—“भृतकाध्ययनादानं ३५

भृतकाध्यापनं तथा ” ॥ इति । इत्यध्यापनम् ।

अथोपाकरणम् ॥ मनुः ( ४।९५-९६ )—

“श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वा उपाकृत्य यथाविधि । युक्तश्छन्दांस्यधीयीत मासान्विप्रोऽर्धपंचमास ॥  
“पुष्ये तु छन्दां कुर्याद्बहिर्ह्रस्वसर्जनं द्विजः । माघशुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्वाह्ने प्रथमेऽहनि ” ॥

अध्वर्यूणां श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां छन्दोगानामिति व्यवस्थितविषयोऽयं विकल्प इति त-  
५ व्याख्यानम् । ग्रामाद्बहिर्ह्रस्वसर्जनाख्यं कर्म प्रथमेऽहनि प्रथमायां तिथौ पुष्येऽध्वर्यूणां माघे छन्दो-  
गानाम् । आपस्तम्बः ( १।९।१-३ )—“श्रावण्यां पौर्णमास्यामध्यायमुपाकृत्य मासं प्रदोषे  
नाधीयीत तैष्यां पौर्णमास्यां रोहिण्यां वा विरमेदर्थपंचमांश्चतुरो मासानित्येके” इति ॥

“मेषादिस्थे सवितरि यो यो दर्शः प्रवर्तते । चांद्रमासास्तत्तदंताश्चैत्राद्या द्वादश स्मृताः ॥

“तेषु या या पौर्णमासी सा सा चैत्यादिकाः स्मृताः । कौदाचित्केन योगेन नक्षत्रस्येति निर्णयः” ॥

१० तदेवं सिंहस्थे सवितरि याऽमावास्या तदंते चांद्रमासे या मध्यवर्तिनी पौर्णमासी सा श्रावणी ।  
श्रवणयोगस्तु भवतु वा मा वाऽभूत् । तस्यामध्यायमुपाकृत्य स्वगृह्योक्तेन विधिना ‘उपाकर्म स्वगृह्योक्ते  
काल’ इत्यत्रिस्मरणात् । स्वगृह्योक्तकाले उपाकर्म कृत्वा स्वाध्यायमधीयीत । अधीयानश्च

मासमेकं प्रदोषे प्रथमे रात्रिभागे नाधीयीत । तैष्यां पौर्णमास्यां तैषे मासि तिष्यात्पूर्वा या  
रोहिणी तस्यां विरमेत् । स्वगृह्योक्तविधिना उत्सर्जनं कुर्यात् । अनयोः पक्षयोः पंच मासान-  
१५ धीयीत अर्धपंचमानिति अर्धं पंचमो येषां ते अर्धपंचमाः । अर्धोधिकांश्चतुरो मासानधीयीतेत्येके  
मन्यन्ते । अस्मिन्पक्षे प्रौष्ठपद्यामुपाकरणं शास्त्रांतरदर्शनादिति । तथा गौतमः ( १६।१ )

“श्रावणादिवार्षिकं प्रौष्ठपदीं वोपाकृत्य तदादि छन्दांस्यधीयीत” । तदिदमध्ययनं वार्षिकं प्रतिसं-  
वत्सरं भवति अर्धपंचमानपूर्णांन्यावद्दक्षिणायनं वाऽधीयीतेत्यर्थः । बोधायनस्तु ( १।५।१४३ )—

“श्रावण्यां पौर्णमास्यामाषाढ्यां वोपाकृत्य तैष्यां माध्यां वोत्सृजेयुः” ॥ इति । याज्ञवल्क्यः  
( आ. १।४२ )—

२० “अध्यायानामुपाकर्म श्रावण्यां श्रवणेषु वा । हस्तेनौषधिभावे वा पंचम्यां श्रावणस्य वा ” ॥  
ओषधीनां प्रादुर्भावे सति श्रावणमासस्य पौर्णिमास्यां श्रवणयुक्ते वा दिने हस्तेन युक्तायां  
पंचम्यां वा स्वगृह्योक्तविधिना कुर्यात् ।

अत्र व्यवस्था दर्शिता स्मृतिसारे—श्रावण्यां पौर्णिमास्यां श्रावणमासस्य श्रवणे वा पंचम्यां

२५ हस्ते वा पंचमीहस्तयोगे भाद्रपदपौर्णिमास्यां तत्रापि श्रवणे हस्ते वा पंचम्यां पंचमीहस्तयोगे वा  
यथास्वकुलाचारं कुर्यादिति । कालादर्शोऽपि—

“अध्यायानामुपाकर्म श्रावण्यां तैत्तिरीयकाः । बह्वचाः श्रवणे कुर्युः सिंहस्थोऽर्को भवेद्यदि ॥

“सहस्तशुक्लपंचम्यां न तद्ग्रहणसंक्रमे । असिंहार्के प्रोष्ठपद्यां श्रवणे च व्यवस्थया” ॥ इति ।  
अर्कः सूर्यः सिंहराशिस्थितो यदि स्यात्तदा तैत्तिरीयाः श्रावणमासस्य पौर्णिमास्यामध्यायानामुपाकर्म

३० कुर्युः । बह्वचाः श्रवणनक्षत्रयुक्ततिथौ कुर्युः । तत्रासंभवे तन्मास एव हस्तनक्षत्रयुक्तपंचम्यां वा  
कुर्यात् । ग्रहणे संक्रमे च तदुपाकर्म न कुर्युः । असिंहार्के इति यदि सूर्यः सिंहराशिस्थितो न  
भवति तदा प्रोष्ठपद्यां भाद्रपदपौर्णिमास्यां श्रवणे च व्यवस्थया कुर्युः । प्रोष्ठपद्यां तैत्तिरीयकाः  
कुर्युः । बह्वचाः श्रवणक्षयुक्ततिथाविति व्यवस्था । चकारात् भाद्रपदमासे हस्तनक्षत्रयुक्ततिथा-  
विति सूचितम् । तथाह गार्ग्यः—

३५ “पर्वण्योदयिके कुर्युः श्रावणं तैत्तिरीयकाः । बह्वचाः श्रवणे चैव ग्रहसंक्रातिवर्जिते ” ॥  
औदयिके उदयकालव्यापिनी । गौभिलोऽपि—

“पर्वण्यौदयिके कुर्युः श्रावणं तैत्तिरीयकाः । बह्वचाः श्रवणर्क्षे तु हस्तर्क्षे सामवेदिनः ” ॥ इति ।  
स एव—

“छंदोगाभिहिताः कुर्युः प्रातरौत्सर्गिकीं क्रियाम् । अपराह्णेऽप्युपाकर्म पुण्यहस्तर्क्षयोर्द्विजाः” ॥  
हस्तर्क्ष उपाकर्म पुण्यर्क्षे उत्सर्गं कुर्युः ।<sup>१</sup>

“अध्यायानामुपाकर्म कुर्यात्कालेऽपराह्णिके । पूर्वाह्णे तु विसर्गः स्यादिति वेदविदो विदुः ॥ ५

“उपाकर्मणि चोत्सर्गे यथाकालं समेत्य च । ऋषीन् दर्भमयान्कृत्वा पूजयेत्तान् द्विजस्ततः” ॥ इति ॥

सामवेदिनः सिंहभाद्रपदे मौढ्यादिना दूषिते सति कन्यामास अपरपक्षे हस्त-  
नक्षत्रे उपाकरणं कुर्वति । तत्र सायं त्रिमुहूर्तव्यापि हस्तनक्षत्रं ग्राह्यम् । मौढ्यादिरहिते तु  
सिंहभाद्रपदे शुक्ले उदयादिसंगवान्तव्यापि हस्तर्क्षं ग्राह्यम् । तथा संग्रहे “हस्तर्क्षेऽनुदये शुक्ले  
त्रिमुहूर्तास्तगे सिंते” इति । हस्तर्क्षे त्वाष्ट्रर्क्षेण संयुतं संगवांतयुगिति च । तिथिदर्पणे च— १०  
“औदयिके संगवस्पर्शे श्रुतो पर्वणि चार्कभे<sup>१</sup> । कुर्युर्नभस्युपाकर्म ऋग्यजुःसामगाः क्रमात्” ॥ इति ।  
संगवस्पर्शे संगवांतस्पर्शे । अत्र वृद्धगार्ग्यः—

“घटीपरिमितः कालः संगवादूर्ध्वपर्वणि । औदयिकमिति प्राहुर्मुनयः स्मृतचित्तकाः” ॥

गर्गः “परेन्हि संगवादूर्ध्वं पूर्णिमाश्रवणं<sup>२</sup> व्रजेत्” । स्मृत्यंतरे—

“सन्धिः संगवतः पश्चादूर्वाङ्गमर्ध्यादिनाद्यदि । तत्रैवोपाकृतिं कुर्यात्सद्यश्च समिदाहुतिः” ॥ १५

“सन्धिः संगवतः प्राक्चेत्पूर्वस्मिन्पर्वणि क्रिया । श्वोभूते समिदाधानमेष श्रावणिको विधिः” ॥

तथाऽध्वर्यूनधिकृत्य स्मर्यते

“श्रावणी पौर्णमासी तु संगवात्परतो यदि । तदैवौदयिकी ग्राह्या नान्यदौदयिकी भवेत्” ॥ इति ।

तदेवं उदयादि द्वादशघटिकाधिकं किञ्चित्कालव्यापिन्यां पौर्णमास्यां यजुःशास्त्रिन्या-  
मुपाकर्म । उदयादिद्वादशघटिकाव्यापिनि हस्तनक्षत्रे छंदोगानां मौढ्यादिदूषिते तु सिंह- २०  
भाद्रपदे कन्यापरपक्षे सायं त्रिमुहूर्तव्यापिनी । हस्तनक्षत्रे छंदोगानां बह्वचानां तु सूर्योदयात्परं  
घटिकाद्वयव्यापिनि श्रवणनक्षत्रे । तथैव संग्रहे

“उदयव्यापिं चैव विष्णवर्क्षे घटिकाद्वयम् । तत्कर्म सार्थकं स्याच्च तदोपाकरणं भवेत्” ॥

वैसिष्ठः मलमायां—

“यां तिथिं समनुप्राप्य श्रवणं घटिकाद्वयम् । तस्यामुपाकृतिं कुर्युराश्वलायनशास्त्रिनः” ॥ इति । २५

गार्ग्यः—

“अर्धरात्रादधस्ताच्चेत्संक्रांत्यां ग्रहणेऽपि वा । न कर्त्तव्यमुपाकर्म परतश्चेन्न दोषभाक्” ॥

तथा पद्मतौ—

“मलमासे निपतिते सूतके मृतकेऽपि वा । ग्रहणे संक्रमे वाऽपि मौढ्येऽपि गुरुशुक्रयोः ॥

“प्रौष्ठपद्यामथाषाढ्यामुपाकरणमिष्यते । प्रौष्ठपद्यामुपाकुर्याच्छ्रावणं दूषितं यदि ॥ ३०

“आषाढे वाऽपि कर्त्तव्यं प्रौष्ठपद्यां च दूषिते । मासत्रयेऽपि दोषश्चेच्छ्रावण्यामेव कारयेत्” ॥

व्यासः—

“श्रावण्यामथवाऽऽषाढ्यां प्रौष्ठपद्यामथापि वा । दुष्टायां पूर्वपूर्वस्यामुत्तरस्यां विधीयते ॥

“कालत्रयेऽपि दोषे तु श्रावण्यामेव कारयेत् । पौर्णमास्यास्तु नित्यत्वादापस्तंबस्य शासनात् ॥

“मुक्त्वा भाद्रपदाषाढ्यौ श्रावण्यामेव कारयेत्” ॥ इति । ३५

१ क्ष-धि । २ ख-अन्यच्च । ३ क्ष-हे । ४ कखग-स्थिति । ५ कखग-श्रावणव्रते ।

६ कखग-आवर्तनाद्यादि । ७ क्ष- एवाधिको । ८ क्ष-घटिकाव्याधिना । ९ खग-व्यापिनि त्वेन ।

१० कखग- पद्मतौ । ११ कखग-वसिष्ठः ।

५-[ स्मृ. मु. फ. ]

“अधीतवेदविधानां कर्त्तव्यं तु द्विजन्मनाम् । अध्यायांगमिदं नित्यमिति होवाच भार्गवः ॥

“वेदोपाकरणे प्राप्ते कुलीरस्थे दिवाकरे । उपाकर्म न कर्त्तव्यं कर्त्तव्यं सिंहयुक्तके ॥

“सिंहदर्शा तु या पूर्वा पूर्णा सा श्रावणी मता । तत्रैवोपाकृतिं कुर्यात्सिंहस्थोऽर्को भवेन्न वा ” ॥

इत्यादीनां वचनानां परस्परविरुद्धानां देशभेदेनाविरोधमाहुः

५ “कुलीरे सूर्यसंयुक्ते उपाकुयार्तुं दक्षिणे । नर्मदोत्तरदेशे तु कर्त्तव्यं सिंहयुक्तके ” ॥ इति ।

आंभ्रमहाराष्ट्रककर्णाटककायस्था दाक्षिणात्या तद्व्यतिरिक्ताः सर्वे नर्मदोत्तरतीरस्था इत्यभियुक्त-  
वादः । गुरुशुक्रमौढ्ये मलमासे च प्रथमोपाकरणं प्रतिषेधति बृद्धमनुः—

“गुरुभार्गवयोर्मौढ्ये मलमासे तथैव च । प्रथमोपाकृतिर्न स्यात्कुर्याच्चेत्स विनश्यति” ॥ इति । यत्तु

“प्राधान्येन विधानाच्च मनुनाऽध्यायकर्मणः । प्रथमोपाकृतिश्चापि कर्त्तव्येत्याह गौतमः ” ॥ इति

१० गौतमवचनं तत्कृतशांतिविषयम् । यदाह बृहस्पतिः—

“शांतिं कृत्वा तयोर्वाऽपि शुक्रदेवेंद्रमंत्रिणोः । होमैर्दानैर्जपैर्वाऽपि तयोरुदितमंत्रकैः ॥

“कर्त्तव्यं श्रावणं विप्रैरिति जीवेन भाषितम् ” ॥ इति । श्रावणप्रोष्ठपदाषाढेषु एकस्मिन्दोष-

रहिते प्रथमोपाकृतिः कर्त्तव्या । त्रिष्वपि दुष्टेषु श्रावणमासे शांतिपूर्वकाः कर्त्तव्याः । उदित-

मंत्रकैः गृह्यज्ञोक्तमंत्रैः । पद्धतिग्रंथे बृहस्पते अति यदर्थः इति बृहस्पतेः । ‘प्रवः शुक्राय’ इति

१५ शुक्रस्य । “आप्यायस्क स मे तु” इति मलमासो सोमस्य । सूर्योपरागसंक्रांतौ ‘चित्रं देवानाम्’

‘उदुत्यं जातवेदसं’ सूर्यो देवीमुषसम् ‘उद्वयंतमसस्परि’ आ सत्येन रजसा देवो वः सवितोत्पुनातु’

इति सूर्यस्य । सोमोपरागे ‘सोमो धेनुष’ इति षड्भिः ‘नवो नवो भवति’ इति च सोमस्य शांतिहोमं

कृत्वा उपाकरणांगहोमं कुर्यादिति ।

“प्रथमोपाक्रमे प्राप्ते कुलीरस्थे रवौ सति । उपाकर्म न कुर्वीत कुर्यात्सिंहस्थिते रवौ ” ॥ यत्तु

२० “यज्ञोपवीतं कर्त्तव्यं श्रावणे गुरुशुक्रयोः । बाल्ये मौढ्येपि वार्धक्ये कर्त्तव्यं नित्यकर्मवत् ”

इत्यादि तत् छाखाधीशस्य शक्तिसंज्ञाविविधमिति । सार्वभौमीये तत्रैव—

“क्रम्यजुः सामार्थ्यैशा जीवशुक्रकुजेंद्रजाः । शाखाधीशे शक्तियुक्ते तच्छाखाध्ययनं शुभम् ॥

“एको मूढो भवेदन्यः स्वोच्चमित्रांशगो यदि । स्वराशिमूढगौ चैव मौढ्यदोषो न विद्यते” ॥ इति

आत्रेयदर्शनात् शुके शक्तियुक्ते गुरुमौढ्येऽपि यजुःशाखोपाकर्म कर्त्तव्यम् । शुक्रमौढ्यादावप्ये-

२५ वम् । मौढ्यादिदोषेषूपाकर्मवर्जनस्मरणं स्वशाखाधीशस्य शक्त्यभावविविधमिति शाखाधीशस्य

शक्तौ सत्यामपि मासत्रयदोषे श्रावणमासे शांतिपूर्वकमेवोपाकर्म कर्त्तव्यमित्यन्ये । एतच्चो-

पाकरणं गृहस्थब्रह्मचारिणोः साधारणं कर्म । मन्वादिभिर्गृहस्थधर्ममध्ये उपाकरणस्य विधानात् ।

“उपाकर्म तद्योत्सर्गं वनस्थानामपीष्यते । धारणाध्ययनं कृत्वा गृहिणां ब्रह्मचारिणाम्” ॥ इति

देवलस्मरणात् । “अधीयीत गृहस्थोऽपि नियमाद् ब्रह्मचारिवत् ” इति व्यासस्मरणात् ।

३० “समावृत्तो ब्रह्मचारी कल्पेन यथान्यायमितरः” इति शौनकस्मरणाच्च । अत्र ब्रह्मचारिकल्पेनेति

ईषदसमाप्तौ कल्पविधानात् गृहस्थस्य भस्त्रलाजिनदंडविरहितमुपवीतधारणं तर्पणहोमादिक-

मविरुद्धं कर्त्तव्यतयाऽवगम्यते ।

अत्रोपवीतधारणमाह भरद्वाजः—“अथ यज्ञोपवीतस्य धारणे कथ्यते विधिः ।

“स्नात्वा शुद्धः शुचौ देशे प्रक्षालितपदद्वयः । करद्वंद्वपवित्रश्च कृतोदस्पर्शनो द्विजः ॥

“उपविश्यासने दर्भे प्राणानायम्य मंत्रतः । मंत्रं सदैवमुच्चार्य ब्रह्मसूत्रं गले क्षिपेत् ॥

१ सग-पूर्णिमा । २ कखग-प्राबल्ये सति वेदितव्यमिति । ३ खग-स्यादिवचन । ४ खग-वाग्यतः ।

“कक्षिणः बाहुमुद्धृत्य शिरसैव सह द्विजः । गृहस्थस्य वनस्थस्य सूत्रं प्रति पुनः पुनः ॥

“मंत्रोच्चारणमाचामद्वितयं क्रमशः स्मृतम्” ॥ शांडिल्यः—

“आर्द्रवासा न कुर्वीत कर्म किंचित्कथंचन । राक्षसं तद्धि विज्ञेयं तस्मात्तन्नेन वर्जयेत् ॥

“उपवीतादिकं धार्यं उपाकर्मणि तन्नवम् । अनवं वा नवं वाऽपि पुरातनमिह त्यजेत्” ॥ स्मृतिसारे—

“मौजीयज्ञोपवीतादि नवमेव तु धारयेत् । कटिसूत्रं चैव नवं नववस्त्रमुपाकृतौ” ॥ ५

व्रतचतुष्टयेऽप्येवं स्मर्यते

“मेखलामजिनं दंडं वस्त्रं यज्ञोपवीतकम् । पूर्वोपयुक्तमुत्सृज्य धारयेयुर्नवं व्रते” ॥ इति ।

अत्र कपर्दी—

“प्रजापतिमुखान् देवानेकैकं त्रिस्तिलोदकम् । उद्धृत्य तर्पणं कुर्याच्छ्रावण्यां तैत्तिरीयकाः” ॥

उपाकर्मणि ब्रह्मचारिणां वपनमावश्यकम् । “श्रावण्यां पौर्णमास्यां शिष्यं दापयित्वेति” १०

वैखानसे दर्शनात्

“क्षुरकर्म न कर्तव्यं चौलात्परमृतुत्रयम् । तथोपनयनादूर्ध्वमुपाकर्म विना क्वचित्” ॥ इति स्मृतेऽथ ।

तत्र तिथिवारादिदोषो न चिंत्यः

“वैधे कर्मणि तु प्राप्ते कालदोषं न चिंतयेत् । सद्यः क्षौरं तु कुर्वीत मातापित्रोर्मृतौ तथा” ॥ इति

वसिष्ठस्मरणात् । एवं प्रत्यब्दं श्रावण्यामुपाकर्म कार्यम् । कात्यायनः—

“प्रत्यब्दं यदुपाकर्म सोत्सर्गं विधिवत् द्विजैः । क्रियते छंदसां तेन पुनराध्यायनं परम् ॥

“अयातयामैश्छंदोभिर्यत्कर्म क्रियते द्विजैः । क्रीडमानैरपि तदा तत्तेषां सिद्धकारणम्” ॥ इति

इत्युपाकरणम् ॥

अथानध्यायाः ॥ मनुः ( ४।९७ )—

“यथाशास्त्रं तु कृत्वैवमुत्सर्गं छंदसां बहिः । विरमेत्पक्षिणीं रात्रिं यद्वाऽप्येकमहर्निशम्” ॥ २०

तद्देवाध्ययनम्

“अत ऊर्ध्वं तु छंदसि शुक्ले तु नियतः पठेत् । वेदांगानि च सर्वाणि कृष्णपक्षेषु संपठेत्” ॥

एतदुपाकृत्याध्ययनं स्नातकानां ब्रह्मचारिणामपि साधारणम्

“इमान् नित्यमनध्यायानधीयानो विवर्जयेत् । अध्यापनं च कुर्वाणः शिष्याणां विधिपूर्वकम् ॥

“उपाकर्मणि चोत्सर्गं त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम् । अष्टकासु त्वहोरात्रमृत्वंतासु च रात्रिषु” ॥ ( ४।१०।१ ) २५

उपाकर्मणि त्रिरात्रमुत्सर्गं तु पूर्वोक्तपक्षिण्यहोरात्राभ्यां सह विकल्प इति विज्ञानेश्वरः

( पृ. ४१ पं. १९ ) । प्रथमाध्ययने त्र्यहमितरत्र पक्षिण्यहोरात्रं वा

“उत्सर्गं प्रथमाध्यायेऽनध्यायस्यैव भवेत् । धारणाध्यापनादौ तु पक्षिणीं दिनमेव वा” ॥ इति

मनुस्मरणादित्यन्ये ।

“मार्गशीषे तथा प्रोष्ठे माघमासे तथैव च । तिस्रोऽष्टकाः समाख्याताः कृष्णपक्षेषु सूरिभिः” ॥ इति । ३०

विष्णुस्तु “तिस्रोऽष्टकाः तिरत्रोष्टन्वकास्तिस्रः पुर्वेद्युः । प्रौष्ठपदे हेमंतशिशिरयोरपरपक्षेषु” ॥ इति ।

नित्यानध्यायानाह हारीतः—

“प्रतिपत्सु चतुर्दश्यामष्टम्यां पर्वणोर्द्वयोः । इवोऽनध्यायेच्च शर्वर्या नाधीयीत कदाचन” ॥

मनुः ( ४।११४ )—

“आमावास्या गुरुं हंति शिष्यं हंति चतुर्दशी । ब्रह्माष्टकापौर्णमास्यौ तस्मात्ताः परिवर्जयेत्” ॥ ३५

ब्रह्म वेदं वीर्यं घ्नन्ति अष्टका पौर्णमास्या नैमित्तिकानध्यायानाह याज्ञवल्क्यः ( आ. १।४८-१।५१ )—

“श्वक्रोष्टुर्गदभोलूकसामबाणार्तनिस्वने । अमेध्यशवश्चाद्रान्त्यश्मशानपतितांतिके ॥



“देशेऽशुचावात्मनि च विद्युत्सन्नितसंप्लवे । भुक्त्वाऽऽर्द्रपाणिर्भोतरर्धरात्रेऽतिमारुते ॥

“पांसुप्रवर्षे दिग्दाहे संध्यानीहारभीतिषु । धावतः पृतिगंधे च शिष्टे च गृहमागते ॥

“खरोष्ट्रयानहस्त्यश्वनौवृक्षेरिणरोहणे । सप्तात्रैशदनध्यायानेतांस्तात्कालिकान्विदुः” ॥ इति ।

स एव ( आ. १४४।१४५ )

५ “अयं प्रतेष्वनध्यायः शिष्यत्विगुरुबंधुषु । उपाकर्मणि चोत्सर्गे स्वशाखाश्रोत्रिये तथा ॥

“संध्यागर्जितनिर्घातभूकंपोल्कानिपातने । समाप्य वेदं द्युनिशमारण्यकमधीत्य च” ॥

द्युनिशमहोरात्रमनध्यायः ।

“पंचदश्यां चतुर्दश्याष्टम्यां राहुसूतके । ऋतुसंधिषु भुक्त्वा च श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च” (१४६) ॥

ऋतुसंधिः प्रतिपत् । द्युनिशमनध्यायः ।

१० “पशुमंडूकनकुलश्वाहिमार्जारमूषकैः । गतेऽतरे त्वहोरात्रं शक्रपाते तथोच्छ्रये” (१४७) ॥

शक्रपातः आश्वयुक्तशुक्लद्वादशी । उच्छ्रयः भाद्रपदशुक्लद्वादशी । यत् पुनर्गतमेनोक्तं (१४८) ॥

“श्वनकुलमंडूकसर्पमार्जाराणां ज्यहमुपवासमनध्यायो विप्रवासश्च” इति तत्प्रथमाध्ययन-

विषयमिति विज्ञानेश्वरीये ( पृ. ४२ पं. ११ ) । मनुः (४।१०२-१०३) —

“कर्णश्रवेऽनिले रात्रौ दिवापांसुसमूहने । एतौ वर्षास्त्वनध्यायावध्यायज्ञाः प्रचक्षते ॥

१५ “विद्युत्सन्नितवर्षेषु महोल्कानां च संप्लवे । आकालिकमनध्यायमेतेषु मनुरब्रवीत्” ॥ विद्युदादिप्रादु-

र्भावलालादारभ्य नाडिकाषष्ठिराकालः । तत्र भवमाकालिकम् । येयमुक्ता विद्युदादिरिति प्रवृत्तिः

सा वर्षासु संध्ययोश्चेदाकालिकानध्ययननिमित्तं भवेदन्यदा चेत् नेत्याह स एव ( ४।१०४ ) —

“स्वतस्त्वभ्युदितान्विद्यान्यदाप्रादुक्कुप्ताग्निषु । तदा विद्यादनध्यायमनृततावप्रदर्शने” ॥

प्रादुष्कृताग्निषु विहतेष्वग्निषु संध्ययोरिति यावत् । एतान्विद्युदादीनभ्युदितान्विद्यात्पश्येत्तदा आ-

२० कालिकमनध्यायं विद्यात् । अनृतौ वर्षर्तुव्यतिरिक्ते चर्तौ अभ्रसंप्लवे आकालिकमनध्यायं विद्यात् ।

“निर्घाते भूमिचलने ज्योतिषां चोपसर्जने । एतानाकालिकान्विद्यादनध्यायानृततावपि (१०५) ॥

उपसर्जने उपप्लवे । चलनादौ अपिशब्दादनृततावपि ।

“अंतःशवगाते ग्रामे वृषलस्य च संनिधौ । अनध्यायो रुध्यमाने समवाये जनस्य च (१०८) ॥

“उदके मध्यरात्रे च विण्मूत्रे च विसर्जिते । उच्छिष्टे श्राद्धभक्तौ च मनसापि न चिंतयेत् (१०९) ॥

२५ “प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकौ द्विष्टस्य केतनम् । अयं न कीर्तयेद्ब्रह्म राज्ञो राहोश्च सूतके” (११०) ॥

एको द्विष्टस्य नवश्राद्धादौ केत्यते निमज्ज्यतेऽनेनेति केतनं द्रव्यम् । राज्ञः सूतके पुत्रजन्मनि

राहुसूतके ग्रहणमुक्ते च । अयं न कीर्तयेदिति । एतत् अस्तास्तमयाविषयम् । ‘रवीन्दोर्ग्रहणे

चैव नाधीयीत् दिवानिशम्’ इति स्मरणात् ।

“शयानः प्रौढपादश्च बद्ध्वा चैवावसाक्थिकाम् । नाधीयीतामिषं जग्ध्वा सूतकान्नाद्यमेव च” ॥

( ११२ ) ॥

पादस्योपरि पादो यस्य सः प्रौढपादः । वस्त्रादिना अवसाक्थिका बद्ध्वा नाधीयीत् ।

“नीहारे बाणशब्दे च संध्ययोरुभयोरपि । अमावास्याचतुर्दश्योः पौर्णिमास्यष्टकासु च (११३) ॥

“पांसुवर्षे दिशां दाहे गोमायुविरुते तथा । श्वखरोष्ट्रे च रुवतेतिपर्वतौ न पठेत् द्विजः (११५) ॥

“नाधीयीत् स्मशानांते ग्रामांते गोव्रजे तथा । वसित्त्वा मैथुनं वासः श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च” (११६) ॥”

३५ इत्यादिकं प्रपंचयति स एव ( ४।११७ ) —

“प्राणि वा यदि वाऽप्राणि यत्किञ्चिच्छ्राद्धिकं भवेत् । तदालभ्याप्यनध्यायः पाण्यास्यो हि

द्विजोत्तमः” (११७)

आलभ्य दत्तं पाणिना स्पृष्ट्वा प्रतिग्रह्य एव भोजनमित्याह पाण्यास्यो हीति ।

१ कखग-पाठः । २ क्ष-पंके च । ३ कखग-श्मशानान्ते श्मशानसमीपे । गोव्रजे गोष्ठे मैथुनं मिथुनसंबन्धि प्रतिगृह्य भुक्त्वा श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च ।



“न विवादे न कलहे न स्तेये न च संकरे । न भुक्तिमात्रे नाजीर्णे न वमिच्चा न शुक्तके” (१२१)॥

वाग्युद्धं विवादः । अंगयुद्धं कलहः । शस्त्रयुद्धं संगरः । शुक्तके भुक्तस्यान्नस्य यातयामस्य गंधरसाविर्भावे ।

“अतिथीन्नानुज्ञाप्य मारुते वाऽतिवायति । रुधिरं तु सुते गात्राच्छस्त्रेण च परिक्षते” (१२२) ॥

“सामध्वनौ ऋग्यजुषं नाधीयीत कदाचन । वेदस्याधीत्य चैवान्तमारण्यकमधीत्य च” (१२३) ॥ ५

सामध्वनौ सामाधीत्य तत्क्षणमेव ऋग्यजुषां नाधीयीत । वेदास्यांतमुपनिषदमारुणकेतुकं चाधीत्य ऋग्यजुषं नाधीयीत । सामध्वनावृग्यजुषामनध्यायेऽर्थवादमाह स एव (४।१२४) —

“ऋग्वेदो देवदेवत्यो यजुर्वेदस्तु मानुषः । सामवेदः स्मृतः पित्र्यस्तस्मात्तस्याशुचिर्ध्वनिः ॥

“पशुमंडूकमार्जारसर्पश्चनकुलादिषु । अंतरागमने विद्यादनध्यायमहर्निशम्” (१२६) ॥

“द्वावेव वर्जयेन्नित्यमनध्यायौ प्रयत्नतः । त्वाध्यायभूमिं चाशुद्धामात्मानं चाशुचि द्विजः” (१२७) ॥ १०

नित्यमापद्यपि । अनेन नान्येषामनध्यायनिमित्तानामापद्यनुज्ञा सूचिता । नारदः —

“अयने विषुवे चैव शयने बोधने हरेः । अनध्यायस्तु कर्त्तव्यो मन्वादिषु युगादिषु” ॥ इति ।

मन्वादयो मत्स्यपुराणेऽभिहिताः ( अ. १७ श्लो. ६८ ) —

“आश्वयुक्शुक्लनवमी कार्तिकीद्वादशी तथा । तृतीया चैत्रमासस्य तथाभाद्रपदस्य च ॥

“फाल्गुनस्याप्यमावास्या पुष्यस्यैकादशी सिता । आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी ॥ १५

“श्रावणस्याष्टमी कृष्णा आषाढस्यापि पूर्णिमा । कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्यैष्ठी पंचदशी सिता ॥

“मन्वंतरादयश्चैते दत्तस्याक्षयकारकाः” इति । युगादयोऽपि विष्णुपुराणेऽभिहिताः (३।१४।१२) —

“वैशाखमासस्य सिता तृतीया नवम्यसौ कार्तिकशुक्लपक्षे ॥

“नभस्य मासस्य च कृष्णपक्षे त्रयोदशी पंचदशी च माघे” ॥ इति । शयनमाषाढशुक्लद्वादशी ।

बोधनं कार्तिकशुक्लद्वादशी । व्यासः —

“श्लेष्मातकस्य छायायां शाल्मलेर्मधुकस्य च । कदाचिदपि नाध्येयं कोविदारकपितृयोः ” ॥

हारीतः

“महानवम्यां द्वादश्यां भरण्यामपि पर्वसु । तथाऽक्षयतृतीयायां शिष्या नाध्यापयेद्विजः ॥

“माघमासे तु सप्तम्यां रथारुयायां तु वर्जयेत् । अध्यापनं समभ्यञ्जन् स्नानकाले च वर्जयेत्” ॥

द्वादश्यां श्रवणद्वादश्यां । भरण्यां भाद्रपदभरण्याम् । तदाह वृद्धगार्ग्यः —

“ऋक्षेषूद्वाहनक्षत्रे स्वाध्याये परिवर्जयेत् । द्वादश्यां श्रवणं भाद्रे भरणी च महालये ” ॥ इति ।

शातातपः “आभाकासितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती । द्वादश्यां संस्पृशेयुश्चेत्त्रानध्ययनं विदुः” ॥ इति ।

गार्ग्यः — “मैत्रक्षात्षोडशक्षेषु वर्षेऽनध्ययनं विदुः । अतिवर्षे त्रिरात्रं स्यादल्पवर्षे तु वासरम् ” ।

मैत्रक्षमनुराधा । तस्मादारभ्य मृगशीर्षादिषु । अतिवृष्टौ त्रिरात्रमल्पवृष्टौ वासरमित्यर्थः । जाबालिः —

“नाधीयीत नरो नित्यमादावंते च पक्षयोः । आदौ च हीयते वृत्तिरंते ब्रह्म प्रन्हीयते” ॥ इति । ३०

पक्षादिः प्रतिपत्पक्षांतः पंचदशी । तथा पुराणे हनुमद्वचनं

“सा स्वभावेन तन्वंगी त्वद्वियोगाच्च कर्षिता । प्रतिपत्पाठशीलस्य विधेयं तनुतां गता” ॥ इति ।

बोधायनः — “सायंप्रातः संध्ययोश्च नाधीयीत महानिशि ॥

“प्रातःसंध्या त्रिनाडी स्यात्सायंसंध्या तथाविधामहानिशा तु विज्ञेया चतस्रो घटिकास्तथा” ॥ इति ।

**बृद्धगौतमः—**

“यायाद्गजोऽस्तरे व्याघ्रो नैवाधीयीत हायनम् । शशोऽपि वा श्वपाकोऽजः षण्मासानिति सूरयः”॥

**गौतमः** ( १६।५-१३; १४ )— “नाधीयीत वायौ दिवापांसुहरे । कर्णश्राविणि नक्तम् ।

बाणभेरी मृदंगरथगतीर्तशद्वेषु इवमृगालगर्दभसंहादे । रोहितेन्द्रधनुर्नीहारेणु । अभ्रदर्शने

५ चापत्तौ । मूत्रित उच्चारिते । निशासंध्योदकेषु । वर्षति च । संकुलोपाहितवेदसमाप्तिच्छर्दि-

श्राद्धमनुष्ययज्ञभोजनेष्वहोरात्रम् ” इति च । संकुलो राजाद्युपद्रवः । उपहितोऽग्निदाहः ।

छर्दिर्भुक्तोद्धारः । श्राद्धं पार्वणम् । मनुष्ययज्ञः सीमंतादि । आपस्तम्बः ( १।१।४ )— “निगमे-

ष्वध्ययनं वर्जयेत्” इति । निगमाश्चत्वारः । स एव ( १।१।६-८ )—

“स्मशाने सर्वतः शम्याप्रासाद्ग्रामेणाध्यवसिते क्षेत्रेण वा नानध्यायो ज्ञायमाने तु

१० तस्मिन्नेव देशे नाधीयीत” इति । शम्या क्षिप्ता यावति देशे पतति ततोऽर्वाकृदेशे स्मशानसमीपे

नाध्येयम् । यदा स्मशानं ग्रामतया क्षेत्रतया वाऽध्यवसितं स्वीकृतं तदाऽध्येतव्यमेव । यदि अव-

सितमपि स्मशानं ज्ञायते अयं स प्रदेश इति तदा तावत्येव प्रदेशे नाधीयत न शम्याप्रासा-

दादित्यर्थः । स एव ( १।१।२०-२१ )— “संधावनुस्तानिते रात्रिम् । स्वप्नपर्यंतं विद्युति” इति । सायं-

संध्याया मेघगर्जने रात्रिं सर्वा नाधीयीत । तत्र विद्युति सत्यां स्वप्नपर्यंतं प्रहरावशिष्टां रात्रिं

१५ नाधीयीतेत्यर्थः । प्रातःसंध्यायामाह स एव ( १।१।२२ ) । “उपव्युषं यावता वा कृष्णां

रोहिणीमिति शम्याप्रासाद्विजानीयादेतस्मिन्काले विद्योतमाने सप्रदोषमहरनध्यायः ” इति ।

उपव्युषसि व्युद्यति सत्यां परेणुः सप्रदोषमहरनध्यायः । प्रदोषादूर्ध्वमध्ययनं यावता कालेन

शम्याप्रासाद्वर्गवस्थितां गां कृष्णामिति वा रोहिणीं गौरवर्णामिति वा जानीयादेतस्मिन्काले

उपव्युषसि वेत्यन्वयः । स एव ( १।१।२३-२४ )—

२० “द्वैहेऽपररात्रे स्तनयितुनोर्ध्वमर्धरात्रादित्येके” वर्षर्ताविदम् । इतरर्तौ स एवाह । ( १।२।१७, २९ )

“विद्युत्स्तनयितुर्बृष्टिश्रापत्तौ यत्र संनिपतेयुस्त्यहमनध्यायः । एकेन द्वाभ्यां वैतेषां कालम् ”

इति । यस्मिन्देशे यो वर्षाकालस्ततोऽन्यस्तत्रापत्तुः । तत्र यदि विद्युदादयः समुदिताः स्युः

तदा त्र्यहमनध्यायः । एतेषां विद्युदादीनां मध्ये एकेन द्वाभ्यां वा संयोगे आकालमनध्यायः ।

परेद्युरेतस्मात्कालादित्यर्थः । स्मृत्यर्थसारे—

२५ “चतुर्दश्यष्टमीपर्वप्रतिपदार्जितेषु तु । वेदांगन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राणि चाभ्यसेत् ॥

“उदयेऽस्तमये वाऽपि मुहूर्त्तत्रयगामि यत् । तद्दिनं तद्दहोरात्रं चानध्यायविदो विदुः ” ॥ इति ।

“केचिदाहुः क्वचिद्देशे यावत्तद्दिननाडिकाः । तावदेव त्वनध्यायो न तस्मिन् दिनांतरे ॥

“अधिकायां त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां दिवा यदि । अमावास्या च दृश्येत तदानध्ययनं भवेत्” ॥

अत्र त्रयोदशीवृध्यादिनद्वये स्वाध्यायदिनद्वयमापन्नाधिकेत्युच्यते । अत्र तस्यां त्रयोदश्यामन-

३० ध्ययनम् । यदि चतुर्दश्यां दिवा अमावास्यां स्वल्पापि दृश्येतेत्यर्थः ।

“प्रणवव्याहृतीनां च गायत्र्याः शिरसस्तथा । नित्यनैमित्तिके काम्ये व्रते यज्ञे क्रतौ तथा ॥

“प्रवृत्ते काम्यकार्ये च नानध्यायास्तथा स्मृताः । देवतार्चनमंत्राणां नानध्यायाः सदा तथा” ॥

आपस्तम्बोऽपि ( १।१।२।९ ) “विद्यां प्रत्यनध्यायः श्रूयते न कर्मयोगे मंत्राणाम्” ॥ इति । संग्रहे—

“अल्पं जपेदनध्याये पर्वण्यल्पतरं जपेत् । श्रीरुद्रं पवमानं च गृहीतनियमादृते” ॥ इति ।

३५ मनुः । ( २।१०५ )

“वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके । नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होममंत्रेषु चैव हि” ॥

कर्मपुराणे ( अ. उ. १४ श्लो. ८२-८३ )

“अनध्यायश्च नागेषु नेतिहासपुराणयोः । न धर्मशास्त्रेष्वन्येषु पर्वण्येतान्विसर्जयेत्” ॥ इति ।

कालादर्श—

“पूर्वं चोर्ध्वमनध्यायमहःसंक्रमणे निशि । दिवा पूर्वोत्तरा रात्रिरिति वेदविदो विदुः” ॥ इति । ५

“स्वाध्यायस्य ह्यनध्यायो मुहूर्तद्वितयादधि । स्यात्किंचिदपि न प्राहुरनध्यायं च संशये ॥

“यदा भवेदनध्यायतिथिरुत्तरभागिनी । तदा पूर्वतिथौ रात्रौ नाधीयीतेति निश्चयः” ॥

अनयोरर्थः । स्वाध्यायस्याह्नि अनध्यायो मुहूर्तद्वितयादधि । ऊर्ध्वं किंचिदपि स्यात्तदनध्यायं

प्राहुः । पूर्वोक्तनिमित्तसंदेहादनध्यायसंशये चानध्यायं प्राहुः । यदोत्तरभाविनी तिथिरनध्यायो

भवेत् तदा पूर्वतिथिरात्रौ नाधीयीतेति निश्चय इति ॥ अत्र बोधायनः— १०

“यद्यनध्यायदिनं अत्रापि स्वाध्यायदिने द्विमुहूर्तादुपरि दृश्येत निमित्तविशयनेनाध्यायं

प्राहुरिति विज्ञायते” इति । हारीतः—

“श्वेनध्यायेऽथ शर्वर्या नाधीयात कदाचन । चातुर्भास्याद्वितीयासु वेदाध्यायं विसर्जयेत्” ॥ इति ।

किं च आषाढकार्तिकफाल्गुनकृष्णद्वितीयाश्चातुर्मास्यद्वितीयाः । गौतमोऽपि (१६।३७-३८)—

“कार्तिकीफाल्गुन्याषाढीपौर्णिमासीति तिस्रोऽष्टकास्त्रिरात्रौ” ॥ इति । उक्तपौर्णमासीष्वारभ्य १५

त्रिरात्रं तथा तिस्रोऽष्टकाः तत्र सप्तम्यादयस्तास्वपि त्रिरात्रमनध्याय इत्यर्थः ।

प्रदोषानध्यायमाह वृद्धगार्ग्यः—

“रात्रौ यामद्वयादर्वाक्सप्तमी स्यान्नयोदशी । प्रदोषः स तु विज्ञेयः सर्वविद्याविगर्हितः ॥

“रात्रौ नवसु नाडीषु चतुर्थी यदि दृश्यते । प्रदोषः स तु विज्ञेयो वेदाध्यायविगर्हितः ॥

“आद्यंतयोः कलामात्रं यदि पश्येन्नयोदशी । प्रदोषः स तु विज्ञेयः सर्वशब्दविगर्हितः” २०

“त्रयोदशी यदा रात्रौ यामस्तत्र निशामुखे । प्रदोष इति विज्ञेयो ज्ञानार्थीमौनमाचरेत् ॥

“भोजनं मैथुनं यानमभ्यंगं हरिदर्शनम् । अन्यानि शुभकार्याणि प्रदोषे नैव कारयेत्” ॥

वृद्धमनुः—

“त्रयोदश्यां च सप्तम्यां चतुर्थ्यामर्धरात्रतः । नार्वागध्ययनं कुर्याद्यदीच्छेत्तत्र धारणम्” ॥ इति ।

स एव— २५

“रात्रौ यामद्वयादर्वाग्यदि पश्येन्नयोदशीम् । सा रात्रिः सर्वकर्मघ्नी शंकराराधनं विना” ॥ इति ।

स्कादे—

“त्रिमुहूर्तः प्रदोषः स्याद्रवावस्तंगते ततः । मितसंध्यस्त्रयोदश्यां न स्मरेच्च मनोहितम् ॥

“अन्होऽष्टमां संप्रयुक्तं रात्र्यर्थं मौनमाचरेत् । प्रदोषे भानुवारे च चरराश्रयुदये तथा ॥

“स्वरूपदानाहणं शिष्टं विनश्यति न संशयः” ॥ लिखितः ३०

“छिद्राण्येतानि विप्राणां येऽनध्यायाः प्रकीर्तिताः । छिद्रेभ्यः स्रवति ब्रह्म ब्राह्मणेन यदर्जितम् ॥

“तत्काले तस्य रक्षांसि श्रियं ब्रह्म यशो बलम् । सर्वमादाय गच्छंति वर्जयन्ति च तत्फलम्” ॥ इति ।

स्मृत्यर्थसारे—

“चतुर्थ्या पूर्वरात्रौ तु नवनाडीप्रदर्शने । चातुर्मास्याद्वितीयासु वेदाध्यायं विवर्जयेत्” ॥

आषाढफाल्गुनकार्तिककृष्णतृतीयाश्रुतर्मास्यद्वितीयाः । गौतमोऽपि (१६।३७-३८)—“कार्तिकी- ३५

फाल्गुन्याषाढीपौर्णमासीस्तिस्रोष्टकास्त्रिरात्रम्” ॥ इति उक्तपौर्णमासीरारभ्य त्रिरात्रं तथा तिस्रोऽष्टकाः सप्तम्यादयः तास्वपि त्रिरात्रमध्याय इत्यर्थः ।

“ नाध्येयं पूर्वरात्रौ स्यात्सप्तमी च त्रयोदशी । अर्धरात्रात्परस्ताच्चेन्नाध्येयं पूर्वरात्रकम् ” ॥

स्मृत्यन्तरम्—

५ “ कृष्णपक्षे तृतीयायां फाल्गुनाषाढकार्तिके । शुक्लाश्वयुगद्वितीयायां नैवाध्ययनमाचरेत् ॥

“ अनध्यायेष्वध्ययने प्रजामायुः श्रियं तथा । ब्रह्म वीर्यं च तेजश्च निक्कुंतति यमः स्वयम् ॥

“ मंत्रवीर्यक्षयभयादिद्रो वज्रेण हन्ति च । ब्रह्मराक्षसता चांते नरकं च भवेद्भुवम् ॥

“ अत्र गाथां यमोद्रीता कीर्त्तयन्ति पुराविदः ॥

“ आयुरस्य निक्कुतामि प्रज्ञामस्याददेऽथ वा । य उच्छिष्टः प्रवदति स्वाध्यायं वाऽधिगच्छति ॥

१० “ यश्चानाध्यायकालेऽपि मोहादभ्यस्यति द्विजः । तस्माद्युक्तोऽप्यनध्याये नाधीयीत कदाचन ॥ ” इति

“ अनध्यायेष्वधीयीत द्विजस्तैन्धं करोति यः ” ॥ इति अनध्यायः ॥

अथ दानं निरूप्यते । तत्र दाने श्रुतिः—“ दानमिति सर्वाणि भूतानि प्रशस्तंति दानान्नाति दुष्करं तस्माद्दाने रमंत ” इति । अन्यच्च—“ दानं यज्ञानां वरूथं दक्षिणा लोके दातारः सर्वभूतान्युपजीवाति दानेनारातीरपानुदंत दानेन द्विषंतो मित्रा भवन्ति दाने सर्वं प्रतिष्ठितं

१५ तस्माद्दानं परमं वदन्ति ” इति च । मनुः ( ४।२३१ )—

“ यत्किंचिदपि दातव्यं याचितेनानसूयया । उत्पत्स्यते हि तत्पात्रं यत्तारयति सर्वतः ” ॥

याज्ञवल्क्यः ( आ. २०३ )—

“ दातव्यं प्रत्यहं पात्रे निमित्ते तु विशेषतः । याचितेनापि दातव्यं श्रुत्वापूर्वं तु शक्तितः ॥

“ गोभूतिलहिरण्यादि पात्रे दातव्यमर्चिते । नापात्रे विदुषां किंचिदात्मनः श्रेय इच्छता ॥ ” इति ।

२० देवलः—

“ ध्रुवमजस्रकं काम्यं नैमित्तिकमिति क्रमात् । वैदिको दानमार्गोऽयं चतुर्धा वर्णितो द्विजैः ॥

“ प्रपारामतटाकादिसर्वकामफलध्रुवम् । तदाजस्रिकमित्याहुर्दीयते याद्विने दिने ॥

“ अपत्यविजयैश्वर्यस्त्रीबालार्थं यद्विष्यते । इच्छासंज्ञं तु तद्दानं काम्यमित्यभिधीयते ॥

“ कालापेक्षं क्रियापेक्षमर्थपेक्षमिति स्मृतम् । त्रिधा नैमित्तिकं प्रोक्तं सहोमं होमवार्जितम् ” ॥

२५ व्यासः ( कूर्मपुराणे उ. २६।४-८ )—“ नित्यं नैमित्तिकं काम्यं विमलं चेति कथ्यते ।

“ अहन्यहनि यत्किंचित् दीयतेऽनुपकारिणे । अनुद्दिश्य फलं तस्माद्वाह्मणाय तु नित्यकम् ॥

“ यत्तु पापोपशान्त्यर्थं दीयते विदुषां करे । नैमित्तिकं तद्दुष्टिष्ठं दानं सद्भिरनुष्ठितम् ॥

“ अपत्यविजयैश्वर्यस्वर्गार्थं यत्प्रदीयते । दानं तत्काम्यमाख्यातमृषिभिर्धर्मचितकैः ॥

“ ईश्वरप्रीणनार्थं यद्ब्रह्मवित्सु प्रदीयते । चेतसा भक्तियुक्तेन दानं तद्विमलं शिवम् ।

( भगवद्गीतायां अ. १७ श्लो. २०-२२ )

३० “ दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे । देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥

“ यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः । दीयते च परिक्रिष्टं तद्राजसमुदाहृतम् ॥

“ अदेशकाले यद्दानं अपात्रेभ्यश्च प्रदीयते । असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥

“ सात्त्विकानां फलं भुंक्ते देवत्वे नात्र संशयः । अतोऽन्यथा तु मानुष्ये राजसानां फलं भवेत् ॥

- “ तामसानां फलं भुंक्ते तिर्यक्त्वे मानवः सदा ॥
- “ एकस्मिन्नप्यतिक्रान्ते दिने दानविवर्जिते । दस्य्वग्निमुषितेनैव युक्तमाकंदितं भृशम् ॥
- “ यस्य वित्तं न धर्माय नोपभोगाय देहिनाम् । नापि कीर्त्येन यशसे तस्य वित्तं निरर्थकम् ॥
- “ तस्माद्वित्तं समासाद्य दैवाद्वा पौरुषात्तथा । दद्यात्सम्यग् द्विजातिभ्यः कीर्तनानि न कारयेत् ॥
- “ सीदते द्विजमुख्याय योऽर्थिने न प्रयच्छति । सामर्थ्ये स तु दुर्बुद्धिर्नरकायोपपद्यते ॥ ५
- “ अक्षरद्वयमभ्यस्तं नास्ति नास्तीति यत्पुरा । तदिदं देहि देहीति विपरीतमुपास्थितम् ॥
- “ वीयमानं तु यो मोहान्नोविप्राग्निमसुरेषु च । निवारयति पापात्मा तिर्यग्योनिं भजेत्तु सः ” इति ।
- मनुः ( ४।२३२-२३७ )—**
- “ वारिद्वस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षयमन्नदः । तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम् ॥
- “ भूमिदो भूमिमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः । गृहदोऽप्याणि वेश्मानि रूप्यदो रूपमुत्तमम् ॥ १०
- “ वासोदैर्ध्वद्रसालोक्यमाश्विसालोक्यमश्वदः । अनहुद्दः श्रियं जुष्टां गोदो ब्रह्मस्य विष्टपम् ॥
- “ यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रदः । धान्यदः शाश्वतः सौर्यं ब्रह्मदो ब्रह्मसाधितम् ” ॥
- ब्रह्म वेदः । सार्धितां सायुज्यम् ।**
- “ सर्वेषां तु प्रदानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते । वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकांचनसर्पिषाम् ॥
- “ येन येन तु भावेन यद्यद्दानं प्रयच्छति । तत्तेनैव भावेन प्राप्नोति प्रतिपूजितः ” ॥ १५
- भावेन श्रद्धादिना । न केवलं दात्रा प्रतिगृहीतैर्वाचनीयः किंतु देयद्रव्यमपि ताभ्यामित्याह स एव ( ४।२३८-२४० )—
- “ योऽर्चितं प्रतिगृह्णाति दद्यादर्चितमेव वा । तावुभौ गच्छतः स्वर्गं नरकं तु विपर्यये ॥
- “ न विस्मयेत तपसा वदेदिष्ट्वा च नावृतम् । नात्तोऽप्यपवदेद्विप्रात् न दत्त्वा परिकीर्त्तयेत् ॥
- “ यज्ञोऽनृतेन क्षरति तपः क्षरति विस्मयात् । आयुर्विप्रापवादेन दानं तु परिकीर्त्तनात् ॥ २०
- “ न वार्यपि प्रयच्छेत्तु बैडालव्रतिके द्विजे । न बकव्रतिके पापे नावेदविदि धर्मवित् ( १९२ ) ॥
- “ त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाऽप्यर्जितं धनम् । दातुर्भवत्यनर्थीय परत्रादातुरेव च ( १९३ ) ॥
- “ यथा पुत्रेनोपलेन निमज्जत्युदके तरन् । तथा निमज्जतोऽधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ ” ( १९४ ) ॥
- बैडालवृत्तिकबकवृत्तिकयोः स्वरूपमाह स एव ( मनुः ४।१९५-१९६ )—**
- “ धर्मध्वजी सदा लुब्धश्छाद्विको लोकडांभिकः । बैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वातिसंधकः ॥ २५
- “ अधोदृष्टिर्नैकृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः । शठो मिथ्या विनीतश्च बकव्रतचरो द्विजः ” ॥
- श्लोकद्वयस्यायमर्थः । धर्मध्वजी धर्मलिंगी । छाद्विको व्याजवृत्तिः । डाम्भिकः विशिष्टवेषेण स्वदोषतिरस्कारी । अतिसंधकः वंचकः । अधोदृष्टिः परानवेक्षी । नैकृतिकः गूढैरुपायैः परानर्थकारी । शठः वृशंसः । स एव ( ४।१९७ )—
- “ ये बकव्रतिनो विप्रा ये च मार्जारलिंगिनः । ते पतंत्यंधतामिस्त्रे तेन पापेन कर्मणा ( १९७ ) ॥ ३०
- “ अलिंगी लिंगवेषेण यो वृत्तिमुपजीवति । स लिंगिनां हर्त्येनस्तिर्यग्योन्यां च जायते ” ( २०० ) ॥
- इति । **यान्नवलक्यः ( आचारे २०४।२०५ )—**
- “ हेमशृंगी शफै रूप्यैः सुशीला वस्त्रसंयुता । सकांस्यपात्रा दातव्या क्षीरिणी गौः सदक्षिणा ॥
- “ दाता स्वर्गमवाप्नोति वत्सरात्रोमसंमिताम् । कपिला चेत्तारयति भूयश्चासप्तमं कुलम् ॥

“सवत्सरोमतुल्यानि कुलान्युभयतोमुखी । दाता स्वर्गमवाप्नोति पूर्वेण विधिना ददत् (२०६)॥  
 “यावद्वत्सस्य पादौ द्वौ मुखं योन्यां च दृश्यते । तावद्वौः पृथिवी श्रेया यावद्गर्भं न मुञ्चति (२०७)॥  
 हेमशृंगाद्यसंभवेऽप्याह स एव—

“यथाकथंचिद्दत्त्वा गां धेनुं वाऽधेनुमेव वा । अरोगामपरिक्लिष्टां दाता स्वर्गे महीयते (२०८) ॥

५ “श्रांतसंवाहनं रोगिपरिचर्या सुरार्चनम् । पादशौचं द्विजोच्छिष्टमार्जनं गोप्रदा समम्” (२०९)॥  
 श्रांतसंवाहनं आसनादिदानेन श्रमापनोदना । रोगिपरिचर्या ओषधदानादिना । हरिहरादीनामर्चनं सुरार्चनम् । गोप्रदा समं गोदानसमम् । स एव ( अ. २१० )—

“भूदीपांश्चान्नवस्त्रांभस्तिलसर्पिःप्रतिश्रयान् । नैवेशिकं स्वर्णधुर्यं दत्वा स्वर्गे महीयते” ॥

प्रतिश्रयः प्रवासिनामावासदानम् । नैवेशिकं कन्यादानम् । धुर्यं बलीवर्दः ।

१२ “गृहधान्याभयोपानच्छत्रमाल्यानुलेपनम् । यानं वृक्षं प्रियं शय्यां दत्वाऽत्यंतसुखी भवेत् (२११)॥

“सर्वधर्ममयं ब्रह्म प्रदानेभ्योऽधिकं यतः । तद्दत्तसमवाप्नोति ब्रह्मलोकमविच्यवम्” ॥ इति । (२१२)

अविच्यवं च्युतिरहितम् । परस्वत्वापादानमात्रं वेदादेर्दानं स्वत्वनिवृत्तेः कर्तुमशक्यत्वात् । धर्मदानमपि स्मर्यते

“देवतानां गुरुणां च मातापित्रोस्तथैव च । पुण्यं देयं प्रयत्नेन नापुण्यं चोदितं क्वचित्” ॥ इति ।

१५ अपुण्यदाने तदेव वर्धेत दातुर्लोभादिना प्रवृत्तस्य प्रतिगृहीतुरपि ।

“यः पापं स्वर्बलं ध्यात्वा प्रतिगृह्णाति दुर्मतिः । गर्हिताचरणान्तस्य पापं तावत्समाश्रयेत् ॥

“समाद्विगुणसाहस्रमानंत्यं च प्रदातृषु ” ॥ इति स्मरणात् । शातातपः—

“तिलान् ददत्तिलस्नायी शुचिर्नित्यं तिलोदकी । होता दाता तिलानां च शतवर्षाणि जीवति” ॥

संवर्त्तः—

२० “श्रोत्रियाय कुलीनायार्थिने च विशेषतः । यद्दानं दीयते भक्त्या तद्भवेत्सुमहत्फलम् ॥

“यद्यदिष्टतमं लोके यच्च स्यादैधिकं गृहे । तत्तद्वृणवते देयं तदेवाक्षय्यमिच्छता ॥

“तांबूलं चैव यो दद्यात् ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः । मेधावी सुभगः प्राज्ञो दर्शनीयश्च जायते ॥

“दद्याच्च शिशिरेष्वग्निं बहुकाष्ठं प्रयत्नतः । कायाग्निदीप्तिं प्राज्ञत्वं रूपसौभाग्यमाप्नुयात् ॥

“अलंकृत्य तु यः कन्यां भूषणाच्छादनादिभिः । दद्यात्स्वर्गमवाप्नोति पूजयन्नुत्सवादिषु ॥

२५ “कपिलाश्वतिलानागरथदासीगृहाण्यपि । कन्यासुवर्णरत्नानि महादानानि ते दश ॥

“आधासशतलब्धस्य प्राणेभ्योऽपि गरीयसः । गतिरेका हि वित्तस्य दानमन्या विपत्तयः ॥

“यस्य वित्तं न दानाय नोपभोगाय देहिनः । पुण्यकीर्तेर्न धर्माय तस्य वित्तं निरर्थकम् ॥

“स्थितादैर्धमविश्राममार्थिभ्यः किं न दीयते । इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति ॥

“तैलमामलकं प्राज्ञः पादाभ्यंगं ददाति यः । प्रहृष्टः स नरो लोके सुखी चैव सदा भवेत् ॥

३० “अनङ्गहौ च यो दद्याद्युगसीरेण संयुतौ । अलंकृत्य यथाशक्तिर्धूर्वहौ शुभलक्षणौ ॥

“सर्वपापविशुद्धात्मा सर्वकामसमन्वितः । वर्षाणि वसति स्वर्गे रोमसंख्याप्रमाणतः ॥

“भूमिं सस्यवतीं श्रेष्ठां ब्राह्मणे वेदपारगे । गां दत्वा द्विःप्रसूतां च स्वर्गलोके महीयते ॥

“यावन्ति सस्यमूलानि गोरोमाणि च सर्वशः । नरस्तावन्ति वर्षाणि स्वर्गलोके महीयते ॥

“अग्रेपत्यं प्रथमं सुवर्णं भूर्वेष्णवी सूर्यसुताश्च गावः

“लोकत्रयस्तेन भवन्ति दत्ता यः काञ्चनं गां च महीं च दद्यात् ॥

३५

- “ सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम् । सर्वेषामेव भूतानां यतस्तज्जीवनं परम् ॥  
 “ मृत्तिकागोशकुहर्भानुपत्रीतं तथोत्तरम् । दत्त्वा गुणाढ्यविप्राय कुले महति जायते ॥  
 “ मुखवासं तु यो दद्याद्विधावनमेव च । पादशौचं तथा स्नानं शौचं च गुदलिङ्गयोः ॥  
 “ यः प्रयच्छति विप्राय शुचिबुद्धिः सदा भवेत् ॥  
 “ ब्रह्मचारियतिभ्यश्च वपनं यश्च कारयेत् । न स्वकर्माणि कुर्वाणश्चक्षुष्मान् जायते नरः ।  
 “ देवागारे द्विजातीनां दीपं दत्त्वा चतुष्पथे । स विज्ञानेन संपन्नः चक्षुष्मांश्च<sup>१</sup> भवेत्सदा ॥  
 “ यो येनैवार्थितो विप्रस्तदस्य प्रतिपादयेत् । वृणकाष्ठसमेऽप्यर्थे गोप्रदानसमं भवेत् ॥

मनुः—

- “ त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती । अतिदानं हि दानानां विद्यादानं ततोऽधिकम् ॥  
 “ विद्यानां च परा विद्या ब्रह्मविद्या समीहिता । अतस्तदातुरस्त्येव लाभः स्वर्गापवर्गयोः ॥  
 “ यो दद्यात् ज्ञानमज्ञानं कुर्याद्वा धर्मदेशनम् । स कृत्स्नां पृथिवीं दद्यात्तेन तुल्यं न तद्भवेत्” ॥

सारसमुच्चये—

- “ एकतः क्रतवः सर्वे समाप्तवरदक्षिणाः । एकतो भयभीतस्य प्राणिनः परिरक्षणः ॥  
 “ महतामपि यज्ञानां कालेन क्षीयते फलम् । भीताभयप्रदानस्य क्षय एव न विद्यते” ॥

शांडिल्यः—

- “ अयाचितानि देयानि सर्वदानानि यत्नतः । अन्नं विद्या च कन्या च अनर्थिभ्यो न दीयते ॥  
 “ आश्रुतस्याप्रदानेन दत्तस्य हरणेन च । जन्मप्रभृति यद्दत्तं तत्सर्वं नश्यति ध्रुवम् ।  
 “ मा ददस्वेति यो ब्रूयात् गव्यग्नौ ब्राह्मणेषु च । तिर्यग्योनिशतं प्राप्य चंडालेष्वभिजायते ॥  
 “ द्वाविमौ पुरुषौ लोके स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः । अन्नप्रदाता दुर्भिक्षे सुभिक्षे हेमवच्चदः” ॥

देवलः—

- “ स्वल्पत्वं वा बहुत्वं वा दानस्याभ्युदयावहम् । श्रद्धा भक्तिश्च दानानां वृद्धिक्षयकरे हि ते ॥  
 “ शौचं शुचिर्महाप्रीतिरर्थिनां दर्शने तथा । सत्कृतिश्चानसूया च दानश्रद्धेत्युदाहृता ।  
 “ दाता प्रतिगृहीता च श्रद्धादेयं च धर्मयुक् । देशकालौ च दानानामंगान्येतानि षड्विदुः ।  
 “ अपापरोगी धर्मात्मा दित्सुरव्यसनः शुचिः । अनिधः शिवकर्मा च षड्भिर्दाता प्रशस्यते ॥  
 “ अन्नविद्यावधूच्छ्रीणां गोभूरुक्माश्वहस्तिनाम् । दानान्युत्तमदानानि उत्तमद्रव्यदानतः ॥  
 “ विद्यादौच्छादनं वासः परिभोगौषधानि च । दानानि मध्यमानीति मध्यमद्रव्यदानतः ॥  
 “ उपानत्प्रेष्ययानानि छत्रपात्रासनानि च । दीपकाष्ठफलादीनि चरमं बहुवार्षिकम् ॥  
 “ इष्टं दत्तमधीतं च प्रणश्यत्यनुकीर्तनात् । श्लाघानुशोचनाभ्यां वा भैरतेजो विपद्यते ॥  
 “ तस्मादात्मकृतं पुण्यं न वृथा परिकीर्तयेत्” ॥ बृहस्पतिः—

- “ अतोयं<sup>१</sup> सात्त्विकं दानमुदपूर्वं तु शान्तिकम् । आशिषा पौष्टिकं दद्यान्नविधं दानलक्षणम्” ॥ इति । ३०  
 आपस्तंबस्तु (२।९।८-९) “ सर्वाण्युदकपूर्वाणि दानानि । यथाश्रुतिविहारे” इति । विहारे यज्ञ-  
 कर्मणि । अर्न्यदानानि सर्वाणि उदकपूर्वाण्येवेत्यर्थः । स एव (२।१०।१-२) “ भिक्षणे निमित्तमा-  
 चार्यो विवाहो यज्ञो मातापित्रोर्बुभूषार्हतश्च । नियमविलोपस्तत्र गुणान्समीक्ष्य यथाशक्ति देयम्”  
 इति । भिक्षणं याचनम् । तत्राचार्यादयो निमित्तम् । बुभूषा भर्तुमिच्छा । अर्हतो विद्यादिमतोऽग्नि-  
 होत्रादौ नियमे योग्यस्यार्थस्याभावेन लोपस्तत्रैवभूते भिक्षणे याचकश्रुतवृत्तादीन्गुणान्समीक्ष्य ३५

- शक्त्यनुरूपमवश्यं देयमदाने प्रत्यवेयात् । आपस्तम्ब एव (२।१०।३) “इन्द्रियप्रीत्यर्थस्य तु भिक्षणनिमित्तम् । न तदाद्रियेत” इति । इन्द्रियप्रीत्यर्थस्य स्रक्चन्दनवनितादेस्तन्मूलस्य भिक्षणं नियमे । न निमित्तं दानं न भवति तस्मान्न तदाद्रियेत । दानेपि न प्रत्यवायः । तत्र दृष्टान्तमाह “धर्मप्रजासंज्ञायां प्रथमायां पत्न्यां द्वितीयाविवाहोऽपि न निमित्तम् । पुत्राभावे तु निमित्तं भवत्येव” ।
- ५ तथा भविष्योत्तरे—“सुवर्णयाचकानां च विद्यां चैवोर्ध्वरेतसाम् । कन्यां चैवानपत्यानां द्रवतां गतिरुत्तमाम्” ॥ इति । गौतमः—( ५।१९-२२ ) “गुर्वर्थनिवेशौषधार्थवृत्तिक्षीणयक्ष्यमाणाध्ययनाध्वसंयोगवैश्वजितेषु द्रव्यसंविभागो बहिर्वेदि । भिक्षमाणेषु कृतान्नमितरेषु । प्रतिश्रुत्याप्यधर्मसंयुक्ते न दद्यात् । क्रुद्धदृष्टभीतार्तलुब्धबालस्थविरमूढमत्तोन्मत्तवाक्यान्यवृत्तान्यपातकानि” ॥ इति । निवेशो विवाहः । वृत्त्या हीनो वृत्तिक्षीणः । नित्यं यज्ञं करिष्यन् यक्ष्यमाणः ।
- १० अध्ययनेन संयोगो यस्य सः अध्ययनसंयोगः । अध्वानि वर्तमानः अध्वसंयोगः । वैश्वजितः विश्वजिद्योगे सर्वस्वदानेन निर्द्रव्यः । यज्ञे दाक्षिणाकाले सदस्येभ्यो यद्दानं ततोऽन्यत्र बहिर्वेदिद्रव्यस्य हिरण्यादेर्दानमावश्यकं अदाने प्रत्यवेयात् । इतरेषु उक्तव्यतिरिक्तेषु भिक्षमाणेषु कृतान्नं पक्कान्नं देयं प्रतिश्रवो दास्यामीति संवादः । तं कृत्वाऽपि अधर्मसंयुक्ते विषये न दद्यात् । दृष्टः हर्षवशेन कृत्याकृत्यविवेकशून्यः । लुब्धो लोभवशेन । क्रुद्धः कोपवशेन । मत्तो मया-
- १५ दिना मदद्रव्येणाप्रकृतिगतः । उन्मत्तो भ्रातः । एतदादीनां वाक्यानि अयथार्थान्यपातकानि न पापं नयन्ति । तेषां प्रतिश्रुत्यापि अदाने न दोष इत्यर्थः । बोधायनः ( २३-६१ )—“अन्ने शृतानि भूतानि ‘अन्नं प्राणम्’ इति श्रुतिः । तस्मादन्नं प्रदातव्यमन्नं हि परमं हविः” ॥ इति व्यासः—
- “अर्थानामुदिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम् । दानमित्यभिनिर्दिष्टं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥
- २० “यस्तु दद्यान्महीं भक्त्या ब्राह्मणायाहिताग्रये । स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति ॥
- “भूमिदानात्परं दानं विद्यते नेह किञ्चन । अन्नदानं तेन तुल्यं विद्यादानं ततोऽधिकम्” ॥
- महाभारते आनुशासनिके ( अ. १०।१।६४ )—
- “अन्नमेव प्रशंसन्ति देवाः सर्षिणः पुरा । लोकतन्त्रा हि यज्ञाश्च सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम् ॥
- “अन्नेन सहशं दानं न भूतो न भविष्यति ॥
- १५ “कुटुम्बं पीडयित्वाऽपि ब्राह्मणाय महात्मने । दातव्यं भिक्षवे चान्नमात्मनो भूतिमिच्छता ॥
- “पानीयदानं परमं दानानां मनुरब्रवीत् । तस्मात्कूपांश्च वापींश्च तटाकानि च खानयेत् ॥
- “निदाघकाले पानीयं यस्य तिष्ठत्यवारितम् । स कुट्टं विषमं दुर्गं न कदाचिदवाप्नुयात् ॥
- “बलकामो यशस्कामः पुष्टिकामश्च नित्यदा । घृतं दद्याद्विजातिभ्यः सततं शुचिरात्मवान्” ॥
- उपमन्युः—
- ३० “शिवलिंगं तु यो दद्यात् शिवभक्ताय तन्मनाः । स्वर्णरूप्यादिरूपं वा सोमं संपूज्य शक्तिः ॥
- “सर्वदानाधिकं पुण्यं संप्राप्य करणात्यये । गाणपत्यमवाप्यैव गणैः सह स मोदते ॥
- “शालग्रामशिलामूर्तिं विष्णुमाराध्य भक्तिः । विष्णुभक्ताय यो दद्याद्ब्राह्मणाय सदक्षिणाम् ॥
- “पंचाशत्कोटिविस्तीर्णभूमिदानेन यत्फलम् । तत्फलं समवाप्नोति देहांते वैष्णवं पदम् ॥
- “कुर्यात्प्रतिकृतिं देवं सुवर्णेन स्वशक्तिः । शेषपर्यंकशयनं श्रिया देव्या युतं तथा ॥
- ३५ “शंखचक्रगदायुक्तं वासुदेवं सुरेश्वरम् । दत्त्वा गुणाढ्यविप्राय विष्णुलोके महीयते” ॥



व्यासः

- “गोभूहिरण्यदानानि यमाश्च नियमास्तथा । गृहदानस्य वै लोके कलां नार्हति षोडशीम् ॥  
 “यः कारयेन्मठं शैलं शिवायतनसंनिधौ । स शैवं पदमासाद्य कल्पायुतशतं वसेत् ॥  
 “गां पंकाद्राह्मणीं दास्याद्वृत्तिं लोपाद्विजं वधात् । मोचयन्मुच्यते पापादाजन्ममरणांतिकात् ॥  
 “अनाथप्रेतसंस्कारं शून्यलिङ्गप्रपूजनम् । दीनांधकूपणेभ्यश्च दानं सर्वाघनाशनम् ” ॥ ५

योगीश्वरः—

- “स्वर्णयुक्तं ताम्रपात्रं गोघृतेन समन्वितम् । आत्मावलोकनं कृत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥  
 “अनेन विधिना दानं यः कुर्यात्प्रयतो नरः । सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम्” ॥

स्मृतिरत्ने कन्यादानमंत्रः

“कन्यां लक्षणसंपन्नां कनकाभरणैर्युताम् । दास्यामि विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मलोकजिगीषया” ॥ १०

पुस्तकदानम्—

“सर्वविद्यास्पदं ज्ञानकारणं विमलाक्षरम् । पुस्तकं संप्रयच्छामि प्रीता भवतु भारती ” ॥

शालग्रामदानम्—

“शालग्रामाचलोद्भूतां शिलां पापप्रणाशिनीम् । सुवर्णकुसुमोपेतां गृहाण त्वं द्विजोत्तम ” ॥

नारायणमूर्तिदानमंत्रः—

“नारायण जगन्नाथ शंखचक्रगदाधर । नाशयाशु महारोगान् दानेनानेन केशव ” ॥ १५

उमामहेश्वरदानमंत्रः—

- “प्रसीदतु भवो नित्यं कृत्तिवासा महेश्वरः । पार्वत्या सहितो देवो जगदुत्पत्तिकारकः ॥  
 “शिवशक्त्यात्मकं यस्माज्जगदेतच्चराचरम् । असतस्तु समादाय साधुभ्यो यः प्रयच्छति ॥  
 “धनस्वामिनमात्मानं स तारयति निश्चितम् । तस्माद्दानेन सर्वं मे करोतु भगवांश्छिवः” ॥ २०

ब्रह्माण्डपुराणे “महिषीं वत्संसंयुक्तां सुशीलां च पयस्विनीमरक्तवस्त्रेण पुष्पेण अलंकृत्य प्रयत्नतः ॥

“श्रोत्रियाय सुशान्ताय दत्त्वा मृत्युं जयेन्नरः । कालमृत्युस्वरूपा सा महिषी रक्तभूषणा ॥

“पुच्छदेशे प्रदातव्या अतः शान्तिं प्रयच्छ मे ” ॥ पाद्मे—

“तिलपूर्णं ताम्रपात्रं सुवर्णेन समन्वितम् । तत्पात्रं ब्राह्मणे दत्त्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥

“देवदेव जगन्नाथ वांछितार्थफलप्रद । तिलपात्रं प्रदास्यामि तवाग्रे सुस्थिरोऽस्म्यहम् ॥ २५

“गोभूतिलहिरण्याज्यवासोधान्यगुडानि च । रूप्यं लवणमित्याहुर्दश दानान्यनुक्रमात् ॥

“गवामंगेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश । यस्मात्तस्माच्छिवं मे स्यादतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

“सर्वसस्याश्रया भूमिर्वराहेण समुद्धृता । अनंतसस्यफलवत्यतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

“तिलाः पापहरा नित्यं विष्णोर्देहसमुद्भवाः । तिलदानादसह्यं मे पापान् नाशय केशव ॥

“हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसो । अनंतपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ३०

“कामधेनुसमुद्भूतसर्वकृतुषु संस्थितम् । देवानामाज्यमाहारमतः ० मे ॥

“शीतवातोष्णसंत्राणं लज्जाया लक्षणं परम् । देहालंकरणं वस्त्रमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।

“धन्यं करोषि दातारमिह लोके परत्र च । प्राणिनां जीवनं धान्यमतः ० मे ।

“यथा रसानां प्रवरस्तथैवेक्षुरसः स्मृतः । मम चैव परां लक्ष्मीं ददस्व गुडं सर्वदा ।

“पितृप्रीतिकरं नित्यं विष्णुशंकरयोरपि । शिवनेत्रोद्भवं रूप्यमतः० मे ।

“रसानामग्रजं श्रेष्ठं लवणं बलवर्धनम् । ब्रह्मणा निर्मितं साक्षादतः०मे ॥ इति दशदानमंत्राः ।

“सालग्रामशिलाचक्रे भुवनानि चतुर्दश । तस्मादस्य प्रदानेन प्रीतो भवतु केशवः ।

शिवलिंगदानमंत्रः

५ “कैलासवासी गौरीशो भगवान्भगनेत्रहा । चराचरात्मको लिंगरूपी दिशतु वाञ्छितम् ” ॥

अन्नदानमन्त्रः

“अत्र प्रजापतिर्विष्णुब्रह्मैन्द्रशिवभास्कराः । अग्निवायुःस्थापश्च अतः शांतिं प्रयच्छ मे ” ॥

शर्करादानमंत्रः

“अमृतस्य कलोत्पन्ना इक्षुसारं च शर्करा । सूर्यप्रीतिकरा नित्यम० मे ” ॥

१० आज्यावेक्षणदानमंत्रः

“अलक्ष्मीपरिहारार्थं सर्वगिषु व्यवस्थितम् । तत्सर्वं शमयाज्य त्वं श्रियं पुष्टिं च देहि मे ॥

चणकदानमंत्रः

“गोवर्द्धनगिरिद्वारे समवे हरिरक्षिता । चणकाः सर्वपापघ्ना अतः०मे ॥

माषदानमंत्रः

१५ “यस्मान्मधुवने काले विष्णोर्देहसमुद्भवाः । पितृप्रीतिकरा माषम०मे ॥

मुद्गा०

“मुद्गा बीजानि वै यस्मात्प्रियाणि परमेष्ठिनः । तस्मादेषां प्रदानेन अ०मे ॥

अन्नदानमंत्रान्तरम्

“अन्नेन जायते विश्वं प्राणिनां प्राणधारणम् । तद्बुलं वैश्वदेवार्थपाकेनान्नं प्रयच्छ मे ” ॥

२० श्रीतांबूलदानमंत्रः

“पूगो ब्रह्मा हरिः पर्णं चूर्णं साक्षान्महेश्वरम् । एतेषां संप्रदानेन संतु मे भाग्यसंपदः” ॥

शाकदाने

“सर्वदेवप्रियकरं शाकवृत्तिकरं नृणाम् । ददाति सर्वभद्राणि मम संतु मनोरथाः ” ॥

जलदा०

२५ “जीवनं सर्वभूतानां सर्वभूतं जलं यतः । सर्वदानोत्तमं पुण्यमतः० मे ॥

कंबलदान०

“ऊर्णाच्छादनसुश्लाघ्यं शीतवातभयापहम् । यस्माद् दुःखनिवारं तु अतः०मे ॥

उपानद्दा०

“उपानहौ प्रदास्यामि कंटकादिनिवारकौ । सर्वस्थानेषु सुखदावतः०मे ॥

३० औषधदा०

“प्राणिनां जीवनोपाय प्राणिनां शाश्वतं पदम् । तस्मादौषधदानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ” ॥

कूष्मांडदानम्

“कूष्मांडं घृतसंयुक्तं तिलमिश्रं तु यत्फलम् । पुत्रपौत्राभिवृद्ध्यर्थं अतः०मे ॥

सूर्यदा० “पद्मासनः पद्मकरो द्विबाहुः पद्मप्रियः सप्ततुरंगवाहः ।

१५ “दिवाकरो लोकगुरुः किरीटी मयि प्रसादं विदधातु देवः” ॥

आयसदा०

“यस्मादायसकर्माणि तवाधीनानि सर्वदा । लांगलाद्यायुधादीनि तस्माच्छांतिं प्रयच्छ मे” ॥

छागदानमंत्रः

“यस्मात्त्वं छाग यज्ञानामंगत्वेन व्यवस्थितः । यानं विभावसोर्नित्यमतः०मे” ॥

ताम्रदानमंत्रः

“ताम्रं शुद्धिकरं सर्वदेवप्रियकरं शुभम् । सर्वरक्षाकरं नित्यम०मे” ॥

कांस्यदा०

“शुद्धं कांस्यमिहामुत्र पात्रयोग्यं मनोहरम् । निर्मितं पापशमनम०मे” ॥

तुत्रदा०

“वर्षवातातपत्राणामातपत्रं यशस्करम् । अस्य प्रदानाद्भूतानि सुखं यच्छंतु मे सदा” ॥ १०

व्यजनदा०

“व्यजनं वायुदेवत्यं धर्मकाले सुखप्रदम् । तस्मादस्य प्रदानेन शान्तिरस्तु सदा मम” ॥

फलदा०

“फलं मनोरथफलं प्रददाति सदा नृणाम् । पुत्रपौत्राभिवृद्ध्यर्थम०मे” ॥

दानस्य देशकालौ ॥

१५

याज्ञवल्क्यः ( व्य० १७५ )—

“स्वं कुटुंबाविरोधेन देयं दारसुतादृते । नान्वये सति सर्वस्वं यच्चान्यस्मै प्रतिश्रुतम्” ॥

बृहस्पतिः—( अ. १५ श्लो. ३ )

“कुटुंबभक्तवसनाद्देयं यदतिरिच्यते । अन्यथा दीयते यद्धि न तद्दानफलप्रदम्” ॥

शंखलिखितौ

२०

“आहारं मैथुनं निद्रां संध्याकालेषु वर्जयेत् । कर्म चाध्ययनं चैव तथा दानप्रतिग्रहौ” ॥

“कुरुक्षेत्रे गयातीर्थे तथा वामकरण्डके । एवमादिषु तीर्थेषु दत्तमक्षयतामियात् ॥

व्यासः—“अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । संक्रान्त्यादिषु कालेषु दत्तं भवति चाक्षयम् ॥

“प्रयागादिषु तीर्थेषु पुण्येष्वायतनेषु च । दत्तं चाक्षयमाप्नोति नदीषु च नदेषु च” ॥

संवर्त्तः—“अयने विषुवे चैव व्यतीपाते दिनक्षये । चंद्रसूर्यग्रहे चैव दत्तं भवति चाक्षयम् ॥ २५

“अमावास्या द्वादशी च संक्रांतिस्तु विशेषतः । एताः प्रशस्तास्तिथयो भानुवारस्तथैव च ॥

“अत्र स्नानं जपो होमो ब्राह्मणानां च तर्पणम् । उपवासस्तथा दानमेकैकं पावनं स्मृतम्” ॥ इति ।

“पौर्णमासीषु सर्वासु मासर्क्षसहितासु च । दत्तानामिह दानानां फलं दशगुणं भवेत् ॥

“सहस्रगुणितं दानं भवेद्दत्तं युगादिषु । कर्मश्रान्दादिकं चैव तथा मन्वंतरादिषु” ॥

याज्ञवल्क्यः—

३०

“शतमिदुक्षये दानं सहस्रं तु दिनक्षये । विषुवे शतसाहस्रं व्यतीपातेष्वनंतकम्” ॥ भरद्वाजः—

“व्यतीपाते वैधृतौ यद्दत्तमक्षय्यकुञ्जवेत् । द्वौ तिथ्यंतावेकवारे यस्मिंस्तत्स्याद्दिनक्षयः ॥

“तस्मिन्दानं जपो होमः स्नानं चैव फलप्रदम्” ॥ सुमंतुः—

“वानप्रस्थस्य पक्वान्नं तांबूलं ब्रह्मचारिणः । संन्यासिनः सुवर्णं च दाताऽपि नरकं व्रजेत् ॥

“बहूनां न प्रदातव्या गौर्वस्त्रं शयनं स्त्रियः । तादृग्भूतं तु तद्दानं दातारं नोपतिष्ठति” ॥ ३५

यमः—

“प्रतिश्रुताप्रदानेन दत्तस्य हरणेन च । जन्मप्रभृति यत्पुण्यं तत्सर्वं हि प्रणश्यति ॥  
“आशाकरस्त्वदाता च दातुश्च प्रतिषेधकः । दत्तं च यः कीर्तयति स पापिष्ठतरः स्मृतः ॥  
“काले संकल्पिते दाने आ मासं न प्रदीयते । मासे मासे शतं वृद्धिर्यावत्संवत्सरं भवेत्” ॥

५

नारदः—

“ब्राह्मणाय यदुद्दिष्टं तत्सद्यः संप्रदीयते । अहोरात्रमतिक्रम्य तद्दानं द्विगुणं भवेत् ॥  
“त्रिरात्रं षड्गुणं दद्याद् दशरात्रं तु षोडश । मासे शतगुणं दद्याद्वत्सरं तु सहस्रकम् ॥  
“वत्सरात्परतो नास्ति दाता तु नरकं व्रजेत् । ब्राह्मणस्य तु यद्दत्तं तदभावे तु तद्धनम् ॥  
“सकुल्ये तस्य निनयेत्तदभावेऽस्य बंधुषु । दद्यात्सजातिशिष्येभ्यस्तदभावेऽप्सु निक्षिपेत्” ॥

१० आपस्तम्बः (२।१५।१२) “देशतः कालतः शौचतः सम्यक्प्रतिगृहीतृतः” इति दानानि प्रतिपादयति इति । वाल्मिकिः—

“उत्पतन्नपि चाकाशं विशन्नपि रसातलम् । अटन्नपि महीं कृत्स्नां नादत्तमुपतिष्ठते ॥  
“दत्तं हि प्राप्यते स्वर्गे दत्तमेवोपभुज्यते । यत्किञ्चिद्वत्तमश्नाति नादत्तमुपतिष्ठते” ॥

यत्तु ‘दानं क्रयो धर्मश्चापत्यस्य न विद्यते’ इत्यापस्तम्बस्मरणम् (२।१३।१०) । “स्वकुटुम्बा-  
१५ विरोधेन देयं दारसुताहत” इति यदपि याज्ञवल्क्यवचनं (व्य. १७५) तज्ज्येष्ठपुत्रविषयं एकपुत्रविषयं च । द्वादशविधेषु पुत्रेषु दत्तक्रीतयोरपि मन्वादिभिः पठितत्वात् “दत्तौरसेतरेषां तु पुत्रत्वेन परिग्रहः” इति दत्तौरसव्यतिरिक्तानामेव पुत्राणां कलौ वर्ज्यस्व-  
स्मरणाच्च । तथा च वसिष्ठः (अ. १५।३-६) “न ज्येष्ठं पुत्रं दद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वा । न चैकं पुत्रं । स हि संतानाय पूर्वेषां । न स्त्री पुत्रं दद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वाऽन्यत्रानुज्ञानाद्भर्तुः । पुत्रं  
२० प्रतिगृह्णीष्यन्बन्धूनाहूय राजानि चावेद्य निवेशनस्य मध्ये व्याहृतिभिर्हुत्वा अदूरबाधवं संनिक्नुमेव प्रतिगृह्णीयात्” ॥ इति । बह्वचब्राह्मणेऽपि शुनःशेपाख्याने ज्येष्ठं पुत्रं न प्रयच्छेदित्यादि ॥  
इति दानम् ।

अथ पात्रनिरूपणम् ॥ मनुः (१।९९-१००) —

“ब्राह्मणो जायमानो वै पृथिव्यामधिजायते । ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य चैव हि ॥

२५ “सर्वं स्वं ब्राह्मणाश्चेदं यत्किञ्चिज्जगतीगतम् । श्रेष्ठचेनाभिजनेनेदं सर्वं वै ब्राह्मणोऽर्हति” ॥

स्मृतिसारे—

“सर्वस्य प्रभवो विप्राः श्रुताध्ययनशालिनः । तेभ्यः क्रियापराः श्रेष्ठास्तेभ्योऽप्यध्यात्मवित्तमाः” ॥

स्मृत्यर्णवे—

“अज्ञेभ्यो ग्रंथिनः श्रेष्ठा ग्रंथिभ्यो धारिणो वराः । धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठा ज्ञानिभ्योऽध्यवसायिनः” ॥

३० यमः— “विद्यायुक्तो धर्मशीलः प्रशांतः क्षांतो दांतः सत्यवादी कृतज्ञः ।

“स्वाध्यायवान् धृतिमान् गोशरण्यो दाता यज्वा ब्राह्मणः पात्रमाहुः ॥

“स्वाध्यायाढ्यं योनिमंतं प्रशांतं वैतानस्थं पापसीरं बहुज्ञम् ॥

“स्त्रीषु क्षांतं धार्मिकानां शरण्यं व्रतैः कृतांतं तादृशं पात्रमाहुः ॥”

याज्ञवल्क्यः (आ. २००) —

३५ “न विद्यया केवलया तपसा वाऽपि पात्रता । यत्र वृत्तमिमे चोभे तद्धि पात्रं प्रचक्षते” ॥

शातातपः—

“यथाश्वा रथहीनाः स्यू रथश्चाश्वैर्यथा विना । एवं तपो ह्यविद्यस्य विद्या वाऽप्यतपस्विनः ॥

“यथान्नं मधुसंयुक्तं मधु चान्नेन मिश्रितम् । एवं तपश्च विद्या च संयुक्तं भेषजं मतम् ” ॥

वसिष्ठः—

“किंचिद्वेदमयं पात्रं किंचित्पात्रं तपोमयम् । पात्राणामपि तत्पात्रं शूद्रान्नं यस्य नोदरे ” ॥ ५

ब्रह्मवैवर्ते—

“ये पूर्वं पूजिता एव पुरस्तात्सुर्नमस्त्रिया । तां निराकृत्य चान्येषु कुर्वन्भक्तिं व्रजत्यधः ” ॥

देवलः—“मातुश्च ब्राह्मणश्चैव श्रोत्रियश्च ततः परम् । अनूचानस्तथा भ्रूणऋषिकल्पऋषिर्मुनिः ॥

“इत्येतेऽष्टौ समुद्दिष्टा ब्राह्मणाः प्रथमं श्रुतौ । तेषां परः परः श्रेष्ठो विद्यावृत्तैर्विशेषतः ” ॥

एतेषां लक्षणं स एवाह—

“ब्राह्मणानां कुले जातो जातिमात्रो यथा भवेत् । अनुपेतः क्रियाहीनो मातृ इत्यभिदीयते ॥

“एकदेशमतिक्रम्य वेदस्याचारवानृजुः । स ब्राह्मण इति ख्यातो निभूतः सत्यवाग् घृणी ॥

एकदेशातिक्रमो वेदस्य किंचिन्नूनस्याध्ययनम् । निभूतः शांतः ।

“एकां शाखां सकल्पां वा षड्भिरंगैरधीत्य वा । षट्कर्मनिरतो विप्रः श्रोत्रियो नाम धर्मवित् ॥

“जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते । विद्यया चापि विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रिय उच्यते ॥ १५

“वेदवेदांगतत्त्वज्ञः शुद्धात्मा पापवर्जितः । शेषं श्रोत्रियवत्प्राप्तः सोऽनूचान इति स्मृतः ॥

“अंतर्गतगुणोपेतयज्ञस्वाध्याययंत्रितः । भ्रूण इत्युच्यते शिष्टैः शेषभोजी जितेंद्रियः ॥

“लौकिकं वैदिकं चैव सर्वं ज्ञानमवाप्य च । आश्रमस्थो वशी नित्यमृषिकल्प इति स्मृतः ” ॥

लौकिकमर्थार्जनदिकम् ॥

“ऊर्ध्वरेताः तपस्वर्ग्यो नियताशी न संशयः । शापानुग्रहयोः शक्तः सत्यसंधो भवेदृषिः ” ॥ २०

“निवृत्तः सर्वतत्त्वज्ञः कामक्रोधविवर्जितः । ध्यानार्थो निष्क्रियो दांतस्तुल्यमृत्कांचनो मुनिः ” ॥

यमः—“शीलं संवासतो ज्ञेयं शौचं संव्यवहारतः । प्रज्ञा संकथना ज्ञेया त्रिभिः पात्रं परीक्ष्यते ” ॥

बोधायनः—“वेदानां किंचिदधीत्य ब्राह्मण एकां शाखामधीत्य श्रोत्रिय अंगाध्याय्यनूचानः ॥

कल्पाध्यायी ऋषिकल्पः सूत्रप्रवचनाध्यायी भ्रूणः ” ॥ इति ।

दक्षः—“समं द्विगुणसाहस्रमनंतं च यथाक्रमम् । दाने फलविशेषः स्याद्विंसायामेवमेव हि ॥ २५

“समब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे । प्राधीते शतसाहस्रमनंतं वेदपारगे ” ॥

गौतमोऽपि ( ५।१८ )—“समद्विगुणसाहस्रानंत्यानि फलान्यब्राह्मणश्रोत्रियवेदपारगेभ्यः ” इति ।

“सांगं सकल्पं सरहस्यं च यो वेदमधीरते स वेदपारगः ” इति हरवृत्तः ।

“अब्राह्मणास्तु षट् प्रोक्ता ऋषिः शातातपोऽब्रवीत् । आद्यो राजभूतस्तेषां द्वितीयः क्रयविक्रयी ॥

“तृतीयो बहुयाज्यः स्याच्चतुर्थो ग्रामयाजकः । पंचमस्तु भूतस्तेषां ग्रामस्य नगरस्य च ॥ ३०

“अनादित्यां तु यं पूर्वा सादित्यां चैव पश्चिमाग्रानोपासीत द्विजः संध्यां स षष्ठोऽब्राह्मणः स्मृतः ” ॥ इति ।

संवर्त्तस्तु—

“उत्पत्तिप्रलयौ चैव भूतानामागतं गतिम् । वेत्ति विद्यामविद्यां च स भवेद्वेदपारगः ” ॥ इति ।

बृहस्पतिः—“श्रोत्रिये चैव साहस्रमाचार्ये द्विगुणं तथा । आत्मज्ञे शतसाहस्रमनंतं त्वग्निहोत्रिणि ” ॥

व्यासः—“प्रथमं तु गुरोर्दानं दद्यात् श्रेष्ठमनुक्रमात् । ततोऽन्येषां च विप्राणां दद्यात्पात्रानुसारतः ॥ ३५

“संस्कृतैः प्राकृतैर्वाक्यैर्यः शिष्यमनुरूपतः । देशकालाद्युपायैश्च यो भवेत्स गुरुः स्मृतः” ॥ इति ।  
 “गुरोरभावे तत्पुत्रं तद्भ्रातृं तत्सुतं तथा । पौत्रं प्रपौत्रं दौहित्रं अन्यं वा तत्कुलोद्भवम् ॥  
 “तदा नातिक्रमेद्दानं प्रत्युताधोगतिप्रदम्” ॥

व्यासः—“मातापित्रोश्च यद्दत्तं भ्रातृस्वसृसुतासु च । जायात्मजेषु यद्दत्तं सोदर्ये स्वर्गसंक्रमः ॥

५ “पितुः शतगुणं दानं सहस्रं मातुरुच्यते । अनन्तं दुहितुर्दानं सोदर्ये दत्तमक्षयम् ॥

“भगिनीभागिनियानां मातुलानां पितृष्वसुः । दरिद्राणां च बंधूनां दानं कोटिगुणं भवेत्” ॥

दक्षः—“मातापित्रोर्गुरोर्मित्रे विनीते चोपकारिणि । दीनानाथविशिष्टेभ्यो दत्तमक्षयमुच्यते ॥

“हृतस्वाहृतदाराश्च ये विप्रा देशविप्लवे । अर्थार्थमभिगच्छन्ति तेभ्यो दत्तं महाफलम् ॥

“व्यसनार्थमृणार्थं वा कुटुंबार्थं हिताय च । एवमाद्येषु दातव्यं सर्वधर्मेष्वयं विधिः ॥

१० “अग्निहोत्री तपस्वी च ऋणवान्प्रियते यदि । अग्निहोत्रं तपश्चैव तत्सर्वं धनिनां धनम् ॥

“मातापितृविहीनस्य संस्कारोद्बहनादिभिः । यः स्थापयति तस्यैव पुण्यसंख्या न विद्यते ॥

“न तच्छ्रेयोऽग्निहोत्रेण नाश्वमेधेन लभ्यते । यच्छ्रेयः प्राप्यते पुंसां विप्रेण स्थापितेन वै ॥

“दीनांधकूपणानाथबालवृद्धातुरेषु च । यद्दीयते च दयया तदनन्तफलं भवेत्” ॥

व्यासः—“संनिकृष्टमधीयानमतिक्रामति यो द्विजम् । भोजने चैव दाने च दहत्या सप्तमं कुलम् ॥

१५ “ये पूर्वपूजिता ये च पुरस्तात्स्युर्नमस्कृताः । तान्निराकृत्य नव्येषु भक्तिं कुर्वन्पतत्यधः” ॥

मनुः—( ११।१० )

“भृत्यानामुपरोधेन यः करोत्यौर्ध्वदेहिकम् । तद्भवत्यसुखोर्दकं जीवतोऽस्य मृतस्य च” ॥

सुमंतुः—

“दूरस्थोऽपि हि सत्पात्रं मनसा चिंत्य विष्णुवत् । भूमौ निक्षिप्य तोयं च द्रव्यं तत्प्रतिपादयेत्” ॥

२० हेमाद्रौ—“न्यायार्जितस्य वित्तस्य द्वावनथौ प्रकीर्तितौ । अपात्रे प्रतिपत्तिश्च पात्रे चाप्रतिपादनम्” ॥

आपस्तम्बः—( २।१०।१८-१९ )

“योक्ता च धर्मयुक्तेषु द्रव्यपरिग्रहेषु च प्रतिपादयिता च तीर्थे” । तीर्थं पात्रम् । अतीर्थमपात्रम् ।

“आगतान् भोजनार्थं वै ब्राह्मणान्वृत्तिकर्शितान् । परीक्षां ये च कुर्वन्ति ते वै निरयगामिनः” ॥ इति ।

शातातपः—

२५ “संनिकृष्टमधीयानं ब्राह्मणं यो व्यतिक्रमेत् । स रासभगतां योनिं गच्छेत्तस्य व्यतिक्रमात् ॥

“यस्य चैकग्रहे मूर्खो द्वरे चापि गुणान्वितः । गुणान्विताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः” ॥

अन्नदानविषये तु पतितव्यतिरिक्तप्रत्यासन्नातिक्रमे दोष एव । तथा स्मृत्यन्तरम् “अन्नस्य क्षुधितं पात्रम्” इति । आनुशासनिके—( १०२-१९ )

“तथापः सर्वदा देया सर्वजातिष्वसंशयम् । यदेतत् दुर्लभतरं मम लोके द्विजोत्तम” इति ।

३० यमवचनम् । सर्वत्र दातव्यमिति वचनात् “कृत्येषु शुचीन् मंत्रवतः सर्वकृत्येषु भोजयेत्” ॥

व्यासः ( ४।३५ )

“ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति मूर्खे धर्मविवर्जिते । ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मानि हूयते” ॥

“यदि स्यादधिको विप्रः शीलविद्यादिभिस्तु यः । तस्मै यत्नेन दातव्यमतिक्रम्यापि संनिधिम्” इति ।

३५ “शूद्रे समगुणं दानं वैश्ये तद्विगुणं स्मृतम् । क्षत्रिये त्रिगुणं प्राहुः षड्गुणं ब्राह्मणे स्मृतम् ॥

३५ “श्रोत्रिये चैव साहस्रमाचार्ये द्विगुणं ततः । आत्मजे शतसाहस्रमनन्तं चाग्निहोत्रिणि ॥

‘अथैकभक्तिकं दानं कर्मयोगरतात्मना । शतजन्मद्रवं दानं गोषु ज्ञेयं महाफलम् ॥  
“द्विगुणं च तदेकैकं तथा वै वर्णसंकरे । शुद्धे चतुर्गुणं प्रोक्तं विशि चाष्टगुणं भवेत् ॥  
“क्षत्रिये षोडशगुणं ब्रह्मबन्धौ तदेव तु । द्वात्रिंशद्धि कृतं दानं वेदाध्ययनतत्परे ॥  
“शतघ्नं तद्विनिर्दिष्टं प्राधीते लक्षसंमितम् । अनन्तं च तदेवोक्तं ब्राह्मणे वेदपासगे ॥

**अर्थापात्रनिरूपणं । शातातपः**

“नष्टं देवलके दत्तमप्रतिष्ठं च वार्षुषौ । यच्च वाणिज्यके दत्तं न च तत्प्रेत्य नो इह ॥  
“देवार्चनरतो विप्रो वित्तार्थी वत्सरत्रयम् । स वै देवलको नाम हव्यकव्येषु गर्हितः ॥ इति ।

**स्मृतिसंग्रहे—**

“देवार्चनपरो यो हि परार्थं वित्तकांक्षया । चतुर्वेदधरो विप्रः स चंडालसमो भवेत् ॥  
“कर्मदेवलकाः केचित्कल्पदेवलकाः परे । शुद्धदेवलकाः केचित्रिधा देवलकाः स्मृताः ॥  
“अर्थार्थी कालनिर्देशी यो देवं पूजयेत्सदा । कर्मदेवलको नाम सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥  
“पांचरात्रविधानज्ञो दीक्षाविरहितोऽर्चकः । चतुर्वेदाधिकारोऽपि कल्पदेवलकः स्मृतः ॥  
“आगमोक्तिविधानज्ञो रुद्रकालयुपजीवकः । शुद्धदेवलको नाम सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥  
“आर्षेयोक्तविधाने तु देवलत्वं न विद्यते । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वैदिकेनैव पूजयेत् ॥ इति ॥

**यमः—** “समर्घं धनमादाय महार्घं यः प्रयच्छति । स वै वार्षुषिको नाम यश्च वृध्वोपजीवति ॥ १५  
“यस्तु निंदनप्रगुणान्प्रशंसत्यात्मनो गुणान् । स वै वार्षुषिको नाम ब्रह्मवादिषु गर्हितः ॥ इति ।

**वृद्धमनुः—**

“पात्रभूतोऽपि यो विप्रः प्रतिगृह्य प्रतिग्रहम् । असत्सु विनियुंजीत तस्मै देयं न किंचन ॥  
“संचयं कुरुते यश्च प्रतिगृह्य समं ततः । धर्मार्थं नोपयुङ्क्ते च न तं तत्स्करमर्चयेत् ॥

**व्यासः—** “परस्थाने वृथादानमशेषं परिकीर्तितम् । आरूढपतिते चैव अन्यथार्थधनैश्च यत् ॥ २०  
“व्यर्थमब्राह्मणे दानं पतिते तत्स्करे तथा । गुरोश्चाप्रीतिजनके कृतघ्ने ग्रामयाजके ॥  
“वेदविक्रयके चैव यस्य चोपपतिर्गृहे । न वार्यपि प्रयच्छेत्तु नास्तिके हेतुके तथा ॥  
“न पाषंडेषु सर्वेषु नावेदविदि धर्मवित् ॥ पराशरः—  
“युक्तिछलेन सर्वत्र यः शान्त्रविहितेष्वपि । संशयं कुरुते सोऽयं हेतुको नास्तिकाधमः ॥

**प्रजापतिः**

“स्वधर्मस्य परित्यागी पाषंडीत्युच्यते बुधैः । तत्संगकुत्तस्मः स्यात् तावुभावपि पापिनौ ॥  
“ये तु सामान्यभावेन मन्यन्ते पुरुषोत्तमम् । ते वै पाषंडिनो ज्ञेया नरकार्हा नराधमाः ॥

**नारदः—** “षंडस्य पुत्रहीनस्य दंभाचाररतस्य च । नक्षत्रपाठकस्यापि दत्तं भवति निष्फलम् ॥  
**विष्णुधर्मोत्तरे—** “परस्थाने वृथादानमशेषं परिकीर्तितम् । आरूढपतिते चैव त्वन्यथार्थधनैश्च यत् ।

“व्यर्थमब्राह्मणे दानं पतिते तत्स्करे तथा । गुरोश्चाप्रीतिजनके कृतघ्ने ग्रामयाजके ॥ ३०  
“वेदविक्रयके चैव यस्य चोपपतिर्गृहे ॥

**वृद्धमनुः—** “स्त्रीभिर्जितेषु यत् दत्तं व्यालग्राहे तथैव च । ब्रह्मबन्धुषु यद्दत्तं यद्दत्तं वृषलीपतौ ॥

“परिचारकेषु यद्दत्तं वृथादानानि षोडश ॥ वृषलीपतिलक्षणमाह दक्षः—

“पितृगृहे तु या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता । सा कन्या वृषली ज्ञेया तत्पतिर्वृषलीपतिः ॥

देवलः—

“वंध्या च वृषली ज्ञेया वृषली च मृतप्रजा । अपरा वृषली ज्ञेया कुमारी या रजस्वला ” ॥ इति ।

व्यासः—

“पंग्वंधवधिरा मूका व्याधिर्नोऽपहताश्च ये । भर्तव्यास्ते तु सततं न तु देयः प्रतिग्रहः ॥

५ “यस्त्वसदभ्यो ददातीह सद्द्रव्यं धर्मनाशनम् । स पूर्वाभ्यधिकः पापी नरके पच्यते नरः ॥

“यतीनां कांचनं दत्त्वा तांबूलं ब्रह्मचारिणः । चोराणामभयं दत्त्वा दाता तु नरकं व्रजेत्” ॥

मनुः—

“अनर्हते यद्ददाति न ददाति यदर्हते । अर्हानर्हापरिज्ञानात् धनाद्धर्माच्च हीयते ” ॥

यमः—

१० “अव्रतानाममंत्राणां जातिमात्रोपजीवनाम् । नैषां प्रतिग्रहो देयो न शिला तारयेच्छिलाम् ॥

“अपविद्धाग्निहोत्रस्य गुरोर्विप्रियकारिणः । द्रविणं नैव दातव्यं सततं पापकर्मणः ॥

“न प्रतिग्रहमर्हन्ति वृषलाध्यापका द्विजाः । शूद्रस्याध्यापनाद्विप्रः पतत्यत्र न संशयः” ॥

वृषलस्वरूपमाह पराशरः—

“अग्निकार्यपरिभ्रष्टाः संध्योपासनवर्जिताः । वेदं च येऽनधीयानास्ते सर्वे वृषलाः स्मृताः ॥

१५ “उपारुदन्ति दानानि गौ रथः कांचनं क्षितिः । अश्रोत्रियस्य विप्रस्य करं दृष्ट्वा निराकृतेः ॥

“राजधानी यथा शून्या यथा कूपश्च निर्जलः । यथाहुतमनग्नौ तु तथा दत्तं द्विजब्रुवे” ॥

अपात्रे दातुर्दोषमाह व्यासः—

“दुर्विप्रा गणिका वैश्या विट्चारणकारवः । सततं यं प्रशंसन्ति तं विद्यात्पुरुषाधमम् ॥

“ये च ज्योतिषकाश्चौराः कुंडगोलाश्च याचकाः । सौनिका यं प्रशंसन्ति तं विद्यात् पुरुषाधमम् ॥

२० “उत्कोचजीविनो भ्रष्टा वैश्यापतिविदूषकाः । गायका यं प्रशंसन्ति तं विद्यात्पुरुषाधमम्” ॥ इति ।

आपस्तम्बः—“अन्नदाने न कर्तव्यं पात्रावेक्षणमण्वपि । अन्नं सर्वत्र दातव्यं धर्मकामेण वै द्विजाः ॥

“दीनांधकुपणादिभ्यो वाग्विहीनेषु यत्तथा । विकलेषु तथाऽन्येषु जडे बधिरपंगुषु ॥

“रोवृत्तेषु च यद्दत्तं तत्स्याद्बहुफलं धनम् ॥

“विवाहमेखलाबंधप्रतिष्ठादिषु कर्मसु । आपन्नेषु तु यद्दत्तमक्षय्यं तदुदाहृतम्” ॥ देवपितृव्यव्यति-

२५ रिक्ताविषयम् । तत्र शुचिमन्त्रं व्रतः सर्वकृत्येषु भोजयेत् “कृतान्नमितरेषु” इति गौतमवचनम्

अथ द्रव्याख्यदानांगमुच्यते—

( ५१२० ) ॥

“यद्यदिष्टं विशिष्टं च न्यायप्राप्तं च यद्भवेत् । तत्तद्गुणवते देयमित्येतद्दानलक्षणम् ॥

“तत्पुनस्त्रिविधं ज्ञेयं शुक्लं शबलमेव च । कृष्णं तु तस्य विज्ञेयो विभागः सप्तधा पुनः ॥

“श्रुतशौर्यतपःकन्यायाज्यशिल्पान्यथागतम् । धनं सप्तविधं शुक्लमुदयो यस्य तद्विधः ॥

३० कन्यागतमार्षविवाहे यद्गृहीतं गोमिथुनादि । उदयः फलं ददात्यस्य शुद्धमित्यर्थः ॥

“कुसीदकुषिवाणिज्यशिल्पशुल्कानुवृत्तिः । कृतोपकारादाप्तं च शबलं समुदाहृतम्” ॥

शुल्कमाकरादिभ्यो द्रव्यागमः । अनुवृत्तिः सेवा ।

“पाश्चर्वाद्यौतचौर्याथिप्रतिरूपकसाहसैः । व्याजेनोपार्जितं यत्तत्सर्वेषां कृष्णमुच्यते ॥

पाश्चर्कोपार्जितमुत्कोचादिलब्धं तद्ध्युपार्जितं परपीडालब्धं प्रतिरूपकर्मणि प्रतिरूपादैः प्रति-

३५ रूपकरणं साहसं स्वप्रमाणयथांगिकारेण पश्यतो हरत्वादिकम् । व्याजो ङ्भतपःप्रभृतिः ।



- “शुक्लेन वार्तेन कृतं पुण्यं बहुफलं भवेत् । शबलं मध्यमफलं कृष्णं हीनफलं धनम् ॥
- “शुक्लवित्तेन यो धर्मं प्रकुर्याद्ब्रह्मयान्वितः । तीर्थं पात्रं समासाद्य देवत्वे तत्समश्नुते ॥
- “राक्षसेन च भावेन वित्तेन शबलेन च । र्यह्यादानमर्थिभ्यो मानुषत्वे तदश्नुते ॥
- “तमोवृत्तस्य यो दद्यात्कृष्णवित्तेन मानवः । तिर्यक्त्वे तत्फलं प्रेत्य समश्नाति नराधिपः ॥
- “स्वैकुण्डाविरोधेन देयं दारस्तुताहते । नान्वये सति सर्वस्वं यच्चाण्यस्मै प्रतिश्रुतम् ॥ ५
- “तस्मात्त्रिभागं वित्तस्य जीवनाय प्रकल्पयेत् । भागद्वयं तु धर्मार्थमनित्यं जीवनं यतः ” ॥
- वित्तं पंचधा विभज्य भागत्रयं जीवनाय भागद्वयं धर्माय परिकल्पयेत् ।
- “एकां गां दशगुर्दद्याद्दद्याद्वाद्दश गोशति । शतं सहस्रगुर्दद्यात्सर्वतुल्यफलाः स्मृताः ॥
- “कुटुंबं पीडयित्वा तु ब्राह्मणाय महात्मेन । दातव्यं भिक्षये चान्नं ब्राह्मणो भूतिमिच्छता ॥
- “सौदायिकं क्रमायातं स्वयं प्राप्तं च यद्भवेत् । स्त्रिज्ञातिस्वाम्यनुज्ञाते दत्तं सिद्धिमवाप्नुयात्” ॥ १०
- सौदायिकं विवाहलब्धं तद्भार्यायाऽनुज्ञातम् क्रमायातं ज्ञातिभिरनुज्ञातम् । भृत्येन सता युद्धे लब्धं स्वाम्यनुज्ञातम् ।
- “यच्च वाचा प्रतिज्ञातं कर्मणा नोपपादितम् । तद्धनं ऋणसंयुक्तमिह लोके परत्र च ॥
- “सप्तधा तात्रो हन्याद्वर्तमानान्श्च सप्त च । अतिक्रान्तान्सप्त हन्यादप्रयच्छन्प्रतिश्रुतम् ॥
- “संशृत्य यो न यच्छेत याचित्वा यश्च नेच्छति । उभाववृत्तकावेतौ वृषा पापमवाप्नुतः ॥ १५
- “ब्राह्मणस्य तु यद्द्रव्यं सान्वयस्यैव नास्ति सः । सकुल्ये तस्य निनयेत्तदभावेऽस्य बंधुषु ॥
- “यदा तु न कुलस्य स्यान्न च संबन्धिबांधवाः । दद्यात्सजातिशिष्येभ्यस्तदभावेऽसु निक्षिपेत् ॥
- “यज्ञोपकरणं द्रव्यं ब्राह्मणेषु महाफलम् । युद्धोपकरणं द्रव्यं क्षत्रिये द्विजपुंगवाः ॥
- “पुण्योपयोगि तद्वैश्ये शूद्रे शिल्पोपयोगि च । यस्योपयोगि यद् द्रव्यं देयं तस्यैव तद्भवेत् ॥
- “येन येन च भावेन यस्य वृत्तिरुदाहता । तत्र तस्यैव दातव्यं पुण्यकामेन धीमता ॥ २०
- “मृष्टान्नं मानवो दत्त्वा मृष्टान्नानि तु कांक्षिणा । अक्षय्यं फलमाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति” ॥
- व्यासः—
- “कृष्णाजिनं...चैतत्तथा विद्यां कमंडलुम् । धीरः पुण्यमवाप्नोति दत्तैतान् ब्रह्मचारिणाम् ॥
- “वस्त्रं शय्यासनं धान्यं भस्म वेश्म परिच्छदम् । गृहस्थाय तु यद्दत्तं श्रेयो बहुफलं सदा ॥
- “यो दद्याद्यतये भिक्षां पात्रं दत्तं तथैव च । कृत्स्नां यां पृथिवीं दद्यात्तेन तुल्यं न तत्फलम् ॥ २५
- “बाले क्रीडनकान्दत्त्वा मृष्टमन्नं तथैव च । फलं मनोहरं चापि अग्निष्टोमफलं भवेत् ॥
- “प्रार्थितं बालकानां च दातव्यं स्यात्प्रयत्नतः । बालानां प्रार्थितं दत्त्वा नाकलोके महीयते ॥
- “बालकाः पूजनीयाः स्युर्धर्मकामेच्छुभिर्नरैः । तेषां भोज्यप्रदानेन मोदानफलमाप्नुयात् ॥
- “तस्मात्सर्वप्रयत्नेन बालानग्रे तु भोजयेत् । गंधमंगलतांबूलं रक्तवस्त्रादिकं स्त्रियः ॥
- “स्त्रीणां प्रदानं दातव्यं भर्तृगेहेषु नान्यथा ।
- “द्रव्येणान्यायलब्धेन यः करोत्यौर्ध्वदेहिकम् । न स तत्फलमाप्नोति तथार्थस्य पुरागमात् ॥
- “अपहृत्य परस्यार्थं दानं यस्तु प्रयच्छति । स दाता नरकं याति यस्यार्थस्तस्य तत्फलम् ॥
- “परिभुक्तमवज्ञातमपर्याप्तमसत्कृतम् । यः प्रयच्छति विप्रेभ्यस्तत्सर्वमवातिष्ठते ” ॥
- परिभुक्तं गृहीतोपयोगं वस्त्रादि । अपर्याप्तं स्वकार्याक्षमम् ॥
- “सामान्यं याचितं न्यासमाधिर्दाराश्च तद्धनम् । अन्वाहितं तु निक्षेपः सर्वस्वं चान्वये सति ॥

“आपत्स्वपि न देयानि नववस्त्रादि पंडितैः । यो ददाति स मूढात्मा प्रायश्चित्तीयते नरः” ॥  
सामान्यमनेकस्वामिकम् । याचितं संव्यवहारार्थमयाचितं त्वानीतम् । वस्त्रालंकारादन्यासं गृह-  
स्वामिनेऽदर्शयित्वा तत्परोक्षमेव च गृहस्वामिनेऽर्पणीयमिति । गृहजनहस्ते स्थापितं द्रव्यमाधिः  
प्रसिद्धम् । दाराः कलत्रं तद्धनं दारधनम् ।

५ “अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि । भ्रातृमातृपितृप्राप्तं स्त्रीधनं षड्विधं स्मृतम्” (९।११४) ॥  
अध्यग्नि अग्निसाक्षिकं यत्त्रिधै दत्तम् । अध्यावाहनिकं विवाहकालेऽपि दत्तम् । प्रीतिकर्मणि स्त्री-  
पुंसंबन्धेन भावितं चाप्तादिभ्यः प्राप्तं वा । अन्वाहितं यदेकस्य हस्ते स्वामिनि देहीति निमित्ताग्नि-  
क्षेपः गृहस्वामिसमक्षं स्थापितं द्रव्यम् । “न त्वेकं पुत्रं दद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वा न तु स्त्री पुत्रं दद्यात्प्रति-  
गृह्णीयाद्वा ” ॥

१० “बहुभ्यो न प्रदेयानि गौर्गृहं शयनं स्त्रियः । विभक्तदक्षिणा ह्येता दातारं तारयन्ति हि ॥  
“एका ह्येकस्य दातव्या न बहुभ्यः कथंचन । विवशां रोहिणीं रक्ष्यां विवत्सां शृंगभीषणीम् ॥  
“क्षीणक्षीणशरीरां गां दत्त्वा दोषमवाप्नुयात् ।

“न व्यंगां रोहिणीं बंध्यां न क्षत्रहृतवत्सलाम् । न वामनां वेहद्गर्भा दद्याद्विप्राय गां नरः” ॥  
वेहद्गर्भा गर्भोपघातिनीम् ।

१५ “न चोषरां न निर्दग्धां महीं दद्यात्कथंचन । न स्मशानपरीतां च न च पापनिषेविताम् ” ॥  
पापा हिंसा प्राणिनाम् ।

“न नर्कादिकूलनिकटा भूमिर्देया कदाचन । न च दद्याद्विजश्रेष्ठो या चतुःसंधिसंस्थिता ॥

“दुःखं ददाति योऽन्यस्य ध्रुवं दुःखं स विंदति । तस्मान्न कस्यचिदुःखं दातव्यं दुःखभीरुणा ॥

“सुवर्णं रजतं ताम्रं यतिभ्यो यः प्रयच्छति । न तत्फलमवाप्नोति तत्रैव परिवर्त्तते ” ॥

२० परिवर्त्तते धर्मविपरीतं जनयतीत्यर्थः ।

“न शूद्राय हविर्दद्यात्सर्पिः क्षीरं तिलं मधु । न शूद्रः प्रतिगृह्णीयात्तेषामन्यं निवेदयेत्” ॥  
तेषामिति क्षीरादीनां क्रयार्थमन्यद्रव्यं निवेदयेत्यर्थः । ‘कृसरं पायसापूपदाधिमधुकृष्णाजिनानि  
शूद्रेभ्यो न दद्यात्’ ।

“यया कयाऽपि वा वृत्त्या निजकर्मात्ययन्सदा । पितरौ बिभृयात्सम्यक् साध्वी भार्या शिशूनपि ॥

२५ “मोहाद्वा वृत्तेर्हेतोर्वा धर्मलोभाच्छठाच्च वा । पितरौ त्यजतो वृद्धौ गतिरूर्ध्वा न विद्यते ॥

“अनाथौ पितरौ पुत्रं साध्वी भार्या च वाऽत्मजाम् । शक्तस्य त्यजतो मोहाद्गतिरूर्ध्वा न विद्यते ॥

“गुर्वर्थमतिथीनां च भृत्यानां च विशेषतः । शूद्राणां प्रतिगृह्णीयान्न च भुंक्ते स्वयं ततः ” ॥

अथ प्रतिग्रहो निरूप्यते । मनुः ( ८।११२ )—

“सिलोच्छ्रमप्याददीत विप्रो जीवन्यतस्ततः । प्रतिग्रहात्सिलं श्रेयस्ततो ह्युच्छः प्रशस्यते ॥

३० “सप्त विचागमा धर्म्या दायो लाभः क्रयो जयः । प्रयोगः कर्मयोगश्च सत्प्रतिग्रह एव च (११५) ॥

“प्रतिग्रहसमर्थोपि प्रसंगं तत्र वर्जयेत् । प्रतिग्रहेण ह्यस्याशु ब्राह्मं तेजः प्रणश्यति (४।१८६) ॥

प्रतिग्रहविधिज्ञो विद्यायुक्तश्च प्रतिग्रहसमर्थः । अयावदार्था पुनः पुनः प्रवृत्तिः प्रसंगः ।

स एव ( ८।१०३ )

“नाध्यापनाद्याजनाद्वा गर्हिताद्वा प्रतिग्रहात् । दोषो भवति विप्राणामनलार्कसमा हि ते” ॥ इति ।

३५ अगर्हितप्रतिग्राहदण्यप्रतिग्रहः श्रेयानित्याह याज्ञवल्क्यः ( आ. २।१३ )—

“प्रतिग्रहसमर्थोऽपि नादत्ते यः प्रतिग्रहम् । ये लोका दानशीलानां स तानामोति पुष्कलान्” ॥ इति ।

व्यासः—

“द्विजातिभ्यो धनं लिप्सेतु प्रशस्तेभ्यो द्विजोत्तमः । अपि वा जातिमात्रेभ्यो न तु शूद्रात्कथंचन ॥

“प्रतिग्रहरुचिर्न स्याद्यात्रार्थं तु समाहरेत् । स्थित्यर्थादधिकं गृह्णन्ब्राह्मणो यात्यधोगतिम् ॥

“अभ्युष्णात्सधृतादन्नादच्छिद्राच्चैव वाससः । अपरप्रेष्यभावाच्च भूय इच्छन् पतत्यधः” ॥ ५

नारदः—

“धनमूलाः क्रियाः सर्वा अतस्तस्यार्जनं मतम् । वर्धनं रक्षणं भोग इति तस्य विधिः क्रमात्” ॥

तत्परंस्त्रिविधं ज्ञेयमित्यादिपूर्वोक्तमवगंतव्यम् ॥ सप्तर्षिसंवादे—

“धर्मार्थः संचयो यस्य द्रव्याणां स प्रशस्यते । तपसंचय एवासौ विशिष्टो द्रव्यसंचयात् ॥

“यथा यथाऽनुगृह्णाति ब्राह्मणोऽसत्प्रतिग्रहम् । तथा तथाऽस्य संतोषात् ब्रह्मतेजोऽभिवर्धते ॥ १०

“आर्किंचन्यं च राज्यं च तुलायां समतोलयत् । अर्किंचनत्वमधिकं राज्यादपि जितात्मनः” ॥

“यो राज्ञः प्रतिगृह्यैव शोचितव्ये प्रहृष्यति । स वै संयाति मूढात्मा नरकानेकविंशतिम्” ॥

स्मृत्यंतरे—

“तीर्थे पापं न कुर्वीत विशेषाच्च प्रतिग्रहम् । दुर्जनं पातकं तीर्थं दुर्जनाच्च प्रतिग्रहः” ॥

मनुः ( ४।८४ )—

१५

“न राज्ञः प्रतिगृह्णीयादराजन्यप्रसूतितः । सूनाचक्रध्वजवतां वेशेनैव च जीविनाम् ॥

“अपि पापकृतो राज्ञः प्रतिगृह्णन्ति साधवः । पृथिवीं नान्यदिच्छंति पावनं ह्येतदुत्तमम्” ॥

अक्षत्रियजातस्य राज्ञः द्रव्यं न प्रतिगृह्णीयात् । सूना हिंसा । चक्रं तैलयंत्रं तद्वान् ध्वजवान् सुराकारि । वेशः वेशकर्म । एषु तारतम्यमाह स एव ( ४।८५ )—

“दशसूना समश्चक्री दशचक्रिसमो ध्वजी । दशध्वजिसमा वेश्या दशवेश्या समो नृपः” ॥ २०

राजन्यप्रसूतेरपि लुब्धस्य प्रतिग्रहे दोषमाह स एव ( ४।८७, ९१ )—

“यो राज्ञः प्रतिगृह्णाति लुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिनः । स पर्यायेण यातीमान् नरकानेकविंशतिम् ॥

“एतद्विदित्वा विद्वांसो ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः । न राज्ञः प्रतिगृह्णन्ति प्रेत्य श्रेयोऽभिकांक्षिणः” ॥

याज्ञयल्क्यः ( आ. १।४१ )—

( ४।९१ )

“प्रतिग्रहे सूनि चक्री ध्वजिवेश्या नराधिपाः । अष्टादशगुणं पूर्वात्पूर्वादेते यथाक्रमम्” ॥ २५

स एव ( आ. १।३० )—

“राजान्तेवासियाज्येभ्यः सीदन्निच्छेद्धनं क्षुधा । ढम्भहेतुकपाषण्डवकवृत्तींश्च वर्जयेत्” ॥

कात्यायनः—

“उपन्यस्तेन यल्लब्धं विधया पणपूर्वकम् । शिष्यादात्विज्यतः प्रश्नासंदिग्धप्रश्ननिर्णयात् ॥

“विज्ञानशंसनाद्वादाल्लब्धं प्राध्ययनाच्च यत् । धनमेवंविधं सर्वं विज्ञेयं धर्मसाधनम् ॥

३०

“अयाचितसिलोच्छैश्च शिष्यदत्तैः क्रमागतैः । जीवेत्कर्मविशुद्धेभ्यः प्रतिगृह्यापि वा धनम् ॥

“याचितेनापि वाऽर्तेन दैन्यं हित्वा शमस्थितः । स्तोकादानेन वा नित्यं प्रतिगृह्यतद्वितः ॥

“दक्षिर्क्षरधृतादीनां लेवणस्य पशोस्तथा । विक्रयिभ्योऽपि नादद्यादश्वविक्रयिणस्तथा ॥

“कौसीदकास्तथा भोक्तुः श्राद्धस्य सततं तथा” ॥ कौसीदको वार्धुषिकः ।

“न ग्रामयाजकेभ्यश्च नागम्यागामिनस्तथा । वणिग्भ्यश्च तथा शूद्राद्विसृष्टाग्नेर्न चाहरेत् ” ॥

मनुः ( ११।१।६ )—

“तथैव सप्तमे भक्ते भक्तानि षडनश्रता । अश्वस्तनविधानेनाहर्तव्यं हीनकर्मणः ” ॥

त्र्यहमुपोष्यान्यत्रालाभे चतुर्थदिने तद्दिनमात्रपर्याप्तं शूद्रतो गृहीयादित्यर्थः स एव

५ “गृह्णन्गोभूरिण्यादि तथा नैव विचारयेत् । कृतान्नं तु गृहीतं तु बहुशः सुपरीक्षितात्” ॥

बृहस्पतिस्मृतौ—

“वृद्धो च मातापितरौ साध्वी भार्या सुतः शिशुः । अप्यकार्यशतं कृत्वा भर्तव्या मनुरब्रवीत्” ॥

अपि कार्यशतमित्यपि पाठांतरम् । हारीतः—“विदितात्प्रतिगृहीयाद्बृहकर्मप्रसिद्धये ” इति ।

अंगिराः—

१० “यत्तु राशीकृतं धान्यं खले क्षेत्रेऽथ वा भवेत् । शूद्रादपि गृहीतव्यमित्यांगिरसभाषणम् ” इति ।

व्यासः—

“कुटुम्बार्थे तु सच्छूद्रात् प्रतिग्राह्यमयाचितम् । कच्चर्थमात्मने चैव न हि याचेत कर्हिचित् ॥

“वृत्तिसंकोचमन्विच्छेन्नेहेत धनविस्तरे । धनलोभप्रवृत्तिस्तु ब्राह्मण्यादेव हीयते ” ॥ इति ।

चत्सुर्विंशतिमते—

१५ “सीदंश्चेत्प्रतिगृहीयाद्ब्राह्मणेभ्यस्ततो नृपात् । ततस्तु वैश्यशूद्रेभ्यः शंखस्य वचनं तथा ॥

“आमं मांसं मधु घृतं धान्यं क्षीरं तथौषधम् । गुडतक्ररसा ग्राह्या निवृत्तेनापि शूद्रतः ” ॥

याज्ञवल्क्यः ( आ. २।१६ )—

“देवातिथ्यर्चनकृते गुरुभृत्यार्थमेव च । सर्वतः प्रतिगृहीयात् आत्मवृत्त्यर्थमेव च ” ॥

अनापद्यधार्मिकराजप्रतिग्रहं निन्दति स एव याज्ञवल्क्यः ( आ. १।४० )—

२० “न राज्ञः प्रतिगृहीयात् लुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिनः ” । इति । स्कान्दे—

“मरुदेशे निरुदके ब्रह्मरक्षस्त्वमागतः । राजप्रतिग्रहात्पुष्टिः पुनर्जन्म न विंदति” ॥ इति ।

ब्रह्मांडपुराणे—

“अनापद्यपि धर्मेण याज्यतः शिष्यतस्तथा । गृह्णन्प्रतिग्रहे विप्रो न धर्मात्परिहीयते ” ॥ इति ।

आपद्विषये मनुराह ( १०।१०२ )—

२५ “सर्वतः प्रतिगृहीयाद्ब्राह्मणस्त्वनयं गतः । पवित्रं दुष्यतीत्येतद्धर्मतो नोपपद्यते ” ॥

अनयं गतः आपदं गतः ।

“जीवितात्ययमापन्नो योऽन्नमत्ति यतस्ततः । आकाशमिव पंकेन न स दोषेण लिप्यते ( १०४ ) ॥

“अजीगर्तः सुतं हंतुमुपासर्पद्बुभुक्षितः । न चालिप्यत दोषेण क्षुत्प्रीतीकारमाचरन् ( १०५ ) ॥

“श्वमांसमिच्छन्नातोऽनुं धर्माधर्मविचक्षणः । प्राणानां रक्षणार्थाय वामदेवो न लिप्तवान् ( १०६ ) ॥

३० “भरद्वाजः क्षुधार्तस्तु सपुत्रो निर्जने वने । बह्वीर्गाः प्रतिजग्राह वृधोस्तक्ष्णो महातपाः ( १०७ ) ॥

“क्षुधार्तश्चात्तुमभ्यागाद्विश्वाभित्रश्च जाघनीयांचंडालहस्तादादाय धर्माधर्मविचक्षणः” ॥ इति ( १०८ )

अनापद्यपि प्रतिग्राह्याण्यह मनुः ( ४।२५० )—

“एधोदकं मूलफलमन्नमभ्युद्यतं च यत् । सर्वतः प्रतिगृहीयान्मध्वथाभयदक्षिणाम् ” ॥

अभयदक्षिणा अभयदानम् ॥

“आहतामुद्यतां भिक्षां पुरस्तादप्रवेदिताम् । मेने प्रजापतिर्भोज्यामपि दुष्कृतकारिणः” ॥ (२५१)  
भिक्षामन्नम्

“न तस्य पितरोऽश्रन्ति दशवर्षाणि पञ्च च । न च हव्यं वहत्यग्निंस्तामभ्यवमन्यते” (२५२) ॥

तस्य तदीयां तां भिक्षां अवमन्यते प्रत्याख्याति । अन्यदप्यभ्युदितं प्रतिग्राह्यमाह  
स एव—( ४१२५३ )

“शय्यां गृहान्कुशान्गन्धानपःपुष्पं मणिं दधि । धाना मत्स्यान् पयो मांसं शाकं चैव न निर्णुदेत्” ॥ इति ।

आपस्तम्बः (१११८१)—“मध्वां मार्गं मांसं भूमिर्मूलफलानि रक्षा गव्यूतिर्निवेशनं  
युग्यघासञ्चोग्रतः प्रतिग्राह्याणि” इति । आमं तंडुलादि । मार्गमांसं मृगमांसं । भूमिः शालेयादि-  
क्षेत्रं । रक्षा अभयदानं । गव्यूतिर्गोमार्गः । निवेशनं गृहम् । युग्यो बलीवर्दस्तस्य घासो भक्षणं  
पलालादि । एतान्यनापदि उग्रतोऽपि ग्राह्याणि । उग्रः वैश्याच्छूद्रायां जातः पापकर्मा वा । १०  
ततोऽपीत्यर्थः । स एव ( १११८७-८ )— “नात्यंतमन्ववस्येद्वृत्तिं प्राप्य विरमेत्” इति ।  
अत्यंतं नावसीद्व्यथाकथंचिज्जीवेत् । यदा तु विहिता वृत्तिर्लभ्यते तदा निषिद्धाया वृत्ते-  
र्विरमेदित्यर्थः । विशेषवचनम्

“गुर्वर्थमतिथीनां वा भृत्यानां वा विशेषतः । शूद्रान्नं प्रतिगृह्णीयान्न तु भुङ्के स्वयं ततः ॥

“प्रतिग्राह्यं परिक्षेत पुरस्ताद्धि प्रतिग्रहे । अन्नस्य तु विशेषेण महान्नं न प्रतिग्रहः ॥ १५

“दुष्कृतं निखलं नृणामनाधारव्यवस्थितम्” । गौतमः (अ. १७ सू. १-५)—“प्रशस्तानां  
स्वकर्मसु द्विजातीनां ब्राह्मणो भुञ्जीत । प्रतिगृह्णीयाच्चैधोदकयवसमूलफलमध्वभयाभ्युद्यतशय्यासना-  
वसथयानपयोदधिधानाशफरीप्रियंगुस्रकमार्गशाकान्यप्रणोद्यानि सर्वेषाम् । पितृदेवगुरुभृत्यभरणेऽ-  
प्यन्यत् । वृत्तिश्चेन्नांतरेण शूद्रात्” इति । स्वकर्मसु वर्णाश्रमप्रयुक्तेषु ये प्रशस्तास्तेषामेव गृहे ब्राह्मणो  
भुञ्जीतेषामेव सकाशात्प्रतिगृह्णीयाच्च । एधोदकानि तु सर्वेषामप्रशस्तानामपि सकाशाद् ग्राह्याणि । २०  
शफरी मत्स्यविशेषः । पितृभरणं श्राद्धकरणम् । देवभरणमग्निहोत्रादि । गुरवः पित्रादयः । भृत्याः  
पुत्रदारादयः । तेषां भरणं भक्तादिदानम् । एतेषु निमित्तेष्वन्यदप्रणोद्यं सर्वं सर्वतः प्रतिग्राह्य-  
मंतरेण जीवनं न निवर्तते तदा शूद्रादपि प्रतिगृह्णीयादित्यर्थः । “शूद्रेभ्योऽपि समादद्या-  
च्छुद्धेभ्य इति मे मतिः” इति आश्वलायनः—

“यथा कयाऽपि वा वृत्त्या निजकर्मात्यजन् सदा । पितरौ बिभृयात्सम्यक् साध्वी भार्या शिशून्पि ॥ २५

“मोहाद्वा वृत्तिहेतोर्वा धर्मलोभाच्छठाच्च वा । पितरौ त्यजतो वृद्धौ गतिरूर्ध्वा न विद्यते ॥

“अनाथौ पितरौ वृद्धौ साध्वी भार्या तथात्मजान् । शक्रस्य त्यजतो मोहात् गतिरूर्ध्वा न विद्यते ॥

“गुर्वर्थमतिथीनां च भृत्यानां च विशेषतः । शूद्रान्नं प्रतिगृह्णीयात् न च भुङ्के स्वयं ततः ॥

“शूद्रेभ्योऽपि समादद्यात् शुद्धेभ्य इति मे मतिः” । इति । याज्ञवल्क्यः ( आ. २१५ )—

“अयाचिताहृतं ग्राह्यमपि दुष्कृतकारिणः । अन्यत्र कुलटाषण्डपतितेभ्यस्तथा द्विषः” ॥ ३०

हारीतः—

“चिकित्सकस्य मृगयोर्वैश्यायाः कितवस्य च । षण्डसूतकयोश्चैव उद्यतामपि वर्जयेत्” ॥

अत्र मनुः ( ४१२५४-२५५ )—

“गुरुभृत्यांश्चोजिहीर्ष्यन्निचिष्यन् देवतातिथीन् । सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्न तु वृत्त्यात्स्वयं ततः ॥

“गुरुषु त्वभ्यतीतेषु विना वा तैर्युहे वसन् । आत्मनो वृत्तिमन्विच्छन्गृहीयात्साधुतः सदा ” ॥  
तैर्विना गुरुर्विना स्वयं न प्रतिगृहीयात् । द्रव्यनिरपेक्षेषु गुरुष्वित्यर्थः । हेमाद्रौ—

“असत्प्रतिग्रहः प्रोक्तः कालतो देशतस्तथा । स्वरूपतो जातितश्च कर्मतश्चेति पंचधा” ॥  
कालो ग्रहणादिः । देशः कुरुक्षेत्रादिः । स्वरूपं मेघीकृष्णाजिनादिकम् । जातिः शूद्रादिः । कर्म  
५ पतनीयवृत्तिः । तत्रैव—

“मेघीं च महिषीमाज्यं गामप्युभयतोमुखीम् । कारणं कालपुरुषं पुरुषं च तिलाचलम् ॥

“अजाविकं तथाश्वं च मरणे चाद्यमासिकम् । दुर्दानान्याहुरेतानि; प्रतिगृह्णन्ति ये द्विजाः ॥

“न तेषां वदनं पश्येदृष्ट्वा चक्षुर्निमीलयेत् ॥

“कृष्णाजिनं च महिषं मेघीं चोभयतोमुखीम् । दासीं च प्रतिगृह्णानो न भूयः पुरुषो भवेत् ॥

१० “प्रेतान्नं प्रेतशय्यां च नम्रप्रच्छादनं भजन् । उत्क्रांतिं कालरूपं च न भूयः पुरुषो भवेत् ॥

“बहुशो द्विजवित्तानामपि स्तेयं तरिष्यति ” ॥ आतुरं मुमुर्षुः ।

“सर्वालंकारवस्त्राणि प्रतिगृह्य मृतस्य तु । नरकाच्च निवृत्ते तं धानां तिलमयं तथा ॥

“कालं च महिषीमाज्यमेकोद्विष्टमृतत्रये । दाता प्रतिगृहीतारं पश्येच्चेत्पुण्यनाशनम् ” इति ॥

“आविकं त्वधिकं वस्त्रं तूलं तूलपटीं तथा । काञ्चनं शिबिकां गाश्च भूमिं धान्यं धनं स्त्रियः ॥

१५ “दासीं दासं गृहं यानं रसद्रव्यं तथा पशून् । प्रतिगृह्य यतिश्चैतान्पातितो नात्र संशयः ” ॥

जाबालिः—

“यतिहस्तगतं द्रव्यं गृहीयाज्ज्ञानतो यदि । अधः स नयते मूढः कुलानामेकविंशतिम् ” ॥

याज्ञवल्क्यः ( आचारे २०२ )—

“विद्यातपोभ्यां हीनेन न तु ग्राह्यः प्रतिग्रहः । गृह्णन् प्रदातारमधो नयत्यात्मानमेव च ” ॥

२० मनुः ( ४।१८७ )—

“न द्रव्याणामविज्ञाय विधिं धर्म्यं प्रतिग्रहे । प्राज्ञः प्रतिग्रहं कुर्यादवसीदन्नपि क्षुधा” ॥

यत्किञ्चित्प्रतिगृहीयात्सर्वमुत्तानस्त्वांगिरसः प्रतिगृह्णात्वित्येव प्रतिगृहीयादिति विधिः ॥

द्रव्यप्रतिग्रहविधिः ॥

विशेषतो हिरण्यादिकमविदुषा न प्रतिग्राह्यमित्याह स एव मनुः ( ४।१८८-१८९ )

२५ “हिरण्यं भूमिभ्रवं गामन्नं वासास्तिलान्धृतम् । अविद्वान्प्रतिगृह्णानो भस्मीभवति दारुवत् ॥

“हिरण्यमायुरन्नं च भूगौश्चाप्योषतस्तनुम् । अश्वश्चक्षुस्त्वचं वासो घृतं तेजस्तिलाः प्रजाः ” ॥

औषतः दहतः । दाहश्चात्र रोगः ॥

“अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः । अभस्यश्मप्लवेनेव दात्रैव सह मज्जति ( १९० ) ॥

“तस्मादविद्वान्निभियाद्यस्मात्कस्मात्प्रतिग्रहात् । अल्पकेनाप्यविद्वान् हि पंके गौरिव सीदति ॥

३० “वानस्पत्यं फलं मूलं दार्वगन्थ्यं वृणानि च । वृणं च गोभ्यो गृह्यार्थमस्तेयं मनुरब्रवीत् ” ॥

( ८।३४० ) । तथैव चेति मुद्रितपाठः

“चणकत्रीहिगोधूमयवानां मुद्रमाषयोः । अनिषिद्धो ग्रहीतव्यो मुष्टिरेकोध्वनिर्जितैः ” ॥

आपस्तम्बः ( १।२८।३-५ ) “शम्योषा युग्यघासो न स्वामिनः प्रतिषेधयन्ति । अतिव्यवहारो  
व्यूढो भवति सर्वत्रानुमतिपूर्वं इति हारीतः ” । शम्योषाः कोशधान्यानि माषमुद्रादयः ॥

गौतमः ( १२।२५ )— “ गोगन्यर्थे वृणमेधान्वीरूद्धनस्पतीनां च पुष्पाणि स्ववदाददीत फलानि चापरिवृतानाम् ” इति ।

मनुः ( ८।३४२ )—

“ द्विजोऽध्वगः क्षीणवृत्तिर्दाविक्षूद्रे च मूलके । आददानः परक्षेत्राच्च हस्तच्छेदमर्हति ” ॥

द्विजेभ्योऽन्यो दण्ड्य एव ।

“ वृणं वा यदि वा काष्ठं मूलं वा यदि वा फलम् । अनापृष्टं तु गृह्णानो हस्तच्छेदनमर्हति ” ॥

इति स्मृतेः । संवर्तदक्षौ—

“ यस्तु जापी सदा होमी परपाकविवर्जितः । सर्वरत्नामिमां पृथ्वीं प्रतिगृह्णन्न लिप्यते ” ॥

व्यासः—

“ प्रतिगृह्य द्विजो नित्यं दुग्धा गौरिव गच्छति । पुनराप्यायते धेनुस्तृणैरमृतसंभवैः ॥ १०

“ एवं जपैश्च होमैश्च पुनराप्ययते द्विजः ” इति ॥ मनुः ( १०।१११ )—

“ जपहोमैरपैत्येनो याजनाध्यापनैः कृतम् । प्रतिग्रहनिमित्तं नु त्यागेन तपसैव च ” ॥ इति

विष्णुधर्मोत्तरे—

“ ग्राह्यं प्राणप्रदानं तु चंडालात्पुल्कसादपि । जीवन्सर्वमवाप्नोति जीवन्कर्म करोति च ॥

“ शरीरं धर्मसर्वस्वं रक्षणीयं प्रयत्नतः ” ॥ इति प्रतिग्रहविधिः ॥ १५

अथ ब्राह्मणस्य वृत्त्यन्तराण्याह मनुः ( ४।२-६ )—

“ ऋतामृताभ्यां जीवेत्तु मृतेन प्रमृतेन च । सत्यामृताभ्यामपि वा न श्ववृत्त्या कदाचन ॥

“ ऋतमुच्छसिलं प्रोक्तममृतं स्यादयाचितम् । मृतं तु याचितं प्रोक्तं प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ॥

“ सत्यामृतं तु वाणिज्यं तेन चैवापि जीव्यते । सेवा श्ववृत्तिराख्याता तस्मात्तां परिवर्जयेत् ” ॥

पूर्वपूर्ववृत्त्युपायालाभे परः पर आस्थेयः । एवं वृत्त्युपायान्नियम्योपेयमपि नियम इति । २०

“ कुसूलधान्यको वा स्यात्कुंभीधान्यक एव च । ब्रह्मैहिको वाऽपि भवेदश्वस्तनिक एव वा ॥ (७)

“ चतुर्णामपि चैतेषां द्विजानां ग्रहमेधिनाम् । ज्यायानपरः परो ज्ञेयो लोकजो धर्मवित्तम् ” ॥ (८)

कुसूलात् किंचिन्न्यूना धान्याधारी कुंभी । द्वयोरन्होरैहिकमिह भोग्यं वस्तु यस्य स ब्रह्मैहिकः ।

श्वो भोज्यं वस्तु श्वस्तनं तद्यस्य नास्ति स अश्वस्तनिकः । चतुर्णां कुसूलधान्यादीनां एव

तावदुपेयपरिमाणतश्चातुर्विधां ग्रहमेधिनामुक्तम् । उपायपरिमाणतोऽप्याह स एव ( ४।९ )— २५

“ षट्कर्मैको भवत्येषां त्रिभिरन्यः प्रवर्तते । द्वाभ्यामेकश्चतुर्थस्तु ब्रह्मसूत्रेण जीवति ” ॥

एषां मध्ये एकः षट्कर्मा भवति । षड्भिर्ब्राह्मणनियतैर्याजनाध्यापनप्रतिग्रहैस्त्रैवार्षिकनियतैः

प्रमृतसत्यामृतकुसीदैश्चार्थसंचये प्रवर्तत इत्यर्थः । त्रिभिर्याजनाध्यापनप्रतिग्रहैः द्वाभ्यां याजना-

ध्यापनाभ्यां ‘प्रतिग्रहः प्रत्यवरः’ ( अ. ८-१०५ ) इति निंदितत्वात्प्रतिग्रहो विवर्जनीय इत्यर्थः ॥

ब्रह्मसूत्रेण अध्यापनेन विहितयाऽपि वृत्त्या हिंसारहितया तदशक्तौ हिंसाबाहुल्यरहितया वा ३०

जीवेदित्याह स एव ( ४।२-३ )—

“ अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः । या वृत्तिस्तां समास्थाय विप्रो जीवेदनापदि ॥

“ यात्रामात्रप्रसिद्धयर्थं स्वैः कर्मभिरगर्हितैः । अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसंचयम् ” ॥ इति ।

लौकिकवैदिककर्मणामवश्यकर्तव्यानां निवृत्तिर्यात्रा । स एव ( ४।११-१२ )—

“ न लोकवृत्तं वर्तेत वृत्तिहेतोः कथंचन । अजिम्हामशठां शुद्धां जीवेद्ब्राह्मणजीविकाम् ॥  
 “ संतोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् । संतोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ” ॥ इति ।

याज्ञवल्क्यः ( आचारे १२८ )—

“ कुसूलकुम्भीधान्यो वा व्याहिकोऽश्वस्तनोऽपि वाजीवेद्वाऽपि सिलोच्छेन श्रेयानेषां परः परः ” ॥ इति ।

५ एतच्चातिसंयतत्वं यायावरं प्रति उच्यते । न ब्राह्मणमात्राभिप्रायेण । तथा सति “ त्रैवार्षिका-  
 धिकान्नो यः स हि सोमं पिबेद्विज ” ( या. व. आ. १२४ ) इत्यादिभिर्विरोधः स्यात् । तथा च  
 द्वैविध्यमुक्तं देवलेन “ द्विविधो गृहस्थो यायावरः शालीनश्च । तयोर्यायावरः प्रवरो याजना-  
 ध्यापनप्रतिग्रहरिक्थचयवर्जनात्षट्कर्माधिष्ठितः । प्रेष्यचतुष्पदग्रहग्रामधनादियुक्तो लोकानुवृत्तिः  
 शालीनः ” इति । व्यासः—

१० “ द्विविधस्तु गृही ज्ञेयः साधकश्चाप्यसाधकः । अध्यापनं याजनं च पूर्वस्याहुः प्रतिग्रहम् ॥  
 “ कुसीदं कृषिवाणिज्यं प्रकुर्वीतास्वयंकृतम् । आपत्कल्पः स्वयं ज्ञेयः पूर्वोक्तो मुख्य इष्यते ॥  
 “ असाधकस्तु यं प्रोक्तो गृहस्थाश्रमसंस्थितः । शिलोच्छे तस्य कथिते द्वे वृत्ती परमर्षिभिः ॥  
 “ अमृतेनाथवा जीवेन्मृतेनाप्यथवापदि । अयाचितं स्यादमृतं मृतं भैक्षं तु याचितम् ” ॥ इति ।

शांडिल्यः—

१५ “ अयाचितोपपन्नेषु नास्ति दोषः प्रतिग्रहे । अमृतं तद्विदुर्देवास्तस्मात्तत्रैव निर्णुदेत् ” ॥ इति ।  
 अथापद्वृत्तिः ॥ तत्र मनुः ( ८।८१-८२ )  
 “ अजीवंस्तु यथोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा । जीवेत्क्षत्रियधर्मेण स ह्यस्य प्रत्यनंतरः ॥  
 “ उभाभ्यामप्यजीवंस्तु कथं स्यादिति चेद्भवेत् । कृषिगोरक्ष्यमास्थाय जीवेद्वैश्यस्य जीविकाम् ” ॥

व्यासः—

२० “ क्षत्रवृत्तिं परामाहुर्न स्वयं कर्षणं द्विजैः । तस्मात्क्षत्रेण वर्तेत वर्तनेनापदि द्विजः ॥  
 “ तेन चैवाप्यजीवंस्तु वैश्यवृत्तिं कृषिं यजेत् ” ॥ इति । याज्ञवल्क्यः ( प्रायश्चित्ते ३५ )—  
 “ क्षात्रेण कर्मणा जीवेद्विशां वाऽप्यापदि द्विजः । निस्तीर्यतामथात्मानं पावयित्वा न्यसेत्पथि ” ॥  
 आपन्निस्तरणानंतरं स्वमार्गे वर्तेतेत्यर्थः । गौतमः ( ७।६-७ )— “ तदलाभे क्षत्रियवृत्तिस्तदलाभे  
 वैश्यवृत्तिः ” ॥ इति । मनुः ( ८।७९ )—

२५ “ शस्त्रास्त्रभृत्वं क्षत्रस्य वणिक्पशुकुषीर्विशः । आजीवनार्थं धर्मस्तु दानमध्ययनं यजिः ” ॥

देवलः—

“ यागाध्ययनदानास्त्रप्रजारक्षाभयादि च । दंडनीतिर्धनुर्वेदः क्षत्रियस्यानुवृत्तये ॥

“ शौर्यं तेजो धृतिर्धाष्ट्यं युद्धे चाप्यपलायनम् । दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥

“ स्वाध्यायादीनि कर्माणि कुसीदं पशुपालनस्य कृषिक्रिया च वाणिज्यं वैश्यकर्माण्यमूनि च ” ॥ इति ।

३० “ वरं स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात् । परधर्मेण जीवन् हि सद्यः पतति जातितः ” ॥ इति ।  
 इत्यादीनि मन्वादिवचनानि आपदि विगुणस्यापि स्वधर्मस्य याजनादेः संभवे वेदितव्यानि ।  
 असंभवे त्वापदि क्षत्रियादिवृत्तिः । इयं हि हिंसाप्राया कलौ वर्जनीया ।

“ आततायिद्विजाग्न्याणां धर्मयुद्धेन हिंसनम् । आपद्वृत्तिद्विजाग्न्याणामश्वस्तनिकता तथा ” ॥ इति ।

कलौ निषिद्धत्वात् । “ क्षत्रवृत्त्या वैश्यवृत्तिः प्रशस्ता स्यात् कलौ युगे ” इत्याश्वलायनः ।



**आपस्तम्बः** ( १।२०।१०-११ )—“अविहिता ब्राह्मणस्य वाणिज्या आपदि व्यवहरेत् पण्यानामपण्यानि व्युदस्यन्” इति । क्रयश्च विक्रयश्च वाणिज्या । अपण्यानि व्युदस्यन्वर्ज्यनपण्यानि व्यवहरेत् विक्रीणीयाद्वेत्यर्थः । कृत्स्नाया वैश्यवृत्तेरूपलक्षणमिदम् । अपण्यानि स्वयमाह ( १।२०।१२-१६; २।१।१-४ )—“मनुष्यान् रसान् रागान्गंधानन्नं चर्म गवां वशां श्लेष्मोदके तोक्मविकिण्वे पिप्पलिमरीचे धान्यं मांसमायुधं सुकृताशां च । तिलतंडुलांस्त्वेव धान्यस्य विशेषेण न विक्रीणायात् । अविहितश्चैतैषां मिथो विनिमयोऽन्नेन चान्नस्य मनुष्याणां च मनुष्यै रसानां च रसैर्गंधानां च गंधैर्विद्यया च विद्यानामक्रीतपणैर्व्यवहरेत् । मुंजबल्वजैर्मूलफलैः स्तृणकाष्ठैरविकृतैर्नात्यंतमन्ववस्येदृत्तिं प्राप्य विरमेत्” ॥ इति । मनुष्या दासादयः । रसा गुड-लवणादयः क्षीरादयो वा । रागाः कुसुमादयः । गंधाश्चंदनादयः । गवां मध्ये वशा वंध्या । गौश्लेष्म-विश्लिष्टचर्मादिसंधानहेतुभूतं जतुप्रभृति तोक्मानि ईषदंकुरितानि व्रीह्यादीनि । किण्वं सुरापक्रुतिकं द्रव्यम् । सुकृतं पुण्यं तस्य फलं सुकृताशाम् । धान्यानां मध्ये तिलतंडुलानेव विशेषतो न विक्रीणीयादन्येषां विकल्पः विनिमयः । परिवर्तनं येषां विक्रयः प्रतिषिद्धस्तेषां परस्परेण विनिमयोऽप्यविहितः प्रतिषिद्धस्तेष्वेव केषांचिदन्नादीनां विद्यान्तानां विनिमयो भवत्येव । अक्रीतानि स्वयमुत्पादितानि अरण्यादाहृतानि तैर्व्यवहरेत् । मुञ्जबल्वजास्तृणविशेषाः । तृणविकारो रज्जादिभावः । काष्ठानां विकारः । स्थूणादिभावः न पुनरत्यंतमवसीदेत्प्रतिषिद्धानामपि विक्रयवि- निमयाभ्यां जीवेदित्यर्थः । अत्र मनुः ( ८।८६-८९ )—

“सर्वान्नसानपोहेत कृतान्नं च तिलैः सह । अश्मनो लवणं चैव पशवो ये च मानुषाः ॥

“सर्वं च तांतवं रक्तं शाणक्षौमाविकानि च । अपि चेतस्युररक्तानि फलमूले तथौषधीः ।

“आपः शस्त्रं विषं मांसं सोमं गंधाश्च सर्वशः । क्षीरं क्षारं दधि घृतं तैलं मधु गुडं कुशान् ।

“आरण्याश्च पशून्सर्वांश्च दंष्ट्रिणश्च वयांसि च । मयं नीलं च लाक्षांश्च सर्वाश्चैकशफान्पशून् ॥ २०

“त्रपुसीसे तथा लोहं रजतं चैव सर्वशः । बालांश्चर्म तथाऽस्थीनि वसास्नायूनि रोचनाम्” ॥ इति ।

यत्तु “काममुत्पाद्य कुण्यां तु स्वयमेव कुषीबलः । विक्रीणीत तिलान् शुद्धान्धर्मार्थमचिरस्थितान्” ॥

( ८।९० ) इति मानववचनं तद्विनिमयाभिप्रायमिति व्याख्यातारः । स्वयमुत्पादिततिलविक्रये न दोष इत्यन्ये । वसिष्ठः ( २।३७-३९ ) “रसा रसैः समतो हीनतो वा तिलतंडुलपक्वान्-विहिता मनुष्याश्च परिवर्तनीयाः” इति । मनुः ( ८।९२-९३ )—

“सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च । ज्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ॥

“इतरेषां त्वपण्यानां विक्रयादिह कामतः । ब्राह्मणः सप्तरात्रेण वैश्यभावं निगच्छति ॥

“एका गौर्न प्रतिग्राह्या द्वितीया न कथंचन । सा चेद्विक्रयमापन्ना दहत्या सप्तमं कुलम् ॥

“गवां विक्रयकारी तु गवि रोमाणि यानि तु । तावद्वर्षसहस्राणि पंकेष्वेवावसीदति ॥

“दानाभ्यंजनहोमेभ्यो यदन्यत्कुरुते तिलैः । किमिभूतश्च विष्टायां कर्मणा तेन पापकृत् ॥ ३०

“क्रीताः प्रतिगृहीताश्च न विक्रेयास्तिलाः स्मृताः” । बोधायनः ( २।१।५३ )—

“पितृन्वा एष विक्रीणीते यस्तिलान्विक्रीणीते । ब्राह्मणान्वा एष विक्रीणीते यस्तंडुलान्विक्रीणीते” इति । पराशरः ( २।८ )—

- “तिला रसा न विक्रेया विक्रेया धान्यतः समाः । विप्रस्यैवंविधा वृत्तिस्तृणकाष्ठादिविक्रयः॥” इति ।  
 विक्रेया विनिमेयाः । यावद्भिः प्रस्यैस्तिला दत्तास्तावद्भिरेव धान्यांतरमुत्पादेयं नाधिकमित्यर्थः ।  
 तिलन्यायो रसेऽपि घृतादौ योजनीयः । गौतमोऽपि ( ७।८-२३ )— “तस्यापण्यं गंधरसः  
 कृतान्नतिलशाणक्षौमाजिनानि । रक्तनिर्णिके वाससी । क्षीरं सविकारं मूलफलपुष्पौषधमधु-  
 ५ मांसतृणोदकापण्यानि । पशवश्च हिंसासंयोगे । पुरुषवशा कुमारीवेहतश्च नित्यम् । भूमि-  
 व्रीहियवाजाव्यश्ववृषभधेन्वनहुश्चैके । नियमस्तु । रसानां रसैः । पशूनां च । न कृतान्नलवणयोः ।  
 तिलानां च । समेन तु पक्वस्य संप्रत्यर्थे । सर्वथा तु वृत्तिरशक्तावशूद्रेण । तदप्येके प्राणसंशये” इति ।  
 तस्य वैश्यवृत्तेर्ब्राह्मणस्यापण्यमविक्रेयं रक्तं लाक्षादिविकृतं निर्णिकं रजकादिधौतं ते  
 वाससी अपण्ये अपथ्यं विषादि पशवो गवादयः ते चाप्यपण्या हिंसासंयोगे सौनिकादौ  
 १० वेहकृषभः पुरुषादयोऽपि नित्यं हिंसासंयोगादन्यत्रापि रसानां रसैरेव विनियमः कर्तव्यस्त-  
 द्यथा तंडुलं दत्वा घृतं ग्राह्यमिति । लवणस्य कृतान्नस्य न केनचिदपि विनियमः कर्तव्यः ।  
 तिलानां च धान्यैर्विनाऽन्यैर्विनिमयो न कर्तव्यः । क्षुधितस्य संप्रति इदानीमेव बुभुक्षायां  
 समेनामेन पक्वस्य विनिमयः प्रस्थतंडुलं दत्वा तावता पक्व ओदनो विनिमेयः । अशक्तः सर्वथा  
 प्रतिषिद्धानामपि विक्रयविनिमयाभ्यां जीवेन्न शूद्रकर्मणा तदपि प्राणसंशये एके मन्यन्ते ।  
 १५ शौद्रमपि कर्मोच्छिष्टभक्षणादिकम् । इत्यर्थः तथा च व्यासः—

“धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राणाः संस्थितिहेतवः । तानि घृतां किं न हतं रक्षता किं न रक्षितम् ” ॥

शातातपः—

“सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च । व्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयी ॥

“आममांससुरासोमलाक्षालवणसर्पिषाम् । विक्रये चाप्यपण्यानां द्विजश्चांद्रायणं चरेत्” ॥ इति ॥

- २० पराशरः ( १।३७ )— “षट्कर्मनिरतो विप्रः कृषिकर्म च कारयेत् ” इति

“हिंसाप्रायां पराधीनां कृषिं यत्नेन वर्जयेत् । भूमिं भूमिशयांश्चैव हंति काष्ठैरयोमुखैः” ॥ इति  
 मनुवचनं ( १०।८३-८४ ) स्वयंकृताभिप्रायम् । तथा च गौतमः ॥ ( १०।५ ) “कृषि-  
 वाणिज्ये चास्वयंकृते” इति मनुबृहस्पतिः स्वयंकर्तृकां तां कृषिमंगीचकार

“कुसीदं कृषिवाणिज्यं प्रकुर्वीत स्वयं कृतम् । आपत्काले स्वयं कुर्यान्नैनसा युज्यते द्विजः” ॥

- २५ इति । बाढं कारयितुमप्यशक्तस्य तत्कर्तृत्वमापत्काल इति विशेषितत्वात् युगांतरेषु  
 कारितत्वमापद्धर्मः । कलौ कारयितृत्वं मुख्यधर्मः कर्तृत्वमापद्धर्मः प्राधान्येन कलियुगधर्मप्रति-  
 पादने प्रवृत्तेन पराशरेण ( २।१-२ )

“अतः परं गृहस्थस्य कर्माचारं कलौ युगे । संप्रवक्ष्यामि” इत्युपक्रम्य “कृषिकर्म च कारयेत्”  
 इति आचारत्वेनाभिधानात्कारयितृत्वं मुख्यं “आपत्काले स्वयं कुर्यात्” इति स्मृतेः कर्तृत्व-

- ३० मापद्धर्म इति माधवीये ।

“अत्यापदि स्वपित्रोस्तु पालनाय स्वयं यदि । यः करोति कृषिं सोऽपि हलाग्रं न स्पृशेद्विजः ॥  
 “शावं निर्वापि चेद्यश्च यश्च स्याद्धलकृद्विजः । धोरं तमसि मज्जन्ति ते विप्रा नामधारकाः” ॥  
 इत्याश्वलायनयाज्ञवल्क्यौ ( प्रा. ३६-४० )

“ फलोपलक्षौमसोममनुष्यापूपवीरुधाम् । तिलौदनरसक्षारान् दधि क्षीरं घृतं जलम् ॥

“ शस्त्रासवमधूच्छिष्टं मधु लाक्षा च बर्हिषः । मृच्चर्मपुष्पकुतपकेशतक्रविषक्षितीः ॥

कुतपः कंबलश्चमरिः

“ कौशेयं तैलवणमांसैकशफसीसकान् । शाकाद्रौषधिपिण्याकपशुगन्धांस्तथैव च ॥

“ वैश्यवृत्त्याऽपि जीवन्नो विक्रीणीत कदाचन । धर्मार्थं विक्रयं नेयास्तिला धान्येन तत्समाः ॥ ५

“ लाक्षालवणमांसानि पतनीयानि विक्रये । यवो दधि च मयं च हीनवर्णकराणि तु ॥

“ कृषिः शिल्पं भृतिर्विद्या कुसीदं शकटं गिरिः । सेवानूपो भैक्षचर्यमापत्तौ जीवनानि तु” (४२) ॥

आपत्तौ जीवनानीतिविशेषणादनापदवस्थाया इयं सेवावृत्तिरनेन नाभ्यनुज्ञायते । यथा अनापदि वैश्यवृत्तिः स्वयंकृता कृषिर्विप्रक्षत्रिययोर्म्यनुज्ञायते एवं शिल्पादीनि अभ्यनुज्ञायते । विद्या भृतकाध्यापकद्वारा । कुसीदं वृध्यर्थं द्रव्यप्रयोगः । तत्स्वयं कृतमभ्यनुज्ञायते । शकटं धान्यादिवहनं १०

द्वारा । गिरिस्तद्गतमूलं धनादिद्वारेण जीवनहेतुः । अनूपं प्रचुरवृणवृक्षजलप्रायप्रदेशः । एतान्यापत्तौ जीवनानीत्यर्थः । कृषौ वर्जनीयान्योजयंश्च बलीवर्दानाह श्लोकद्वयेन पराशरः (२१४-५)

“ क्षुधितं वृषितं शांतं बलीवर्दं न योजयेत् । हीनांगं व्याधितं क्लीबं वृषं विप्रो न वाहयेत् ॥

“ स्थिरांगं नीरुजं दृढं सुनर्दं षण्ढवर्जितम् । वाहयेद्विवसस्यार्थं पश्चात्स्नानं समाचरेत्” ॥

स्नापयेदित्यर्थः । हारीतः—

१५

“ अष्टागवं धर्म्यहलं षड्ववं जीवितार्थिनाम् । चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं ब्रह्मघातिनाम् ॥

“ बालानां दमनं चैव वाहनं च न शस्यते । वृद्धानां दुर्बलानां च प्रजापतिवचो यथा” ॥

प्राण्युपघातदोषापनयनाय यथाशक्ति जपादिकं विधत्ते पराशरः ( २१६ )—

“जप्यं देवार्चनं होमं स्वाध्यायं चैवमभ्यसेत् । एकद्वित्रिचतुर्विप्रान्स्नातकान् भोजयेद्विजः” ॥ इति ।

पुनः प्रतिकारं वक्तुं कृषौ पापाधिक्यं दर्शयति स एव ( २१९ )

२०

“ ब्राह्मणश्चेत्कृषिं कुर्यात्तन्महादोषमाप्नुयात् ।

“ संवत्सरेण यत्पापं मत्स्यघाती समाप्नुयात् । अयोमुखेन काष्ठेन तदेकाहेन लांगली” ॥ इति ।

स एव ( २११३ ) “ विप्राणां त्रिंशकं भागं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

“ यो न दद्याद्विजातिभ्यो राशिमूलमुपागतः । स चोरः स च पापिष्ठो ब्रह्मघ्नं तं विनिर्दिशेत्” ॥

चंद्रिकायां

२५

“ अदत्त्वा कर्षको गेहं<sup>१</sup> यस्तु धान्यं प्रवेशयेत् । तस्य वृष्णाभिभूतस्य क्रूरं पापं ब्रवीम्यहम् ॥

“ दिव्यं वर्षसहस्रं तु दुरात्मा कृषिकारकः । मरुद्देशे भवेद् वृक्षः सपुष्पफलवर्जितः ॥

“ तस्यांते मानुषो भूत्वा कदाचित्कालपर्यये । दरिद्रो व्याधितो मूर्खः कुलहीनश्च जायते ॥

“ भूमिं भित्त्वौषधिं छित्वा क्रुमिकीटपिपीलिकाः । पुनंति खलयज्ञेन कर्षका नात्र संशयः” ॥ इति ।

कर्षकस्यायं खलयज्ञो नित्यकाम्य इति वचनद्वयबलादवसीयते । अकरणे प्रत्यवायात्तस्य ३०

नित्यत्वाच्छेदनादिपापनिवर्तकत्वात्काम्यत्वम् । नारदः

“ आपत्स्त्वपि हि कष्टासु ब्राह्मणस्य न वार्धुषम् । भ्रूणहत्यां च तुलया वार्धुष्यं समतोलयत् ।

“ अतिष्ठद् भ्रूणहा कोट्यां वार्धुषिः समकम्पत” ॥ इति अत्र मनुः—(८।१४१; १०।९५)

“अशीतिभागं गृहीयान्मासाद्वार्धुषिकः शते । जीवेदेतेन राजन्यः सर्वेणाप्यनयं गतः” ॥  
अनयं आपदम् ।

याज्ञवल्क्यः ( २।३७ )—

“अशीतिभागो वृद्धिः स्यान्मासि मासि संबंधके । वर्णक्रमाच्छतं द्वित्रिश्चतुःपंचकमन्यथा” ॥

५ अन्यथा अवंधके । पराशरः ( २।७ )—

“स्वयं कृष्टे तथा क्षेत्रे धान्यैश्च स्वयमर्जितैः । निर्वपेत्पंचयज्ञांश्च क्रतुदीक्षाश्च कारयेत्” ॥

बोधायनः ( १।५।८५ )—

“वेदः कृषिविनाशाय कृषिवेदविनाशिनी । शक्तिमानुभयं कुर्यादशक्तश्च कृषिं त्यजेत्” ॥ इति ॥

“विप्राणां दासवृत्तिस्तु वर्ज्या यत्नेन सर्वदा” इत्याश्वलायनः ।

१० अथ क्षत्रियधर्माः ॥ मनुः ( १०।७७-७८ )—

“त्रयो धर्मा निवर्तते ब्राह्मणात्क्षत्रियं प्रति । अध्यापनं याजनं च तृतीयश्च प्रतिग्रहः ॥

“वैश्यं प्रति तथैवेते निवर्तैरन्निति स्थितिः” ॥ याज्ञवल्क्यः ( आचारे ११९ )

“प्रधानं क्षत्रिये कर्म प्रजानां परिपालनम् । कुसीदं कृषिवाणिज्यपाशुपाल्यं विशः स्मृतेः” इति ।

अभिषेकादिगुणयुक्तस्य राज्ञो विशेषधर्मानाह याज्ञवल्क्यः ( आ. ३०९-३११ )

१५ “महोत्साहः स्थूललक्षः कृतज्ञो वृद्धसेवकः । विनीतः सत्वसंपन्नः कुलीनः सत्यवाक्शुचिः ॥

“अदीर्घसूत्रः स्मृतिमानक्षुद्रो पुरुषस्तथा । धर्मिकोऽव्यसनश्चैव प्राज्ञः शूरो रहस्यवित् ॥

“स्वरंभ्रगोप्ताऽऽन्वीक्षिक्यां दण्डनीत्यां तथैव च । विनीतस्त्वथ वार्तायां त्रय्यां चैव नराधिपः” ॥

“ब्राह्मणेषु क्षमी स्निग्धेष्वजिम्हः क्रोधनोऽरिपुः । स्याद्राजा भृत्यवर्गेषु प्रजासु च यथा पिता ॥

( ३३४ )

२० “पुण्यात्पद्मभागमादत्ते न्यायेन परिपालयन् । सर्वदानाधिकं यस्मात्प्रजानां परिपालनम् ( ३३५ ) ॥

“चाटतस्करदुर्वृत्तमहासाहसिकादिभिः । पीडयमानाः प्रजा रक्षेत्कायस्थैस्तु विशेषतः ( ३३६ ) ॥

“साधून्समानयेद्राजा विपरीतांश्च घातयेत् । उत्कोचजीवने द्रव्यहीनान् कृत्वा विवासयेत् ( ३३९ ) ॥

प्रमाकर इति पाठांतरं । उत्कोचपरिधानाय द्रव्यग्रहणरूपकर्म ।

“सद्दानमानसत्कारान् श्रोत्रियान्वासयेत्सदा ।

२५ “उपायाः साम दानं च भेदो दंडस्तथैव च । सम्यक्प्रयुक्ताः सिद्धेयुर्दंडस्त्वगतिका गतिः ( ३४६ ) ॥

“संधिं च विग्रहं यानमासनं संशयं तथा । द्वैधीभावं गुणानेतान्यथावत् परिकल्पयेत् ( ३४७ ) ॥

संधिर्व्यवस्थाकरणम् । विग्रहोऽपकारः । यानं परंप्रति यात्रा । आसनमुपेक्षा । संश्रयो बलवदा-  
श्रयणम् । स्वबलस्य द्विधाकरणं द्वैधीभावः ॥

मनुः ( ९।३०१-३१९ )

३० “कृतं त्रेता युगं चैव द्वापारं कलिरेव च । राज्ञो वित्तानि सर्वाणि राजा हि युगमुच्यते ॥

“कलिः प्रसुप्तो भवति सजाग्रद्वापरं युगम् । कर्मस्वभ्युदितस्त्रेता विचारस्तु कृतं युगम् ॥

“इन्द्रस्यार्कस्य वातस्य यमस्य वरुणस्य च । चंद्रास्याग्नेः पृथिव्यां च तेजोवृत्तं नृपश्चरेत् ।

“वार्षिकांश्चतुरो मासान्यथेन्द्रोऽभिप्रवर्षति । तथाभिवर्षेत् स्वं राष्ट्रं कामैरिन्द्रव्रतं चरन् ॥

“अष्टौ मासान्यथादित्यस्तोयं हरति रश्मिभिः । तथा हरेत्करं राष्ट्रात्सम्यगर्कव्रतं हि तत् ॥

- “प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चरति मारुतः । तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेताद्धि मारुतम् ॥
- “यथा यमः प्रियदेष्ट्यौ प्राप्ते काले नियच्छति । तथा राज्ञा नियन्तव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतम् ॥
- “वरुणेन यथा पाशैर्बध्यते वारुणैर्नरः । तथा पापान् निगृह्णीयाद् व्रतमेतद्धि वारुणम् ॥
- “परिपूर्णं यथा चंद्रं दृष्ट्वा हृष्यति मानवाः । तथा प्रकृतयो यस्मिन् स चांद्रव्रतिको वृपः ॥
- “प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यं स्यात्पापकर्मसु । दुष्टसामंतहिंस्रश्च तदाग्नेयं व्रतं स्मृतम् ॥ ५
- “यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते समम् । तथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः पार्थिवं व्रतम् ॥
- “एतैरुपायैरन्यैश्च युक्तो नित्यमतद्रितः । स्तेनान् राजा निगृह्णीयात् स्वराष्ट्रे पर एव वा ॥
- “परामप्यापदं प्राप्तो ब्राह्मणान् न प्रकोपयेत् । ते ह्येनं कुपिता हन्युः सद्यः सबलवाहनम् ॥
- “यान्समाश्रित्य तिष्ठति देवा लोकाश्च सर्वदा । ब्रह्म चैव धनं येषां को हिंस्यात्तान् जिजीविषुः ॥
- “अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं महत् । प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतं महत् ॥ १०
- “एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्तते सर्वकर्मसु । सर्वथा ब्राह्मणः पूज्यः परमं दैवतं हि सः ॥
- “यदधीते यद्यजते यददाति यदर्चति । तस्य षड्भागभाग्राजा सम्यक् भवति रक्षणात् (८।३०६) ॥
- “अरक्षितारं राजानं बलिषड्भागहारिणम् । तमाहुः सर्वलोकस्य समग्रमलहारकम् ( ३०९ ) ” ॥
- बोधायनः ( १।५।१०२ )—**
- “न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते । विषमेकाकिनं हंति ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रकम्” ॥ इति । १५
- तस्माद्राजा ब्राह्मणस्वं नाददीत परमं ह्येतद्विषं यद्ब्राह्मणस्वमिति । “सर्वतोधुरं पुरोहितं वृणुयात्तस्य शासने वर्तते संग्रामे न निवर्तते ” इति च ( १।५।७-९ ) । **गौतमः ( १०।७-१८ )**
- “रक्षणं सर्वभूतानाम् । न्याय्यदंडत्वम् । बिभृयाद्ब्राह्मणाञ्छ्रोत्रियान् । निरुत्साहांश्च ब्राह्मणानकरां-  
श्रोपकुर्वाणांश्च योगश्च विजये । भये विशेषेण । चर्या च रथधनुर्भ्यां संग्रामे संस्थानमनिवृत्तिश्च । न  
दोषो हिंसायामाहवे । अन्यत्र व्यश्वसारथ्येनायुधकृतांजलिप्रकीर्णकेशपराङ्मुखोपविष्टस्थलवृक्षा-  
रूढद्रुतगोब्राह्मणवादिभ्यः” इति । सर्वरक्षणं शास्त्राविरुद्धश्च दंडश्च राज्ञो धर्मः । अधीतवेदान्ब्राह्मणा-  
नन्नादिदानेन बिभृयाज्जीवनार्थमुत्साहं कर्त्तमसमर्थान् ब्राह्मणानपि बिभृयात् । ये पूर्वदत्ता अकरा  
अग्रहारा ब्राह्मणादिभ्यः तांश्च यथापूर्वं बिभृयादुपकुर्वाणानधीयानान् ब्रह्मचारिण्यश्च बिभृयात् । योग  
उपायः । जये पराभिभवनिमित्ते भये सति विशेषेण योगः कार्यः । युद्धे अवस्थायामपलायनं च ।  
चर्या चरणं रथहस्त्यादिकमारूढो धनुर्बाणादिहस्तश्चरेत् । युद्धे शत्रूणां हिंसायां न दोषः । व्यश्वेति २५
- विशब्दस्त्रिभिः संबध्यते व्यश्वो विसारथिवर्यायुध इति । स्थलमुन्नतप्रदेशः । द्रुतो वार्ताहरः । गौरस्मि  
ब्राह्मणोऽस्मीति ये वदन्ति ते गोब्राह्मणवादिनः । एतेभ्योऽन्यत्र हिंसायां न दोषः । एतेषु दोष  
इत्यर्थः । **स एव— ( १०।४३-४४ ) “निध्यधिगमो राजधनम् । न ब्राह्मणस्याभिरूपस्य राजा  
सर्वस्थेष्टे ब्राह्मणवर्जम्” इति च । व्यासः ( ११।१ )—**
- “न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते । देवस्वं चापि यत्नेन सदा नापहरेत्ततः” ॥ इति । ३०
- आपस्तम्बः ( २।२५।१५; २६।१-४ )—** “क्षेमक्रुद्राजा यस्य विषये ग्रामेऽरण्ये वा तस्करभयं  
न विद्यते । भृत्यानामनुपरोधेन क्षेत्रं वित्तं च ददत् ब्राह्मणेभ्यो यथाहर्मनंतांल्लोकानभिजयति ।  
ब्राह्मणस्वान्यपजिगीषमाणो राजा यो हन्यते तमाहुरात्मयूपो यज्ञोऽनन्तदक्षिण इति” ॥ आहुर्मज्जाः ।  
“एतेन राज्ञा ब्राह्मणद्रव्यप्रत्यायनार्थं युध्यमानास्तनुत्यजोऽन्येऽपि शूरा व्याख्याताः ।  
प्रयोजने युध्यमानास्तनुत्यजो ग्रामेषु नगरेषु चेति” ॥ ब्राह्मणस्वानि चोरादिभिरपहृतानि अप-

जिगीषमाणो ब्राह्मणेभ्यो दानाय तानपजित्य ग्रहीतुमिच्छन्त्योऽपि राजा युद्धे चोरैः हन्यते तमात्म-  
यूपो यज्ञोऽनंतदक्षिण इत्याहुर्धर्मज्ञाः । एतेन राज्ञा ब्राह्मणद्रव्यप्रत्यायनार्थं युध्यमानास्तनुत्यजोऽ-  
न्येऽपि शूरा व्याख्याता आत्मयूपा अनंतदक्षिणा यज्ञा इति । मनुः ( ७।१३४ )—

“भ्रियमाणोऽप्याददीत न राजा श्रोत्रियात्करम् । न च क्षुधाऽस्य संसीदेच्छ्रोत्रियो विषये वसन् ॥

५ “मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्शयत्यनवेक्षया । सोऽचिराद्भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सर्वाधवः” ॥  
इति ( ७।११२ ) । पराशरः ( १।५६।१।५७, ५९ )—

“अत्रता ह्यनधीयाना यत्र भैक्ष्यचरा द्विजाः । तं ग्रामं दंडयेद्राजा चोरभक्तप्रदो हि सः ॥

“क्षत्रियो हि प्रजा रक्षन्छस्त्रपाणिः प्रदंडवान् । निर्जित्य परसैन्यानि क्षितिं धर्मेन पालयन् ॥

“पुष्पं पुष्पं विचिनयान्मूलच्छेदं न कारयेत् । मालाकार इवाऽऽरामे न यथाऽगारकारकः ( ३।३७ ) ॥

१० “द्राविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमंडलभेदिनौ । परित्राद्द्वययोगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ( ३७ ) ॥

“यत्र यत्र हतः शूरः शत्रुभिः परिवेष्टितः । अक्षयान् लभते लोकान्यदि क्लीबं न भाषते ( ३८ ) ॥

“यस्तु भग्नेषु सैन्येषु विद्रवत्सु समंततः । परित्राता यदा गच्छेत्स तु क्रतुफलं लभेत् ( ४० ) ॥

“यस्य च्छेदक्षतं गात्रं शरमुद्गरयष्टिभिः । देवकन्यास्तु तं वीरं हरति रमयति च ( ४१ ) ॥

“देवांगनासहस्राणि शूरमायोधने हतम् । त्वरमाणाः प्रधावन्ति मम भर्ता ममेति च ( ४२ ) ॥

१५ “यं यज्ञसंघैस्तपसा च विप्राः स्वर्गेषिणो वाऽत्र यथैव यांति ।

“तथैव यान्त्येव हि तत्र वीराः प्राणान्सुयुद्धेन परित्यजति ( ४४ ) ॥

“ललाटदेशे रुधिरं स्रवेद्यस्याहवे तु प्रविशेच्च वक्त्रम् ।

“तत्सोमपानेन किलास्य तुल्यं संग्रामयज्ञे विधिवच्च दष्टम् ” ( ४३ ) ॥ विष्णुपुराणे—

“दुष्टानां शासनाद्राजा शिष्टानां परिपालनात् । प्राप्नोत्यभिमतान् लोकान्वर्णसंस्थाकरो नृपः” ॥ इति ।

२० इति क्षत्रियधर्माः । अथ वैश्यधर्माः । मनुः ( १।९० )—

“पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च । वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ” ॥

वणिक्पथं वाणिज्यार्थं स्थलजलजलयात्रा । कुसीदं वार्धुष्यम् । अकल्पयादित्यनुवर्त्तते । हारीतः—

“गोरक्षां कृषिवाणिज्ये कुर्याद्वैश्यो यथाविधिदानं देयं यथाशक्त्या ब्राह्मणानां च भोजनम्” ॥ इति ।

पराशरः ( १।६० )—

२५ “लौभिकर्म तथा रत्नं गवां च परिपालनम् । कृषिकर्म च वाणिज्यं वैश्यवृत्तिरुदाहृता ” ॥

मनुः ( ९।३२६ )

“वैश्यस्तु कृतसंस्कारः कृत्वा दारपरिग्रहम् । वार्त्तायां नित्ययुक्तः स्यात्पशूनां चैव रक्षणे ( ३२६ ) ॥

“मणिमुक्ताप्रवालानां लोहानां तांतवस्य च । गंधानां च रसानां च विद्यादर्धबलाबलम् ( ३२९ ) ॥

“बीजानमुसिविच्च स्यात्क्षेत्रबीजगुणस्य च । मानयोगांश्च जानीयात्तुलायोगांश्च सर्वतः ( ३३० ) ॥

३० “सारासारं च भांडानां देशानां च गुणागुणम् । लभालाभं च पण्यानां पशूनां च विर्वधनम् ( ३३१ ) ॥

“भृत्यानां च भृतिं विद्याद्भाषाश्च विविधा नृणां । द्रव्याणां स्थानयोगं च क्रयविक्रयमेव च ( ३३२ ) ॥

“धर्मेण च द्रव्यवृद्धावातिष्ठेयत्नमुत्तमम् । दद्याच्च सर्वभूतानां दानमेव प्रयत्नतः ( ३३३ ) ” ॥ इति ।

इति वैश्यधर्माः । अथ शूद्रधर्माः ॥ पराशरः ॥ ( १।६१ )

“शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा परमो धर्म उच्यते । अन्यथा कुरुते किञ्चित्तद्भवेत्तस्य निष्फलम् ” ॥

३५ द्विजशुश्रूषया जीवनासंभवे स एवाह ( १।६२ )—

“लवणं मधु तैलं च दाधि तक्रं घृतं पयः । न दुष्येच्छूद्रजातीनां कुर्यात्सर्वेषु विक्रयम्” इति । सर्वेषु लवणादिषु विक्रयं कुर्यात् । आपद्यपि वर्ज्यानाह ( १।६३-६४ )—

“विक्रीणन् मद्यमांसानि ह्यभक्षस्य च भक्षणम् । कुर्वन्नगम्यागमनं शूद्रः पतति तत्क्षणात् ॥

“कपिलाक्षीरपानेन ब्राह्मणीगमनेन च । वेदाक्षरविचारेण शूद्रश्चाङ्गालतां व्रजेत् ॥

“विकर्म कुरुते शूद्रा द्विजसेवाविवर्जिताः । भवन्त्यल्पायुषास्ते वै निरर्थं यात्यसंशयः ( २।१६ )” इति । ५

मनुः ( १।३३४।३३५ )—

“शुश्रूषैव तु शूद्रस्य धर्मो निश्रेयसः परम् ॥

“शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुर्मुदुर्वागनहंकृतः । ब्राह्मणार्थाश्रयो नित्यमुत्कृष्टां जातिमश्नुते ” ॥

“अशक्नुवंस्तु शुश्रूषां शूद्रः कर्तुं द्विजन्मनाम् । पुत्रदारात्ययं प्राप्तो जीवेत्कारुकर्मभिः ( १०।९९ ) ॥

“यैः कर्मभिः सुचरितैः शुश्रूष्यन्ते द्विजातयः । तानि कारुककर्माणि शिल्पानि विविधानि च ( १०० ) ॥ १०

“शूद्रस्तु वृत्तिमाकांक्षन्क्षत्रमाराधयेदिति । धनेन वाऽप्युपाराध्य वैश्यं शूद्रो जिजीविषेत् ( १२१ ) ॥

“स्वार्थमुभयार्थं वा विप्रानाराधयेत्तु सः । जातब्राह्मणशब्दस्य सां ह्यस्य कृतकृत्यता ( १२२ ) ॥

“विप्रसेवैव शूद्रस्य विशिष्टं कर्म कीर्त्यते । यदतोऽन्यत्र कुरुते तद्व्यवत्यस्य निष्फलम् ( १२३ ) ॥

“न शूद्रे पातकं किञ्चिन्न च संस्कारमर्हति । नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति नाधर्मात्प्रतिषेधनम् ( १२६ ) ॥

“धर्मेऽप्यवस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तिमनुष्ठिताः । मन्त्रवर्ज्यं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च ( १२७ ) ॥ १५

“यथा यथा हि सद्दत्तमातिष्ठत्यनसूयकः । तथा तथेमं चामुं च लोकं प्राप्नोत्यनिदितः ( १२८ ) ॥

“शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्यो धनसंचयः । शूद्रो हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते ( १२९ ) ॥

“उच्छिष्टमन्नं दातव्यं जीर्णानि वसनानि च । पुलाकाश्चैव धान्यानां जीर्णाश्चैव परिछदाः ” ( १२५ ) ॥ इति

उच्छिष्टं भोजनपात्रे भुक्तशिष्टमेतद्दासविषयम् । नाब्राह्मणायोच्छिष्टं प्रयच्छेदित्येतत्तु अदासविषयम् ॥

गृहस्थशूद्रविषयमित्यन्ये । तथा च व्याघ्रः—

“उच्छिष्टमन्नं दातव्यं शूद्राय गृहमेधिने । गृहस्थाय तु दातव्यमनुच्छिष्टं दिने दिने ” इति । २०

देवलः—

“शौद्रोऽयं धर्मो द्विजातिशुश्रूषा पापवर्ज्यं कलत्रादिपोषणं कर्षणं पशुपालनं भारोद्वहन-

पण्यव्यवहारश्चित्रकर्म नृत्यगीतवीणासृङ्गवादनानि ” इति । याज्ञवल्क्यः ( आ. १२०।१२१ )—

“शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा तथाऽजीवनं वणिगर्भवेत् । शिल्पैर्वा विविधैर्जीवेद्विजातिहितमाचरन् ॥ २५

“भार्यारतिः शुचिर्भृत्यभर्ता श्राद्धक्रियारतः । नमस्कारेण मंत्रेण पंचयज्ञान्न हापयेत् ” ॥

गौतमः ( १०।५१-५८; ६०-६७ )—

“शूद्रश्चतुर्थो वर्ण एकजातिस्तस्यापि सत्यमक्रोधः शौचमाचमनार्थं पाणिपादप्रक्षालन-

मेवैके श्राद्धकर्म भृत्यभरणं स्वदारवृत्तिः । परिचर्या चोत्तरेषां तेभ्यो वृत्तिं लिप्सेत । जीर्णान्युपान-

त्छत्रवासः कूर्चादीन्युच्छिष्टाशनं शिल्पवृत्तिश्च यं चायमाश्रयेत् भर्तव्यस्तेन पुण्यक्षीणोऽपि । तेन ३०

चोत्तरस्तदर्थोऽस्य निचयः स्यादनुज्ञातोऽस्य नमस्कारो मंत्रः । पाकयज्ञैः स्वयं यजेतेत्येके ” इति ।

एकजातिः । उपनयनमितरेषां द्वितीयजन्म तस्य तन्नास्ति प्राकृतनेषु गृह्यकार आह—

“शूद्रस्यापि निषेकपूस्वनसीमंतोन्नयनजातकर्मनामकरणोपनिष्क्रमणान्नप्राशनचौलान्यमंत्रकाणि

यथाकालमुपदिष्टानि ” इति । “आचमनस्थाने पाणिपादप्रक्षालनमेव भवति नान्य आचमनकल्प

इत्येके ” । मनुस्तु सकृदम्बुपानमिच्छति ( ५।१३८ )—“ स्त्री शूद्रोऽपि सकृत् ” इति । नित्यस्नानविषयेऽप्युशाना आह—“ सच्छूद्रः स्नायादसच्छूद्रः पाणिपादौ प्रक्षालयेत् ” इति । श्राद्धकर्मामावास्यादौ आमश्राद्धं मन्त्रवर्ज्यं कर्तव्यम् । स्वदारवृत्तिरवास्य भवति नाश्रमान्तरेषु प्राप्तिरिति । कूर्चं ब्रूयादि । जीर्णान्युपयुक्तानि उपानदादीनि परिचरते दासाय देयानि । यमसौ पूर्वमाश्रितः कर्माण्यकरोत् क्षीणोऽसमर्थोऽपि तेनासौ भर्तव्यः । तेन च शूद्रेण उत्तरो वृत्तिक्षीणो भर्तव्यः । तदर्थं उत्तरपोषणार्थं अस्य शूद्रस्य निचयः स्यात् । अस्य वैश्वदेवादिषु देवतापदं चतुर्थ्यतं मनसा ध्यात्वा नमो नम इत्येवंरूपो मंत्रोऽनुज्ञातो धर्मज्ञैः । अपर आह—

“ देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च । नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव नमो नमः ” ॥

अयं मंत्रो नमस्कारशब्देन विवक्षितः । स पित्र्येषु कर्मसु भवति । पक्वगुणकेषु गार्ह्येषु

१० पाकयज्ञशब्दः प्रसिद्धः । यथाहापस्तंबः—“ लौकिकानां पाकयज्ञशब्दः ” इति । तैः पाकयज्ञैः शूद्रोऽपि स्वयं यजेतेत्यर्थः । आपस्तंबः ( १।१।६-८ )—“ अशूद्राणामदुष्टकर्मणामुपायनमुपनयनं वेदाध्ययनमग्न्याधेयं फलवन्ति च कर्माणि । शुश्रूषा शूद्रस्येतेरेषां वर्णानाम् । पूर्वस्मिन्पूर्वस्मिन्वेण निःश्रेयसं भूयः ” इति । मनुः—

“ येनांगेनावरो वर्णो ब्राह्मणस्यापराधनुयात् । तदंगं तस्य च्छेतव्यं तन्मनोरनुशासनम् ॥

१५ “ न शूद्राय मतिं दद्यान्नोच्छिष्टं न हविष्कृतम् । न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत् ( ५।८० ) ॥ “ यस्तस्य धर्मं व्याचष्टे योऽस्यैवादिशति व्रतमासोऽसंवृतं नाम तमस्तेनैव सह गच्छति ( ८१ ) ” ॥ इति ।

उच्छिष्टं भक्षितशेषम् । हविष्कृतं पुरोडाशादि । न शूद्राय मतिं दद्यात् । न चास्योपदिशेद्धर्ममित्यादि निषेधः । शूद्रानुपयोगि वैदिकाग्निहोत्रादिधर्मज्ञानविषयः । “ श्रावयेच्चतुरो वर्णान् कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः ” इति इतिहासपुराणादिश्रवणस्य ब्राह्मणमुखेन शूद्रस्यापि विहितत्वात् ।

२० किंच स्मृत्युक्ते शूद्राणामपि उपदेशे प्रतिषेधाभावो वाच्यः । अन्यथा “ शूद्रश्चतुर्थो वर्ण एकजातिस्तस्यापि सत्यमक्रोधः शौचमाचमनार्थं पाणिपादप्रक्षालनमेवैकं । श्राद्धकर्म । भृत्यभरणं स्वदारवृत्तिः परिचर्या चोत्तरेषाम् ” इत्यादिगौतमादिधर्मोक्तानां स्मृत्युक्ताशौचामश्राद्धादीनां चोपदेशाभावे तद्विषयतादृशधर्माणामनुष्ठानात् तद्वचनानामनुष्ठानलक्षणमेव । गौतमः ( १२।१-५ )—“ शूद्रो द्विजातीनामसंधायाभिहत्य च वाग्दंडपारुष्याभ्यामंगमोच्यो येनो-

२५ पहन्यादायैरुयभिगमने लिंगोद्धारः स्वहरणं च । गोप्ता चेद्वधोऽधिकोऽथास्य वेदमुपशृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रप्रतिपूरणमुदाहरणे जिह्वाच्छेदो धारणे शरीरभेदः । आसनशयनवाक्पथिषु समप्रेप्सुर्दंड्यः ” इति । वाचा परुषयाऽभिसंधाय निर्भर्त्स्य दण्डपारुष्येण चाभिहत्य दण्डेन परुषं ताडयित्वा स्थितः शूद्रो येनाङ्गेनापराधनुयात् तदङ्गं मोच्यः वियोजनीयः । वाचा निर्भर्त्सने जिह्वाच्छेदो भुजादिना ताडने हस्तादिच्छेदः । आर्यास्त्रैर्वर्णिकाः तेषां स्त्रियो शूद्रो यद्यभि-

३० गच्छेत्तदा तस्य लिंगोद्धारणं कर्तव्यं सर्वस्वहरणं स शूद्रस्तासां गोप्ता रक्षिता यदि भवति तदा वधः प्रमाणमधिको दंडः । अथ हेति वाक्यालंकारे । अस्य शूद्रस्य वेदमुपशृण्वतः उपसृत्य बुद्धिपूर्वं शृण्वतः श्रोत्रे त्रपुणा जतुना च द्रवीकृतेन प्रतिपूरयितव्ये । उदाहरणे वेदोच्चारणे तस्य जिह्वा च्छेद्या । हृदयेनावधारणे परश्वादिना शरीरं भेद्यम् । शूद्रश्चेदासनादिषु द्विजातिभिः साम्यं प्रेप्स्यति तत्तुल्यभावं ततोऽसौ दंड्यः । दंडश्चापस्तंबेन दर्शितः ( २।२७।१५ )—“ वाचि



पथि शय्यायामासने समीभवतो दंडस्ताडनम् ” इति । वृत्त्यर्थं शूद्रं सेवमानस्य ब्राह्मणस्य निष्कृतिमाहापस्तंबः ( १।२७।११ )— “यदेकरात्रेण करोति पापं कृष्णं वर्णं ब्राह्मणः सेवमानः । चतुर्थकाल उदकाभ्यवायी त्रिभिर्वर्षैस्तदपहंति पापम् ” इति । पराशरः ( १।२।३२ )— “शूद्रान्नं शूद्रसंपर्कं शूद्रेण च सहासनम् । शूद्रात् ज्ञानागमश्चापि ज्वलंतमपि पातयेत्” ॥ इति ।

नारदः

“शूद्राणां मासिकं कार्यं वपनं न्यायवर्तिनाम् वैश्यवच्छौचकल्पश्च द्विजोच्छिष्टं तु भोजनम्” ॥ इति । इति शूद्रकर्म । अथ ब्राह्मणानां श्रौष्ठ्यम् । आपस्तंबः ( १।१।४-५ )— “चत्वारो वर्णा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रास्तेषां पूर्वः पूर्वो जन्मतः श्रेयान् ” ॥ इति । मनुः ( १।९३-९५ )— “उत्तमांगोद्भवात् ज्यैष्ठ्याद्ब्राह्मणश्चैव धारणात् । सर्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः ॥ “तं हि स्वयंभूः स्वादास्यात्तपस्तप्त्वादितोऽसृजत् । हव्यकव्यादिवाद्याय सर्वस्यास्य च गुप्तये ॥ १० “यस्यास्येन सदाऽश्रंति हव्यानि त्रिदिवौकसः । कव्यानि चैव पितरः किंभूतमाधिकं ततः ॥ “उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिर्धर्मस्य शाश्वती । स हि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ( ९८ ) ॥ “ब्राह्मणो जायमानो वै पृथिव्यामधिजायते । ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये” ( ९९ ) ॥ इत्यादि । “न शूद्राय मतिं दद्यान्न चास्योपदिशेद्धर्मम्” ( ४।८१ ) इत्यादिनिषेधः शूद्रानुपयोगिवैदिकाग्निहोत्रादिधर्मज्ञानविषयः । “आवयेच्चतुरो वर्णान्कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः” इति १५ इतिहासपुराणादिश्रवणस्य ब्राह्मणमुखेन शूद्रविषयेऽपि विहितत्वात् । किंच स्मृत्युक्त-शूद्रधर्माणामपि उपदेशप्रतिषेधाभावो वाच्यः । अन्यथा “शूद्रश्चतुर्थो वर्ण एकजातिः । तस्यापि सत्यमक्रोधः शौचमाचमनार्थं पाणिपादप्रक्षालनमेवैकं श्राद्धकर्म भृत्यभरणं स्वदारवृत्तिः तुष्टिः परिचर्या चोत्तरेषाम्” ( १।५१-५७ ) इत्यादिगौतमादि धर्मोक्तानां स्मृत्युक्तशौच-श्राद्धादीनां च उपदेशाभावे तद्विषयतादृशधर्माणामनुष्ठानात्तद्वचनानामनुष्ठानलक्षणमप्रामाण्य- २० मापद्यते तस्माच्छूद्रानुष्ठानानुपयोगिधर्मविषय एव निषेधः । न तु चातुर्वर्ण्यगृहस्थसाधारण-धर्माणामहिंसास्तेयादिरूपाणां प्रातिस्विकशौचामश्राद्धद्विजशुश्रूषादिधर्माणामपि । न च स्वानु-ष्ठानानुपयोगिधर्मश्रवणे कस्याप्यप्रसक्तेः प्रतिषेधो व्यर्थ इति वाच्यम् । धर्मः श्रुतो वा दृष्टो वेति धर्मात्र श्रवणे फलाभिधानात्स्वधर्म इति विशेषाभावाच्छूद्रव्यतिरिक्तानां त्रैवर्णिकानां यथा सर्ववर्णधर्मश्रवणे अधिकारः संन्यासव्यतिरिक्तानां यथा सर्वाश्रमसाधारणधर्मे अधिकारः त्रैवर्णिक- २५ स्त्रीणां पुरुषधर्मे पुरुषाणां च स्त्रीधर्मे यथाधिकारः तथा शूद्रस्यापि प्रसक्ते तद्विषये प्रतिषेधस्यार्थवत्त्वात् ।

“सर्वस्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किंचिज्जगतीगतम् । ज्यैष्ठ्येनाभिजनेनेदं सर्वं वै ब्राह्मणोऽर्हति ( १०० )” ॥

“स्वमेव ब्राह्मणो भुंक्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च । अचृशंस्याद्ब्राह्मणस्य भुंजते हीतरेजनाः ( १०१ )” ॥

इति स्तुतिः । स्तेयादिषु पतनदंडप्रायश्चित्तोपदेशात् । याज्ञवल्क्यः ( आ. १।९८ )— ३०

“तपस्तप्त्वाऽसृजद्ब्रह्मा ब्राह्मणान्वेदगुप्तये । तृप्त्यर्थं पितृदेवानां धर्मसंरक्षणाय च ” ॥

शातातपः—

“जन्मनैव महाभागो ब्राह्मणो नाम जायते । माताऽसौ सर्वभूतानां वर्णश्रेष्ठः पिता गुरुः ॥

“नास्त्येषां पूजनीयोऽन्यस्त्रिषु लोकेषु कश्चन । वेदविद्याविशेषेण पूजयंतः परस्परम् ॥

“अन्योन्यगुरवो विप्रा अन्योन्यातिथयः स्मृताः । अन्योन्यमुपकुर्वाणास्तारयन्ति तरन्ति च ॥

“योहि यां देवतामिष्टामाराधयितुमीहते । सर्वोपायप्रयत्नेन संतोषयतु स द्विजान् ॥

“देवतादिव्यभूतेषु कचित्काचित्प्रतीष्टिता । ब्राह्मणो देवताः सर्वास्तस्मात्संपूजयेत्सदा ” ॥

श्रुतिरपि— “ब्राह्मणो वै सर्वा देवता ” इति “यावतीर्वै देवतास्ताः सर्वा वेदविदि  
५ ब्राह्मणे वसंतीति ” च । मनुः ( १।१६-१७ )—

“भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः । बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥

“ब्राह्मणेषु तु विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्ध्यः । कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः ” ॥ इति ।

विद्वांसो वेदविदः । कृतबुद्ध्यः परिचितवेदार्थकर्तारश्चोदितधर्मकृतः । ब्रह्मवेदिनः परमात्मवेदिनः ।

‘कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः’ इति वदता ब्रह्मविद्भिरपि कर्म कर्तव्यमिति सूचितम् । इति ब्राह्मणश्रेष्ठ्यम् ।

१० अथ जातिविवेकः । तत्र मनुः ( १०।५-६ )—

“सर्ववर्णेषु तुल्यासु पत्नीष्वक्षतयोनिषु । आनुलोम्येन संभूता जात्या ज्ञेयास्त एव ते ॥

“स्त्रीष्वनंतरजातासु द्विजैरुपदितान्सुतान् । सदृशानेव तानाहुर्मातृदोषविवर्जितान् ” ॥

देवलः—

“तेषां सवर्णजाः श्रेष्ठास्तेभ्योऽन्वगनुलोमजाः । अंतराला बहिर्वर्णाः पतिताः प्रतिलोमजाः ” ॥

१५ मनुः— “अवरासूतमाज्जाताश्चानुलोमा इति स्मृताः ।

“नृपायां विप्रतो जातः सवर्णो ब्राह्मणो भवेत् । आयुर्वेदाथर्ववेदधनुर्वेदान्सदा पठेत् ॥

“गजाश्वारोहणं तस्य सवर्णस्य विधीयते । अस्यामनेन चौर्येण जातो नक्षत्रजीविकः ॥

“विप्रस्य त्रिषु वर्णेषु नृपतेर्वर्णयोर्द्वयोः । वैश्यस्य वर्ण एकस्मिन्षडेतेऽपसदाः स्मृताः” ॥

( १० ) याज्ञवल्क्यः ( आ. ९।१-९२ )—

२० “विप्रान्मूर्धावसिक्तो हि क्षत्रियायां विशः स्त्रियाम् । अंबष्ठः शूद्रां निषादो जातः पारशरोऽपि वा ॥

“वैश्याशूद्रोस्तु राजन्यान्माहीष्योग्रौ सुतौ स्मृतौ । वैश्यात्तु करणः शूद्रां विन्नास्वेष विधिः स्मृतः” ॥

एष सवर्णमूर्धावसिक्तादिसंज्ञाविधिः विन्नासु ऊढासु स्मृतः । यत्तु “ब्राह्मणेन क्षत्रियायामुत्पादितः

क्षत्रिय एव भवति क्षत्रियेण वैश्यायां वैश्य एव वैश्येन शूद्रायां शूद्र” इति शंखस्मरणम्—

तत्क्षत्रियादिजातिप्राप्त्यर्थं न तु सवर्णादिसंज्ञानिराकरणार्थम् । अतश्च मूर्धावसिक्तादीनां

२५ क्षत्रियादेरुक्तैरेव दंडाजिनोपवीतादिभिरुपनयनादि कार्यमिति विज्ञानेश्वरः ( पृ. २६ मं. २२ ) ॥

मनुरपि ( १०।८ )—

“ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामंबष्ठो नाम जायते । निषादः शूद्रकन्यायां यः पारश्व एव वा ॥

“क्षत्रियाद्वैश्यकन्यायां माहिष्यांबष्ठ इत्यसौ । आयुर्वेदमयाष्टांगं पठेदेष स्ववृत्तये ॥

“अस्यामनेन चौर्येण जातश्चाश्विक उच्यते । अश्वानां विक्रयस्तेषां शुश्रूषा वृत्तिरस्य तु ॥

३० “वैश्यतः शूद्रकन्यायामुग्रको नाम जायते । मेषाविविक्रयश्चास्य वृत्तिः कम्बलविक्रयः ॥

“अन्तःपुराणि वा रक्षेन्नुपाणामाज्ञया सदा । चौर्येण कटकारः स्यात्कटविक्रयकर्मवान् ॥

“क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां क्रूराचारविहारवान् । क्षत्रशूद्रवर्जितुरुग्रो नाम प्रजायते ॥ ( ९ )

“ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायां निषादो नाम जायते । मंत्रौषधक्रियां कुर्यान्नित्यं शालिक्यकर्म च ॥

“चौर्येण कटकारः स्यादूर्ध्वं नापित एव सः । नाभ्यूर्ध्ववपनं वृत्ति कुंभानां करणं मृदा ॥

- “ ब्राह्मणाच्छूद्रकन्याया जातः पारशवस्तथा । भद्रकाल्यर्चनं तस्य वृत्तं वाद्यं च वृत्तये ॥  
 “ अस्यां वै चोरसंगत्या निषादो जायते सुतः । जीवेद्भेन गानेन मृगाणां हिंसयाऽपि वा ॥  
 “ क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां जातो दौःषंत उच्यते । वनौकसां संग्रहणं मत्स्यानां ग्रहणं तथा ॥  
 “ खड्गादिशस्त्रकरणं दौःषंतस्य तदुच्यते ॥  
 “ अस्यामनेन चौर्येण शूलिको जायते नरः । नित्यं शूलधरश्चैव राज्ञां दंड्यास्तु दंडयेत् ॥ ५  
 “ महिष्यात्करणायां तु रथकारस्तु जायते । अथ पर्यायनामानि तक्षशिल्पी च वर्धकी ॥  
 “ लोहकारः कर्मकारः विद्यते यजनं तथा । उपवीतं विधानेन कुर्यादाधानमप्यसौ ॥  
 “ वास्तुशास्त्रमधीयानः प्रासादप्रतिमादिकम् । यज्ञपात्रान्द्विजातीनां हैमान्याभरणानि च ॥  
 “ कृष्युपस्करणं लेख्यं कर्माण्यस्योदितानि च ” । शंखः—

“ रथकारस्तस्येज्याधानोपनयनसंस्कारक्रियाश्च प्रतिष्ठा रथसूत्रवास्तुविद्याध्ययनवृत्तिता च ” इति । १०

इत्यनुलोमजातिः ॥ अथ कुण्डगोलकादिजातिः । मनुः—

- “ ब्राह्मण्यां सधवायां तु जारजातः स कुंडकः । विधवायां गोलकः स्यादेतौ श्राद्धे बहिष्कृतौ ॥  
 “ नृपायां क्षत्रियाज्जातश्चौर्योद्भौज इति स्मृतः । नाभिषेकः पट्टधरो राजके रंजयेत्प्रजाः ॥  
 “ वैश्यायां वैश्यतश्चौर्यान्मणिकारश्च जायते । मुक्तानां वेधनं शंखलवनं रत्नरंजनम् ॥  
 “ अस्यैव मणिकारस्य त्रीणि कर्माणि वृत्तये ॥  
 “ शूद्रायां शूद्रतश्चौर्याज्जातो माणवको भवेत् । अश्वानां तृणदानेन वर्त्तयेदेष नित्यशः ” ॥ १५  
 अथ प्रतिलोमजातिनिरूपणम् । प्रतिलोमानाह याज्ञवल्क्यः ( आ. ९३-९४ )—  
 “ ब्राह्मण्यां क्षत्रियात्सूतो वैश्याद्वैदेहकस्तथा । शूद्राज्जातस्तु चंडालः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥  
 “ क्षत्रिया मागधं वैश्याच्छूद्रात्क्षत्तारमेव च । शूद्रादायोगवं वैश्याज्जनयामास वै सुतम् ” ॥

मनुः ( १०।११ )—

- “ क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः । प्रतिलोमेषु च श्रेष्ठो विष्णोरभ्यर्चनं तथा ॥  
 “ धर्मावबोधनं तस्य सारथ्यं कटविक्रयः । नित्यं द्विजवदाधार इति सूतस्य वृत्तयः ॥  
 “ नृपायां वैश्यतो जातः कथितो मागधश्च सः । नृपप्रशंसनं कुर्यात्तन्निर्वीणाश्च वादयेत् ॥  
 “ अस्यामनेन चौर्येण पुलिंदो नाम जन्मतः । हिंसया दुष्टसत्त्वानामरण्ये वर्त्तयेदयम् ॥  
 “ तैलपिण्याकलवनविक्रयेणैव वर्त्तयेत् । अभोज्यान्नः स्वयं शूद्रैरस्पृश्योऽपि भवत्युत ॥ २५  
 “ ग्रामादिष्वपराह्णेषु प्रविशन् दंडमर्हति ॥  
 “ वैश्यान्मागधवैदेहौ राजविप्रांगनासुतौ । शूद्रादायोगवक्षत्ता चंडालश्चाधमो नृणाम् ॥  
 “ वैश्यराजन्यविप्रासु जायंते वर्णसंकरः ।

- “ यथैव शूद्रो ब्राह्मण्यां बाह्यजं तु प्रसूयते । यथा बाह्यंतरो बाह्यं चातुर्वर्ण्यं प्रसूयते ॥  
 “ आयोगवश्च क्षत्ता च चंडालश्चाधमो नृणाम् । प्रतिलोम्येन जायंते शूद्रादपसदास्त्रयः ॥ ३०  
 “ वैश्यान्मागधवैदेहौ क्षत्रियात्सूत एव तु । प्रतीपमेव जायंते परेऽप्यपसदास्त्रयः ॥ ( १७ )  
 “ जातो निषादाच्छूद्रायां जात्या भवति पुल्कसः । ( १८ ) उग्रात्तु जातः क्षत्तायां श्वपाक इति कीर्त्यते ॥

“ चंडालश्वपचानां तु बहिर्ग्रामात्प्रतिश्रयः । चैत्यद्रुमश्मशानेषु शैलेषूपवनेषु च ॥

“ वसेयुरेते अज्ञाता वार्त्ताया च स्वकर्मभिः । बासांसि मृतचेलानि भिन्नभांडे च भोजनम् ॥ ३५

“काष्णायसस्त्वलंकारः परिव्रज्या च नित्यशः । न तैः समयमन्विच्छेत्पुरुषो धर्ममाचरन् ॥

“वर्णापेतमविज्ञातं नरं कलुषयोनिजम् । आर्यरूपमिवानार्यं कर्मभिः स्वैर्विभावयेत् ॥

“अनार्यता निष्ठुरता क्रूरता निष्क्रियात्मता । पुरुषं व्यञ्जयन्तीह लोके कलुषयोनिजम् ॥

“पितुर्वा भजते शीलं मातुर्वोभयमेव वा । न कथंचन दुर्योनिः प्रकृतिं स्वां विमुञ्चति ॥

“स्वस्वजातेर्हि यत्कर्म कथितं तेन वर्तयेत् । अन्यथा वर्तमाने हि सत्यं पतति जातितः” ॥

५

याज्ञवल्क्यः (आ. १५) — “असत्संतस्तु विज्ञेयाः प्रतिलोमानुलोमजाः” । असंतः प्रतिलोमजाः सन्तश्चानुलोमजा ज्ञातव्या इत्यर्थः । अनुलोमप्रतिलोमजातीनामनन्तत्वेन वक्तुमशक्यत्वाद्वा न लिख्यते । इति प्रतिलोमजातिः

पुनः सावर्ण्यप्राप्तौ कारणमाह याज्ञवल्क्यः (आ. १६) —

- १० “जात्युत्कर्षो युगे ज्ञेयः सप्तमे पञ्चमेऽपि वा । व्यत्यये कर्मणां साम्यं पूर्ववच्चाधरोत्तरम्” ॥ जातयो मूर्धावसिक्ताद्यास्तासामुत्कर्षो ब्राह्मणत्वादिजातिप्राप्तिः । युगे जन्मनि । सप्तमे पञ्चमे अपि शब्दात्पष्ठे वा बोद्धव्या । व्यवस्थितश्चायं विकल्पः । ब्राह्मणेन शूद्रायामुत्पादिता निषादी सा ब्राह्मणेनोदा दुहितरं काञ्चिज्जनयति । साऽपि ब्राह्मणेनोदा अन्यामित्यनेन प्रकारेण षष्ठी सप्तमं ब्राह्मणं जनयति । ब्राह्मणेन वैश्यायामुत्पादिता अंबष्ठी । साऽप्येतेन प्रकारेण पञ्चमी षष्ठं ब्राह्मणं जनयति । मूर्धावसिक्ताऽप्यनेन प्रकारेण चतुर्थी पञ्चमं ब्राह्मणं जनयति । एवमुग्रा क्षत्रियोदा माहिष्या च यथाक्रमं षष्ठपञ्चमं च क्षत्रियं जनयति । तथा करणी वैश्योदा पञ्चमं वैश्यं जनयति । एवं ब्राह्मणादीनां क्षत्रियोदिहीनवृत्त्या क्षत्रियादिर्हीनजातिर्भवतीत्याह “व्यत्यये कर्मणाम्” इति । कर्मणां व्यत्यये वृत्त्यर्थानां कर्मणां विपर्यासे सति यद्यापि द्विमोक्षेऽपि तां वृत्तिं न परित्यजन्ति तदा सप्तमे षष्ठे पञ्चमे वा जन्मनि साम्यं यस्य हीनस्य
- २० कर्मणा जीवति तत्समानजातित्वं भवति । तद्यथाः ब्राह्मणः शूद्रवृत्त्या जीवस्तामपरित्यज्यन्यदि पुत्रमुत्पादयति सोऽपि तथैव वृत्त्या जीवन्पुत्रान्तरमित्येवं परंपरया सप्तमे जन्मनि शूद्रमेव जनयति । एवं वैश्यवृत्त्या जीवन्षष्ठो वैश्यं क्षत्रियवृत्त्या जीवन् पञ्चमे क्षत्रियमिति पूर्ववच्चाधरोत्तरमधरे चोत्तरे चाधरोत्तरम् । यथा मूर्धावसिक्तायां क्षत्रियवैश्यशूद्रैरुत्पादिता अंबष्ठायां वैश्यशूद्राभ्यां निषाद्यां शूद्रेण उत्पादिता अपरे प्रतिलोमजा तथा मूर्धावसिक्तांबष्ठा निषादादिषु ब्राह्मणोत्पादितां
- २५ माहिष्योग्रयोर्ब्राह्मणेन क्षत्रियेण च उत्पादिता करण्यां ब्राह्मणेन क्षत्रियेण वैश्येन च उत्पादिता उत्तरे अनुलोमजा एवमधरोत्तरं पूर्ववत्संकरवत्सदसत् सदिति बोद्धव्यमित्यर्थः ॥

मनुः (१०।२०) —

“द्विजातयः सवर्णासु जनयंत्यव्रतान्सुतान् । तान्सावित्रीपरिभ्रष्टान् वात्यानित्यभिनिर्दिशेत्” ॥

बोधायनोऽपि

- ३० “त्रिषु वर्णेषु सादृश्यादव्रतान् जनयेत्तु यान्तातान्सावित्रीपरिभ्रष्टान् वात्यान् इत्याहुर्मनीषिण” ॥ इति । अथ गर्भाधानादि । याज्ञवल्क्यः (आ. १०) — “ब्रह्मक्षत्रियाविट्शूद्रा वर्णास्त्वाद्यास्त्रयो द्विजाः । निषेकादिश्मशानां तास्तेषां वै मंत्रतः क्रियाः” ॥ निषेको गर्भाधानम् । तत्र मनुः (२।२६) — “वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकाद्यैर्द्विजन्मनाम् । कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च” ॥ अंगिराः “चित्रकर्म यथानेकैर्गैरुन्मील्यते शनैः । ब्राह्मण्यमपि तद्वत्स्यात् संस्कारैर्विधिपूर्वकैः” ॥

३५ मनुः (२।२७) —

“गार्भेर्होमैर्जातिकर्मचौलमौजीनिबंधनैः । वैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपसृज्यते” ॥

बीजं शुक्लशोणितम् । तद्दोषजनितं वैजिकम् । अशुचिगर्भनिवासजनितं गार्भिकम् ॥

तथा च याज्ञवल्क्यः ( आ. १३ )—“एवमेनः शमं याति बीजगर्भसमुद्भवम्” ॥ इति ।

संस्काराश्च गौतमेन दर्शिताः ( ८।१४-२४ )—“गर्भाधानपुंसवनसीमंतोन्नयनजातकर्मनाम-  
करणान्नप्राशनचौलोपयनम् । चत्वारि वेदव्रतानि । स्नानं सहधर्मचारिणीसंयोगः । पंचानां यज्ञा- ५

नामनुष्ठानं देवपितृमनुष्यभूतब्रह्मणामेतेषां चाष्टकापार्वणश्राद्धं श्रावण्याग्रायणीचैत्र्याश्वयुजीति

सप्त पाकयज्ञसंस्थाः । अग्न्याधेयमग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासा वाग्रयणं चातुर्मास्यानि निरूढपशु-

बंधसौत्रामणीति सप्त हविर्यज्ञसंस्थाः । अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोम उक्थ्यः षोडशो वाजपेयातिरात्रा-

तोयार्थम् इति सप्त सोमसंस्थाः । इत्येते चत्वारिंशत्संस्कारा अष्टावात्मगुणाः । दद्या सर्वभूतेषु

क्षातिरनुसूया शौचमनायासो मंगलमकार्पण्यमस्पृहा” इति ॥ वेदव्रतानि प्राजापत्यादीनि । १०

स्नानं समावर्तनम् । सहधर्मचारिणीसंयोगो विवाहः । पंचानां देवयज्ञादीनामहरहरनुष्ठानं पंचेतै

पृथक्संस्काराः एतेषां वक्ष्यमाणानामष्टकादीनामनुष्ठानमित्यर्थः । अष्टकादयः पूर्वं व्याख्याताः ।

मनुनोपनिष्क्रामणाख्यं कर्माप्युक्तम् ( २।३४ )—“चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं

गृहात्” इति । तदिह नाहृतं चत्वारिंशदग्रहणादेतावन्तः संस्कारास्तेनान्यानि श्रौतानि स्मार्तानि

च कर्माणि न संस्कारेष्वन्तर्भवन्ति । दद्यादीनां लक्षणमाह बृहस्पतिः— १५

“परे वा बंधुवर्गे वा मित्रे द्वेष्टरि वा सदा । आपदो रक्षणं यत्तु दयैषा परि कीर्तिता ॥

“बाह्ये चाभ्यन्तरे चैव दुःख उत्पादिते परैः । न प्रकुर्वति नो हन्ति सा क्षमा परिकीर्तिता ॥

“यो धर्ममर्थं कामं वा लभते मोक्षमेव वा । न द्वेष्यात्तं सदा प्राज्ञः साऽनसूया स्मृता बुधैः ॥

“अभक्ष्यपरिहारश्च संसर्गश्चाप्यनिदितैः । स्वधर्मे च व्यवस्थानं शौचमेतत्प्रकीर्तितम् ॥

“यदारंभे भवेत्पीडा नित्यमत्यन्तमात्मनः । तद्वर्जयेद्धर्ममपि सोऽनायासः प्रकीर्तितः ॥ २०

“प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्तविवर्जनम् । एतद्धि मंगलं प्रोक्तमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥

“स्तोकादपि हि दातव्यं मुदितेनांतरात्मना । अहन्यहनि यत्किंचिदकार्पण्यं हि तत् स्मृतम् ॥

“यथोत्पन्नैस्तु संतोषः कर्तव्यः स्वाजितैर्धनैः । परार्थं नाभिलाषेत साऽस्पृहा परिकीर्तिता” ॥ इति ।

यस्य चत्वारिंशत् संस्काराः अष्टा वाऽत्मगुणाश्च स ब्राह्मणः सायुज्यमाप्नोतीत्याह शंखः—

“संस्कारैः संस्कृतः पूर्वैरुत्तरैरपि संस्कृतः । नित्यमष्टगुणैर्युक्तो ब्राह्मणो ब्रह्मलौकिकम् ॥ १५

“ब्राह्मं पदमवाप्नोति तस्मान्न च्यवते पुनः” ॥ इति गर्भाधानादयः पूर्वं संस्काराः उत्तरे

त्वष्टकादयः । तथा ह्यारीतः—“द्विविध एव संस्कारो भवति ब्राह्मो दैवश्च । गर्भाधानादिसमाव-

र्तान्ते ब्राह्मः । पाकयज्ञहविर्यज्ञसौम्याश्चेति दैवाः । ब्राह्मेण संस्कारेण संस्कृत ऋषीणां समानानां

सायुज्यं गच्छति दैवेनोत्तरेण संस्कृतो देवानां समानतां सलोकतां सायुज्यं गच्छति” इति । एतच्च

आत्मगुणहीनसंस्काराभिप्रायेण । अत एव गौतमः—( ८।२५ ) “यस्यैते चत्वारिंशत्संस्कारा न ३०

चाष्टावात्मगुणा न स ब्राह्मणः सायुज्यं सलोक्यं च गच्छति” इति । अतश्च यस्यैते चत्वारिंशत्सं-

स्कारा अष्टावात्मगुणाश्च तस्यैवेदं ब्राह्मणः सायुज्यप्राप्तिलक्षणं फलमिति मन्तव्यम् । अत्र च

गर्भाधानादय उपनयनपर्यन्ता एव संस्काराः सर्वेषां त्रिजातीनां नियताः । न पुनः स्नानादयः । तथात्वे

‘यमिच्छेत् कर्तुं तमाविशेत्’ ‘यदि वेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत्’ इत्यादिभिर्विरोधः स्यात् ॥

अथ गर्भाधानम् । तत्र मनुः ( ३।४५-४९ )—

“ ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा । पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्वतो रतिकाम्यया ” ॥

“ ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः । चतुर्भिरितरैः सार्धमहोभिः सद्दिगर्हितैः ॥

“ तासामाद्यश्चतस्रस्तु निर्दितैकादशी च या । त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ॥

५ “ युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु । तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्तवे स्त्रियम् ॥

“ अमावास्यामष्टमीं च पौर्णमासीं चतुर्दशीम् । ब्रह्मचारी भवेन्नित्यमप्यृतौ स्नातको द्विजः ” ॥

बृहस्पतिः—

“ ऋतुकालाभिगमनं पुंसां कार्यं प्रयत्नतः । सदैव वा पर्ववर्ज्यं स्त्रीणामभिमतं हि तत् ” ॥

याज्ञवल्क्यः ( आ. ८१ )—

१० “ यथाकामी भवेद्वाऽपि स्त्रीणां वरमनुस्मरन् । स्वदारनिरतश्चैव स्त्रियो रक्षया यतः स्मृताः ” ॥

भार्येच्छानतिक्रमेण प्रवृत्तिरिति यथाकामी स्त्रीणां वरमिन्द्रदत्तमनुस्मरन् । यथा ( तै. स. २।५।१ ) “ सखीषःसादमुपासीददस्यै ब्रह्महत्याहै तृतीयं प्रतिगृह्णतेति । ता अब्रुवन्वरं वृणा-

मह ऋत्विगात्प्रजां विंदांमहै काममाविजनितोः संभवामेति तस्मादृत्विगास्त्रियः प्रजां विंदते काम-

माविजनितोः संभवन्ति वारे वृतः ह्यासां तृतीयं ब्रह्महत्यायै प्रत्यगृह्णन् सा मलवद्वासा अभवत् ”

१५ इति । स्त्रीषःसादं स्त्रीसमूहम् ऋत्विगादिति ऋतुः प्राप्तोऽस्येति ऋत्विगमार्तवमुच्यते । छंदसि

षसिति षस् । तस्येयः । आविजनिनोः । विजननं प्रसवः । भावलक्षणे स्थे णिति जने स्तोसुनप्रत्ययः ।

संभवः संयोगः । प्रथमसंयोगे गर्भो भवतीति यद्यपि द्वितीयादिप्रवृत्तिरप्रजार्था तथापि कामानुरूपमा-

प्रसवात्संभवाम । गर्भश्च सुखं वर्धतामिति वारे वरणकाले आसामभिव्रतं हि ब्रह्महत्यायै षड्यर्थे

चतुर्थी प्रत्यगृह्णन्त्रियः मलवद्वासाः रजस्वला । वासोयहणं वाससि रजस्पर्शात् प्रभृत्यप्रायत्यम-

२० स्तीति सूचनार्थः । याज्ञवल्क्यः ( आ. ७९ )—

“ षोडशर्तुर्निशाः स्त्रीणां तस्मिन्युग्मासु संविशेत् । ब्रह्मचार्येव पर्वण्याद्याश्चतस्रश्च वर्जयेत् ” ॥

निशाग्रहणं दिवसप्रतिषेधार्थम् । अत एव शंखलिखितौ— “ नार्तवे दिवा मैथुनं व्रजे-

दल्पवीर्याश्च दिवा प्रसूयन्तेऽल्पायुषश्चेति ” । युग्मास्त्विति बहुवचनं समुच्चयार्थम् । तेनैकस्मि-

न्नप्युतावप्रतिषिद्धासु युग्मासु सर्वासु रात्रिषु गच्छेदेवं गच्छन्ब्रह्मचार्येव भवति । अतश्च “ अत्र

२५ ब्रह्मचर्यं चोदितं तत्र गच्छतोऽपि न ब्रह्मचर्यस्खलनप्रयुक्ते दोषोऽस्तीति ” विज्ञानेश्वरः

( पु. २० पं. १-३ ) । पर्वण्याद्याश्च तत्र च वर्जयेदिति । तथाच श्रुतिः “ नामावास्यायां च

पौर्णमास्यां च स्त्रियमुपेयाद्यदुपेयान्निर्दिष्टः स्यात् ” ॥ इति । “ तस्मान्मलवद्वाससा न संवदेत

न सहासीतेति । यां मलवद्वाससा संभवन्ति यस्ततो जायतेऽसौ अभिशस्त ” इति च ।

युग्मास्त्वप्युत्तरोत्तरवैशिष्ट्यमाहापस्तंबः ( ३।९।१ )—“ चतुर्थीप्रभृत्या षोडशीमुत्तरामुत्तरां युग्मां

३० प्रजानिःश्रेयसमृतुगमन इत्युपदिशन्ति ” इति । एतच्चतुर्थेऽह्नि गमनं रजोनिवृत्तौ द्रष्टव्यम् ।

एतदेवाभिप्रेत्य कात्यायनः—

“ रजस्वलां चतुर्थेऽह्नि स्नानाच्छुद्धिमवाप्नुयात् ” इति । हारीतश्च—“ चतुर्थेऽह्नि स्नाताया

युग्मासु च ” इति । तदाह गोभिलः—“ यदुर्तमती भवत्युपरतशोणिता तदा संभवकालः ” इति ॥

पराशरः ( अरुणिङ्गिणी ) ५३३ तत्तिष्ठ ५५।५८ ॥

“स्नाता रजस्वला या तु चतुर्थेऽहनि शुध्यति । कुर्याद्रजोनिवृत्तौ तु दैवपित्र्यादि कर्म च ॥  
 “साध्वाचारा न तावत्सा रजो यावत्प्रवर्तते । रजोनिवृत्तौ गम्या स्त्री गृहकर्मणि चैव हि ॥  
 “प्रथमेऽहनि चण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातकी । तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुध्यति” ॥ इति ।  
 चण्डाल्यादिगमने यावत् प्रत्यवायः तावत् रजस्वलागमनेऽपि । श्रुतिरपि—“तिस्रो रात्रीर्वर्तं  
 चरेत्” इति ॥ एवं चतुर्थदिनवर्ज्यत्वस्मरणं रजोनुवृत्तिविषयं अल्पायुर्धनवर्जितपुत्रोद्भवाभिप्रायं ५  
 वा । तथा व्यासः—

“रात्रौ चतुर्थ्यां पुत्रः स्यादल्पायुर्धनवर्जितः । पंचम्यां पुत्रिणी नारी षष्ठ्यां पुत्रस्तु मध्यमः ॥  
 “सप्तम्यामप्रजा योषिदष्टम्यामीश्वरः सुतः । नवम्यां सुभगा दारा दशम्यां च परः पुमान् ॥  
 “एकादश्यामधर्म्या स्त्री द्वादश्यां पुरुषोत्तमः । त्रयोदश्यां सुता लोकवर्णसंकरकारिणी ॥  
 “धर्मविच्च कृतज्ञः स्यादात्मवेत्ता दृढव्रतः । प्रजायते चतुर्दश्यां गुणोर्ध्वैर्गतिपतिः ॥ १०  
 “राजपत्नी महाभोगा राजवंशगताऽथवा । जायते पंचदश्यां तु बहुपुत्रा पतिव्रता ॥  
 “विद्यालक्षणसंपन्नः सत्यवादी जितेन्द्रियः । आश्रयः सर्वभूतानां षोडशे जायते पुमान्” ॥ इति ।  
 याज्ञवल्क्यः ( आ. ८० )—

“एवं गच्छन्त्रियं क्षामां मधामूलं च वर्जयेत् । स्वस्थ इंदौ संकृत्पुत्रं लक्षणं जनयेत्पुमान्” ॥  
 स्वस्थ इंदौ चंद्रबले सति मधामूले विहाय क्षामां कुशां सकृद्गच्छन् लक्षणं लक्षणयुक्तं च १५  
 पुत्रं जनयेदित्यर्थः । बृहस्पतिः—

“स्त्रियाः शुकेऽधिके स्त्री स्यात्पुमान् पुंसोधिको भवेत् । तस्माच्छुक्रविवृध्यर्थं वृष्यं स्त्रिगंधं च भक्षयेत् ॥  
 “लघ्वाहारां स्त्रियां कुर्यादेवं संजनयेत्सुतम्” ॥ वृष्यं वीर्यवर्धनं द्रव्यम् ॥ मनुः ( ३।४९ )—  
 “पुमान् पुंसोऽधिके शुके स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः । समेऽपुमान्पुंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः” ॥  
 अपुमान् नपुंसकः । पुंस्त्रियौ वा यमलौ यदि तदा बीजविभागः । तदाह यमः— २०  
 “यदि संयोगकाले तु पुरुषो रागमोहितः । द्विधा समुत्सृजेच्छुक्रं यमकं तत्र जायते” ॥ इति ।  
 क्षीणे निःसारे अल्पे च विपर्ययः गर्भाग्रहणम् । स्त्री भवत्यधिके स्त्रिया इत्यत्र रजसीत्यध्याहारः ।  
 अथवा शुक्रशब्दस्यैव रजोवाचकत्वं चेत्यवगंतव्यम् । सायणीयः—

“षष्ठ्यष्टमीं पंचदशीं चतुर्थीं चतुर्दशीमप्युभयत्र हित्वा  
 शेषाः शुभाः स्युस्तिथयो निषेके वाराः शशांकार्यसितेदुजानाम् ॥ २५  
 “विष्णुः प्रजेशरविमित्रसमीरपौष्णमूलोत्तरावरुणभानि निषेककार्ये ।  
 पूज्यानि पुष्यवसुशीतकराश्विचित्रादित्याश्च मध्यमफला विफलाः स्युरन्याः” ॥  
 विष्णुः श्रवणम् । प्रजेशो रोहिणी । रविर्हस्तः । मित्रः अनुराधा । समीरः स्वाती । पौष्णो  
 रेवती । वरुणः शतभिषक् । वसु धनिष्ठा । शीतकरः मृगशिराः । आदित्याः पुनर्वसू ।

“वृषभमिथुनकर्कसिंहकन्या तुलषट्चापझषाः शुभा भवन्ति । ३०  
 यदि शुभबलकारिणोऽनुकूला निधनविशुद्धिकरा निषेककार्ये” ॥  
 निधनमष्टमस्थानम् । ऋतुयौगपथे तु गमनक्रममाह देवलः—

“यौगपथे तु तीर्थानां विप्रादिक्रमशो व्रजेत् । रक्षणार्थमपुत्रां वा ग्रहणक्रमशोऽपि वा ॥  
 तीर्थव्रतः । पराशरः ( ४।१४ )—

“ऋतुस्नातां तु यो भार्यी संनिधौ नोपगच्छति । घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः” ॥

**बोधायनः—**

“ऋतुस्नातां तु यो भार्यी संनिधौ नोपगच्छति । पितरस्तस्य तन्मासं तस्मिन् रेतसि शेरते” ॥ इति । संनिधिग्रहणादसंनिधौ अशक्तौ च न दोषः । तथा देवलः—

५ “स्वयं दारान् ऋतुस्नातान् स्वस्थश्चेन्नोपगच्छति । भ्रूणहत्यामवाप्नोति गर्भं प्राप्तं विनाश्य सः ॥

“त्रीणि वर्षाण्यतिमर्ती यो भार्यी नोपगच्छति । स तुल्यं भ्रूणहत्याया दोषमुच्छत्यसंशयम् ॥

“ऋतौ नोपैति यो भार्यामनृतौ यश्च गच्छति । तुल्यमाहुस्तयोः पापमयो नौ यश्च सिंचति” ॥

अनृतुगमनप्रतिषेधः स्त्रिया इच्छाभावे वेदितव्यः । अन्यथा “यथाकामी भवेत्” इत्यादि-  
वचनविरोधः स्यात् । तथा च गौतमः ( ५।१-२ )—“ऋतावुपेयात्सर्वत्र वा प्रतिषिद्धवर्जम्”

१० इति । आपस्तम्बः । ( २।२०।२२ )—“भोक्ता च धर्माविप्रतिषिद्धान्भोगान्” इति । श्रूयते च

“स्त्रीरक्षणम् अप्रमत्तारक्षत तन्तुमेतममावां क्षेत्रे परबीजानि वाप्सुः” इति । महाभारतेऽपि—

“अग्निहोत्रफला वेदा दत्तभुक्तफलं धनम् । रतिपुत्रफला दारा शीलवृत्तफलं श्रुतिम्” ॥ इति ।

**व्यासः—**

“अनृतावृतुकाले वा दिवारात्रे तथापि वा । प्रोषितस्तु स्त्रियं गच्छेत्प्रायश्चित्तीयते न च” ॥

१५ ऋतुकालातिक्रमदोषापवादमाह व्यासः—

“व्याधितो बन्धनस्थो वा प्रवासेष्वथ पर्वसु । ऋतुकालेषु नारीणां भ्रूणहत्या प्रमुच्यते” ॥

भ्रूणहतिशब्दस्तृतीयांतः । बोधायनः—

“यस्तु पाणिगृहीताया आस्ये गच्छति मैथुनम् । तस्येह निष्कृतिर्नास्तीत्येवमाह प्रजापतिः” ॥ इति ।

**व्यासः—**

२० “परदारान्न गच्छेत्तु मनसाऽपि कथंचन । परदाररतिः पुंसामुभयत्रापि भीतिदा ॥

“इति मत्वा स्वदारेषु ऋतुमत्सु बुधो व्रजेत्” । अजातपुत्रस्यैवात्रतुगमननियमः ।

तथा कूर्मपुराणे ( उत्तरार्धे १५।११ )—“ऋतुकालाभिगामी स्याद्यावत्पुत्रोऽभिजायते”

इति । वसिष्ठोपि ( १७।१-२ )—

“ऋणमस्मिन्संनयत्यमृतत्वं च गच्छति । पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चैज्जीवतो मुखम्” ॥ इति ।

२५ “जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवा जायते ब्रह्मचर्येणर्षिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्य एष

वा अनृतुणो यः पुत्री यज्वा ब्रह्मचारिवासी प्रजयाहि मनुष्यः पूर्णः” ॥

“संतानरहितो जंतुरिह लोके परत्र च । न पूयते वृथा जन्म कुलं तस्य विनश्यति ॥

“अनंताः पुत्रिणो लोका नापुत्रस्य लोकोऽस्ति, प्रजामनुप्रजायसे, तदुत्तममर्थामृतम्”

इत्याद्याः श्रुतिस्मृतयः एकेनापि पुत्रेण चरितार्थाः । तथा च मनुः ( १।१०५ )—

“ज्येष्ठेनैव तु पुत्रेण पुत्रीभवति मानवः । पितृणामनृणश्चैव स तस्मात्सर्वमर्हति” ॥ इति ।

३० “दशास्यां पुत्रानाधेहि” ॥ “एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्” इत्याद्यास्त्वेकपुत्र-

प्रशंसापराः । एवं च बहुपुत्रेच्छायां सत्यां जातपुत्रस्य ऋतुगमनातिक्रमे न दोषः । अत एव

मनुः ( १।१०७ )—

“यस्मिन्नृणं संनयति येन चानंत्यमश्रुते । स एव धर्मजः पुत्रः कामजानितरान्विदुः” ॥ इति ।

३५ आनुशासनिके तु—



“कल्मषं गुरुशुश्रूषा हन्यान्मानो महद्यशः । अपुत्रत्वं त्रयः पुत्रा कुर्वति दश धेनवः” ॥ इति ।  
सायणीये—

“गर्भाधानर्क्षमारभ्य नक्षत्रे जननं भवेत् । नक्षत्रे दशमे वापि द्वादशे वाऽथ निश्चितम् ॥  
“आधानर्क्षं समारभ्य प्रसवो द्वादशे यतः । विज्ञाय शुभनक्षत्रं तद्वन्तव्यं विशेषतः ॥  
“दारप्रियैरलंकारैरलंकृत्य प्रसन्नधीः । प्रियासमीपे शयनं संविशेत्प्रहरद्वयम्” ॥ अपरार्क— ५  
“न स्वपेक्षेण देशेषु तेषु देशेषु चाप्यथा । दीक्षितो वर्जयेद्यत्नात्कृत्वा श्राद्धं च मानवः” ॥  
दीक्षितोऽनुमतदीक्षः । यस्मिन्प्रदेशे स्त्री स्वपिति तत्र न स्वपेत् । वर्जयेन्मैथुनमिति शेषः । व्यासः—  
“नास्नातां तु स्त्रियं गच्छेदातुरां न रजस्वलाम् । नोपयाद्गर्भिणीं नारीं दीर्घमायुर्जिजीविषुः ॥  
“नानिष्टां न प्रकुपितां न सशक्तां न रोगिणीम् । नादक्षिणां नान्यकामां नाकामां नान्ययोषितम् ॥  
“क्षुत्क्षामां नातिभुक्तां वा स्वयं चैतैर्गुणैर्युतः । स्नातः स्रग्गंधधृक्प्रीतो व्यवायं पुरुषो ब्रजेत्” ॥ १०

शांडिल्यः—

“न गच्छेद्गर्भिणीं भार्या मलिनां सितमूर्ध्वजां । रजस्वलां रोगवतीं नायोगौ न बुभुक्षितः ॥  
“सुवस्त्रवेषधरया स्नातया शुद्धचित्तया । अरोगया दयितया स्वयमेवंविधं स्वपेत् ॥  
“धातुक्षयो रोगवृद्धिरश्रीः सत्कर्मविप्लवः । सौभाग्यायुर्यशो नाशः पुंसां स्त्रीस्वतिसंगिनाम्” ॥  
संवर्तः— ५५

“रजस्वलां च यो गच्छेत् गर्भिणीमष्टमासिकीमातस्य पापविशुद्ध्यर्थमतिकृच्छ्रं विशोधनाम्” ॥ इति ।

भारद्वाजः—

“भार्यासंभोगसमये पुष्पकालं विनान्यदा । उपवीतमृत्तौ कुर्यान्निवीतमनृतौ तथा” ॥ मनुः—  
“उपवीती स्त्रियं गच्छेदुत्तु काले तु वै बुधः । निवीतमनृतौ कुर्यात्तद्दोषस्य निवृत्तये ॥  
“मुक्तवसना योषिर्मुक्तवसनः पुमान् । संविशेतामुभौ मुक्तवसनौ कलिराविशेत्” ॥ संवि- २०  
शेदित्युक्त्या रतिकाले मुक्तवसनत्वमाह तमासीत् । अमुक्तवसनत्वं निद्राकाल इति ।  
“ऋतौ तु गर्भशंकित्वात्स्नानं मैथुनिनः स्मृतम् । अनृतौ तु यदा गच्छेच्छौचमूत्रवद्विष्यते” इति ।  
गौतमः ( १।२६ )— “न मिथुनीभूत्वा शौचं प्रति विलंबेत्” इति । मिथुनीभूत्वा  
स्त्रियमुपगम्य शौचं प्रति न विलंबेत् तत्क्षण एव कुर्यात् । अत्र शौचं क्षालनं न तु वस्त्रादीनां  
शोधनं “शुक्ले तिस्रो मृत्तिकाः” इति वचनात् । आपस्तम्बः ( २।१।२३; २।१ )— “उदकोप- २५  
स्पर्शनमपि वा लेपान्प्रक्षाल्याचम्य प्रोक्षणमंगानाम्” इति । उदकोपस्पर्शनं स्नानं तच्च पुंस  
एव । अंगानां तु हरिद्राजलप्रोक्षणमिति । स एव ( १।३२।२ )— “मिथुनीभूय च न तथा  
सर्वां रात्रौ शयीत” इति । ( २।१।२०।२३ )— “स्त्रीवाससैव संनिपातः स्यात् । यावत्संनिपातं च  
सह शय्या । ततो नाना” इति । स्त्रीवाससा स्त्रीसंयोगार्थवाससा । संनिपातः संयोगः । कालादर्श-  
“रजोदृष्टेश्चतुर्थ्याद्या षोडशाहाहतुः स्मृतः । पुत्रोत्पत्तिकरा युग्मा वासराः सप्त शोभनाः ॥ ३०  
“पुन्युत्पत्तिकराः षट् च मध्यमाश्चायुजः स्मृताः । अतिप्रशस्ता दिवसा उभयत्रोत्तरोत्तराः ॥  
“राक्षसर्क्षं मखर्क्षं च पंच पर्वाणि वर्जयेत्” ॥ इति । रजोदर्शनादारभ्य चतुर्थ्याद्या आषोडश  
त्रयोदशवासराः ऋतुः । गर्भोत्पत्त्यनुगुणकालो ऋतुः । उभयत्र युग्मास्वयुग्मासु च । राक्षसर्क्षं  
मूलनक्षत्रम् तन्त्रे—

“चतुर्दश्यष्टमी पक्षद्वये दर्शश्च पूर्णिमा । संक्रांतिश्चेति पर्वाणि पंच प्राहुर्महर्षयः” ॥ इति ।  
कूर्मपुराणे ( उ. १५।१२ )—

“षष्ठ्यष्टमीं पंचदशीं द्वादशीं च चतुर्दशीम् । ब्रह्मचारी भवेन्नित्यं तद्वज्जन्मत्रयेऽहनि” ॥ इति ।  
इति गर्भाधानम् ।

५ अथ पुंसवनम् । आपस्तम्बः—“पुंसवनं व्यक्ते गर्भे तिष्येण ” ॥ इति । पुंसवनमिति कर्मनामधेयम् । येन कर्मणा गर्भिणी पुमांसमेव सूते तत्पुंसवनम् । पुमांसं सूत इत्यर्थवादः । पुंसवनस्य नित्यत्वात् अत्रोवडादेशः छांदसः । आश्वलायनस्तु पुंसवनमिति गुणमेव प्रायुंके । तच्च व्यक्तगर्भे । अस्ति गर्भः । इति निश्चिते व्यक्तेश्च तृतीये चतुर्थे वा मासे तिष्येण पुष्यनक्षत्रे कर्तव्यमित्यर्थः । कालादर्शेऽपि—

१० “तृतीये वा चतुर्थे वा मासि पुंसवनं भवेत् । गर्भव्यक्तौ स्मृतं तच्च लोकसिद्धास्त्रिया हि सा ॥ तत्पुंसवनं स्मृतं सा गर्भव्यक्तिस्त्रियाः तृतीयचतुर्थमासभवत्वेन लोकसिद्धयेत्यर्थः ।

याज्ञवल्क्यः ( आ. ११ )—“गर्भाधानमृतौ पुंसःसवनं स्पन्दनात्पुरा ” । स्पन्दनाद्गर्भचलनात्पुरा कर्तव्यमित्यर्थः । बृहस्पतिस्तु गर्भस्पन्दने पुंसवनमाह—“गर्भाधानमृतौ कुर्यात्सवनं स्पंदिते शिशौ ” इति । वैजावापः—“मासि द्वितीये तृतीये वा पुरा स्पंदने ” इति ।

१५ पारस्करोऽपि ( १।१४।१२ )—“मासि द्वितीये तृतीये वा यदहः पुन्रक्षत्रेण चंद्रमा युक्तः स्यात् ” इति । पुन्रक्षत्राणि रत्नकोशेऽभिहितानि—“हस्तो मूलश्रवणपुनर्वसुमृगशिरस्तथा तिष्यः पुमांसः ” इति । जातूकर्ण्यः—

“द्वितीये वा तृतीये वा मासि पुंसवनं भवेत् । व्यक्ते गर्भेऽथवा कार्यं सीमंतेन सहाथ वा ” ॥ धर्मोद्योते ॥ “तृतीये पुंसवः कृत्वा षष्ठे वा सप्तमेऽपि वा ।

२० “सीमंतोन्नयनं कार्यं न कुर्यात्पुंसवं यदि । “पुंसवं प्राग्विनिर्वर्त्य ततः सीमंतमुन्नयेत् ” ॥ आधानसंस्कारमुख्येन सर्वेषां गर्भाणामयं संस्कार इति प्रथमगर्भ एव पुंसवनमित्येके । ‘पुमांसं जनयति’ इत्यापस्तम्बवचनं गर्भे गर्भे कर्तव्यतापरामिति पुत्रेषुना प्रतिगर्भं कर्तव्यमित्यन्ये । इति पुंसवनम् ।

अथ सीमंतोन्नयनम् । तत्र वैजावापः—“अथ सीमंतोन्नयनं मासि चतुर्थे पंचमे षष्ठे

२५ वा” इति । याज्ञवल्क्यः ( आ. ११ )—“षष्ठेऽष्टमे वा सीमंतो मास्येते जातकर्म च” । एते जाते जातकर्मैत्यर्थः । लोकाक्षिः—“तृतीये गर्भमासे सीमंतोन्नयनं कारयेत् ” इति । कालादर्शे—

“सीमंतोन्नयनं तुरीये मासि षष्ठेऽष्टमे वा ” इति । शंखः “गर्भस्पंदने सीमंतोन्नयनं यावद्वा प्रसवः” इति । एतदुक्तकालस्य केनचिन्निमित्तेन प्रतिबंधे सति द्रष्टव्यम् । तदाह काश्यपः—

“षष्ठे वा सप्तमे मासि सीमंतोन्नयनं भवेत् । अष्टमे नवमे मासि यावद्वा प्रसवो भवेत् ” ॥ इति ।

३० एतच्च स्त्रीसंस्कारत्वात्सकुदेव कार्यम् । न प्रतिगर्भम् । तथा चापस्तम्बः—“सीमंतोन्नयनं प्रथमे गर्भे चतुर्थे मासि” इति । सांख्यायनगृह्येऽपि—“सप्तमे मासि प्रथमे गर्भे सीमंतोन्नयनम्” इति ।

हारीतः—

“सकृत्संस्कृतसंस्काराः सीमंतेन द्विजस्त्रियः । यं यं गर्भं प्रसूयते स सर्वः संस्कृतो भवेत् ” ॥

देवलः—“सकृच्च संस्कृता नारी सर्वगर्भेषु संस्कृता ” इति । केचित्सीमंतोन्नयनं गर्भसंस्कार

३५ इति प्रतिगर्भमावर्त्तयन्ति । तथा च विष्णुः—

“सीमंतोन्नयनं कम तत्स्त्रीसंस्कार उच्यते । केचिद्गर्भस्य संस्काराद्वर्गे गर्भे प्रयुज्यते ” ॥ इति ।  
एतेषां च पक्षाणां स्वस्वगृह्यानुसारेण व्यवस्था द्रष्टव्या ।

अकृतसीमंतायाः प्रसवे सत्यव्रत आह —

“स्त्री यदाऽकृतसीमंता प्रसूयेत कथंचन । गृहीतपुत्रा विधिवत्पुनः संस्कारमर्हति ” ॥

गार्ग्यः—

“यदि सीमंततः पूर्वं प्रसूयेत कथंचन । तदानीं पटके गर्भं स्थाप्य संस्कारमाचरेत् ॥

“मृतो देशांतरगतो भर्ता स्त्री यद्यसंस्कृता । देवरो वा गुरुर्वाऽपि सर्पिडो वा समाचरेत् ” ॥

इति सीमन्तोन्नयनम् । अथ जातकर्म । तत्र विष्णुः—“जातकर्म ततः कुर्यात्पुत्रे जाते यथो-  
दितम् ” । स्वगृह्य इति शेषः । ततः स्नानादनन्तरम् । तथा च संवर्त्तः—“जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलं  
तु विधीयते ” । जाबालिः—“कुर्यान्नैमित्तिकं स्नानं शीताद्भिः कार्यमेव च ” । वसिष्ठः— १०

“पुत्रजन्मनि यज्ञे च तथा संक्रमणे रवेः । राहोश्च दर्शने स्नानं प्रशस्तं नान्यथा निशि ” ।

यज्ञेऽवभृत्स्नानम् । व्यासः—

“रात्रौ स्नानं न कुर्वीत दानं चैव विशेषतः । नैमित्तिकं तु कुर्वीत स्नानं दानं च रात्रिषु ॥

“ग्रहणोद्गाहसंक्रांतियात्रार्तिप्रसवेषु च । दानं नैमित्तिकं ज्ञेयं रात्रावपि न दुष्यति ॥

“पुत्रजन्मनि यात्रायां शर्वर्या दत्तमक्षयम् ” । रात्रिस्नाने विशेषमाह सांख्यायनः— १५

“दिवा यदाहृतं तोयं कृत्वा स्वर्णयुतं तु तत् । रात्रिस्नाने तु संप्राप्ते स्नायादनलसंनिधौ ” ॥

मनुः (२।२९)—“प्राङ्गाम्भिवर्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते” । संवर्त्तः ॥ “मंत्रवत्प्राशनं चास्य  
हिरण्यमधुसर्पिषाम् ” । वैजावापः—

“जन्मनोऽनंतरं कार्यं जातकर्म यथाविधि । दैवादतीतकालं चेदतीते सूतको भवेत् ॥

“यावन्न छियते नालं तावन्नामोति सूतकम् । छिन्ननाले ततः पश्चात्सूतकं तु विधीयते” ॥ इति । २०

व्यासः—

“अछिन्ननाभ्यां कर्त्तव्यं श्राद्धं वै पुत्रजन्मनि । आशौचोपरमे कार्यमथवा नियतात्मभिः ” ॥

एतद् द्रव्याभावे वेदितव्यम् । श्राद्धमेतदामद्रव्येण हेम्ना वा कार्यम् । यथाह प्रचेताः—

“स्त्रीशूद्रस्वपचश्चैव जातकर्मणि वाऽप्यथ । आमश्राद्धं तथा कुर्याद्विधिना पार्वणेन तु” ॥

स्वपचः स्वयंपचः । बोधायनः— २५

“अन्नाभावे द्विजाभावे प्रवासे पुत्रजन्मनि । हेमश्राद्धं संग्रहे च कुर्याच्छूद्रः सदैव हि” ॥

आदिपुराणे तु जातश्राद्धे पक्वान्ननिषेधो दर्शितः—

“जातश्राद्धे न दद्यात् पक्वान्नं ब्राह्मणेष्वापि । यस्माच्चान्द्रायणाच्छुद्धिस्तेषां भवति नान्यथा” इति ।

वृद्ध्याज्ञवलक्यः—

“कुमारजन्मादिवसे विप्रैः कार्यः प्रतिग्रहः । हिरण्यभूगवाश्वाजवासःशय्यासनादिषु ॥ ३०

“तत्र सर्वं प्रतिग्राह्यं कृतान्नं तु विवर्जयेत् । भक्षयित्वा तु तन्मोहात् द्विजश्चान्द्रायणं चरेत्” ॥

सकुल्यानां तु कृतान्नप्रतिग्रहे दोषाभावः “सूतके तु सकुल्यानां न दोषं मनुरब्रवीत्” इति  
स्मरणात् । तच्च कृतान्नं सकुल्यब्रह्मचारिव्यतिरिक्तविषयम् । अन्नदानं सकुल्येभ्योऽपि दद्यादित्याह

शंखः—“सर्वेषां सकुल्यानां द्विपदचपुष्पदधान्यहिरण्यादि दद्यात्” इति । व्यासः—

“ देवाश्च पितरश्चैव पुत्रे जाते द्विजन्मनाम् । आयांति तदहस्तस्मात्पुण्यं पूज्यं च सर्वदा ॥  
 “तत्र दद्यात्सुवर्णं तु भूमिं गां तुरगं रथम् । छत्रं छागं वस्त्रमाल्ये शयनं चासनं गृहम् ॥  
 “जाते कुमारे तदहः कामं कुर्यात्प्रतिग्रहम् । हिरण्यधान्यगोवासश्चित्रान्नगुडसर्पिषाम् ॥

पराशरः ( १२।२२ )—

- ५ “सल्यज्ञे विवाहे च संक्रांतौ ग्रहणे स्मृतौ । पुत्रे जाते व्यतीपाते दत्तं भवति चाक्षयम्” ॥  
 यत्तु “ कुमारप्रसवे नाभ्यामच्छिन्नायां गुडतिलहिरण्यगोधान्यप्रतिग्रहेष्वदोषः ” इति शंख-  
 स्मरणं यदपि “ प्राङ्नाभिच्छेदनात्संस्कारः पुण्यार्थान्कुर्वन्ति छिन्नायामाशौचम् ” इति  
 हारीतस्मरणं । यदपि “ छिन्ने नाले ततः पश्चात्सूतकं तु विधीयते ” । इति बैजावापस्मरणं  
 तत्सर्वं नालछेदात्पूर्वमेव जातकर्मश्राद्धं च कर्त्तव्यमित्येवंपरम् । तदाह सत्यव्रतः—“ पुत्र-  
 १० जन्मन्या नाभिकर्त्तनात्पुण्यं दानं कृतं जातकर्मश्राद्धं कुर्यात् ” इति । दानप्रतिग्रहयोस्तु कृत्स्नं  
 जन्मदिनं प्रशस्तमेव बहुस्मृतिसंमतत्वात् । तत्र बृद्धमनुः—“ जाते कुमारे तदहः कामं कुर्या-  
 त्प्रतिग्रहम् ” । याज्ञवल्क्यः ( प्रा. १९ )—“ तदहर्न प्रदुष्येत पूर्वेषां जन्मकारणात् ” हर-  
 वत्तश्च—“ जाते कुमारे पितृणामामोदात्पुण्यं तदहः ” । आमोदो हर्षः । गौतमः—  
 “ प्राङ्नाभिर्वर्धनात्पुण्यं तदहस्त्येके ” । शंखश्च—“ कुमारप्रसवे नाभ्यामच्छिन्नायां गुडति-  
 १५ लहिरण्यवस्त्रगोधान्यप्रतिग्रहेष्वदोषस्तदहस्त्येके ” इति । संग्रहेऽपि—“ पुण्यत्वात्पुत्रजन्माहे  
 देयं ग्राह्यं सदा परैः ” इति । जातुकर्ण्यः—

“ मृताशौचे समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत् । आशौचे निर्गते कुर्याज्जातकर्म च नाम च ॥  
 “जननाशौचमुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत् । जननानंतरं कुर्याज्जातकर्म यथाविधि” ॥ पूर्णसंग्रहे—  
 “ग्रहणे चैव संक्रांतौ पुत्रस्यैव च जन्मनि । आशौचं नास्ति भुक्तोऽपि स्नानदानादिकं चरेत्” ॥ इति ।

२० प्रजापतिः—

“आशौचे तु समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत् । कर्त्तुं स्तात्कालिकी शुद्धिः पूर्वाशौचेन शुध्यति” ॥  
 स्मृत्यर्थसारे—“ जाते पुत्रे पिता स्नात्वा रात्रौ संध्ययोग्रहणे वा वृद्धिश्राद्धं कृत्वा जातकर्म  
 कुर्यात् । आशौचांतरमध्ये च कुर्यात् ” इति । आशौचांतरमध्ये कुर्यादिति पुत्रजन्मन्याहि-  
 ताग्नेरिति श्रूयते ( तै. सं. २।२।५ )—

- २५ “ वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेत्पुत्रे जाते यद्दद्याकपालो भवति गायत्रियैवैनं ब्रह्मवर्चसेन  
 पुनाति यन्नवकपालस्त्रिवृतैवास्मिंस्तेजो दधाति यद्दद्याकपालो विराजैवास्मिन्नन्नाद्यं दधाति  
 यदेकादशकपालस्त्रिष्टुभैवास्मिन्निद्रियं दधाति यद्दद्याकपालो जगत्त्रैवास्मिन्पशून् दधाति  
 यस्मिज्जात एतामिति निर्वपति पूत एव तेजस्व्यन्नाद इन्द्रियावी पशुमान्भवति ” । यद्दद्याकपाल  
 इत्यादिना द्वादशकपालः सूयते । जातस्य पूतत्वादिकमिष्टेः फलमिति दर्शयति । यस्मिन्नित्यादिना  
 ३० इयं चेष्टिः काम्या आथर्वादिकपुत्रगतब्रह्मवर्चसादिकाननासंवलितस्यैव जन्मनोऽधिकारहेतुत्वा-  
 भ्युपगमाज्जातेष्टिः प्रवृत्तेश्च जीवत्पुत्रगतपुत्रत्वादिफलरागाधीनत्वात्पुत्रजन्माख्यनिमित्त-  
 संयोगेन श्रुतापीहेयमिष्टिर्दीष्ट्या यदि पशुना यदि सोमेन यजेतामावास्यायां पौर्णमास्यां  
 वेति विधिना आशौचानंतरं पर्वण्येव कर्त्तव्या जननानंतरमेव संशासनात् जातकर्म कर्त्तव्यम् ॥  
 स्मृतिरत्ने—

“ सर्वैः स्वजन्मदिवसे स्नातैर्मगलशालिभिः । गुरुदेवाग्निविप्राश्च पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥

“ स्वनक्षत्रे च पितरस्तथा देवाः प्रजापतिः । प्रतिसंवत्सरं यत्नात् कर्त्तव्यश्च महोत्सवः ” ॥

इति जातकर्म । अथ नामकरणम् । तत्र मनुः ( २।३० )—

“ नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वाऽस्य कारयेत् । पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते ” ॥

दशम्यां द्वादश्यां तिथौ जन्मदिनाद्दशमे द्वादशे वा दिवस इत्यर्थः । पुण्ये मुहूर्ते इत्यन्वयः । ५

यमः—

“ नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वाऽस्य कारयेत् । पुण्ये नक्षत्रदिवसे मुहूर्ते वा गुणान्विते ” ॥

गोभिलः— “ दशरात्राच्छतरात्रात्संवत्सराद्वा नाम कुर्यात् ” इति । बह्वचपरिशिष्टेऽपि—

“ जननाद्दशरात्रे शतरात्रे संवत्सरे वा नामकरणम् ” इति । याज्ञवल्क्यः ( आ. १२ )—

“ अहन्येकादशे नाम चतुर्थे मासि निष्क्रमः । षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि चूडा कार्या यथाकुलम् ” ॥ १०

स्मृतिरत्ने— “ ततस्तु नाम कुर्वीत पितैव दशमेऽहनि ।

“ यद्वा पितुरभावः स्यादयोग्यत्वमथापि वा । अन्यो वा कुलवृद्धो वा जातकर्मादि कारयेत् ” ॥

कुर्यादित्यर्थः । शंखोऽपि— “ कुलदेवतानक्षत्राभिसंबंधं पिता कुर्यादन्यो वा कुलवृद्धः ” इति ।

व्यासः— “ नामधेयं दशम्यां तु केचिदिच्छन्ति सूरयः । द्वादश्यामथवा रात्रौ मासे पूर्णे तथापरे ॥

“ अष्टादशेऽहनि तथा वदन्त्यन्ये मनीषिणः ” ॥ पारस्करः— ( १।१७।१ ) “ दशम्यामुत्थाप्य १५

ब्राह्मणान्भोजयित्वा पिता नाम करोति ” इति । शङ्खोऽपि— “ दशम्यामुत्थाप्य पिंडविवर्धनं

पितृणां तत्र सांनिध्यम् ” इति । उत्थाप्य पूर्वशय्यातः । पिंडविवर्धनं आद्धम् । नामस्वरूपमाह

मनुः ( २।३१ )—

“ मंगल्यं ब्राह्मणस्य स्यात्क्षत्रियस्य बलान्वितम् । वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् ” ॥

मंगलबलधननिर्दिष्टप्रतिपादकान्येव तेषां क्रमेण नामधेयानि भवन्तीत्यर्थः । २०

स एवोपपदान्यथाह ( २।१२ )—

“ शर्मवद्ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षासमन्वितम् । वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्य संयुतम् ” ॥

शर्मरक्षापुष्टिप्रेष्यवाचकान्येव तेषां क्रमेण उपपदानीत्यर्थः । एवं चैव नामधेयानि भवन्ति ।

भद्रशर्मा शक्तिपालो धनपुष्टो हीनदास इति । अन्ये तु शर्मादीनामर्थपरत्वं मन्यन्ते । न तु शब्द-

परत्वम् । अस्मिन्मते सुमन्निः धृतराष्ट्रः निधिपालः पशुसंघ इत्यादीनि भवन्ति । यमोऽप्युत्तरपदे २५

विशेषमाह—

“ शर्मा देवश्च विप्रस्य वर्म त्राता च भूभुजः । भृतिर्दत्तश्च वैश्यस्य दास्यं शूद्रस्य कारयेत् ” ॥ इति ।

अत्रापि मंगल्यं ब्राह्मणस्येत्यादि मन्त्रैः पूर्वपदे नामधेयानि द्रष्टव्यानि ।

एवं च भद्रशर्मा भद्रदेव इति वा ब्राह्मणस्य नामधेयम् । एवमितरेषामप्युक्तम् । आश्वलायनः—

“ शर्मातं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मातं क्षत्रियस्य तु । गुप्तदासपदां तस्मादभिधा वैश्यशूद्रयोः ” ॥ ३०

आपस्तम्बः ( ६।१।५।८ )— “ दशम्यामुत्थितायां स्नातायां पुत्रस्य नाम दधाति पिता माता ” इति ।

उत्थितायां सूतिकागृहान्निष्क्रान्तायां स्नातायाम् । एवं च दशमेऽहनि नामकरणे सूतीगृहा-

न्निर्गत्य स्नातव्यमित्युक्तं भवति । सूतिकाशुद्धचर्मैकादशेऽहनि च स्नानं भवति । इतिशब्दश्चार्थे

मातापितरौ सहितौ नाम धत्त इति । इममर्थं मंत्रवर्णोऽप्याह— ( तै.सं. १।५।१० ) “ मम नाम प्रथमं

- जातवेदः पिता माता च दधतुर्यदग्ने” इति । प्रकारांतरेण नाम्नो लक्षणमाहापस्तंबः (६।१।५।९-१०) — “अक्षरं चतुरक्षरं वा नामपूर्वमाख्यातोत्तरं दीर्घाभिनिष्ठानन्तं घोषवदाद्यन्तरंतस्थमपि वा यस्मिन्-स्वित्युपसर्गः स्यात्तद्धि प्रतिष्ठितमिति ब्राह्मणम्” इति । द्रव्यवाचकं सुबंतं पदं नाम तत्पूर्वं यस्य तन्नाम पूर्वमाख्यातं क्रियावाचि क्बंतमुत्तरपदं यस्य नाम्नः तदाख्यातोत्तरम् । दीर्घाभिनिष्ठानां
- ५ दीर्घोऽभिनिष्ठानश्चांते यस्य नाम्नः तत्तथोक्तम् । आभिनिष्ठान इति विसर्जनीयस्य पूर्वाचार्याणां संज्ञा । घोषवान्वर्गवृतीयश्चतुर्थो वा वर्ण आदिर्यस्य नाम्नः तद्वोषवदादि । अंतरंतस्थं अंतः मध्ये अंतस्था यरलवयस्य नाम्नस्तत्तद्वक्षरस्य वार्दा गीर्दा इत्याद्युदाहरणं वा । उदकं ददातीति वार्दाः । गीरं ददातीति गीर्दाः । चतुरक्षरस्य हिरण्यदा इत्यादि । अपि वेति अक्षरादिविशेषणैर्विकल्पः । यस्मिन्नाम्नि स्वित्ययमुपसर्गः स्यात्तन्नाम प्रतिष्ठितं आयुष्मद्यज्ञादि-
- १० क्रियावच्च भवति । यथा सुजातः सुदर्शन इत्यादि । वैजावापः— “पिता नाम करोतीत्येकाक्षरं अक्षरं त्र्यक्षरं चतुरक्षरमपि मितं वा घोषवदा अंतरंतस्थं दीर्घाभिनिष्ठानन्तमिति कृदंतं कुर्यान्नतद्धितांतम्” इति च । बोधायनः विकल्पांतराण्याह ( २।१।२८-२९ ) — “ऋष्यणूकं देवताणूकं वा यथा वैषां पूर्वपुरुषाणां नामानि स्युः” इति । अणूकमभिधायकम् । शङ्खोऽपि— “कुलदेवतानक्षत्राभिसंबन्धं पिता कुर्यात्” इति । स्त्रीणां नामधेयं मनुराह (२।३३) —
- १५ “स्त्रीणां सुखोद्यमक्रूरं विस्पष्टार्थं मनोहरम् । मङ्गल्यं दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत्” ॥ इति । सुखोद्यं सुखोच्चारणक्षमम् । दीर्घवर्णः आकार ईकारो वा । अत एव पारस्करः (१।१।७।४) — “अयुगाक्षरमाकारान्तं स्त्रियाः” इति । शङ्खोऽपि— “ईकारांतं स्त्रीणामेवं कृते नाम्नि शुचि तत्कुलं भवति” इति । आपस्तंबोऽपि (६।१।५।११) — “अयुजाक्षरं कुमार्याः” इति । अयुजाक्षरं विषमाक्षरम् । अयुजाक्षरमिति छान्दसम् । यथा श्रीः यशोदा पार्वतीति । अत्र यथास्वगृह्यं
- २० यथाकुलाचारं वा व्यवस्था । इति नामधेयम् । कर्णवेधः सायणीये दर्शितः— “कार्तिके पौषमासे वा चैत्रे वा फाल्गुनेऽपि वा । कर्णवेधं प्रशंसति शुक्ले पक्षे शुभे दिने ॥ “शिशोरजातदंतस्य मातुरुत्संगसर्पिणः । सौचिको वेधयेत्कर्णौ सूच्या द्विगुणसूत्रया” ॥ इति । इति कर्णवेधः । अथ निष्क्रमणम् । मनुः ( २।३४ ) — “चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात्” इति । स्मृतिचंद्रिकायां ( पृ. २१-३१; पृ. २२. पं. १-३ ) —
- २५ “द्वादशेऽहनि कर्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात् । चतुर्थे मासि कर्तव्यं तथाऽन्येषां मतं विभो” ॥ निष्क्रमणानन्तरं कर्तव्यमाह शङ्खः— “चतुर्थे मासि कर्तव्यं बालस्यादित्यदर्शनम्” ।
- यमोपि—
- “ततस्तृतीये कर्तव्यं मासि सूर्यस्य दर्शनम् । चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोश्चंद्रस्य दर्शनम्” ॥ इति । तथा स्मृत्यर्थसारे— “निष्क्रामणं चंद्रसूर्यदेवतादर्शनं च द्वादशेऽहनि तृतीये चतुर्थे वा मासि
- ३० कुर्यात्” इति । इति निष्क्रमणम् ॥ अथान्नप्राशनम् । तत्र मनुः ( २।३।४ ) — “षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यच्चेष्टं मंगलं कुले” । यमः—

“ततोऽन्नप्राशनं मासि षष्ठे कार्यं यथाविधि । अष्टमे वाऽपि कर्तव्यं यच्चेष्टं मंगलं कुले” ॥ लोकाक्षिः— “षष्ठे मासेऽन्नप्राशनं जातेषु दंतेषु वा” इति । शङ्खः— “संवत्सरात्प्राक्संवत्सर इत्येक” इति । आपस्तंबः (५।१।६।१) — “जन्मनोऽधिषष्ठे मासि ब्राह्मणान्भोजयित्वाऽऽशिषो

वाचयित्वा दधिमधुघृतमोदनमिति सः सृज्योत्तरैर्मन्त्रैः कुमारं प्राशयेत् ” इति । जन्मनोऽधि जन्मदिनमारभ्य दिवसगणनया षष्ठे मासे । यदाह बृहस्पतिः—

“पंचाशद्विंशत् त्रिघ्नात् पश्चात् त्रिहतषष्टिकात् । अर्वागोवोत्तमा भुक्तिः ” इति । अत्रापि यथास्वगृह्यं व्यवस्था । मार्कण्डेयः—

“देवतापुरतस्तस्य धात्र्युत्संगगतस्य च । अलंकृतस्य दातव्यमन्नं पात्रे च कांचने ॥ ५

“सध्वाज्यकनक्रोपेतं प्राशयेत्पायसं ततः । कृतप्राशमयोत्संगात् धात्री बालं समुत्सृजेत् ” ॥

अन्नप्राशनानंतरं बालस्य जीविकापरीक्षामाह स एव—

“तस्याग्रतोऽथ विन्यस्य शिल्पभांडानि सर्वशः । शस्त्राणि चैव वस्त्राणि ततः पश्येत्तु लक्षणम् ॥

“प्रथमं यत्स्पृशेद्बालस्ततो भांडं स्वयं तदा । जीविका तस्य बालस्य तेनैव तु भविष्यति” ॥ इति ।

इत्यन्नप्राशनम् । अथ चूडाकरणम् । तत्र मनुः ( २।३५ )—

“चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः । प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात्” । द्विजातिग्रहणेन शूद्रपर्युदासः । चूडा शिखा । धर्मतः कुलधर्मतः । श्रुतिचोदनादिति श्रूयते हि— ( ऋ. सं. ५।१।२२; तै. सं. )

“यत्र बाणाः संपतन्ति कुमारा विशिखा इव ” इति । याज्ञवल्क्यः (आ. १२)—“षष्ठेऽन्न-प्राशनं मासे चूडा कार्या यथाकुलम् ” ॥ इति शौनकोऽपि—“तृतीये वर्षे चौलं यथाकुल- १५ धर्मं वा” इति । यस्मिन्कुले यदा येन प्रकारेण चूडाकर्म तथा तथैव कार्यमित्यर्थः । यमः—

“ततः संवत्सरे पूर्णे चूडाकर्म विधीयते । द्वितीये वा तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात् । यथाकुलं यथाशास्रं चूडा कार्या द्विजातिभिः ” ॥ वैजावापः—“त्रिवर्षे चूडाकरणम् ” इति । शंखः—“तृतीये वर्षे चूडाकर्म पंचमे वा ” । इति । लोणाक्षिः—“तृतीयस्य वर्षस्य भूयिष्ठे गते चूडां कारयते दक्षिणतश्चूडा वासिष्ठानां वामतो भारद्वाजानामुभयतः काश्यपानाम् ” ॥ २०

मृकुंडुः—“पंच चूडा आंगीरसो वाजिमेके मंगलार्थं शिखिनोऽन्ये यथा कुलधर्मं भवति ” । वाजिः केशपंक्तिः । अन्ये तु शिखामात्रं यत्रकश्चन मंगलार्थं कुर्वतीत्यर्थः । आपस्तंबः (६।१६।६-७)—“यथर्षिं शिखा निदधाति । यथा वैषां कुलधर्मः स्यात् ” इति । यथर्षिं यावतो ऋषयः स्वप्रवरे तावतीः शिखा निदधाति । एकार्षेयस्यैका शिखा व्यार्षेयस्य द्वे शिख इत्यादि । अथवा येन प्रकारेण येषां कुलजानां धर्मः प्रवर्तते तथा शिखा कर्तव्येत्यर्थः । अत्र च जन्म- २५ प्रभृति वर्षसंख्या वेदितव्या । “जन्मनोधितृतीये वर्षे चौलं पुनर्वसोरितिः । इत्यापस्तंबस्मरणात् । ( गृ. १६।३ ) अधितृतीये अर्धाधिकतृतीये अत्र पुनर्वसुग्रहणं विहितनक्षत्रोपलक्षणार्थम् । अत एव व्यासः—

“अश्विनीश्रवणस्वातीचित्रा पुष्यपुनर्वसु । धनिष्ठा रेवतीज्येष्ठा मृगहस्तेषु कारयेत् ॥

“नक्षत्रे तु न कुर्वीत यस्मिंजातो भवेन्नरः । न प्रोष्ठपदयोः कार्यं नैवाग्नेये च भारत ॥ ३०

“तिथिं प्रतिपदं रिक्तां विष्टिं चैव विसर्जयेत् । वारं शनैश्चरादित्यभौमानां रात्रिमेव च ” ॥ इति । गर्गः—

“पुत्रचूडाकृतौ माता यदि सा गर्भिणी भवेत् । शस्त्रेण मृत्युमाप्नोति तस्मात् क्षौरं विवर्जयेत् ” ॥

नारदः—

“सूनोर्मातरि गर्भिण्यां चूडाकर्म न कारयेत् । पंचाब्दात्प्रागधोर्ध्वं तु गर्भिण्यामपि कारयेत् ॥

“आरभ्याधानमाचौलात्कालातीति तु कर्मणाम् । आज्यव्याहृतिभिर्हुत्वा प्रायश्चित्तं यथाचरेत् ॥  
 “एतेष्वेकैकलोपे तु पादकुच्छ्रं समाचरेत् । चौलकेऽर्धं तु सर्वत्र मत्या तु द्विगुणं चरेत् ” ॥  
 इति चौलकर्म । अथ स्त्रीणां जातकर्मादि । तत्र याज्ञवल्क्यः ( आ. १३ )—

“तूष्णीमेताः क्रिया स्त्रीणां विवाहश्च समंत्रकः ” । एता जातकर्मादिचूडाकरणपर्यन्ताः

५ क्रियास्तूष्णीं विना मंत्रेण कार्या इत्यर्थः । मनुरपि ( २।६६ )—

“अमंत्रका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः । संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम् ” ॥  
 आवृत् जातकर्मादिक्रिया । गोभिलस्तु विशेषमाह—“तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणाममंत्रेण तु होमः”  
 इति । स्त्रीणामप्युक्तकालातिक्रमे प्रायश्चित्तमाह कात्यायनः—

“संस्कारा अतिपथेरन्स्वकालाच्चेत्कथंचन । हुत्वैतदेवकर्तव्यं यत्तूपनयनादयः ” ॥ इति ।

१० एतदेव सर्वप्रायश्चित्तमेव । सर्वप्रायश्चित्तमपि तेनैवोक्तम् । “सर्वप्रायश्चित्तं च पंचभिः प्रत्युचं  
 ‘त्वन्नो अग्ने’ इति द्वाभ्याम् ‘अयाश्वाग्ने’ ‘येशतम्’ ‘उदुत्तम्’ इति च” इति । स्त्रीणामुपनयनकाला-  
 त्पित्तौ व्रात्यप्रायश्चित्तं भवत्येवेति चंद्रिकायां ( पृ. २४ पं. ७ ) । स्त्रीणां विवाह एवोपनयन-  
 मित्याह मनुः ( २।६७ )—

“वैवाहिको विधिः स्त्रीणामौपनायनिकः स्मृतः । पतिसेवा गुरौ वासो ग्रहार्थोऽग्निपरिक्रिया” ॥ इति ।

१५ तत्र गुरुकुलवासोऽग्निकार्यं चोत्तरार्धेनोक्तः । पतिसेवा गुरुशुश्रूषा गृहकृत्यकरणमाग्निपरिचर्येत्यर्थः ।  
 अतश्चात्रापि तत ऊर्ध्वं कामचरादिवर्जनं “प्रागुपनयनात्कामचारवादेत्यादि” ( गौतमसू. २।१।२ )  
 च समानम् । यत्तु हारीतेनोक्तं “द्विविधा स्त्रियो ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च । तत्र ब्रह्मवादिनी-  
 नामुपनयनमग्नीधनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भिक्षाचर्या ” इति “सद्योवधूनां तूपस्थिते विवाहे  
 कथंचिदुपनयनं कृत्वा विवाहः कार्यः” इति तत्कल्पांतराभिप्रायम् । तथा च यमः—

२० “पुराकल्पे तु नारीणां मौंजीबंधनमिष्यते । अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवचनं तथा ॥  
 “पिता पितृव्यो भ्राता वा नैनामध्यापयेत्परः ।

“स्वगृहे चैव कन्याया भैक्षचर्या विधीयते । वर्जयेदजिनं चीरं जटाधारणमेव च” ॥ इति ।  
 स्मृत्यर्थसारे—“एते संस्कारा बीजगर्भदोषापनुपत्तये यथास्वाचारं कार्याः स्त्रीणां तूष्णीं स्युर्वि-  
 वाहस्तु समंत्रकः । स्वकालातिक्रमे व्याहृतिहोमपूर्वं कार्या । एतेषामेकैकलोपे पादकुच्छ्रं मत्यालोपे

२५ द्विगुणः ” इति । इति जातकर्मादि ।

अथाक्षराभ्यासः । मार्कण्डेयः—

“प्राप्ते तु पंचमे वर्षे ह्यप्रसुप्ते जनार्दने । षष्ठीं प्रतिपदं चैव वर्जयित्वा तथाऽष्टमीम् ॥  
 “रिक्तां पंचदशीं चैव सौरभौमदिने तथा । एवं सुनिश्चिते काले विद्यारंभं तु कारयेत्” ॥

सायणीये—

३० “उत्तरायणगे सूर्ये कुंभमासं विवर्जयेत् । बालस्य पंचमे वर्षे प्राप्ते भानौ कुलीरगे ॥  
 “आरभेताक्षरं तत्र शुभकाले यथोदिते ॥  
 “वारे दिनेशभृगुपुत्रबृहस्पतीनां विद्वानसौ भवति योऽपि विमूढबुद्धिः ॥  
 “चंद्रे च चंद्रतनये च भृशं च सत्वविघ्नं करोत्यवनिजो विजयो विनाशम् ॥  
 “वैष्णवादित्यतिष्येदुश्रविष्ठास्वातिवारुणाः । मैत्रेद्रहस्तचित्राश्च विद्यारंभेषु पूजिताः ” ॥



मार्कण्डेयः—

“पूजयित्वा हरिं लक्ष्मीं देवीं चैव सरस्वतीम् । स्वविद्यासूत्रकारांश्च स्वां विद्यां च विशेषतः ॥

“एतेषामेव देवानां नाम्ना तु जुहुयाद्घृतम् । दक्षिणाभिर्द्विजेन्द्राणां कर्तव्यं चात्र पूजनम् ॥

“प्राङ्मुखो गुरुरासीनो वारुणाभिमुखं शिशुम् । अध्यापयेत्तु प्रथमं द्विजाशीभिः सुपूजितम् ॥

“ततः प्रभृत्यनध्यायान्वर्जनीयान् विवर्जयेत् । अष्टमीद्वितयं चैव पक्षान्ते च दिनद्वयम्” ॥ इति । ५

इत्यक्षराभ्यासः ॥ “अथानुपनीतधर्माः । अत्रापस्तम्बः (२।१५।१९-२५)—“आऽन्नप्राश-

नादूर्गर्भा नाप्रयता भवंत्या परिसंवत्सरादित्येके यावता वा दिशो न प्रजानीयुः । ओपनयना-

दित्यपरम् । अत्र ह्यधिकारः शास्त्रैर्भवति । सा निष्ठा । स्मृतिश्च ” इति । अन्नप्राशनात्प्राक् गर्भा

बाला अप्रयता न भवंति रजस्वलादि स्पर्शेऽपि । यावत्संवत्सरो न परिपूर्यते तावन्नाप्रयता इत्येके

मन्यन्ते । यावद्वा दिग्विभागज्ञानं नास्ति तावन्नाप्रयताः । उपनयादूर्वाङ्गाप्रयता इत्यपि दर्शनम् । १०

अत्रोपपत्तिरत्र ह्यधिकार इति हि यस्मादत्र ह्युपनयने सति विधिनिषेधशास्त्रैरधिकारो भवति ।

सा निष्ठा तदुपनयनमवसानमधिकारस्यास्मिन्नर्थे स्मृतिश्चास्तीत्यर्थः । तथा दक्षः—

“जातमात्रः शिशुस्तावद्यावदष्टसमा वयाः । सोऽपि गर्भसमो ज्ञेयो गर्भमात्रप्रकाशितः ॥

“भक्ष्याभक्ष्ये तथा पेये वाच्यावाच्ये तथाऽनूते । अस्मिन्काले न दोषः स्यात्स यावन्नोपनीयते ॥

“उपनीते च दोषोऽस्ति क्रियमाणैर्विगर्हितः” ॥ इति । न चापेय इत्यनेन मद्यादिपाने न दोषः १५

इति शङ्कनीयम् । ‘वर्जयेत्’ इत्यनुवृत्तौ ‘नित्यं मयं ब्राह्मणः’ इति गौतमस्मरणात् (२।२५) ।

तत्र च नित्यग्रहणमनुपनीतस्यापि प्रतिषेधार्थं न च प्रागुपनयनात्ब्राह्मण्यमेव नास्तीत्यपि

शङ्कनीयम्—

“ब्राह्मण्यां ब्राह्मणेनैव ह्युत्पन्नो ब्राह्मणः स्मृतः । सर्वर्णेभ्यः सर्वर्णासु जायन्ते हि स जातयः” ॥

इति हारीतयाज्ञवल्क्याभ्यामुत्पत्तिमात्रेण साजात्यस्याभिधानात् ( आ. १० ) “गर्भाष्टमेऽब्दे २०

कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनयनमिति” मनुना (२।३६) ब्राह्मणस्य सत उपनयनविधानाच्च ।

गौतमः (२।१-१०)—“प्रागुपनयनात्कामचारवादभक्षोऽहुताद्ब्रह्मचारी यथोपपादितमूत्र-

पुरीषो भवति । नास्याऽऽचमनकल्पो विद्यते । अन्यत्रापमार्जनप्रधानावोक्षणेभ्यो न तदुपस्पर्शना-

दाशौचं । न त्वेवैनमग्निहवनबलिहरणयोर्नियुञ्ज्यात् । ब्रह्माभिव्याहारयेदन्यत्र स्वधानिनयना-

दुपनयनादिर्नियमः” । कामाचार इच्छाचरणम् । कामवादोऽश्लीलानृततादिभाषणम् । कामभक्षः २५

पर्युषितादिभक्षणम् । एतेषु प्रागुपनयनान्न दोषः । एतच्च महापातकव्यतिरिक्तविषयं “स्यात्का-

मचारवादभक्षोक्तिर्महतः पातकादृत” इति स्मरणात् । तत्करणे प्रायश्चित्तं भवत्येव ।

“आशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाऽप्यूनषोडशः । प्रायश्चित्तार्थमर्हन्ति स्त्रियो रोगिण एव च ॥

“उनैकादशवर्षस्य पंचवर्षात्परस्य च । चरेद्गुरुः सुहृच्चैव प्रायश्चित्तं विशुद्ध्ये ॥

“अतो बालतरस्यास्य नापराधो न पातकम् । राजदंडश्च नास्यातः प्रायश्चित्तं च नेष्यते” इति ॥ ३०

अत्र यद्यपि सामान्येन प्रागुपनयनादित्युक्तं तथापि षष्ठादूर्वात्प्रागेव कामाचारादि द्रष्टव्यम् ।

ततः परं पित्रादिभिर्वर्णधर्मेषु नियोक्तव्यः । अनियुञ्जानास्तु प्रायश्चित्तिनो दण्ड्याश्चेति

मिताक्षर्या कचित्कामभक्षणस्यापवादमाह । अहुताद्धुतशिष्टं चरुपुरोडाशादितदतीति । अहुतात्

न हुताद्यथाऽयमहुतात्स्यात्तथा पित्रा नियुज्येतेत्यर्थः । तथा च यमः—

“वैश्वदेवं पुरोडाशमग्निमध्याच्च यद्धुतम् । यद्वाच्छिशुराकृष्य मात्रा रक्ष्यः प्रयत्नतः” ॥ इति ।  
वैश्वदेवं वैश्वदेवशिष्टम् । कामाचारस्यापवादः । ब्रह्मचारीति गर्भाष्टमादावुपनयनातिक्रमेऽपि  
स्त्रीषु न प्रसजेत् न च ब्रह्मचारीत्येतत् ब्रह्मचारिधर्मप्राप्त्यर्थमिति शंकनीयम् ।

“न ह्यस्य विद्यते कर्म किञ्चिदामौजीबन्धनात् । वृत्त्या शुद्रसमस्तावद्यावद्दे न जायते”

- ५ इति वसिष्ठस्मरणात् ( २।६ ) । यथोपपादेति मूत्रपुरीषौ यथोपपद्यते तिष्ठतः प्राङ्मुखस्य पथि  
कृष्णदौ तथैव तौ कुर्यात् । नास्येति अस्यानुपनीतस्य कल्पप्रतिषेधात् आचमनमात्रमनुज्ञायते ।  
तच्च “स्त्रीशूद्रौ तु सकृत् सकृत्” इति “स्त्रीशूद्रेण समस्तावद्यावद्दे न जायते” इति  
स्मरणात् । अन्यत्रेति अवमार्जनमुच्छिष्टलितस्य हस्तादेः सोदकेन पाणिना शोधनम् । प्रधावनं गुदे  
शोधनम् । अवोक्षणं रजस्वादिस्पृष्टस्य प्रोक्षणम् । यद्यप्यवमार्जनादयः आचमनकल्पेनान्तर्मवन्ति  
१० तथापि पर्युदासमुखेन ते विधीयन्ते । एतन्नित्यं षष्ठवर्षात्प्रागिति बालस्य भूतपिशाचादिभ्यो  
रक्षार्थं कुर्यात् । तदाह शातातपः— “बालानां पंचमवर्षाद्विधौ शौचं कुर्याच्छुद्ध्यर्थं परतः  
स्वयमेव कुर्यात्” इति । पञ्चवर्षाद्वर्ध्वं चंडालादिस्पर्शे स्नापयितव्यः । गौतमः ( २।७ )—  
“न तदुपस्पर्शनादाशौचं” । षष्ठवर्षात्प्राक्चण्डालादिस्पृष्टस्य तस्यानुपनीतस्याशुचित्वं । न तस्योप-  
स्पर्शनेन स्नानं भुक्तोच्छिष्टस्य कृतमूत्रपुरीषस्य चोपस्पर्शनेऽपि नाचमनमिति हरदत्तः । स्मृति-  
१५ चंद्रिकायां तु विशेषो दर्शितः । आचमनकल्पप्रतिषेधात्स्त्रीशूद्रवदाचमनमात्रमवमार्जनादिकं  
चास्ति तावन्मात्रेण तस्य प्रयतत्वात्तदुपस्पर्शनात्पित्रादेरशुद्धिर्नास्ति । न तु चण्डालादिस्पृष्टस्य  
तस्य स्पर्शेऽपि गौतमवादे चण्डालादेरप्रकृतत्वात् “पतितचण्डालसूतिकोदक्याशवस्पृष्टि-  
तत्स्पृष्ट्युपस्पृष्ट्युपस्पर्शने सचैलम्” इत्यत्र ( अ. १४ सु. २७ ) वयोविशेषानभिधानाच्चेति न त्वे-  
वैनमग्निहवनबलिहरणयोर्नियुज्यान्मनुपनीतमग्निहवने औपासनहोमादौ वैश्वदेवे यद्वलिहरणं  
२० तत्र च न नियुजीत तस्य मंत्रविहीनत्वादित्यभिप्रायः । न च मंत्रान्ग्राहयित्वा विनियोग  
इत्याह ( २।८ ) “न ब्रह्माभिव्याहारायेदन्यत्र स्वधानिनयनात्” इति । स्वधानिनयनं प्रेतकर्म ।  
तत्रानुपनीतस्यापि मंत्राध्ययनमविरुद्धमित्यर्थः । मनुष्ये ( २।१७१-१७२ )—

“न ह्यस्मिन्नुज्यते कर्म किञ्चिदामौजीबन्धनात् । नाभिव्याहारायेद् ब्रह्म स्वधानिनयनादृते” ॥ इति ।

स्मृत्यर्थसारे— “उपनयनात्प्रागुच्छिष्टादावप्रयता न स्युः महापातकवर्जं तेषां चण्डालादि-

- २५ स्पर्शं सचैलस्नानं प्रागन्नप्राशनादभ्युक्षणं प्राक्चौलादाचमन पश्चात्स्नानमित्येके पित्रोः  
स्वधानिनयनादृते च मन्त्रान् न ब्रुयुः” इति । आपस्तंबः ( २।१५।१९-२५ )—“अन्नप्राशना-  
द्गर्भानाप्रयता भवन्त्या परिसंवत्सरादित्येके यावता वा दिशो न प्रजानीयुरोपनयनादित्यपरम् ।  
अत्र ह्यधिकारः शास्त्रैर्भवति सा निष्ठेति पित्रोः स्वधानिनयनादृते च मन्त्रान्न ब्रुयुरिति” ॥ वसिष्ठः—  
( २।७ )—“अन्यत्रोदकमस्वधापितृसंसकेभ्यः” इति । इत्यनुपनीतधर्माः ॥

- ३० अथोपनयनम् । तत्र मनुः ( २।३६ )—

“गर्भाष्टमाब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् । गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भान्तु द्वादशे विशः” ॥  
गर्भाष्टमे गर्भादारभ्याष्टमे उपनयनमेवोपनायनम् । अब्दसंख्यानियमस्यायमभिप्रायः । ब्रह्म-  
क्षत्रविशां गायत्रीत्रैष्टुभजागतैः छंदोभिः सहजत्वं श्रूयते । ( तै. सं. ७।१।१४ )—“गायत्री-  
छंदो रथंतरं साम ब्राह्मणो मनुष्याणामजः पशूनां तस्मात्ते मुख्या मुखतो ह्यमुज्यन्तेति ।

त्रिष्टुप्छंदो बृहत्साम राजन्यो मनुष्याणामविः पशूनामिति । जगती छंदो वैरूप्यं सामं वैश्यो मनुष्याणां गावः पशूनाम्” इति च । गायत्र्यादिभिरेतेषामुपनयनं च स्मर्यते (वासिष्ठे ४।३) — “गायत्र्या ब्राह्मणमुपनयीत । त्रिष्टुभा राज्यन्यं जगत्या वैश्यम्” इति । ततश्चोपनयनाब्दा अपि स्वस्वच्छंदोक्षरसमसंख्या भावितुमर्हतीति छन्दसां चाक्षरसंख्या श्रूयते (तै. सं. ३।४।९।७) — “अष्टाक्षरा गायत्री एकादशाक्षरा त्रिष्टुप् द्वादशाक्षरा जगती” इति । एकैकपादाभिप्रायेयम् । तथा च श्रुतिः । ( तै. सं. २।५।१०।३ ) — “चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री चतुश्चत्वारिंशदक्षरा त्रिष्टुप् अष्टाचत्वारिंशदक्षरा जगती” इति । हारीतः — “छंदःसु पादाक्षरसमुदायवदब्दसमूहे उपनयनम्” इति । गायत्र्यादिपादाक्षरसंमितेऽब्द इत्यर्थः । ततश्चाष्टमैकादशद्वादशेष्वेव वर्षेषु ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां मुख्यमुपनयनमिति । याज्ञवल्क्यः ( आ. १४ ) —

“गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम् । राज्ञामेकादशे सैके विशामेके यथाकुलम्” ॥ १०  
गर्भाज्जन्मनो वाऽऽभ्याष्टमे । विशः वैश्यस्य । सैके एकादशे द्वादश इत्यर्थः । कुलस्थित्या केचिदुपनयनमिच्छन्ति । श्रुतिरपि — “अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयीत” इति । अत्रापस्तम्बः (४।१०।२-४) — “गर्भाष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयीत गर्भैकादशेषु राजन्यं गर्भद्वादशेषु वैश्यं वसन्तो ग्रीष्मः शरदृतवो वर्णानुपूर्व्येण” इति । गर्भ अष्टमो एषामिति गर्भाष्टमाः । जननप्रभृति सप्त गृह्यन्ते । एवं यद्यपि सप्तस्वप्युपनयनं प्राप्तं तथापि जन्मादित्रिषु चौलान्तसंस्कारैः १५  
रवरुद्धत्वाच्चतुर्थेऽप्यक्षराभ्यासाभावेनासामर्थ्यान्न क्रियते अतोऽत्रोपादेयगता बहुत्वसंख्या कपिञ्जलन्यायेन गर्भषष्ठसप्तमाष्टमेषु त्रिष्वेवावतिष्ठते । एवं च “वर्षत्रयं मुख्यकाल” इत्यापस्तम्बमतिरित्येके । अन्ये तु गर्भाष्टमे एव वर्षे न तु षष्ठसप्तमयोः तयोर्गर्भाष्टमत्वाभावाद्बहुवचनं छान्दसमिति वदन्ति । अत्र यथाकुलाचारव्यवस्था । गौतमः ( १।६।८ ) — “उपनयनं ब्राह्मणस्याष्टमे एकादशद्वादशयोः क्षत्रियवैश्ययोर्गर्भादिसंख्यावर्षाणाम्” इति । २०  
काम्योपनयनमाह स एव ( १।७ ) — “नवमे पञ्चमे वा काम्यम्” इति । यदाहांगिराः — “ब्रह्मवर्चसकामस्य पञ्चमेऽब्देऽग्रजन्मनः । आयुष्कामस्य नवमे कार्यं मौञ्जीनिबन्धनम्” इति । मनुः ( २।३७ ) —

“ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे । राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्यार्थार्थिनोऽष्टमे” ॥

अंगिराः —

२५

“षष्ठे तथा द्वादशे च राज्ञो वृद्धिबलायुषोः । इहायुषोस्तु वैश्यस्य ह्यष्टमे च चतुर्दशे” ॥  
इहा कृष्यादिविषया चेष्टा । स्मृतिरत्ने —

“सप्तमे चाष्टमे वर्षे नवमे दशमे तथा । एकादशे द्वादशे च ह्युपनीयुर्द्विजातयः ॥

“ब्रह्मवर्चसमायुष्यं तेजोन्नाथं तथैव च । पशूंश्च कामयाना वै प्राप्नुवन्ति यथाक्रमम्” ॥ इति । ३०  
बोधायनोऽपि ( २।५।५-६ ) — “सप्तमे ब्रह्मवर्चसकाममष्टम आयुष्कामं नवमे तेजस्कामं दशमेऽन्नाद्यकाममेकादश इन्द्रियकामं द्वादशे पशुकामं त्रयोदशे मेधाकामं चतुर्दशे पुष्टिकामं पंचदशे भ्रातृव्यन्तं षोडशे सर्वकामम्” इति । तथा च भरद्वाजः — “वसन्ते ब्राह्मणमुपनयीत ग्रीष्मे राजन्यं शरदि वैश्यं वर्षासु रथकारम्” इति । चन्द्रिकायां —

“ऋतुर्वसन्तः शुभदोऽग्रजन्मनां ग्रीष्मो नृपाणां च शरद्विशं च ॥

“व्रतस्य बंधे यदि वाऽखिलानां माघोदयः पञ्च भवन्ति मासाः ” ॥

ज्योतिःशास्त्रे च—“माघादिषु तु मौञ्जीबन्धः पञ्चसु शस्यत” इति ॥ धर्मसारसुधानिधौ—

“विप्रं वसन्ते क्षितिपं निदाघे वैश्यं घनान्ते व्रतिनं विदध्यात् ॥

“माघादिशुक्रान्तकपञ्चमासाः साधारणा वा सकला द्विजानाम्” ॥ वृद्धवसिष्ठः—

५ “विप्रस्य क्षत्रियस्यापि मौञ्जी स्यादुत्तरायणे । दक्षिणे तु विशां कुर्यान्नानध्याये न संक्रमे ॥

“अनध्यायेऽपि कुर्वीत यस्तु नैमित्तिको भवेत् ॥

“ज्येष्ठे मासि विशेषेण सर्वज्येष्ठस्य चैव हि । उपनीतस्य पुत्रस्य जडत्वं मृत्युरेव च” ॥

वृद्धगार्ग्यः—

“स्वाध्यायवियुजो घस्त्राः कृष्णप्रतिपदादयः । प्रायश्चित्तनिमित्ते तु मेखलाबन्धने मताः ” ॥

१० घस्त्राः वासराः ॥ व्यासः—

“विप्रश्चातीतकालश्चेच्छस्ता शुक्ला चतुर्दशी । कृष्णे तु प्रतिपच्चेष्टा प्रायश्चित्तोपनायने” ॥

अपराके—

“नष्टे चन्द्रेऽष्टमे शुक्ले निरंशे चैव भास्करे । कर्तव्यं नोपनयनं नानध्याये गलग्रहे ॥

“राशेः प्रथमभागस्थो निरंशः सूर्य उच्यते । त्रयोदशीचतुष्कं तु सप्तम्यादित्रयं तथा ॥

१५ “चतुर्थ्येकादशी प्रोक्ता नैव चैते गलग्रहाः ॥

“गुरुर्भृगुसुतो धात्रीपुत्रः शशधरात्मजः । स्युरेते ऋग्यजुःसामाथर्वणामधिपाः क्रमात् ” ॥

धात्रीपुत्रोऽगारकः । शशधरात्मजो बुधः । तद्वासरे तच्छास्त्रीयस्य उपनयनं कर्तव्यमित्यर्थः ।

तथा सायणीये—

“गुरोः कवेर्लोहितस्य अंगिरस्य च वासराः । ऋग्यजुःसामाथर्वणां शस्ताः स्युर्व्रतबंधने ” ॥

२० वृद्धगार्ग्योऽपि—“बुधत्रयेद्वाराणि शस्तानि व्रतबंधने ” । स एव

“शाखाधिपे बालिनिकेन्द्रगते तु मौञ्जीबन्धस्तदीयदिवसेषु सुखाय क्लृप्तः ॥

“अस्मिन्बलेन रहिते तु पुनर्द्विजानां स्याद्वर्णसंकर इति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥

“हस्तत्रये पुष्यधनिष्ठयोश्च पौष्णाश्विसौम्यादिति विष्णुभेषु ॥

“शस्ते तिथौ चन्द्रबलेन युक्ते कार्यो द्विजानां व्रतबन्धमोक्षौ ” ॥

२५ द्विजत्वकारणमाह याज्ञवल्क्यः ( आ. ३९ )—

“मातुर्यदग्रे जायन्ते द्वितीयं मौञ्जिबन्धनात् । ब्राह्मणक्षत्रियविशस्तस्मादेते द्विजाः स्मृताः” ॥

वसिष्ठोऽपि ( २।३ )—“मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जिबन्धने ” । इति । मनुवरि

( २।१६९-१७० )—

“मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जिबन्धने । तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य विधिचोदितम् ॥

३० “तत्र यद्ब्रह्मजननं मौञ्जीबन्धनचिह्नितम् । तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते” ॥

आचार्यस्य पितृत्वे हेतुमाह स एव ( २-१७ )—

“वेदप्रदानादाचार्यं पितरं परिचक्षते । न ह्यस्य विद्यते कर्म किञ्चिदामौञ्जिबन्धनात् ” ॥

वेदप्रदानात्सर्ववेदस्वरूपसावित्रीप्रदानादुपनयनाख्यम् । जन्मप्रदानादिति यावत् ।

आपस्तम्बः ( १।१।१६-१८ )—

३५ “स हि विद्यातस्तं जनयति तच्छ्रेष्ठं जन्म शरीरमेव मातापितरौ जनयतः ” ॥ इति ।

अथ गौणकालाः । तत्र मनुः ( २।३८ )—

“आ षोडशाद् ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते । आ द्वाविंशात्क्षत्रबन्धोरा चतुर्विंशतेर्विशः” ॥  
सावित्री उपनयनम् । क्षत्रबन्धोः क्षत्रियस्य । आकारोऽत्राभिविधिवचनः । मुख्यकल्पसंख्या  
द्वैगुण्यानुगुण्यात्तदाह व्यासः—

“औपनायनिकः कालः परः षोडशवार्षिकः । द्वाविंशतिः परोऽन्यस्य स्याच्चतुर्विंशतिः परः” ॥ इति ।  
परः अन्तिमः । तत ऊर्ध्वं गौणकालोऽपि नास्ति इत्यर्थः । याज्ञवल्क्यः ( आ. ३७ )— ५

“आ षोडशाच्च द्वाविंशाच्चतुर्विंशाच्च वत्सरात् । ब्राह्मणक्षत्रियविशामौपनायनिकः परः” ॥  
आपस्तम्बः ( १।१।२७ )—

“आ षोडशाद् ब्राह्मणस्यानात्यय आ द्वाविंशात्क्षत्रियस्य चतुर्विंशाद्वैश्यस्य” ।  
गौतमोऽपि ( १।१३ )—“आषोडशाद्ब्राह्मणस्य पतिता सावित्री” इति । मनुः ( २।३९ )—

“अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः । सावित्रीपतिता ब्राह्मणा भवन्त्यार्यविगर्हिताः” ॥ १०  
अतः षोडशादिभ्यः । असंस्कृतः अनुपनीतः । सावित्रीपतिताः सावित्र्युपदेशहीनाः । ब्राह्मणाः  
ब्राह्मणानामानः । स एव ( २।४० )—

“नैतैरपूतैर्विधिवदाप्यपि कदाचन । ब्राह्मणं यौनांश्च संबन्धान्नाचरेत् ब्राह्मणैः सह” ॥ अपूतैरकृत-  
प्रायश्चित्तैः । ब्राह्मणं अध्ययनाध्यापनादीन् । यौनान्कन्यादानप्रतिग्रहादीन् । चन्द्रिकायाम्—

“ब्राह्मणस्याकृताचित्तस्य न कार्यमुपनायनम् । अध्यापनं याजनं च विवाहादि विवर्जयेत्” ॥ १५  
यमः—“समतिक्रान्तकालाश्च पतिताः सर्व एव ते ॥

“ब्राह्मणक्षत्रियविशां कालश्चेदत्यगादयम् । सावित्रीपतिता ब्राह्मणाः परिहार्याः प्रयत्नतः” ॥ इति ।  
बोधानायनोऽपि—“अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति । नैतानुपनयेयुर्नाध्यापयेयुर्न याजयेयुर्न  
विवाहयेयुः” । एतानकृतप्रायश्चित्तानिति शेषः । प्रायश्चित्तमपि याज्ञवल्क्येनोक्तम् ( आ. ३८ )—

“अत ऊर्ध्वं भवत्येते सर्वधर्मबहिष्कृताः ! सावित्रीपतिता ब्राह्मणा ब्राह्मणस्तोमादृते क्रतोः” ॥ २०  
ब्राह्मणस्तोमो ब्राह्मणानां प्रायश्चित्तार्थः क्रतुः । तं विहायान्यत्र नाधिकारः । तत्र त्वपत्नीकस्यानधीत-  
वेदस्याकृताधानस्य वचनादधिकारः । वसिष्ठस्तु प्रायश्चित्तान्तरमप्याह ( १।१।७६-७९ )—

“पतितसावित्रीक उद्दालकव्रतं चरेत् । द्वौ मासौ यावकेन वर्तयेन्मासं पयसाऽर्धमासमामिक्षयाऽष्टरात्रं  
घृतेन षड्रात्रमयाचितं त्रिरात्रमहोरात्रमुपवसेदश्वमेधावभृथं वा गच्छेद् ब्राह्मणस्तोमेन वा यजेत”  
इति । अस्यार्थः । उद्दालकमुनिना दृष्टं व्रतमुद्दालकव्रतम् । तत्स्वरूपमाह । द्वौ मासावित्यादिना २५

यावको यवकृतं यवागूः । तथैव मासद्वयं वर्तेत । अयाचितं तु सर्वव्रतसाधारणं हविष्यन्तञ्च सकृदेव ।  
उपवासे तु उदकस्यापि निवृत्तिः । पूर्वमम्बुभक्षणैर्नैव त्रिरात्रविधानादिति । आपस्तम्बः

( १।१।२७-३१ )—“यथाव्रतेषु समर्थः स्याद्यानि वक्ष्यामः । अतिक्रान्ते सावित्र्याः काले क्रतुं त्रैविद्यकं  
ब्रह्मचर्यं चरेत् । अथोपनयनम् । ततः संवत्सरमुदकोपस्पर्शनम् । अथाध्याप्यः” इति । अस्यार्थो हर-

दत्तेनाभिहितः । यथा व्रतेषु समर्थः स्यात्तथैतावान् कालः प्रतीक्ष्यः । पूर्वमेव तु सामर्थ्ये सत्यष्टमवर्षा- ३०  
यतिक्रमेऽपि प्रायश्चित्तं भवति । एवं षोडशादिभ्य ऊर्ध्वं कियन्तंचित्कालमसमर्थानां पश्चात्सामर्थ्ये

सति प्रायश्चित्तं भवत्येव । तच्च प्रायश्चित्तमाह । अतिक्रान्ते सावित्र्या इति यः सावित्र्या काल उक्तः  
तदतिक्रमे त्रैविद्यकं व्यवयवा विद्याः त्रिविद्याः तामधीयते त्रैविद्याः । तेषामिदं त्रैविद्यकमेवंभूतं व्रतं

ब्रह्मचर्यमग्निपरिचर्यामध्ययनं गुरुशुश्रूषामिति परिभाष्य सकलं ब्रह्मचारिधर्मं चरेत्कियन्तं काल-  
मृतुं “कालाध्वनोरत्यंतसंयोगे” द्वितीया । अथोपनयनं एवं चरितव्रतः उपनेतव्यः । ततः संवत्सर- ३५

मुदकोपस्पर्शनं स्नानं कर्तव्यम् । शक्तस्य त्रिषवणस्नानमन्यस्य यथाशक्ति । अथाध्याप्यः । एवं चरितवतः पश्चादध्याप्य इति । यत्तु जैमिनिनोक्तम्—“ नातिषोडशवर्षमुपनयीत प्रसस्तवृषणो ह्येष वृषलीभूत ” इति तदकृतप्रायश्चित्तविषयम् । स्मृत्यर्थसारे—“ उपनयनं गर्भाज्जन्मतो वाऽष्टमे वर्षे एकादशे द्वादशे वा विप्रादीनां क्रमात्कार्यमा षोडशादा द्वाविंशादा चतुर्विंशाच्च विप्रादीनां क्रमात्कार्यमत ऊर्ध्व सावित्रीपतिता ब्राह्म्याः स्युस्तेषां चीर्णप्रायश्चित्तानामुपनयना-  
५ दयः स्युः ” इति । इति गौणकालः । अथ यज्ञोपवीतम् । तत्र मनुः ( २।४४ )—

“ कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृतम् । शाणसूत्रमयं राज्ञो वैश्यस्याविकसूत्रकम् ” ॥ कार्पासविकारः कार्पासम् । सूत्रमिति यावत् । ऊर्ध्ववृतं सव्यहस्ततले न्यस्य दक्षिणहस्ततलेन ऊर्ध्ववर्तितम् । आविकसूत्रकमविरोमनिर्मितसूत्रमित्यर्थः । गृह्यपरिशिष्टेऽपि—“ उपवीतमयुग्म-  
१० सरं विषमतंतुकं त्रिवृद्यज्ञोपवीतम् ” इति । अयुग्मसरमयुग्मगुणमैकैकगुणो विषमतंतुकः त्रितंतुक अन्यथा नवतंतुकत्वव्याघातात् । तदाह देवलः—“ यज्ञोपवीतं कुर्वीत सूत्रेण नवतंतुकम् ” इति । श्रुतिरपि “ नव वै त्रिवृतम् ” इति । कात्यायनः—“ त्रिवृदूर्ध्व वृतं कार्यं तंतुत्रयमधो वृतम् ” इति । बृहस्पतिः—

“ कार्पासिकं सदा दद्याच्छुचि क्षेत्रे विशेषितम् । जीवभर्तृकया नार्या ब्राह्मण्या सूत्रकं कृतम् ” ॥

१५ स्मृतिसारे—

“ च्छेदे विनाशे वा स्नातः कन्यया निर्मितं शुभम् । विधवाद्याभिरथवा सूत्रं गृहीत वै शुचिः ” ॥ माधवीये—

“ यज्ञोपवीतं कुर्वीत सूत्रं तु नवतंतुकम् । त्रिवृदूर्ध्व वृतं कार्यं तंतुत्रयमधोवृतम् ” ॥ ऊर्ध्ववृतस्य लक्षणमुक्तं चंद्रिकायाम्—

२० “ करेण दक्षिणेनोर्ध्व गतेन त्रिगुणं कृतम् । वलितं वा त्रिकं सूत्रं त्रिवृदूर्ध्ववृतं स्मृतम् ” ॥ ऊर्ध्व गतेन दक्षिणेन करेण यद्वलितं तदूर्ध्ववृतमित्यर्थः । प्रतितंतु देवताभेदानाह देवलः—

“ ओंकारः प्रथमस्तंतुर्द्वितीयोऽग्निस्तथैव च । तृतीयो नागदेवत्यश्चतुर्थः सोमदेवतः ॥

“ पंचमः पितृदेवत्यः षष्ठश्चैव प्रजापतिः । सप्तमो वायुदेवत्यो धर्मश्चाष्टम एव च ॥

“ नवमः सर्वदेवत्य इत्येता नव देवताः ॥

२५ “ ग्रामान्निष्कम्य संख्याय षण्णवत्यंगुलीषु तत् । तावत्त्रिगुणितं सूत्रं प्रक्षाल्याब्जिगैस्त्रिभिः ॥

“ देवागारेऽथ वा गोष्ठे नद्यां वाऽन्यत्र वा शुचौ । सावित्र्या त्रिविधं कुर्यान्नवसूत्रं तु तद्भवेत् ॥

“ अथ त्रिवेष्टितव्यं स्यात्पितृणां तृप्तिदं हि तत् । त्रिस्ताडयेत्करतलं देवानां तृप्तिदं हि तत् ॥

“ सव्ये मृदं गृहीत्वाऽस्मिन् स्थापयेद्भूरिति ब्रुवन् । पत्रं पुष्पं फलं वापि व्याहृतीभिः प्रतिक्षिपेत् ॥

“ अभिमंज्याथ भूरग्निं चैति वर्गात्रयं त्रिभिः । हरिब्रह्मेश्वरेभ्यश्च प्रणम्यावाहयेदिति ॥

३० “ यज्ञोपवीतमित्यादि मंत्रः स्यादवधारणे । यज्ञोपवीतमंत्रेण व्याहृत्या वाऽपि धारयेत् ” ॥

गृह्यपरिशिष्टे “ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तादायुष्ययं प्रति मुँच शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ” इति धारणे मंत्रोऽभिहितः । बौधायनः—“ यज्ञोपवीतं प्रतिमुँच-  
न्वाचयति यज्ञोपवीतं परमं पवित्रमिति ” । ग्रंथिनियममाह देवलः—“ एकेन ग्रंथिना तंतुः  
द्विगुणस्त्रिगुणोऽथ वा ” । परिमाणांतरमप्याह कात्यायनः—

३५ “ त्रिवृतं चोपवीतं स्यात्तस्यैको ग्रंथिरिष्यते ।

“पृष्ठवंशे च नाभ्यां च धृतं यदिन्द्रिते कटिम् । तद्धार्यमुपवीतं स्यान्नातिलंबं न चोच्छ्रितम्” ॥  
वसिष्ठशातातपौ—

“नाभेरूर्ध्वमनायुष्यमधो नाभेस्तपः क्षयः । तस्मान्नाभिसमं कुर्यादुपवीतं विचक्षणः” ॥  
एतदलाभेऽपि परिमाणांतरमाह देवलः—“स्तनादूर्ध्वमधो नाभेर्न कर्तव्यं कदाचन” इति ॥ भृगुः—

“उपवीतं बटोरेकं द्वे तथेतरयोः स्मृते । एकमेव यतीनां स्यादिति शास्त्रस्य निश्चयः” ॥ ५  
देवलः—

“ब्रह्मचारिण एकं स्यात्स्नातस्य द्वे बहूनि वा । तृतीयमुत्तरीयं स्याद्वस्त्राभावे तदिष्यते” ॥  
स्मृतिसौ—

“एकवेदस्य चैकं स्यादथवा वेदसंख्यया । बहूनि चायुष्कामस्य त्र्यादिकाम्यं प्रचक्षते” ॥  
भरद्वाजः—

“मंत्रं सदैवमुच्चार्य ब्रह्मसूत्रं गले क्षिपेत् । दक्षिणं बाहुमुद्धृत्य शिरसैव सह द्विजः ॥  
“गृहस्थस्य वनस्थस्य सूत्रं प्रति पुनः पुनः । मंत्रोच्चारणमाचामेद्वितयं क्रमशः स्मृतम् ॥  
“यज्ञोपवीते द्वे धार्ये श्रौते स्मार्ते च कर्मणि । तृतीयमुत्तरीयं तु वस्त्राभावे तदिष्यते ॥  
“एकैकमुपवीतं स्यादाद्यन्ताश्रमिणोर्द्वयोः । दशाष्टौ वा गृहस्थस्य चत्वारि वनवासिनः ॥  
“विना यज्ञोपवीतेन दिनमेकमपि द्विजः । स्थितः शूद्रत्वमायाति पुनः श्वानो भविष्यति ॥ १५  
“क्रोधाद्वा यदि वा लोभाद् ब्रह्मसूत्रं छिनत्ति यः । स कुर्यात्त्रीणि कुच्छ्राणि कुच्छ्रमेकमथापि वा” ॥

भृगुः—

“सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च । विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्” ॥ इति  
नै चानेन सदोपवीतित्वं कर्मकाल एवेति संकोचनीयम् । यतः स एवाह—  
“मंत्रपूतं स्थितं काये यस्य यज्ञोपवीतकम् । नोद्धरेत्तु ततः प्राज्ञो यदिच्छेच्छेय आत्मनः ॥ २०  
“कायस्थमेव तत्कार्यमुत्थाप्यं न कदाचन । सकृदुत्तारणात्तस्य प्रायश्चित्तीयते द्विजः” ॥

व्यासः—

“विना यच्छिखया कर्म विना यज्ञोपवीतकम् । राक्षसं तद्धि विज्ञेयं समस्ता निष्फलाः क्रियाः” ॥  
अतोऽग्नीन्धनादेः पूर्वमेव यज्ञोपवीतं धार्यमुपनयने । भृगुः—  
“सूत्रं सलोमकं चेत्स्यात्ततः कृत्वा विलोमकम् । सावित्र्या दश कृत्वाऽद्भिर्मंत्रिताभिस्तदुक्षयेत् ॥ २५  
“विच्छिन्नं वाऽयतो यातं भुक्त्वा निर्मितमुत्सृजेत् । उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्न धारयेत् ॥  
“उपवीतमलंकारं स्रजं करकमेव च” ॥ मनुस्तु—धृतयज्ञोपवीतादिविनाशे प्रतिपत्तिमाह (२।६४)—  
“मेखलामजिनं दंडमुपवीतं कमंडलुम् । अप्सु प्रास्य विनष्टानि गृह्णीतान्यानि मंत्रतः” ॥ इति ।

पितामहः—

“य एतन्नाभिजानाति यज्ञसूत्रसमुद्भवम् । वेदोक्तं निष्फलं तस्य स्नानदानजपादिकम्” ॥ ३०  
“ब्राह्मणो यो न जानाति उपवीतस्य संस्थितम् । मोहात्मा वहते भारं पशुर्गौरिव सर्वदा” ॥ इति ।  
उक्तोपवीतालंभेऽपि देवल आह—

“कार्पासक्षौमगोवालशणवल्कतृणोद्भवम् । सदा संभवता धार्यमुपवीतं द्विजातिभिः” ॥ इति ।  
तृणोद्भवं कुशानिर्मितम् । तथा च गोभिलः—“यज्ञोपवीतं कुरुते सूत्रं वस्त्रं कुशरज्जुं च” ॥ इति ।  
सूत्रमपि वस्त्राभावे वेदितव्यम् । “वाससा यज्ञोपवीतार्थान्कुर्यात्तदभावे त्रिवृता सूत्रेण” इति ३५

ऋष्यशृंगस्मरणात् । “ नित्यमुत्तरं वासः कार्यमपि वा सूत्रमेवोपवीतार्थे ” ( २।४।२१-२२ )  
इत्यापस्तंबेन वाससोऽसंभवे अनुकल्पत्वेन सूत्रस्याभिधानाच्च । हारीतः—

“ मुक्तामयोपवीतं च चामीकरमथापि वा । धार्यं तत्सर्ववर्णानां महादानादिकर्मसु ” ॥

स्मृत्यर्थसारे—

- ५ “ वस्त्रं यज्ञोपवीतार्थे त्रिवृतसूत्रं च कर्मसु । शुचौ देशे शुचिस्तत्र संहतांगुलिमूलके ॥  
“ आवेष्ट्य षण्णवत्या तु त्रिगुणीकृत्य यत्नतः । अब्लिगैस्तु त्रिभिः सम्यक्प्रक्षाल्योर्ध्वं वृतं तु तत् ॥  
“ अप्रदक्षिणमावृत्तं सावित्र्या त्रिगुणीकृतम् । अथ प्रदक्षिणार्वात् नवं स्यान्नवसूत्रकम् ॥  
“ त्रिरावेष्ट्य दृढं बध्वा हरिब्रह्मेश्वरान्नमेत् ” ॥ इति । बोधायनः— “ ब्राह्मणकन्यकया ब्राह्मणविधवया वा शुद्धस्नातया कृताचान्ततया निर्मितं सूत्रं गृहीत्वा प्राचीमुदीचीं वा दिश-  
१० मुपनिष्क्रम्य चतुरंगुलमात्रषण्णवतिसूत्रपरिमंडलम् ” इति । स एव—  
“ चतुर्वेदस्य चत्वारि त्रिवेदस्य त्रिकं भवेत् । द्वे स्यातां वै द्विवेदस्य एकमेवैकवेदिनः ” ॥ इति ।  
कथं संनिवेश्यमुपवीतमित्यपेक्षायां मनुराह ( २।६३ )—  
“ उद्धृते दक्षिणे पाणानुपवीत्युच्यते द्विजः । सव्ये तु प्राचीनावीति निवीती कंठसज्जने ” ॥  
सूत्रस्य कर्णसज्जने निवीतमिति संज्ञा तदस्यास्तीति निवीती । निवीतस्य मध्ये दक्षिणे  
१५ पाणानुद्धृते यः संनिवेशविशेषः तदुपवीतं तदस्यास्तीत्युपवीती । सव्ये पाणानुद्धृते यः संनिवेश-  
विशेषस्तत्प्राचीनावीतं नाम तदस्यास्तीति प्राचीनावीतीत्यर्थः । तथा च श्रुतिः ( सह वै उप-  
निषदि )— “ दक्षिणत उपवीय दक्षिणं बाहुमुद्धरतेऽवधत्ते सव्यमिति यज्ञोपवीतमेतदेव विपरीतं  
प्राचीनावीतमिति ” । विषयविशेषमुपवीतादिना दर्शयति श्रुतिरेव ( तै. सं. २।५।११।१ )—  
“ निवीतं मनुष्याणां प्राचीनावीतं पितृणामुपवीतं देवानाम् ” इति । निवीतं मनुष्याणां स्वं  
२० मनुष्यकार्येषु ऋषिर्तर्पणादिषु प्रशस्तम् । प्राचीनावीतं पितृणां कर्मणि पितृयज्ञादौ प्रशस्तम् ।  
यज्ञोपवीतं देवानामिति कर्मणि अग्निहोत्रादौ प्रशस्तमित्यर्थः ।

व्यासः—

- “ उद्धृत्य दक्षिणं बाहुं सव्यांसे तु समर्पितम् । उपवीतं भवेन्नित्यं निवीतं कंठसज्जितम् ॥  
“ सव्यं बाहुं समुद्धृत्य दक्षिणे तूद्धृतं द्विजैः । प्राचीनावीतमित्याहुः पितृकर्मणि योजयेत् ॥  
२५ “ देवागारे गवां गोष्ठे होमे जप्ये तथैव च । स्वाध्याये भोजने नित्यं ब्राह्मणानां च संनिधौ ॥  
“ उपासने गुरुणां च संध्ययोः साधुसंगमे । उपवीती भवेन्नित्यं विधिरेश सनातनः ” ॥ इति ॥  
आपस्तंबोपि ( १।१५।१ )— “ उपासने गुरुणां वृद्धानामतिथीनां होमे जप्यकर्मणि भोजन-  
आचमने स्वाध्याये च यज्ञोपवीती स्यात् ” इति । एतेषु कर्मसु यज्ञोपवीतविधानात्कालांतरे  
नावश्यंभाव इति केचिद्व्याचक्षते ।

- ३० “ कायस्थमेव तत्कार्यमुत्थाप्यं न कदाचन । सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च ” ॥

इत्यादि बहुस्मृतिविरोधाच्छिष्टाच्चारविरोधाच्च तदनादरणीयमित्यन्ये ।

उपनयनदीक्षामध्ये उपवीतहानौ उपनयनानंतरं दिनचतुष्टयमध्ये यज्ञोपवीतस्य हानौ

“ गार्होषु कर्मस्वपराधदृष्टावब्राह्मणोक्तेषु तु निष्कृतिः स्यात् ॥

“ एकाहुतिं व्याहृतिभिश्च हुत्वा स्मार्तेष्वादेश इहासुयाम् ” ॥ इति न्यायेन सर्वप्रायश्चित्तं



हुत्वा अनाज्ञातत्रयं च जपं च कृत्वा पुनश्च यज्ञोपवीतं धार्यमित्याहुः ।

इति यज्ञोपवीतनिर्माणानि ॥

अथ दंडधारणम् । अत्र मनुः ( २।४५ )—

“ब्राह्मणो बैल्वपालाशौ क्षत्रियो वाटस्वादिरौ । पैप्पलौडुंबरौ वैश्यो दंडानर्हति धर्मतः” ॥

पैप्पलः आश्वत्थः । धर्मतः समानधर्मयोगादित्यर्थः । ब्राह्मणो बैल्वदंडं धर्मतोऽर्हति । उभयोरपि ५  
ब्रह्मवर्चससंबन्धसामान्यात् । ब्रह्मवर्चसाधिकारणं ब्राह्मणः । बैल्वस्तु ब्रह्मवर्चसविकारः ।  
“असौ वा आदित्यो यतो जायते ततो बिल्व उदतिष्ठत्स योन्येव ब्रह्मवर्चसमवरुंधे” इति  
श्रुतेः (तै. सं. २।१।८)—“ब्राह्मणः पालाशं चार्हति उभयोर्गायत्रत्वात् । “गायत्रो वै ब्राह्मणः  
गायत्रः पर्ण” इति हि श्रूयते—“वाटदंडं क्षत्रियो धर्मतोऽर्हति । उभयोरेकवर्णत्वात् तदुक्त-  
मंतरेयब्राह्मणे ( ७।५।५ )—“क्षत्रं वा एतद्वनस्पतीनां न्यग्रोधः क्षत्रं राजन्य” इति । स्वादिरं १०  
चार्हति उभयोर्बलिष्ठत्वसामान्यात् । वैश्यः पैप्पलमर्हति । अश्वत्थस्य वैश्यांजः संबन्धात् ।  
“मरुतां वा एतदोजो यदश्वत्थः” (तै. सं. २।३।१।५) । “मरुतो वै देवानां विश इति हि” श्रूयते  
(तै. सं. ५।४।७) ॥ औडुंबरं चार्हति उभयोः पशुसंबन्धसामान्यात् । पशुपालो वैश्यः प्रसिद्धः ।  
पशुविकार उडुंबरः । “देवा वा ऊर्जं व्यभजन्त तत उडुंबर उदतिष्ठत् उर्कं पशवः” इति श्रुतेः  
(तै. ब्रा. १।१।३) ॥ बैल्वपालाशाविति दंडनिर्देशोऽपि विकल्प एव विवक्षितः । यदाह यमः— १५  
“विप्रस्य दंडः पालाशो बैल्वो वा धर्मतः स्मृतः । अश्वत्थः क्षत्रियस्याथ स्वादिरौ वाऽपि धर्मतः ॥  
“औडुंबरोऽथ वैश्यस्य घ्राक्षो वा दंड उच्यते । एतेषामप्यलामे तु सर्वेषां सर्वयज्ञियाः” ॥ इति ।  
गौतमोऽपि ( १।२१ )—“यज्ञियो वा सर्वेषाम्” इति । आपस्तंबोऽपि ( १।२।३८ )—“पालाशो  
दंडो ब्राह्मणस्य नैय्यग्रोऽधस्कंधजो वाङ्ग्रो राजन्यस्य बादर औडुंबरो वा वैश्यस्य वार्क्षो  
दंड इत्यवर्णसंयोगेनैक उपदशति” इति ॥ इति । वार्क्षः यज्ञियार्हवृक्षसंभूतः । स सवर्णसाधारणः । २०  
मनुः ( २।४६—४७ )—

“केशांतिको ब्राह्मणस्य दंडः कार्यः प्रमाणतः । ललाटसंमितो राज्ञः स्यात्तु नासांतिको विशः ॥

“ऋजवस्ते तु सर्वे स्युरवणाः सौम्यदर्शनाः । अनुदेगकरा नृणां सत्वचोऽनग्निदूषिताः” ॥

गौतमः ( १।२४—२५ )—“अपीडिता यूपवक्राः सशल्काः । मूर्द्धललाटनासाग्रप्रमाणाः” इति ।

अपीडिताः वल्लीवेष्टनादिभिः । यूपवक्रा यूपवन्नताया इत्यर्थः । व्यासः— २५

“शिरोललाटनासाग्रप्रमाणा यूपवन्नताः” इति । शंखः—“केशांधिललाटांसतुल्याः

प्रोक्ताः क्रमेण ते” इति । वसिष्ठस्तु विशेषमाह ( ११।५५—५७ )—“घ्राणैसं-

मितो ब्राह्मणस्य । ललाटसंमितः क्षत्रियस्य । केशसंमितो वैश्यस्य” इति ।

कूर्मपुराणे ( उ. ११।१५ )—

“धारयेद्वैल्वपालाशो दंडो केशांतिको द्विजः । याज्ञार्हवृक्षजं वाऽथ सौम्यमव्रणमेव च” ॥ इति । ३०

बोधायनः ( १।२।१६ )—“मूर्द्धललाटनासाग्रप्रमाणो याज्ञियस्य वृक्षस्य दंडः” इति ।

इति दण्डनिरूपणम् ॥

अथाजिनानि । तत्र गौतमः ( १।१६ )—“कृष्णरुबस्ताजिनानि” इति । कृष्णः

कृष्णमृगः । रुरुः षष्ठमृगः । बस्तः छागविशेषः । एतेषामजिनानि चर्माणि ब्राह्मणक्षत्रियविशां

क्रमेणोत्तरीयाणि भवंति । मनुरपि ( २।४१ )—“काष्णारौरवबास्तानि चर्माणि ब्रह्मचारिणः” इति । ३५

आपस्तम्बः ( १।२।१० )—“अजिनं त्वेवोत्तरं धारयेत्” इति । उत्तरमुत्तरीयम् ।  
 पारस्करोऽपि ( २।५।१६-१८ )—“ऐणेयमजिनमुत्तरीयं ब्राह्मणस्य रौरवं राजन्यस्य । बास्तं  
 गव्यं वा वैश्यस्य । सर्वेषां वा गव्यम्” इति । बृहस्पतिरपि—

“ब्राह्मणस्याजिनं कार्ष्णं रौरवं क्षत्रियस्य तु । बस्ताजिनं तु वैश्यस्य सर्वेषां वा गवाजिनम्” ॥ इति ।

५ शंखः—“कृष्णरुबस्ताजिनान्युत्तरीयाणि” इति । इत्यजिनानि ।

अथ वासांसि । तत्र गौतमः ( १।१७-१८ )—“वासांसि शाणक्षौमचीरकुतपाः । सर्वेषां कार्पासं  
 चाविकृतम्” इति । शाणविकारः शाणः । क्षुमा अतसी । तद्विकारः क्षौमम् । श्वेतपट्ट इत्यन्ये ।  
 कुतपः पार्वतीयाजरोमनिर्मितः कंबलः । कार्पासं च वासः । सर्वेषां तदविकृतं कुसुमादिराग-  
 द्रव्यैररक्तमित्यर्थः । स एव ( १।१९-२० )—“काषायमप्येके । वार्क्षं ब्राह्मणस्य मांजिष्ठ-

१० हरिद्रे इतरयोः” इति । एके आचार्याः । कषायेण रक्तमपि धार्यं मन्यन्ते । तत्र विशेषः । वार्क्षं  
 ब्राह्मणस्य वृक्षकषायेण रक्तं वार्क्षम् । मांजिष्ठया रक्तं मांजिष्ठम् । हरिद्रया रक्तं हरिद्रम् । ते इतरयोः  
 क्षात्रियवैश्ययोर्वाससी इत्यर्थः । आपस्तम्बः ( १।२।४०-४१; १।३।१-२ )—“वासः । शाणी-  
 क्षौमाजिनानि । काषायं चैके वस्त्रमुपदिशन्ति । मांजिष्ठं राजन्यस्य । हरिद्रं वैश्यस्य” इति ।  
 वस्यते कौपीनमाच्छाद्यते येन तत् वासः । व्याकृतं हरदत्तेन । मनुरपि ( २।४१ )—

१५ “वसीरन्नानुपूर्व्येण शाणक्षौमाविकानि च” इति । वसिष्ठः ( १।१६४-६६ )—“शुक्लमहतं वासो  
 ब्राह्मणस्य कार्पासं मांजिष्ठं क्षौमं क्षत्रियस्य पीतं कौशेयं वैश्यस्य” इति । अहतस्य लक्षणमाह  
 प्रचेताः—

“ईषद्धौतं नवं वस्त्रं सदृशं यन्न धारितम् । अहतं तद्विजीनीयात्सर्वकर्मसु पावनम्” ॥ इति ।  
 उपनयने प्रथमतः कौपीनं धार्यं ततोऽहतेन वाससा परिधापनीयमुत्तरीयं च कृष्णाजिनमिति

२० व्यवस्था । तथा च यमः—

“कार्पासं क्षौमकुतपाश्वर्मबल्वजकंबलाः । सर्वं तु धारयेच्छुक्लं वासस्तत्परिधानिकम्” ॥ इति । “नव  
 वासः सद्यः कृतोत्तमुत्तराभ्यामभिर्मन्थ्योत्तराभिस्तिष्ठभिः परिधाप्य” इत्यापस्तम्बवचनात् ( गृ. सू.  
 ४।१०।१० ) । परिहितवस्त्रपुच्छेनैवाच्छादनीयमिति मंतव्यम् । “वासश्चतुर्थीमुत्तरयादत्तेन्यत्परि-  
 धाप्य” इति वचनाच्चतुर्थदिनेऽपि विनैव कौपीनं कटिवेष्टितवस्त्रैकदेशेनाच्छादनप्रसंगात्तस्मात्तद्वचनं

२५ कौपीनादुपरि मंत्रतो वेष्टनीयमित्येवंपरम् । तथा सरण्याख्ये स्मृतिसंग्रहे—“कौपीनाच्छृङ्गं  
 कृतशौचं कुमारं दक्षिणत उपवेश्य” इति । तथा च त्रिकांडी—“तदेवं कुमारस्य कौपीनधारण-  
 माचमनं परिषेचनमापोशनं प्राणाहुतीरित्यदीनि भवेयुः” इति । भारद्वाजोऽपि—

“यज्ञोपवीतमजिनं मौर्जी दंडं कमडलुम् । स्वोक्तं वासश्च कौपीनं धारयेत्प्रथमाश्रमी ॥

“परेऽन्हि मेखला दंडमजिनं चोपवीतकम् । धारयेत्तु पुराणानि त्यजेद्वस्त्राणि वा नव” ॥ इति ।

३० परेऽन्हि चतुर्थदिवस इत्यर्थः । तथा च शातातपः—

“चतुर्थेऽहनि संप्राप्ते सुस्नातः कृतमंगलः । त्रिभिर्विप्रैः समायुक्तो गुरुर्गच्छेत्सशिष्यकः ॥

“ग्रामात्प्राचीमुदीचीं वा दिशं नान्यदिशं व्रजेत् ।

“उक्ताशासु ब्रह्मवृक्षो नास्ति चेद्धर्मयोग्यकः । यत्र यत्र ब्रह्मवृक्षस्तां दिशं वा व्रजेद्गुरुः ॥

“ब्रह्मवृक्षमथासाद्य द्विजैः पुण्याहवाचनम् । वाचयेदुक्षयेन्मूलं मार्जयेद्गोमयादकैः ॥

३५ “वृक्षे चतुर्मुखं यष्ट्वा नमस्कुर्यात्प्रतिक्षणम् ।

“कौपीनं दंडमजिनमुपवीतं च मेखलाम् । नवानि धारयित्वाऽथ पुराणानि परित्यजेत् ॥  
“वृक्षाग्रे स्थापयेद्यत्नात्कौपीनाजिनमेखलाः । वासः प्रदद्याद्भुरवे ब्राह्मणेभ्यस्तु दक्षिणाम्” ॥ इति ।  
एतच्च पालाशकर्म स्मृतिसिद्धं गृहभाष्यादौ च लिखितम् । स्मृत्यर्थसारे च—

“दंडः पलाशन्यग्रोधपिप्पला यज्ञवृक्षजाः । ते केशफालनासांतप्रमाणाश्च क्रमात् द्विजैः ॥  
“धार्याः श्र्लक्षणाः सदा धार्यं कौपीनं कटिसूत्रकम् । कौपीनमहतं धार्यं खंडवासश्च पार्श्वयुक्” ॥ ५  
उपनयनानंतरं त्रिरात्रं क्षारलवणादिवर्जमधःशायी ब्रह्मचार्युपनयनव्रतं चरेच्चतुर्थेऽन्हि  
कौपीनदंडाजिनमेखलोपवीतानि पूर्वाणि त्यजेत् । वस्त्राणां त्यागनियम इति । एवं च प्रथमदिने ।  
कौपीनधारणस्य बहुस्मृतिसिद्धत्वादावश्यकं तत्प्रतीयते । परिहितवस्त्रैकदेशेनाच्छादने प्रमाणं  
मृग्यम् । इति वासोन्निरूपणम् । अथ मेखला । तत्र मनुः ( २।४२-४३ )—

“मौंजी त्रिवृत्समा श्र्लक्षणा कार्या विप्रस्य मेखला । क्षत्रियस्य तु मौर्वी ज्या वैश्यस्य शणतांतवी ॥ १०  
“मुञ्जालाभे तु कर्त्तव्या कुशाश्मान्तकबल्वजैः । त्रिवृता ग्रंथिनैकेन त्रिभिः पंचभिरेव वा ” ॥  
अनयोरयमर्थः । त्रिवृत्त्रिगुणा । समा समगुणा । श्र्लक्षणा परिचर्षणे सुस्पर्शा । मूर्वाविकारो मौर्वी ।  
इति ज्याविशेषणम् । मुंजालाभ इति मुंजाग्रहणं मूर्वाशणतंतोरप्युपलक्षणम् । कुशादयो विप्रा-  
दीनां यथासंख्यम् । अश्मन्तकस्तरुविशेषत्वक् । बल्वजः तृणविशेषः । त्रिवृत् त्रिवृत्तैकेन ग्रन्थिना  
त्रिवृद्भिः त्रिवृद्ग्रन्थिभिः पञ्चत्रिवोपलक्षिता । त्रयाणां वर्णानां ता नियमेनायं ग्रन्थिविकल्पः । १५  
नात्र यथासंख्यं वाशब्देन एकविषयत्वावगमादिति । व्यासोऽपि—

“मौंजी त्रिवृत्समा श्र्लक्षणा कार्या विप्रस्य मेखला । मुंजालाभे कुशानां तु ग्रंथिनैकेन वा त्रिभिः” ॥  
यमः—“विप्रस्य मेखला मौंजी ज्या मौंजी क्षत्रियस्य तु । शणसूत्री तु वैश्यस्य मेखला धर्मतः स्मृताः ॥  
“एतासामप्यलाभे तु कुशाश्मान्तकबल्वजैः । मेखला त्रिवृता कार्या ग्रंथिनैकेन वा त्रिभिः” ॥ इति ।  
पैटीनसिः—“मौंजी मेखलाश्मंतकी च ब्राह्मणस्य । बल्वजी मौर्वी वा राजन्यस्य । शाणी क्षौमी २०  
वा वैश्यस्य” इति । वसिष्ठः ( २।१।५८-६० )—“मौंजी मेखला ब्राह्मणस्य धनुर्ज्याक्षत्रियस्य  
तांतवी वैश्यस्य” इति । प्रचेताः—“त्रिगुणं प्रदक्षिणा मेखला ” इति । गौतमः ( १।१५ )—  
“मौंजी ज्या मौर्वी सौत्र्यो मेखलाः क्रमेण” इति । बोधायनोऽपि ( १।२।१३-१४ )—“एषां क्रमेण  
मौंजी धनुर्ज्याशाणीति मेखला ” इति । आपस्तम्बः ( १।२।३३ )—“मौंजी मेखला त्रिवृद्-  
ब्राह्मणस्य शक्तिविषये दक्षिणावृत्तानाम् ” इति । शक्तिविषये शक्तौ सत्यां दक्षिणेनावृत्तानां २५  
मुंजानां कर्त्तव्यम् । कटिसूत्रमपि धार्यमित्याह संवर्त्तः—

“कटिसूत्रं विना कर्म श्रौतस्मार्तं करोति यः । सर्वं तन्निष्फलं विद्यात्सोऽपि नम्र इति श्रुतिः” ॥ इति ।  
इदं च ब्रह्मचारिगृहस्थसाधारणम् । कटिसूत्रधारणाभावे कर्ममात्रस्य निष्फलत्वाभिधानात्  
धृतं वस्त्रेऽपि नम्रत्वागमाच्च । इति मेखलानिरूपणम् ॥ अथ भिक्षाचर्या । तत्र मनुः ( २।४९ )—  
“प्रतिगृह्योप्सितं दंडमुपस्थाय च भास्करम् । प्रदक्षिणं परीत्याग्निं चरेद्भैक्षं यथाविधि ॥ ३०

“भवत्पूर्वचरेद्भैक्षमुपनीतो द्विजोत्तमः । भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम्” ॥ भवत्पूर्वं  
भवतिशब्दपूर्वम् । गौतमः ( २।४२ )—“आदिमध्यांतेषु भवच्छब्दः प्रयोज्यो वर्णानुपवर्त्येण” इति ।  
प्रयुज्यैव दर्शयति बोधायनः—“भवति भिक्षां देहि ” इति ब्राह्मणो भिक्षेत । “भिक्षां भवति  
देहीति ” राजन्यो ‘देहि भिक्षां भवति’ इति वैश्य उपनयनांगत्वेनोक्तोऽप्ययं भिक्षाचरणविधिः  
सार्वत्रिकः प्रत्येतव्यः । उपनयनांगभिक्षायां नियममाह मनुः ( २।५० )—

“मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम् । भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या वैनं न विमानयेत्” ॥  
विमानं प्रत्याख्यानम् । गौतमः—

“अग्रे भिक्षेत जननीमप्रत्याख्यायिनी च या । ब्राह्मणं तादृशं वाऽपि स्त्रियमग्रे तु याचयेत् ॥

“गर्भिणीं नैव याचेत विधवामंतिमां न च” ॥ कारिकाकारः—

५ “अग्रे भिक्षेत जननीमप्रत्याख्यायिनी च या । पश्चात्पितरमन्यांश्च आचार्यं बांधवांस्तथा” ॥  
वसिष्ठः— “अप्रत्याख्यायिनं पूर्वं स्त्रियं वा तादृशीं पुनः ।

“भिक्षेत भिक्षां प्रथमं भवान् भिक्षां ददात्विति । भवति भिक्षां देहीति स्त्रियं वाऽग्रेऽपि मातरम् ।

“मौजीकर्मविसानांतमामभैक्षं समाहरेत् । पक्वान्नमाहरेन्नित्यमासमावर्तनाद्बटुः” ॥ इति

गृह्यतात्पर्यदर्शनेऽप्यामभैक्षमुक्तम्—“त्रीण्यहानि प्रत्यहमामभैक्षमाचरेत् । चतुर्थेऽहनि अन्न-

१० संस्कारेण संस्कृतस्य” इति । ब्रह्मचारिणो नित्यभिक्षामाह व्यासः—

“गृह्योक्तविधिनापेतं परित्यज्योत्तरायिकम् । दंडं पात्रं समादाय नमस्कृत्य गुरुं रविम् ॥

“भिक्षार्थं तु ततो मौनी द्विजेश्च तथा व्रजेत्” ॥ मनुः (२।१४३-१४५)—

“वेद्यज्ञैरहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्मसु । ब्रह्मचार्याहरेद्भैक्षं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम् ॥

“गुरोः कुले न भिक्षेत न ज्ञातिकुलबन्धुषु । अलाभे त्वन्यगोहानां पूर्वं पूर्वं परित्यजेत् ॥

“सर्वं वाऽपि चरेद्ग्रामं पूर्वोक्तानामसंभवे । नियम्य प्रयतो वाचमभिशस्तांस्तु वर्जयेत्” ॥

१५

याज्ञवल्क्यः ( आ. २९-३० )—“ब्राह्मणेषु चरेद्भैक्षमनिद्येष्वात्मवृत्तये ॥

“आदिमध्यावसानेषु भवच्छब्देऽपलक्षिता । ब्राह्मणक्षत्रियविशां भैक्षचर्या यथाक्रमम्” ॥

यत्तु “सार्ववर्णिकं भैक्षचरणमभिशस्तपतितवर्जम्” इति गौतमवचनं ( २।४१ ) यदपि  
व्यासवचनं

२०

“ब्राह्मणक्षत्रियविशश्चरेयुर्भैक्ष्यमन्वहम् । सजातीयगृहेष्वेव सार्ववर्णिकमेव वा” ॥ इति तत्र

सर्वशब्दः प्रकृतवर्णत्रयपरः । एतच्च पूर्वोक्तसजातीयालाभविषयम् । तथा च भविष्यत्पुराणे—

“सर्वं वा विचरेद्ग्रामं पूर्वोक्तानामसंभवे । अंत्यवर्जं महाबाहो इत्याह भगवान्प्रभुः” । अंत्यः शूद्रः ।

“चातुर्वर्ण्यं चरेद्भैक्षमलाभे व्रतिको द्विजः” । इत्येतदप्यापदिषयम् । तथा विष्णुः—

“क्षत्रवैश्यगृहेष्वेव क्रियावर्तिषु साधुषु । चातुर्वर्ण्यं चरेद्भैक्षमापत्काल उपस्थिते” ॥

२५

अंगिराः—“आममेवाददीतास्यादवृत्तावैकरात्रकम्” इति । पराशरः—

“यस्तु वेदमधीयानः शूद्रान्मुपभुञ्जते । शूद्रो वेदफलं याति शूद्रत्वं चाधिगच्छति” ॥

एकान्ननिषेधमाह याज्ञवल्क्यः ( आ. ३२ )—

“ब्रह्मचर्ये स्थिते नैकमन्नमद्यादनापदि । ब्राह्मणः काममश्नीयात् श्राद्धे व्रतमपीडयन्” ॥

मधुमांसादिपरिहारेण । मनुः ( २।१८८ )—

३०

“भैक्षेण वृत्तयोनित्यं नैकान्नाशी भवेद् व्रती । भैक्षेण व्रतिनो वृत्तिरुपवाससमा स्मृता ॥

“व्रतो वा देवदेवत्ये पित्र्ये कर्मण्यथर्षिवत् । काममभ्यर्थितोऽश्वीयाद् व्रतमस्य न लुप्यते” ॥

अत्रिः—

“शाकभक्षाः पयोभक्षा ये चान्ये यावकाशिनः । सर्वे ते भैक्षभक्षस्य कलां नाहति षोडशीम् ॥

“तप्तकांचनवर्णेन गवां मूत्रेण यावकम् । पिबेत् द्वादशवर्षाणि न तद्भैक्षसमं भवेत्” ॥

३५

न चात्र श्रवणादनियतं भिक्षाचरणमिति वाच्यम् । अकरणे मनुना प्रायश्चित्तविधानात् ।

मनुः ( २।१८७ )—

“अकृत्वा भैक्षाचरणमसमिध्य च पावकम् । अनातुरः सप्तरात्रमवकीर्णव्रतं चरेत् ” इति ॥

यमः—

“आहारमात्रादधिकं न कचिद्भैक्षमाचरेत् । युज्यते स्तेयदोषेण कामतोऽधिकमाहरन् ॥

“माधूकरं य आदाय ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति । स याति नरकं घोरं भोक्ता भुङ्क्ते च किल्मिषम् ॥

“तस्मान्नावहरेद्भैक्षमतिरिक्तं कदाचन ” ॥ स्मृतिसंग्रहे—

५

“ब्रह्मचारी तु भैक्षान्नमुच्छिष्टं न समाचरेत् । अशक्तौ निखनेद्रूमावप्सु वाऽपि प्रवेशयेत्” । अकामतोऽधिकमाहरणे तस्य प्रतिपत्तिनियममाहापस्तंबोऽपि (१।३७।४१)—“न चोच्छिष्टं कुर्यात् अशक्तौ भूम्नो निखनेत् अप्सु वा प्रवेशयेत् । आर्याय वा पर्यवदध्यात् । अंतर्धिने वा शूद्राय” इति । अंतर्धिने आचार्यस्य दासायेत्यर्थः । स एव (१।३।२५-२६)—“सायंप्रातरमत्रेण भिक्षाचर्यं चरेद्भिक्षमाणोऽन्यत्रापपात्रेभ्योऽन्निश्स्ताच्च स्त्रीणां प्रत्याचक्षणाणां समाहितो ब्रह्माचारीष्टं दत्तं हुतं प्रजां १० पशून्ब्रह्मवर्चसमन्नाद्यं वृंक्ते । तस्मादुह वै ब्रह्मचारिसंघं चरंतं न प्रत्याचक्षीत” इति । अमत्रेण पात्रेण । न हस्तादिना । भिक्षाप्रत्याख्यानं निंदति । स्त्रीणामिति । वृंक्ते अच्छिनत्तीत्यर्थः । एतच्च व्रताध्यायनादियुक्तब्रह्मचारिविषयम् । अत एव वसिष्ठपाराशरौ ( ३।४ )—

“अव्रता ह्यनधीयाना यत्र भैक्षचरा द्विजाः । तं ग्रामं दंडयेद्राजा चोरभक्तप्रदो हि सः” ॥

अत्रिः—

१५

“हस्तदत्ता तु या भिक्षा लवणं व्यञ्जनानि च । भुक्ता ह्यशुचितां याति दाता स्वर्गं न गच्छति” ॥

मनुः ( २।५१ )—

“समाहृत्य तु तद्भैक्ष्यं यावदर्थममायया । निवेद्य गुरवेऽश्रीयादाचम्य प्रयतः शुचिः” ॥ गुर्वसंनिधाने तत्पुत्रभार्यादिभ्यो निवेदयेत् । तदाह गौतमः ( २।४६ )—“असंनिधौ तद्भार्या-पुत्रसब्रह्मचारिसभ्यः ” इति । सब्रह्मचारी सहाध्यायी । संतः श्रोत्रियाः । तथा चापस्तंबः २० ( १।३।३१-३६ )—“तत्समाहृत्योपनिधायाचार्याय प्रब्रूयात्तेन प्रदिष्टं भुंजीत । विप्रवासे गुरोराचार्यकुलाय तैर्विप्रवासेऽन्येभ्योऽपि श्रोत्रियेभ्यः । नात्मप्रयोजनश्चरेत् । भुक्त्वा स्वयममत्रं प्रक्षालयीत ” इति । हारीतः—“भैक्षमपेक्षितं पर्यग्निकृतमादित्यदर्शितमनुज्ञातममृतसंमितं प्राहुस्तदश्नन् ब्रह्मचारी ब्रह्मप्रसिद्धिमवाप्नोति ” इति । याज्ञवल्क्यः ( आ. ३१ )—

“कृताग्निकार्यो भुंजीत वाग्यतो गुर्वनुज्ञया । आपोशनक्रियापूर्वं सत्कृत्यान्नमकुत्सयन् ” ॥ इति । २५

चंद्रिकायां—“लोहे मृन्मये वा पात्रे भुंजीतैतच्च भुक्त्वा स्वयं प्रक्षालयीत ” इति ।

वसिष्ठः ( ६।३ )—

“अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्ष्याः षोडशारण्यवासिनः । द्वात्रिंशत्तु गृहस्थस्य अमितं ब्रह्मचारिणः ” ॥

आपस्तंबः—

“आहिताग्निरनङ्गंश्च ब्रह्मचारी च ते त्रयः । अश्रंत एव सिध्यंति नैषां सिद्धिरनश्रताम् ” ॥ इति । ३०

इति भिक्षाचर्या । अथ संध्योपक्रमः । व्यासः—

“गायत्रीं तु गुरोर्लब्ध्वा सायं संध्यामुपक्रमेत् । कालयोरग्निपूजां च कालयोर्भैक्षमाहरेत् ॥

“निमन्त्रणादिना भुक्त्वा गुर्वर्थं भैक्षमाहरेत् ”

“संध्यात्रयं न कर्तव्यं यावन्मौंजी निबध्यते । संध्यात्रयं तु कर्तव्यं सायमादि ततः परम् ” ॥

प्रचेताः—

३५

“मौजीबन्धादिने तिष्ठेत्सावित्रीमभ्यसन् गुरोः । सूर्येऽस्तशिखरं प्राप्ते सायं संध्यां समभ्यसेत् ॥  
“सावित्रीं प्राप्य गुरुणा मंत्राध्यायाद्यथोदितात् । अभ्यस्योपासयेत्संध्यां सायमादि यथाक्रमम्” ॥

**मृत्युंतरे—**

“उपायनो हि कर्तव्यं सायं संध्योरुपासनम् । आरभेद्ब्रह्मयज्ञं तु मध्याह्ने तु परेऽहनि ॥

५ “अनुपाकृतवेदस्य ब्रह्मयज्ञः कथं भवेत् । वेदस्थाने तु गायत्री गद्यतेऽन्यत्समं भवेत् ॥” इति ।  
**जैमिनिस्तु विशेषमाह—**

“यावद्ब्रह्मोपदेशस्तु तावत्संध्यादिकं न च । ततो मध्याह्नसंध्यादि सर्वं कर्म समाचरेत्” ॥ इति ।  
**इति संध्योपक्रमनिरूपणम् । अथ समिदाधानम् । तत्र याज्ञवल्क्यः ( १।२५ )—**

“अग्निकार्यं ततः कुर्यात्संध्ययोरुभयोरपि ” । **मनुः ( २।१८५-१८६ )—**

१. “अग्निधनं भैक्षचर्यामधश्चर्यां गुरोर्हितम् । आ समावर्तनात्कुर्यात्कृतोपनयनो द्विजः ॥

“दूरादाहृत्य समिधः संनिदध्याद्विहायसि । सायंप्रातश्च जुहुयात्ताभिरग्निमतंद्रितः ” ॥

भूमिष्ठजंतुसंक्रांतिर्मा भूदिति विहायसि इत्युक्तम् । ‘आकाशे’ रज्वादिषु स्थापये-  
दित्यर्थः । **सुमंतुरपि—**“ब्रह्मचर्यं ततो भैक्ष्यं संध्ययोरग्निकर्म च ” इति । केचित्सायमेवाग्नि-  
कार्यमिच्छन्ति । तदाहापस्तंबः ( १।४।१६-१७ )—“सायंप्रातर्त्यथोपदेशम् । सायमेवाग्नि-

१५ पूजेत्येके ” इति । **लौगाक्षिः—**“सायमेवाग्निमिधीयते इत्येके ” इति । समिदाहरणे नियममाह  
**वैजावापः—**“पुरास्तमयाप्रागुदीचीं दिशं गत्वा अहिंसन्नरणयात्समिध आहरेत् ” इति ।

**आपस्तंबोऽपि ( १।४।१५ )—**“नास्तमिते समिदाहारो गच्छेत् ” इति । **व्यासः—**

“पालाशः समिधः कार्याः स्वादिर्यस्तदलाभतः । शमीरोहीतकाश्वत्थास्तदभावेऽर्कवेतसौ ” ॥  
**समित्प्रमाणमाह कात्यायनः—**

२० “नांगुष्ठादधिका कार्या समित्स्थूलतया क्वचित् । न वियुक्ता त्वचा चैव न सकीटा न पाटिता ॥

“प्रादेशान्नाधिका न्यूना तथा न स्यात् विशाखिका । नासपर्णा न निर्वीर्या होमेषु तु विजानता ॥

“विशीर्णा त्रिमला जह्स्वा वक्रा ससुषिराः कुशाः । दीर्घाः स्थूला घुणैर्दुष्टाः कर्मसिद्धिविनाशिकाः” ॥  
**इति । सार्वत्रिकं नियमविशेषमाहापस्तंबः ( १।१५।१२ )—**“नाप्रोक्षितामिधनमग्नावादध्यात्” इति ।

**अग्निकर्माकरणे प्रत्यवायमाह हारीतः—**

२५ “पुरा जग्राह वै मृत्युर्हिसयन् ब्रह्मचारिणम् । अग्निस्तं मोक्षयामास तस्मात्परिचरेद्धि तम् ॥

“ब्रह्मचारी यदा त्वग्नावादध्यात्समिधं न हि । गृह्णीयात्तं तदा मृत्युरादध्यात्समिधस्ततः” ॥ इति ।

**बोधायनोऽपि ( १।२।५२-५४ )—**“ब्रह्म वै मृत्यवे प्रजाः प्रायच्छत्तस्मै ब्रह्मचारिणमेव न  
प्रायच्छत्सोऽब्रवीदस्तु मद्यमप्येतस्मिन्भाग इति । यामेव रात्रिं समिधं नाहरता इति । तस्माद्ब्रह्म-

चारी यां रात्रिं समिधं नाहरत्यायुष एव तामवदाय वसति । तस्माद्ब्रह्मचारी समिधमाहरेत्” इति ।

३० **ब्रह्मा जगत्कारणं ईश्वरः । प्रजा मारयितुं मृत्यवे प्रायच्छद् । ब्रह्मचारिणं न प्रददे । अथ मृत्यु-**  
**राह । मद्यं मम एतस्मिन्ब्रह्मचारिण्यपि भागः अंशोऽस्त्विति । ब्रह्माब्रवीत्सा रात्रिस्तवावसरः**

**यामेव रात्रिं समिधं नाहरति इति । आयुष इति द्वितीयार्थे षष्ठी । तस्यां रात्रावायुर्गृह्णाती-**  
**त्यर्थः । गौतमः ( २।१२ )—**“अग्निन्धनभैक्षाचरणादीनि सप्तरात्रमकृत्वाज्यहोम” इति । **बृहस्पतिः—**

“अवकीर्णिव्रतं कुर्यात्सप्तरात्रमसंशयम् ” इति । **मनुरपि ( २।१८७ )—**

३५ “अकृत्वा भैक्षचरणमसमिध्य च पावकम् । अनातुरः सप्तरात्रमवकीर्णिव्रतं चरेत् ” ॥ इति ।

इति समिदाधाननिरूपणम् । अथ चौलादिजातककर्मादिकालातिपत्तिप्रायश्चित्तम् ।  
तत्र कात्यायनः—

“कालातीतेषु कार्येषु प्राप्तवत्स्वपरेषु च । कालातीतानि कृत्वा तु विदध्यादुत्तराणि च ॥  
“लुप्ते कर्मणि सर्वत्र प्रायश्चित्तं विधीयते । प्रायश्चित्ते कृते पश्चाद्भुतं कर्म समाचरेत् ॥  
“गर्भाधानादिचौलांते स्वकाले विधिना कृते । प्रत्येकं पादकुच्छ्रं स्यात् द्विगुणं स्यादनापदि ॥ ५  
“आ षोडशाद् ब्राह्मणस्य ह्यष्टकाद् व्रतहायने । आज्याहुतीश्च जुहुयादिमं मे वरुणद्वयम् ॥  
“त्वं नः स त्वं नो मंत्रौ द्वौ त्वमग्ने तु प्रजापते । ये ते शतमुदुत्तमं व्याहृतीर्जुहुयात्ततः ॥  
“अभ्युदिकं तु तंत्रेण सर्वकर्माण्यनुक्रमात् । उपायनव्रतं कुर्याच्छूद्रतुल्योऽन्यथा भवेत् ” ॥

ब्राह्मणभोजनसंख्यामाह भास्करः—

“दश द्वादश वाऽथर्तौ प्रत्यूतौ च द्वयं द्वयम् । सीमंते पुंसवे नाम्नि भूरि ब्राह्मणभोजनम् ॥ १०  
“ब्राह्मणाश्चैव पंचाशच्चौले तूपायने शतम् । विवाहे तु यथाशक्ति ह्याधाने शतभोजनम् ॥  
“भोजयित्वा शतं विप्रान्कुर्यादेवोपनायनम् । अशक्तोऽपि यथाशक्ति कृत्वा कर्म समाचरेत् ॥  
“प्रतिगृह्योपनीत्यर्थमिति तेनाचरेद्यदि । ब्राह्मणत्वफलं सर्वं दातारमधिगच्छति ॥  
“शूद्राच्च प्रतिगृह्णीयात्स मूढो नरकं व्रजेत् ” ॥ इति च । मातरि रजस्वलायां गर्भिण्यां च  
कर्मनिषेधः प्रयोगपारिजाते—

“न विवाहोपनयने गर्भिणी मलिनी प्रसूः । गर्भस्यापि विपत्तिः स्याद्वपत्योश्च शिशोस्तथा ” ॥  
प्रसूमाता गर्भिणी वा मलिनी मलवद्वासा वा भवेद्यदि । पुत्रस्य विवाहोपनयने पित्रा न कर्त्तव्ये ।  
करणे दोषः । गर्भस्य जायापत्योः सुतस्य च विपत्तिः स्यादिति । वरदराजीये—

“ईडाकरणपूर्वं तु जननी चेद्रजस्वला । न कर्त्तव्या चोपनीतिरिति स्मृतिविदां मतम् ” ॥  
ईडाकरणं नांदिश्राद्धकरणं ततः पूर्वं रजस्वला चेदित्यर्थः । तत्रैव—

“करणे व्रात्यतां यायान्न कर्मण्यो भवेद्बुद्धुः । वेदपाठे व्रतादौ च ह्यनर्हो दारकर्मणि ॥  
“उपनीतिश्च कर्त्तव्या पुनश्च ब्राह्मणैः सह । अनुज्ञां प्राप्य विदुषां पीत्वा च ब्रह्मकूर्चकम् ॥  
“कर्मण्यो जायते वर्णी नात्र कार्या विचारणा ॥

“बटोर्माता गर्भिणी स्यान्न कुर्याच्चौलकर्म च । पंचमासादधः कुर्यादत ऊर्ध्वं न कारयेत् ॥  
“कर्त्तृभार्या गर्भिणी चेद्वास्तुकर्मोपनायनम् । षण्मासात्परतः सोऽपि न कुर्यादिति शौनकः— २५  
“गर्भिणी यदि पत्नी स्यान्न कुर्यादुपनायनम् । पंचमासादधः कुर्यादत ऊर्ध्वं न कारयेत् ” ॥

उपनयनकर्त्तारमाह व्यासः—

“वेदैकनिष्ठं धर्मज्ञं कुलीनं च कुटुंबिनम् । स्वशाखामनालस्यं विप्रमकुद्धमत्वरम् ॥  
“कर्त्तारमीप्सेद्विप्रं वा चतुर्थाश्रमिणं न तु ” ॥ विष्णुः—  
“कुच्छ्रत्रयं चोपनेता त्रीन्कुच्छ्रांश्च परश्चरेत् । सावित्रीमभ्यसेन्नित्यं पवित्राणि च संस्मरेत् ” ॥ ३०  
बृहद्वयसिष्ठः—

“पिता पितामहो भ्राता ज्ञातयो गोत्रजाग्रजाः । उपायनेऽधिकाराः स्युः पूर्वाभावे परः परः ” ॥  
आपस्तम्बः ( १।१।११-१२ )—“तमसो वा एष तमः प्रविशति यमविद्वानुपनयते यश्चा-  
विद्वानिति हि ब्राह्मणम् । तस्मिन्नाभिजनविद्यासमुदेतं समाहितं संस्कर्त्तारमीप्सेत् ” इति । यं

माणवकमविद्वानजानानः उपनयते तथा यश्च स्वयमविद्वान्सन्नुपनीयते सोऽपि तमसः सकाशात्तम एव प्रविशति समाहितं विधिप्रतिषेधेष्ववहितमित्यर्थः । बोधायनः—

“जातकर्मादिसंस्कारे पिता श्रेष्ठतमः स्मृतः । अभावे स्वकुलीनः स्याद्वांधवो वाऽन्यगोत्रजः ॥

“आर्यावर्तसमुद्भूतस्तस्याभावे स्वसूत्रकः । ब्राह्मणः सर्ववर्णानां श्रोत्रियो वा स्ववर्णजः ॥

५ “गृहस्थः सर्ववर्णेषु श्रेष्ठ इत्यभिधीयते । अभार्यस्त्वधमो ज्ञेय उपकुर्वाणनैष्ठिकौ ॥

“आचार्यो मध्यमो ज्ञेयो सगोत्रौ व्रतिनावपि । वानप्रस्थयतीनां तु कर्तृत्वं नेष्यते सदा ॥

“जितेन्द्रियो जितद्वंद्वस्तपोदानपरायणः । सत्यवादी<sup>१</sup> जितः प्राज्ञो मेधावी नियतः शुचिः ॥

“निःसंदिग्धः कुलीनश्च श्रौतकर्मणि तत्परः । निग्रहानुग्रहे दक्षः सर्वदोषविवर्जितः ॥

“गायत्रीमंत्रकुशल आचार्यः स उदाहृतः । कुलद्वये तथोत्सन्ने प्राप्ते गर्भाष्टमे बटुः ॥

१० “मौजीबंधनकर्मार्थं स्वशाखाध्यायिनं द्विजम् । स्वगोत्रप्रवरं नो चेदाश्रयेदन्यगोत्रजम्” ॥

इति । उपनयनकर्तृनिरूपणम् । अथ यमलाद्युपनयने<sup>३</sup> । संग्रहे—

“एकगर्भप्रसूतौ चेदेकवेदिमवाप्य च । एकाचार्यैकलग्ने च कुर्यान्मौजीव्रतं यतः ॥

“चौलोपनयने चैव जातकर्मणि नाग्नि च । चतुर्व्रतोपाकरणे यमलानां समं भवेत्” ॥

कालादर्श—

१५ “भ्रातृद्वये स्वसृयुगे स्वसृभ्रातृयुगे तथा । समानाऽपि क्रिया कार्या मातृभेदे तथैव च” ॥

“पुंयुग्मे स्त्रीयुग्मे स्त्रीपुंयुग्मे च समकाला क्रिया कार्या । मातृभेदेऽपि तथेत्यर्थः । मातृभेदे विशेषः स्मर्यते—

“एकत्रलगे यदि पुत्रयुग्मशुभाय मौजीव्रतकर्म कुर्यात् ॥

“आचार्ययुग्मं खलु वेदियुग्मं नांदीमुखान् स्वस्य पितृश्च नित्ये ॥

२० “पृथग्भवावेकलग्ने सोदरावुपनायने । आचार्योऽन्यः पिताऽन्यस्तु भ्राता वा पितृसोदरः” ॥ इति ।

अथ मूकोन्मत्ताद्युपनयनम् । स्मृतिरत्ने—

“षट्पांधवधिरस्तब्धजडगद्गदपंगुषु । कुब्जवामनरोगार्तशुष्कांगिविकलांगिषु ॥

“मत्तोन्मत्तेषु मूकेषु शयनस्थे निरिन्द्रिये । ध्वस्तपुंस्त्वेषु चैतेषु संस्काराः स्युर्यथोचितम् ॥

“मूकोन्मत्तौ न संस्कार्यावितिकेचित्प्रचक्षते । कर्मस्वनधिकाराच्च पातित्यं नास्ति च द्वयोः ॥

२५ “तदपत्यं च संस्कार्यमपरे त्वाहुरन्यथा” ॥ स्मृत्यंतरे—

“मूकोन्मत्तौ न संस्कार्यौ कर्मस्वनधिकारितः । तदपत्यं तु संस्कार्यं यज्ञार्हमिति च श्रुतिः ॥

“ब्राह्मण्यां ब्राह्मणाज्जातो ब्राह्मणस्तु श्रुतेर्बलात् । कर्मस्वनधिकारोऽपि संस्कारार्ह इति श्रुतिः ॥

“मूकोन्मत्तादिसंस्कारे त्वाचार्यः सर्वमाचरेत् । सुमुहूर्त्ते निरीक्षेत गायत्रीं स्पृश्य वा जपेत् ॥

“मूकांधादिषु चोद्वाहे कन्यास्त्रीकरणं विना । पाणिग्रहं विना सप्तपदादिक्रमणं विना ॥

३० “विप्रेण कारयेत्सर्वं पंगोः सप्तपदान्यपि ॥

“केचिदाहुर्द्विजाज्जातौ संस्कार्यौ कुंडगोलकौ । अमृते जारजः कुंडो मृते भर्त्तरि गोलकः ॥

“द्विजातिप्रतिलोमानां केचिदाहुः पुराणगाः” ॥ व्यासः—

“विद्याग्रहणशक्तस्य होमकर्मक्षमस्य च । उपायनेऽधिकारोऽस्ति मूकादीनां कृताकृतम्” ॥ इति ।

आपस्तम्बः ( १।१।९-१० )—“उपनयनं विद्यार्थस्य श्रुतितः संस्कारः । सर्वेभ्यो हि वेदेभ्यः

३५ सावित्र्यनूच्यत इति हि ब्राह्मणम्” ॥ इति । विद्यार्थः प्रयोजनं यस्य स विद्यार्थः । तस्यायं श्रुति-



विहितः संस्कारः । उपनयनं नाम विद्यार्थस्येति वचनान्मूकादेर्न भवति । अनेकवेदाध्यायिनां वेदव्रतवदुपनयनमपि भेदेन कर्तव्यमिति प्राप्ते । उच्यते । सर्वेभ्य इति । ततश्च सावित्र्यनुवचनेन सर्वे वेदा अनूक्ता भवन्तीत्येकमेवोपनयनं सर्वार्थम् । आथर्वणस्य तु वेदस्य पृथगुपनयनं कर्तव्यम् । तथा च तथैव श्रूयते—“ नान्यत्र संस्कृतो भृग्वंगिरसोर्विधीयत ” इति । पतिता-  
नामुपनयनाभावमाहास्तंबः ( १।१।६ )—“ अशूद्राणामदुष्टकर्मणामुपनयनम् ” इति । ५  
“ प्रागुपनयनात्कामचारवादभक्ष ” इति ( २।१ ) गौतमवचनं ब्रह्महत्यादिपातकव्यतिरिक्तविषय-  
मिति पूर्वमेवोक्तम् । स्मृत्यर्थसारे—“ षंडांघादिषु यथोचितं संस्कारः । मूकोन्मत्तावसंस्कार्या-  
वित्येके । कर्मस्वनधिकारात्पातित्यं नास्ति । तदपत्यं संस्कार्यम् । ब्राह्मण्यां ब्राह्मणोत्पन्नो ब्राह्मण  
एवेति स्मृतेः । अन्ये न संस्कार्यावित्याहुः । होमं तावदाचार्यः कुर्यात् । उपनयनं च विधिना  
आचार्यसमीपनयनं सावित्रीसमीपनयनं सावित्रीवाचनं वा अन्यदंगं यथाशक्ति कार्यम् ” इति । १०  
जडबधिरमूकादीनामुपनयनकल्पो बोधायनादिभिरुक्तः । तत एव ग्राह्यः ।

अथौरसादीनामुपनयननिरूपणम् । स्मृतिरत्ने—

“ औरसः पुत्रिकापुत्रः क्षेत्रजो गूढजस्तथा । कानीनश्च पुनर्भूतो दत्तः क्रीतश्च कृत्रिमः ॥  
“ दत्तात्मा च सहोदश्च अपविद्धः सुतस्तथा । एते द्वादशपुत्राश्च संस्कार्याः स्युर्द्विजातयः ” ॥ इति ।  
औरसादीनां लक्षणमाह मनुः ( १।१६६-१७७ )— १५  
“ स्वे क्षेत्रे संस्कृतो यस्तु स्वयमुत्पादयेद्धि यम् । तमौरसं विजानीयात्पुत्रं प्राथमकल्पिकम् ॥  
“ यत्स्वग्रजप्रमीतस्य क्लीबस्य व्याधितस्य वा । स्वधर्मेण नियुक्तायां स पुत्रः क्षेत्रजः स्मृतः ॥  
“ माता पिता वा दद्यातां यमाद्भिः पुत्रमापदि । सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो द्विजः सुतः ॥  
“ सदृशं तु प्रकुर्याद्यं गुणदोषविचक्षणम् । पुत्रं पुत्रगुणैर्युक्तं स विज्ञेयस्तु कृत्रिमः ॥  
“ उत्पद्येत गृहे यस्य न च ज्ञायेत कस्य सः । स्वगृहे गूढमुत्पन्नो यस्य स्यात्तस्य तल्पजः ॥ २०  
“ मातापितृभ्यामुत्सृष्टं तयोरन्यतरेण वा । यं पुत्रं परिगृह्णीयादपविद्धस्तु स स्मृतः ” ॥  
“ पितृवैश्वानि कन्या तु यं पुत्रं जनयेद्रहः । तं कानीनं वदेन्नाम्ना वोढुः कन्यासमुद्भवम् ॥  
“ या गर्भिणी संस्क्रियते ज्ञाताऽज्ञाताऽपि वा सती । वोढुः स गर्भो भवति सहोद इति चोच्यते ॥  
“ क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थं मातापित्रोर्यमंतिकात् । स क्रीतकः सुतस्तस्य सदृशोऽसदृशोऽपि वा ॥  
“ या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वेच्छयाऽऽत्मनः । उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते ॥ २५  
“ मातापितृविहीनो यस्त्यक्तो वा स्यादकारणात् । आत्मानं संस्पृशेद्यस्मै स्वयं दत्तस्तु स स्मृतः ” ॥  
याज्ञवल्क्योऽपि ( व्य. १२८-१३२ )—

“ औरसो धर्मपत्नीजस्तत्समः पुत्रिकासुतः । क्षेत्रजः क्षेत्रजातस्तु स्वगोत्रेणेतरेण वा ॥  
“ गृहे प्रच्छन्न उत्पन्नो गूढजस्तु सुतः स्मृतः । कानीनः कन्यकाजातो मातामहसुतो मतः ॥  
“ अक्षतायां क्षतायां वा जातः पौनर्भवः सुतः । दद्यान्माता पिता वायं स पुत्रो दत्तको भवेत् ॥ ३०  
“ क्रीतश्च ताभ्यां विक्रीतः कृत्रिमः स्यात्स्वयंकृतः । दत्तात्मा तु स्वयंदत्तो गर्भे विन्नः सहोदजः ॥  
“ उत्सृष्टो गृह्यते यस्तु सोऽपविद्धो भवेत्सुतः ” ॥ इति । मनुः ( १।१८० )—  
“ क्षेत्रजादिसुतानेतानेकादश यथोदितान् । पुत्रप्रतिनिधीनाहुः क्रियालोपान्मनीषिणः ” ॥ इति ।  
एतानि गौणपुत्रपरिग्रहसंस्कारवचनानि युगांतरविषयाणि । कलौ तत्परिग्रहस्य निषिद्धत्वात् ॥  
“ अनेकधाकृताः पुत्रा ऋषिभिर्ये पुरातनैः । न शक्यन्तेऽधुना योक्तुं शक्तिहीनैः कलौ द्विजैः ” ॥ ३५

इति वचनात् । अत्र क्षेत्रजपुत्रोत्पादनाय सप्रकारं सापवादं च नियोगमुक्त्वा पुनरेव प्रतिषेधति  
**मनुः** ( १।५९-६० )—

“ देवराद्वा सपिंडाद्वा स्त्रिया सम्युक् नियुक्तया । प्रजेप्सिताऽधिगंतव्या संतानस्य परिक्षये ॥

“ विधवायां नियुक्तस्तु घृताक्तो वाग्यतो निशि । एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयं कथंचन ॥

५ “ विधवायां नियोगार्थं निर्वृत्ते तु यथाविधि । गुरुवच्च स्नुषावच्च वर्तेयातां परस्परम् ( ६२ ) ॥

“ नोद्वाहिकेषु मंत्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित् । न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं प्रति ( ६५ ) ॥

“ अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः । मनुष्याणामपि प्रोक्तो वैने राज्यं प्रशासति ( ६६ ) ॥

“ स महीमखिलां भुञ्जन् राजर्षिप्रवरः पुरा । वर्णानां संकरं चक्रे कामोपहतचेतनः ( ६७ ) ॥

“ तदा प्रभृति यो मोहात्प्रमीतपतिकां स्त्रियम् । नियोजयत्यपत्यार्थं तं विगर्हति साधवः ( ६८ ) ” ॥

१० अत्र **मनोरभिप्रायमाह बृहस्पतिः**—

“ नियोगमुक्त्वा मनुना निषिद्धः स्वयमेव तु । युगन्हासादशक्तोऽयं कर्तुमन्यैर्विधानतः ॥

“ तपोज्ञानसमायुक्ताः कृते त्रेतायुगे नराः । द्वापरे च कलौ नृणां शक्तिहानिर्विनिर्मिता ॥

“ संकल्पेन कृताः पुत्राः ऋषिभिर्यैः पुरातनैः । न शक्यतेऽधुना कर्तुं शक्तिहीनैर्नरैरिति ॥

“ क्षेत्रजो गर्हितः सद्भिस्तथा पौनर्भुवः सुतः । कानीनश्च सहोदृश्च गूढजः पुत्रि द्यासुतः ।

१५ “ दत्तोऽपविद्धः क्रीतश्च कृत्रिमो दत्त्रिमस्तथा ” ॥ इति । अत्र दत्तनिषेधस्त्वसगोत्राभिप्रायः ।

यदाह **शौनकः**—

“ ब्राह्मणानां सपिंडेषु कर्तव्यः पुत्रसंग्रहः । तदभावे सगोत्रे वा न चान्यत्र तु कारयेत् ॥

“ क्षत्रियाणां सजातौ वा गुरुगोत्रसमोऽपि वा । वैश्यानां वैश्यजातेषु शूद्राणां शूद्रजातेषु ॥

“ सर्वेषां चैव वर्णानां ज्ञातिष्वेव न चान्यतः । दौहित्रं भागिनेयं वा शूद्राणां त्वापदो यदि ” ॥ इति ।

२० सर्वेषां ज्ञातिष्वेव पुत्रपरिग्रहः । दौहित्रं भागिनेयं वा गृह्णीयाच्छूद्राणां त्वापदि

दौहित्रादिग्रहणमित्यर्थः । अत एव कलियुगधर्मान्वदद्भिः “ दत्तौरसेतरेषां च पुत्रत्वेन परिग्रहः ”

इति दत्तपर्युदासेन न गौणपुत्रपरिग्रहनिषेधः कृतः । अतः सति संभवे सगोत्रादेव दत्तपरिग्रहः

कर्तव्यः । तथा च **मनुः** ( १।१८२ )—

“ भातृणामेकजातानामेकश्चेत् पुत्रवान्भवेत् । सर्वे ते तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत् ” ॥

२५ सति भातृपुत्रे अन्यस्मात्पुत्रपरिग्रहो न कर्तव्य इति भाव इति मानवे व्याख्याने । अत्र

विज्ञानेश्वरोऽपि ( पृ.-९० पं. १६-१७ )— “ यत्तु भातृणामेकजातानामिति मानववचनं

तदपि भ्रातृपुत्रस्य पुत्रीकरणसंभवे अन्येषां पुत्रीकरणनिषेधार्थं न पुनः पुत्रत्वप्रतिपादनाय ” इति ।

कालादर्शोऽपि— अपुत्रो भ्राता भातृपुत्रसंभवे तेनैव पुत्रीकुर्यान्नान्येनेति ‘ भ्रातृणामे-

कजातानामिति ’ मनुवचनस्यार्थः । अन्यथा ‘ पत्नी दुहितर ’ इति न्यायस्यासामंजस्य

१ प्रसंगादिति । यत्तु

“ गोत्रांतरप्रविष्टानां दाय आशौचमेव च । ज्ञातिवं च निवर्त्तते तत्कुले सर्वमिष्यत ” ॥ इति

यदपि **मनुवचनम्** ( १।१४१-१४२ )—

“ उपपन्नो गुणैः सर्वैः पुत्रो यस्य तु दत्त्रिमः । स हरेतैव तद्रिक्थं संप्राप्तोऽप्यन्यगोत्रतः ॥

“ गोत्ररिक्थे जनयितुर्न हरेद्दत्त्रिमः सुतः । गोत्ररिक्थानुंगः पिंडो व्यपैति ददतः स्वधाम् ” ॥ इति

३५ यदपि **स्मृत्यंतरम्**—

“ गोत्रांतरप्रविष्टास्तु संस्कार्यास्तत्कुले न तु । जननेनैव पितरो दानेनैव निवर्तिताः ॥

“ दत्तस्य परिवेतृत्वमाशौचं दायमेव च । श्रितगोत्रा तु संग्राह्यं श्रौतं स्मार्तं तथैव च ” ॥ इति एतत्सर्वं स्वगोत्रजालाभविषयम् । तथा च स्मर्यते—

“ वंशजानामभावे तु प्रशस्तो मातृवंशजः । तदभावे सुतो दत्तो विहितो विधिनेतरः ॥

“ ज्ञातीनां कुलजातानामुत्तमः परिकीर्तितः । मध्यमा मातृकुलजा अधमाः परगोत्रजाः ॥ ५

“ स्वकल्पोक्तविधानेन दत्तपुत्रप्रतिग्रहः ” ॥ इति । अत्र कात्यायनः—

“ दत्तानूदा च कन्या या पतित्वं सप्तमे पदे । तथैव दत्तपुत्रस्य पुत्रत्वं जातकादिभिः ॥

“ यः प्रदत्तोऽपि पुत्रार्थं जातकर्मादिवर्जितः । नासौ गच्छति पुत्रत्वं कथं वा रिक्थभाग् भवेत् ” ॥

प्रजापतिः—

“ पुत्रं गृहीत्वा संस्कृत्य वयोवस्थाश्रितं पिता । नामगोत्रादि तत्सर्वं कुर्यादौरसवत्ततः ॥ १०

“ पंचमे सप्तमे वर्षे अष्टमे नवमे तथा । दद्यातां पितरौ पुत्रं गृहीयातां च दंपती ” ॥ इति संग्रहे च—

“ उत्तमं द्वादशाहेषु दत्तस्य ग्रहणं शिशोः । आचौलान्मध्यमं हीनमूर्ध्वमा मौजिबंधनात् ॥

“ कृतोद्वाहस्य पुत्रत्वं कुलक्षयकरं भवेत् ” ॥ इति । स्मृत्यंतरेऽपि—

“ साश्रमं नैव दद्यात्तु दद्यादापद्यनाश्रमम् । आपद्यपि च दद्यातां द्वितीयं ब्रह्मचारिणम् ” ॥ इति । १५

“ भर्तृरूर्ध्वं तु या नारी पुत्रं दातुं न साऽर्हति । ग्रहीतुं वाऽग्रजं नातो बोधायनवचो यथा ” ॥

वृक्षः—

“ आपद्यपि च कष्टायां न दद्यादग्रजं सुतम् । भर्तृहीना तथा पत्नी दद्याच्चेन्नरकं व्रजेत् ॥

“ अप्रजा विधिवानारी पितृभ्रातायनुज्ञया । पुत्रं तु प्रतिगृहीयादन्यथा नरकं व्रजेत् ” ॥ इति । तथा

“ आपद्यनग्रजं दद्यात् ब्रह्मचर्याश्रमं सुतम् । द्वादशाब्दं धर्मपत्नी शुनःशेषवदेव वा ” ॥ इति । २०

यत्तु “ दानं क्रयश्च धर्मश्चापत्यस्य न विद्यते ” इति आपस्तम्बस्मरणम् ( २।१३।१० )

यदपि “ स्वकुटुम्बाविरोधेन देयं दारसुतादृते ” इति याज्ञवल्क्यवचनं ( व्य. १७५ )

तज्ज्येष्ठपुत्रविषयं एकपुत्रविषयं च । तथा च वसिष्ठः ( १५।३-६ )— “ न ज्येष्ठं पुत्रं दद्यात्प्रति-

गृहीयाद्वा । न चैकं पुत्रं स हि संतानाय पूर्वेषाम् । न स्त्री पुत्रं दद्यात् प्रतिगृहीयाद्वाऽन्यत्रानु-

ज्ञानाद्भर्तुः । पुत्रं प्रतिग्रहीष्यन्बधूनाहूय राजनि चावेद्य निवेशनस्य मध्ये व्याहृतिभिर्हुत्वा दूर- २५

बांधवं संनिकृष्टमेव प्रतिगृहीयात् ” इति । बह्वृच ब्राह्मणेऽपि शुनःशेषाख्याने “ ज्येष्ठं पुत्रं

न प्रयच्छेत् ” इति । शौनकोऽपि—

“ नैकपुत्रेण कर्त्तव्यं पुत्रदानं कदाचन । बहुपुत्रेण कर्त्तव्यं पुत्रदानं प्रयत्नतः ” ॥ इति ।

बोधायनः— “ शौणितिशुक्रसंभवो मातृपितृनिमित्तम् । तस्य प्रदानपरित्यागविक्रियेषु माता-

पितरौ प्रभवतः । न त्वेकं पुत्रं दद्यात्प्रतिगृहीयाद्वा । स हि संतानाय पूर्वेषाम् । न तु स्त्री पुत्रं दद्यात् ३०

त्प्रतिगृहीयाद्वाऽन्यत्रानुज्ञानाद्भर्तुः ” इति । “ एवं कृते औरस उत्पद्येत यदि स तुर्यभाक् भवति ”

इति च । पुत्रपरिग्रहकल्पस्तु शौनकबोधायनादिभिरभिहितः ।

पुत्रपरिग्रहफलं दर्शयति जाबालिः—

“ पुत्रस्वीकारमात्रेण पितरं त्रायते सुतः । दत्तः पुत्रत्वमान्नोति ग्रहीता मुच्यते ऋणात् ” इति ।

तथा च मंत्रलिंगमपि— “ धर्माय त्वा गृहामि संतत्यै त्वा गृहामि ” इति । यत्तु वचनं— ३५

“स्वकुलं पृष्ठतः कृत्वा यो वै परकुलं व्रजेत् । तेन दुश्चरितेनासौ काण्डपृष्ठ इति स्मृतः ॥

“त्यक्तं पितृकुलं यस्मादनर्हः सर्वकर्मसु” इति । तत्स्वयंदत्तविषं विवाहानंतर-

दत्तविषयं वा । अथ गुर्वादिनिरूपणम्—

तत्र मनुः ( २।१४२ )—

५ “निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि । संभावयति चाग्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते” ॥

निषेको गर्भाधानम् । निषेकग्रहणादन्नग्रहणाच्च पितैवायम् । स एव ( २।१४०।१४१ )—

“उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेत् द्विजः । सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥

“एकदेशं तु वेदस्य वेदांगान्यपि वा पुनः । योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते ॥

“उपाध्यायादशाचार्य आचार्याणां शतं पिता । सहस्रं तु पितुर्माता गौरवेणातिरिच्यते” ॥ ( १४५ )

१० याज्ञवल्क्यः ( आ. ३४-३५ )—

“स गुरुर्यः क्रियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति । उपनीय ददद्देदमाचार्यः स उदाहृतः ॥

“एकदेशमुपाध्याय ऋत्विग्यज्ञकृदुच्यते । एते मान्या यथापूर्वमेभ्यो माता गरीयसी” ॥ इति ।

पितुरेव मुख्यमुपनयनादिकर्तृत्वं तदभावे पितृसमत्वाज्येष्ठस्य तयोर्द्वयोरभावे अयोग्यतायां वा अन्यस्योपनयादिकर्तृत्वम् । यदाह बृहस्पतिः—

१५ “एवं दंडादिभिर्युक्तं संस्कृत्य तनयं पिता । वेदमध्यापयेद्यत्नाच्छास्त्रं मन्वादिकं तथा” ॥ इति ।

ज्येष्ठस्य पितृसमत्वं मनुना स्मर्यते ( ९।१०८ )—

“पितृवत्पालयेत्पुत्रान् ज्येष्ठो भ्राता यवीयसः । पुत्रवच्चापि वर्त्तेरन्ज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः” ॥ इति ।

पितुरयोग्यतायां यमः—

“नाध्यापयति नाधीते पतनीयेषु वर्त्तते । इत्येतैर्लक्षणैर्युक्तः कर्तव्यो न पिता गुरुः” ॥ इति ।

२० गुरुरत्रोपनेता । आपस्तम्बः ( १।१।१४-१५ )—“यस्माद्धर्मानाचिनोति स आचार्यस्तस्मै

न द्रुह्येत्कदाचन” इति । शंखः—“भृतकाध्यापको यस्तु स उपाध्याय उच्यते” ॥ विष्णु-

रपि ( २९।२ )—“यस्त्वेन मूल्येनाध्यापयेत्तत्त उपाध्यायः” इति । मनुः ( २।१४२ )—

“अग्न्याधेयं पाकयज्ञानग्निष्टोमादिकान् मखान् । यः करोति वृतो यस्य स तस्यर्त्विगिहोच्यते” ॥

देवलः—

२५ “उपाध्यायः पिता ज्येष्ठो भ्राता चैव महीपतिः । मातुलः श्वशुरस्त्राता मातामहपितामहौ ॥

“वर्णज्येष्ठः पितृव्यश्च पुंस्येते गुरवः स्मृताः ॥

“माता मातामही गुर्वी पितुर्मातुश्च सोदराः । श्वश्रूः पितामही ज्येष्ठा धात्री च गुरवस्त्रियाम् ॥

“इत्युक्तो गुरुवर्गोऽयं मातुलः पितृतो द्विधा । गुरूणामपि सर्वेषां पूज्याः पंच विशेषतः ॥

“यो भावयति यः सूते येन विद्योपदिश्यते । ज्येष्ठो भ्राता च भर्ता च पंचैते गुरवः स्मृताः ॥

३० “तेषामाद्यास्त्रयः श्रेष्ठास्तेषां माता सुपूजिता” ॥ इति । स्मृतिरन्ते—

“पिता माता तथाऽऽचार्यस्तज्जाया चाग्रजस्तथा । पितामहश्च तत्पत्नी गुरवः प्रथमा मताः ॥

“ऋचं वा यदि वाऽर्धर्चं पादं वा यदि वाऽक्षरम् । सकाशाद्यस्य गृहीयान्नियतं तत्र गौरवम्” ॥

व्यासोपि—

“मातामहो मातुलश्च पितृव्यः श्वशुरो गुरुः । पूर्वजः स्नातकश्चर्त्विक् मान्यास्ते गुरवस्तथा ॥

“मातृष्वसा मातुलानी स्वसा धात्री पितृष्वसा । पितामही पितृव्यस्त्री गुरुस्त्री मातृवच्चेरेत् ॥

मनुः ( २।१३३ )—

“पितुर्भगिन्यां मातुश्च ज्यायस्यां च स्वसर्षपि । मातृवद्वृत्तिमातिष्ठेन्माता ताभ्यो गरीयसी ॥

माता पूज्यतमेत्यत्र हेतुमाह व्यासः—

“मासान् दशोदरस्थे या धृत्वा शूलैः समाकुला । वेदनाविविधैर्दुःखैः प्रसूयेत विमूर्च्छिता ॥

“प्राणैरपि प्रियान्पुत्रान्मन्यते सुतवत्सला । कस्तस्या निष्कृतिं कर्तुं शक्तो वर्षशतैरपि ॥ निष्कृतिः  
आद्यप्यं तत्र शंखः—“न पुत्रः पितुर्मुच्येतान्यत्र सौत्रामणियागाज्जीवननृणाम्नातुः ॥ इति ।

यत्तु पौराणिकं वचनम्—

“द्वौ गुरु पुरुषस्येह पिता माता च धर्मतः । तयोरपि पिता श्रेयान्बीजप्राधान्यदर्शनात् ॥

“अभावे बीजिनो माता तदभावे तु पूर्वजः ॥” इति तन्महागुरुविषयम् । तथा च स्मर्यते— १०

“उत्पाद्य पुत्रं संस्कृत्य वेदमध्याप्य यः पिता । कुर्याद्वृत्तिं च स महान्गुरुः पूज्यतमः स्मृतः ॥” इति  
अथ ब्रह्मचारिणां जनकमात्रपेक्षयाऽऽचार्यो गरीयानित्याह मनुः ( २।१४६-१४८ )—

“उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान्ब्रह्मदः पिता । ब्रह्मजन्म हि विप्रस्य प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥

“कामान्माता पिता चैनं यदुत्पादयतो मिथः । संभूतिं तस्य तां विद्याद्यथोनावधिजायते ॥

“आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद्वेदपारगः । उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साऽजरामरा ॥ १५  
जातिं जन्म । आचार्यगरीयस्त्वमेव प्रकारांतरेण प्रतिपादयति—

“अल्पं वा बहु वा यस्य श्रुतस्योपकरोति यः । तमपीह गुरुं विद्याच्छ्रुतोपक्रियया तथा ( १४९ ) ॥

अल्पविद्याप्रदमपि गुरुं विद्याद्बहुविद्याप्रदं किं पुनरिति मनोरभिप्रायः । गौतमः ( २।५६ )—

“आचार्यः श्रेष्ठो गुरुणां मातेत्येक ” इति । यस्तु बालो वृद्धमध्यापयति सोऽपि तस्य गरीया-

नित्याह विष्णुः—“बाले समानवयसि वाऽध्यापके गुरुवद्वर्त्तत ” इति इममेवार्थमितिहास- १०  
पूर्वमाह मनुः—( २।१५०-१५६ )

“ब्राह्मस्य जन्मनः कर्त्ता स्वधर्मस्य च शासिता । बालोऽपि विप्रो वृद्धस्य पिता भवति मंत्रदः ॥

“अध्यापयामास पितृन्छिशुरांगिरसः कविः । पुत्रका इति होवाच ज्ञानेन परिगृह्य तान् ॥

“ते तमर्थमपृच्छन्त देवानागतमन्यवः । देवाश्चैतान्समेत्योचुर्न्याय्यं वः शिशुरुक्तवान् ॥

“अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मंत्रदः । अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येव च मंत्रदम् ॥ २५

“न हायनैर्न पलितैर्न वित्तैर्न च बन्धुभिः । ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योनूचानः स नो महान् ॥

“न तेन स्थविरो भवति येनास्य पलितं शिरः । यो वै युवाऽप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः ॥

“आचार्यस्य पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः । नार्त्तेनाप्यवमंतव्या ब्राह्मणेन विशेषतः ( २२५ ) ॥

“आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः । माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता स्वा मूर्तिरात्मनः

( २२६ ) ॥ ३०

“यन्मातापितरौ क्लेशं सहेते संभवे नृणाम् । न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ( २२७ ) ॥

“तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा । तेषु हि त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ( २२८ ) ॥

“एषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तप उच्यते । न तैरनभ्यनुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् ( २२९ ) ॥

“त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः । त एव च त्रयो वेदास्त एवोक्ताश्च त्रयोऽप्ययः ( २३० ) ॥

“त्रिष्वप्रमाद्यन्नेतेषु त्रीन्लोकान्विजयेद् गृही । दीव्यमानश्च वपुषा देववद्वि विरोचते” (२११) ॥

न केवलमयं ब्रह्मचारिणां धर्मः किंतु तूत्तरेषामपीति प्रदर्शितो गृहीति । स एव (२१२ ३३-२३७) —

“इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम् । गुरुशुश्रूषया त्वेव ब्रह्मलोकं समश्नुते ॥

“सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः । अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ॥

५ “यावन्नयस्ते जीवियुस्तावन्नान्यं समाचरेत् । तेष्वेव नित्यं शुश्रूषां कुर्यात्प्रियहिते स्तः ॥

“त्रिष्वेतेष्विह कृत्यं हि पुरुषस्य समाप्यते । एष धर्मः परः साक्षादुपधर्मोऽन्य उच्यते” ॥ इति ।

व्यासोऽपि — “उपाध्यायं पितरं मातरं वाथे द्रुह्यन्ति मनसा कर्मणा वा ॥

“तेषां पापं भ्रूणहत्याविशिष्टं नान्यस्तेभ्यः पापकृदस्ति लोके” ॥ देवलः —

“यावत्पिता च माता च द्वावेतौ निर्विकारिणौ । तावत्सर्वं परित्यज्य पुत्रः स्यात्तत्परायणः ॥

१० “माता पिता च सुप्रीतौ स्यातां पुत्रगुणैर्यदि । स पुत्रः सकलं धर्मं प्राप्नुयात्तेन कर्मणा” ॥

विकारो मरणम् । स एव —

“नास्ति मातृसमं दैवं नास्ति पित्रा समो गुरुः । तयोः प्रत्युपकारोऽपि न कथंचन विद्यते” ॥ इति ।

व्यासः —

“परित्यजन्ति ये रागादुपाध्यायं गुरुं तथा । न मानयन्ति मोहाद्वा ते यांति नरकान्ब्रह्मन् ॥

१५ “यो भ्रातरं पितृसमं ज्येष्ठं मुखं विमन्यते । तेन दोषेण संप्रेत्य निरयं घोरमृच्छति ॥” इति ।

मनुः ( ४।१६२ ) —

“आचार्यं च प्रवक्तारं पितरं मातरं गुरुम् । न हिंस्याद्वाह्मणं गां च सर्वाश्चैव तपस्विनः” ॥

न हिंस्यान्न कुप्यात् । अत्रापवादमाह स एव —

“गुरोरण्णवलितस्य कार्याकार्यमजानतः । उत्पथं प्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते” ॥

२० दोषयुक्तोऽपि पिता न त्याज्य इत्याह यमः —

“अशुद्धौ तु परित्यागः पातकेऽयाज्ययाजने । उपाध्यायेऽथ याज्ये वा न पितुस्त्याग इष्यते” ॥

मनुः ( २।२०८ ) —

“बालः समानजन्मा वा शिष्यो वा ज्ञानकर्मणि । अध्यापयन्गुरुसुतो गुरुवन्मानमर्हति” ॥

व्यासः —

२५ “गुरुरभिर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः । पतिरेव गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः” ॥

मनुः ( २।१३५ ) —

“ब्राह्मणं दशवर्षं च शतवर्षं च भूमिपम् । पितापुत्रौ विजानीयात्तयोस्तु ब्राह्मणः पिता” ॥

इति शुर्बादिनिरूपणम् । अथान्योन्यं मान्यतानिमित्तान्याह याज्ञवल्क्यः (आ. १।१६) —

“विद्याकर्मवयोबंधुवित्तैर्मान्या यथाक्रमम् । एतैः प्रभूतैः शूद्रोऽपि वार्धके मानमर्हति” ॥

३० विद्या श्रुतिस्मृती । कर्म यज्ञादि । वयः आत्मनोऽतिरिक्तम् । बंधुत्वं स्वजनसंपत्तिः । वित्तं

धनम् । एतैर्युक्ताः क्रमेण मान्याः पूजनीयाः । एतैः कर्मबंधुवित्तैः प्रभूतैः प्रबुद्धैर्युक्तः शूद्रोऽपि

वार्धके नवतेरुर्ध्वं मानमर्हतीत्यर्थः । मनुरापि ( २।१३६-१३७ ) —

“वित्तं बंधुर्वयः कर्म विद्या भवति पंचमी । एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यवुत्तरम् ॥

“पंचानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि गुणवन्ति च । यत्र स्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि वरुणी मत्तः” ॥

३५ भावप्रधानो निर्दोषः । पंचानां वित्तादीनां मध्ये त्रिषु वर्णेषु यस्मिन्भूयांसि विष्मदीति यस्मिन्वा

गुणवन्ति श्रेष्ठानि विद्यादीनि स्युः स मानार्हः इति च । वर्षशतस्यातिमो दशमो भागो दशमीगतः नवतिहायनातीत इत्यर्थः । गौतमोपि ( ७।१८-२० )— “ वित्तबंधुजातिकर्म-विद्याव्याप्तिं मान्यानि परबलीयांसि । श्रुतं तु सर्वेभ्यो गरीयस्तन्मूलत्वाद्धर्मस्य ” इति ॥ इति मान्यतानिमित्तम् । अथ मार्गप्रदानार्हानाह मनुः ( २।१३८-१३९ )—

“ चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः स्त्रियाः । स्नातकस्य च राज्ञश्च पंथा देयो वरस्य च ॥ ५  
“ तेषां तु समवेतानां मान्यौ स्नातकपार्थिवौ । राजस्नातकयोरेव स्नातको नृपमानभाक् ” ॥  
चक्रं अनोरथाद्युपलक्षणम् । तेन यो गच्छति स चक्री । तस्य निर्गुणस्यापि पंथा देयः । एवं दशमीस्थस्य वृद्धतरस्य । भारिणः भारवाहकस्य । स्नातकस्य गृहस्थस्य ब्राह्मणस्य । वरस्य श्रेष्ठस्य विवाहोद्युक्तस्य । विद्याव्रतस्नातस्य इति विज्ञानेश्वरः ( पृ. ३३ ) । समवेतानां मार्गे संगतानां मान्यौ मार्गदानेन । नृपमानभाक् नृपदत्तमार्गभागित्यर्थः । याज्ञवल्क्योऽपि ( आ. १।१७ )— १०

“ वृद्धभारिनृपस्नातस्त्रीरोगिवरचक्रिणाम् । पंथा देयो नृपस्तेषां मान्यः स्नातश्च भूपतेः ” ॥  
शंखः—“ बालवृद्धमत्तोन्मत्तोपहतदेहभाराक्रांतस्त्रीनृपस्नातकप्रव्रजितेभ्योऽथ ब्राह्मणायाश्च पंथा राज्ञ इत्येके तच्चानिष्टं गुरुज्येष्ठश्च ब्राह्मणो राजानमतिशेते तस्मै पंथा देयः ” इति । तेषां परस्परसमवाये विद्यादिभिर्विशेषो द्रष्टव्यः । व्यासः—

“ पंथा देयो ब्राह्मणाय स्त्रियै राज्ञे ह्यचक्षुषे । वृद्धाय भावहीनाय रोगिणे दुर्बलाय च ” ॥ १५  
स्त्री चात्र गर्भिणी वेदितव्या । तथा च बोधायनः—

“ पंथा देयो ब्राह्मणाय गवे राज्ञे ह्यचक्षुषे । वृद्धाय भारतप्ताय गर्भिण्यै दुर्बलाय च ” ॥ इति ।  
गौतमः ( ७।२१-२२ )— “ चक्रिदशमीस्थानुग्राह्यवधूस्नातकराजभ्यः पथो दानम् । राज्ञा तु श्रोत्रियाय ” इति । अनुग्राह्यो रोगार्तः । वधूर्नवोढा । आपस्तम्बः ( २।११।५-९ )—

“ राज्ञः पंथा ब्राह्मणेनासमेत्य । समेत्य तु ब्राह्मणस्यैव पंथाः । यानस्य भाराभिनिहतस्यातुरस्य च स्त्रिया इति सर्वैर्दातव्यो वर्णज्यायसां चेतरेर्वर्णैरशिष्टपतितमत्तोन्मत्तानामात्मस्वस्त्ययनार्थेन सर्वैरेव दातव्यः ” इति । राजा ब्राह्मणेन यदि समेतो न भवति तस्य तदा पंथा देयः । समेतश्चेद्ब्राह्मणस्यैव पंथाः । यानं शकटरथगजादि । भाराभिहतः भाराक्रांतः । वर्णज्यायसामुत्कृष्टवर्णानां निकृष्टवर्णैः पंथा देयः । आत्मस्वस्त्ययनमात्मत्राणम् । तेन प्रयोजनेन तदर्थं न त्वदृष्टार्थमित्यर्थः । अत्र कौटिल्येन देयस्य पथः प्रमाणमुक्तम् ( अर्थशास्त्रे २।२५ ) “ पंचारत्निरथपथश्चत्वारो हस्तिपथो द्वौ द्वौ पशुशुद्धमनुष्याणाम् ” इति । इति मार्गदाननिरूपणम्—

अथाभिवादनम् । तत्र याज्ञवल्क्यः—( आ. २६ ) “ ततोऽभिवादादेवृद्धानसावह-मिति ब्रुवन् ” । ततः अग्निकार्यादनंतरमित्यर्थः । आशीर्वचनार्थो नमस्कारोऽभिवादनम् । मनुरपि ( २।१२२।१२४ )—

“ अभिवादात्परं विप्रो ज्यायांसमभिवादयन् । असौ नामाहमस्मीति स्वं नाम परिकीर्त्तयेत् ॥ १०  
भोः शब्दं कीर्त्तयेदंते स्वस्य नाम्नोऽभिवादने । नाम्नः स्वरूपभावो हि भो भाव ऋषिभिः स्मृतः ” ॥ इति । अभिवादात्परमभिवाद्य इति शब्दादुपरि देवदत्तनामाहमस्मीति स्वं नाम ब्रूयात् । अस्योपरि भो शब्दं कीर्त्तयेत् । अभिवाद्यस्य नाम्ना संबोधयितुमशुक्तत्वात् भोशब्देन संबोधयेत् । भोभावः भोशब्दसत्तानाम्नः स्वरूपभावः नाम्नः स्वरूपसत्ता समस्तनामधेयकार्यकारणसमर्थो भोशब्द इत्यर्थः । तथा चायं प्रयोगः— ‘ अभिवादादेव देवदत्तनामाहमस्मि भोः ’ इति । १५



अत्र गौतमः (६।५) — “स्वनाम प्रोच्याहमयमित्यभिवादो ज्ञसमवाये ” इति । तद्व्याख्याता हर-  
दत्तः । यः प्रत्यभिवादनविधिज्ञस्तेन संगमे स्वनाम च प्रोच्य उच्चैरुच्चार्याहं शब्दं चोक्त्वाऽय-  
मिति च ब्रूयात् । अयमिति प्रत्यक्षोपदेशः । अस्मि शब्दः प्रयोक्तव्य इत्याहुः । अंते च भोशब्दं  
प्रयुज्यते । ‘ अभिवादये हरदत्तोऽहमस्मि भो ’ इति प्रयोगः । ‘ हरदत्तनामाहम् ’ इति केचित् ।

५ ‘ हरदत्तशर्माहम् ’ इत्यपरे ॥ ‘ हरदत्तशर्मा नामाहमस्मि भोः ’ इति प्रयोग इत्यन्ये इति ।  
शर्मान्तं ब्राह्मणस्येति वचनादत्र यथास्वकुलाचारं व्यवस्था । भरद्वाजः—

“कंदूय पृष्ठतो गां तु कृत्वा चाश्वत्थवंदनम् । उपगम्य गुरुन्सर्वान्विप्रांश्चैवाभिवादयेत् ” ॥

मनुः ( २।११७ )—

“लौकिकं वैदिकं वाऽपि तथाऽध्यात्मिकमेव वा । आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादयेत्” ॥ इति ।

१० आपस्तंबः—( १।५।१२—१६ ) “ गुरोस्तिष्ठन्प्रातरभिवादमभिवादयीतासावहं भो इति ।  
समानग्रामे च वसतामन्येषामपि वृद्धतराणां प्राक् प्रातराशात् । प्रोष्य च समागमे । स्वर्ग-  
मायुश्चेष्ट्यन् । दक्षिणं बाहुं श्रोत्रसमं प्रसार्य ब्राह्मणोभिवादयीतोरःसमं राजन्यो मध्यसमं वैश्यो  
नीचैः शूद्रः प्राञ्जलिम् ” इति । विष्णुः—

“जन्मप्रभृति यत्किञ्चिच्चेतसा धर्ममाचरेत् । सर्वं तन्निष्फलं याति ह्येकहस्ताभिवादनात्” ॥ इति ।

१५ एतद्विद्विषयम् । यतः स एवाह—

“शिष्याणां चाशिषं दद्यात्पादोपग्रहणं गुरोः । स्पृष्ट्वा कर्णौ तु विदुषां मूर्खाणां चैकपाणिना” ॥ इति ।

आश्वलायनः—

“वामं वामेन संस्पृश्य दक्षिणेन तु दक्षिणम् । हस्तेन हस्तौ कर्णौभ्यां गुरुणामभिवादयेत् ॥

“वामोपरि करं कृत्वा दक्षिणं नाम चोच्चरेत् । जानुप्रभृति पादांतमालभ्य पदयोर्नमेत् ” ॥

२० एतच्च प्रत्युत्थाय कर्तव्यम् । तदाहापस्तंबः—

“ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामंति यूनः स्थविर आयति । प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते ” ॥

स एव ( १।१४।१४—२२ )— “ ज्ञायमाने वयोविशेषे वृद्धतरायाभिवाद्यम् । विषमगता-  
यागुरवे नाभिवाद्यम् । अन्वारुह्य वाऽभिवादयीत । सर्वत्र तु प्रत्युत्थायाभिवादनम् । अप्रयतेन  
नाभिवाद्यम् । तथा प्रयताय अप्रयतश्च न प्रत्यभिवादेत् । पतिवयसस्त्रियः । न सोपानद्वेष्टितशिरा-

२५ अवहितपाणिर्वाऽभिवादयीत ” इति । अस्यार्थः । वयो विशेषे ज्ञायमाने पूर्वं वृद्धतरायाभिवादनं  
कर्तव्यम् । पश्चाद्वृद्धाय । विषमगताय उच्चैस्थाने नीचैस्थाने वा स्थिताय गुरुव्यतिरिक्ताय  
नाभिवाद्यम् । गुरवे तु अभिवाद्यमेव । अन्वारुह्य वाभिवादयीत । एतद् गुरुविषयम् । अन्वारुह्येते-  
तदपि दृष्टव्यम् । न्यायस्य तुल्यत्वात्सर्वत्र गुरावगुरौ च पतिवयसस्त्रियः तेन तदनुरोधेन ज्येष्ठ-  
भार्यादिष्वभिवादनमवहितपाणिः समित्कुशादिहस्त इति । मनुः ( २।११९ )—

३० “शय्यासनेऽध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत् । शय्यासनस्थश्चैवैनमवरुह्याभिवादयेत्” ॥

श्रेयसा गुर्वादिनाचरिते परिगृहीतयोः शय्यासनयोरपि उपरि समाचरेत् । न समुपविशेत् । स एव

मनुः ( २।१२१ )—

“अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः । चत्वारि सम्यग्वर्धन्ते ह्यायुः प्रज्ञा यशो बलम्” ॥ इति ।

बोधायनः ( १।२।३१—३४ )— “नासीनो नासीनाय न शयानो न शयानाय नाप्रयतो नाप्रयताय



शक्तिमद्विषये मुहूर्तमपि नाप्रयतः स्यात् । समिद्धार्युदकुम्भपुष्पाब्जहस्तो नाभिवादयेत् । यच्चान्यदप्येवं युक्तं न समवायेऽभिवादनमत्यंतशो भ्रातृपत्नीनां युवतीनां च गुरुपत्नीनां जातवीर्यः इति एवं युक्तमपि पितृदेवताद्यर्थे द्रव्ययुक्तमपि नाभिवादयेत् । न समवायेत्यंतशः अत्यंतसमीपे स्थित्वेत्यर्थः । जातवीर्यो जातशुक्रः । चशद्वात्पितृव्यादिपत्नीनामपि युवतीनां ग्रहणम् । शंखः— “नोदकुम्भहस्तोऽभिवादयेन्न भैक्षं चरन्न पुष्पाज्यहस्तो नाशुचिर्न देवपितृकार्यं कुर्वन्नशयानः” इति । ५  
आपस्तम्बः—

“समित्पुष्पकुशाज्यांबुधृदन्नाक्षतपाणिकम् । जपं होमं च कुर्वाणं नाभिवादयते द्विजम्” ॥ इति ।  
मनुः ( २।२।१० )—

“गुरुवत्प्रतिपूज्यास्तु सवर्णा गुरुयोषितः । असवर्णास्तु संपूज्याः प्रत्युत्थानाभिभाषणैः” ॥  
“गुरुपत्नी तु युवती नाभिवाद्येह पादयोः । पूर्णविंशतिवर्षेण गुणदोषौ विजानता” ( २।२ ) ॥ १०  
स्मृत्यर्थसारे—

“उदक्यां सूतिकां नारीं पतिर्घ्नो गर्भघातिनीम् । पाषंडं पतितं ब्राह्मं महापातकिनं तथा ॥  
“नास्तिकं कितवं स्तेनं कृतघ्नं नाभिवादयेत् । मत्तं प्रमत्तमुन्मत्तं धावंतमशुचिं नरम् ॥  
“वमन्तं जृम्भमाणं च कुर्वतं दंतधावनम् । अभ्यक्तशिरसं स्नानं कुर्वतं नाभिवादयेत् ॥  
“जपयज्ञगणस्थांश्च समित्पुष्पकुशानलान् । उदपन्नाध्यर्भैक्षान्नं वहंतं नाभिवादयेत् ॥ १५  
“अभिवाद्य द्विजश्चेन्नानहोरात्रेण शुध्यति ॥  
“अभिवाद्यांधकारस्थं शय्यास्थं पादुकांग्रिकम् । उच्छिष्टं जपहोमार्चरतं चोपवसेत्त्यहम् ॥  
“दूरस्थं जलमध्यस्थं धावंतं धनगर्वितम् । रोगाक्रांतं मदोन्मत्तं षड्विप्राब्जनाभिवादयेत्” ॥

“क्षत्रियवैश्याभिवादाने विप्रस्याहोरात्रं शूद्राभिवादाने त्रिरात्रं कृच्छ्रं तु रजकादिषु चंडालादिषु चाद्रं स्यात्” इति । शातातपः—

“अभिवाद्यो नमस्कार्यः शिरसा वंध एव च । ब्राह्मणः क्षत्रियाद्यैस्तु श्रीकामैः सादरं सदा ॥  
“नाभिवाद्यास्तु विप्रेण क्षत्रियाद्याः कथंचन । ज्ञानकर्मगुणोपेता यद्यप्येते बहुश्रुताः ॥  
“क्षत्रं वैश्यं वाऽभिवाद्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् । ब्राह्मणानां दशाष्टौ च अभिवाद्य विशुध्यति ॥  
“अभिवाद्य द्विजः शूद्रं सचैलं स्नानमाचरेत् । ब्राह्मणानां शतं सम्यगभिवाद्य विशुध्यति ॥  
“अर्चयेत्पुंडरीकाक्षं देवं चापि त्रिलोचनम् । ब्राह्मणं वा महाभागमभिवाद्य विशुध्यति” ॥ २५

ब्राह्मणेष्वपि कचिदपवादमाह विष्णुः—

“सभासु चैव सर्वासु यज्ञे राजगृहेषु च । नमस्कारं प्रकुर्वीत ब्राह्मणान्नाभिवादयेत् ॥  
“विप्रौघदर्शनात् क्षिप्रं क्षीयन्ते पापराशयः । वन्दनान्मङ्गलावाप्तिः स्पर्शनादच्युतं पदम्” ॥

स्मृतिरत्नावल्याम्—

“वर्षैर्वयोऽधिकाशीतिस्तीर्त्वा मासचतुष्टयम् । यो जीवेत्स तु वन्द्यः स्यात् विष्णोरपि सुपूजितः” ॥ ३०  
एतत्सवर्णविषयम् । मनुः—

“यस्य देशं न जानाति स्थानं त्रिपुरुषं कुलम् । कन्यादानं नेमस्कारं श्राद्धं तस्य विवर्जयेत्” ॥  
चंद्रिकायाम्—

“ज्यायानपि कनीयांसं संध्यायामभिवादयेत् । विना पुत्रं च शिष्यं च दौहित्रं दुहितुः प्रतिम्” ॥

## स्मृतिभास्करे—

“ सर्वे चापि नमस्कार्याः सर्वावस्थासु सर्वदा । आशीर्वाच्या नमस्कार्यैर्व्यस्यस्तु पुनर्नमेत् ” ॥

## वृद्धमनुः—

“ अभिवादने तु सर्वत्र पादस्पर्शनमेव वा । विप्राणां प्राञ्जलिः कार्यो नमस्कारः स उच्यते ” ॥

५ स्मृत्यर्थसारे— अभिवादने पदस्पर्शनं नास्ति कुर्याद्वा ।

“ अभिवादे नमस्कारे तथा प्रत्यभिवादनम् । आशीर्वाच्या नमस्कार्यैर्व्यस्यस्तु पुनर्नमेत् ॥

“ स्त्रियो नमस्या वृद्धाश्च वयसा पतिदेवताः । देवताप्रतिमां दृष्ट्वा यतिं चैव त्रिदंढिनम् ॥

“ नमस्कारं न कुर्याच्चेदुपवासेन शुध्यति ” ॥ इति । स्मृतिरत्ने—

“ सुक्पाणिकमनाज्ञातमशक्तं रिपुमातुरम् । योगिनं च तपःसक्तं कनिष्ठं नाभिवादयेत् ” ॥

१० मनुः ( २।१३४ )—

“ दशाब्दाख्यं पौरसख्यं पंचाद्वाख्यं कलाभृताम् । त्र्यब्दपूर्वं श्रोत्रियाणामल्पेनापि स्वयोनिषु ॥

समानपुरवासिनां दशभिर्वर्षैः पूर्वं सखा भवति । ततोऽधिको ज्यायान् । कलाभृतां गीतादि-

विद्याभृतां पंचाब्दपूर्वं सखा श्रोत्रियाणां वेदाध्यायिनां त्र्यब्दपूर्वं सखा स्वयोनिषु भ्रातादिषु

स्वल्पेनापि वयसा पूर्वं सखा भवति । ततोऽधिकोऽभिवाद्य इत्यर्थः । आपस्तम्बः ( १।१४।२६-३१ )—

१५ “ कुशलमवरवयसं वयस्यं वा पृच्छेत् । अनामयं क्षत्रियम् । अनष्टं वैश्यम् । आरोग्यं शूद्रम् । नासंभाष्य

श्रोत्रियं व्यतिव्रजेत् । अरण्ये च स्त्रियम् ” इति । श्रोत्रियं पथिसंगतमसंभाष्य न व्यतिक्रामेत् ।

अरण्ये सहाय्यरहितदेशे स्त्रियमेकाकिनीं दृष्ट्वा असंभाष्य न व्यतिव्रजेत् । संभाषणं च मातृवद्भगिनी-

वच्च भगिनी किं ते करवाणि न भेतव्यमिति । मनुरपि ( २।१२७-२९ )—

“ ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्क्षत्रबंधुमनमयम् । वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च ॥

२० “ परपत्नी च या स्त्री स्यादसंबन्धा च योनितः । तां ब्रूयाद्भवतीत्येवं सुभगे भगिनीति वा ” ॥ यमः—

“ स्वस्तीति ब्राह्मणो ब्रूयादायुष्मानिति भूमिपः । वर्धतामिति वैश्यस्तु शूद्रस्तु स्वागतं वदेत् ” ॥

तथा च भविष्यत्पुराणे— “ ब्राह्मणः सर्ववर्णानां स्वस्तिकुर्यादिति स्थितिः ” ॥ स्वस्ति-

शब्दार्थमाह यमः—

“ यत्सुखं त्रिषु लोकेषु व्याधिव्यसनवर्जितम् । यस्मिन्सर्वे स्थिताः कामास्तत्स्वस्तीत्यभिसंज्ञितम् ” ॥

२५ व्यासः—

“ कदाचित्कवचं भेद्यं तोमरेण शरेण वा । अपि वज्रशताघातैर्ब्राह्मणाशीर्न भिद्यते ” ॥

मनुः ( २।१३० )—

“ मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरानृत्विजो गुरुन् । असावहमिति ब्रूयात्प्रत्युत्थाय यवीयसः ” ॥

असावहमिति देवदत्तमिति ब्रूयान्नाभिवादयेत्यर्थः । तथा स्मृतिरत्ने— “ ऋत्विक्पितृव्य-

३० श्वशुरमातुलानां यवीयसाम् प्रवयाः प्रथमं कुर्यात् प्रत्युत्थायाभिभाषणम् ” इति ।

बोधायनः ( १।२।४६ )— “ ऋत्विक्पितृव्यश्वशुरमातुलानां तु यवीयसां प्रत्युत्था-

याभिभाषणम् ” इति । गौतमोऽपि ( ६।९ )— “ ऋत्विक्श्वशुरपितृव्यमातुलानां तु यवीयसाम्

प्रत्युत्थानमभिवाद्याः ” इति । यत्तु वसिष्ठापस्तम्बाभ्यामुक्तम् ( १।३।४१ )— “ ऋत्विक्श्वशुर-

पितृव्यमातुलानवरवयसः प्रत्युत्थायाभिवदेत् ” इति तत् अभिवदेत् आभिमुख्येन वदेदित्यभि-

भीषणमात्राभिप्रायमिति स्मृतिचन्द्रिकादौ व्याख्यातम् ( पृ. ३८ पं. २ ) । हरकस्तु—  
“अवरवयसः ऋत्विगादयोऽपि अभिवादयन्ते तानभिवादयमानान्प्रत्युत्थायाभिवादेत् । नान्येष्विव  
यथासुखमासीन इति व्याकृतवान् । गुर्वादिविषये त्वभिवादाने विशेषमाह गौतमः ( १।५३ )—  
“गुरोः पादोपसंग्रहणं प्रातः” इति । समवायेन्वहमभिगम्य तु विप्रोष्य मातृपितृवर्द्धभूनां  
पूर्वजानां विद्यागुरुणां तद्वरूणां च संनिपाते परस्येति च पित्रादीनां समावाये संगमे प्रतिदिनं  
पादोपसंग्रहणं कुर्यात् । तेषां च युगपत्संनिपाते परस्योपसंग्रहणम् । आपस्तंबोऽपि  
( १।५।१८-१९ )—“उदिते त्वादित्ये त्वाचार्येण समेत्योपसंग्रहणम् । सदैवाभिवादनम्” इति ।  
समावृत्तेन सर्वे गुरव उपसंग्राह्याः प्रोष्य च समागम इति च । स एव ( १।८।१९-२० )—  
“आचार्यप्राचार्यसंनिपाते प्राचार्यायोपसंग्राह्योपसंजिघ्रक्षेदाचार्यम् प्रतिषेधेदितरः” इति ।

मनुरपि ( २।२०५ )—

“गुरोर्गुरौ संनिहिते गुरुवद्वृत्तिमाचरेत् । न चातिसृष्टो गुरुणा स्वान्गुरुनभिवादयेत्” ॥ इति ।  
आपस्तंबः ( १।६।३५ )—“यस्मिंस्त्वनाचार्यसंबंधाद्गौस्वं वृत्तिस्तस्मिन्नन्ववस्थान-  
नीत्येऽप्याचार्यस्य” इति । यस्मिंस्तु पुरुषो शिष्याचार्यभावमन्तरेणाधिविद्याचारित्रादिना  
लौकिकानां गौरवं भवति तस्मिन्नन्ववस्थानीयेऽप्याचार्ये या वृत्तिः स कर्तव्येत्यर्थः । उपसं-  
ग्रहणस्वरूमाह स एव ( १।५।२१-२२ )—“दक्षिणेन पाणिना दक्षिणं पादमधस्ताद-  
भ्याधिष्ठेय सकुष्ठिकमुपसंगृह्णीयात् उभाभ्यामेवोभावभिपीडयत् उपसंग्राह्यावित्येकं” इति ॥  
आत्मनः दक्षिणेन पाणिनाऽचार्यस्य दक्षिणं पादमधस्तादभ्याधिष्ठेय अभिशब्द उपरि भावे  
अधस्ताच्चोपरिष्ठाच्चाभिष्ठेय सकुष्ठिकं समुलं सांगुष्ठमित्यन्ये । उपसंगृह्णीयाद्विद्रुमुपसंग्रहणं  
एतत्कुर्यादुभाभ्यामेव पाणिभ्यामुभावे वाचार्यस्य पादावभिपीडयतो माणवकस्य उपसंग्राह्या-  
वित्येके मन्यन्त इत्यर्थः । अत्र मनुः ( २।७२ )—

“व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः । सव्येन सव्यः स्पष्टव्यो दक्षिणेन तु दक्षिणः” ॥ इति ।  
बोधायनः ( १।२।२७-२८ )—“श्रोत्रे संस्पृश्य मनः समाधायाधस्ताज्जान्वोरा पभ्याम्” इत्युप-  
संग्रहणम् इति । एतच्च गुरुपत्नीनामपि कार्यम् । तथा च मनुः ( २।२।१० )—

“गुरुवत्प्रतिपूज्याः स्युः सवर्णा गुरुर्योषितः ।

“मातृष्वसा मातुलानी श्वश्रुरथ पितृष्वसा । संपूज्या गुरुपत्नीवत्समस्ता गुरुभार्यया ॥ ( १।३१ ) २५

“भ्रातृभार्योपसंग्राह्या सवर्णाऽहन्यहन्यपि । विप्रोष्य तूपसंग्राह्या ज्ञातिसंबंधियोषितैः ॥ ( १।३२ )

“अवृद्धा गुरुपत्नी च नोपसंग्रहमर्हति” । स्मृत्यर्थसारे—“उपसंग्रहणं नाम अमुकगोत्रो  
देवदत्तशर्मा नामाहं भो अभिवादये इत्युक्त्वा कर्णौ स्पृष्ट्वा दक्षिणोत्तानपाणिना गुरोर्दक्षिणं पादं  
सव्येन सव्यं गृहीत्वा शिरोऽवनमनम्” इति । “अत्र गुरवो मातास्तन्यदधात्री च पितामहादयो  
मातामहश्चान्नदाता भयत्राता चार्यश्चोपनेता मंत्रविद्योपदेष्टा तेषां पत्न्यश्चोपसंग्राह्याः समावृत्ते  
च बालेऽध्यापके समवयस्केऽध्यापके गुरुवच्चरेत्” इति । इत्यभिवादननिरूपणम् ।  
अथ प्रत्यभिवादनम् । तत्र मनुः ( २।१।२५ )—

“आयुष्मान्भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादाने । अकारश्चास्य नास्त्रोऽते वाच्यः पूर्वाक्षरः प्लुतः” ॥  
अभिवादाने कृते सति विप्रः द्विजः कनीयान्ज्यायसा वाच्यः । अस्मा कनीयसो नास्त्रोऽते पूर्वा-  
क्षरः प्लुतः । अक्षरशब्देन स्वर एव विवक्षितः । व्यंजनस्य प्लुतासंभवात् । यस्मादकारात्पूर्व- ३५

मक्षरं प्लुतं भवति स पूर्वाक्षरप्लुतः । अकारश्च वाच्यः । आयुष्मान्भव सौम्य देवदत्ता अ इति वाच्य इति यावदिति मानवे व्याख्याने । आपस्तंबोऽपि ( १।५।१७ )—

“प्लावनं च नाम्नोऽभिवादनप्रत्यभिवादाने च पूर्वेषां वर्णानाम्” इति । अत्र हरदत्तः—

अभिवादनस्य यत्प्रत्यभिवादनं तत्राभिवादयितुनाम्नः प्लावनं कर्तव्यं प्लुतः कर्तव्यः पूर्वेषां वर्णानां

५ शूद्रवर्जितानां अभिवादयमानानां । “प्रत्यभिवादेऽशूद्र” इति पाणिनीयस्मृतिः ( ८।२।८२ ) ।

तत्र वाक्यस्य टेरित्यनुवृत्तेः प्रत्यभिवादवाक्यस्यांते नामप्रयोगः । तस्य टेः प्लुतः । आयुष्मान्भव सौम्येति वाच्यो विप्र इति स्मृत्यंतरवशाच्चाग्नश्च पश्चादकारः ‘आयुष्मान्भव सौम्य देवदत्ता अ’

इति प्रयोगः । शंभुः विष्णुः पिनाकपाणिः चक्रपाणिः इत्यादि नाम्नां संबुद्धौ गुणे कृते एचोऽ-

प्रगृह्यस्य दूराद्धते पूर्वस्यार्धस्यादुत्तरस्थेदुतावित्ययमपि विधिर्भवति । अंते अकारः तयोर्व्या-

१० षचि संहितायामिति यकारवकारौ च भवतः । तथा च प्रयोगः । शंभाव विष्णाव पिनाक-

पाणाय चक्रपाणाय इति व्यंजनांतेषु च । अग्निचिकद इत्यादि प्रयोग इति । वसिष्ठोऽपि—

“आमंत्रितो योऽत्यः स्वरः स प्लवत” इति । एवं च अभिवादनकुन्नामगतांतिमस्वरातिरिक्ते

पूर्वोकारः पठितव्यः । अंतिमस्वरश्च प्लावयितव्य इति हरदत्तादीनां बहूनामभिमतम् । स्मृति-

चंद्रिकायां पराशरमाधवीये च मनुवचनमन्यथा व्याख्यातम् । तथा हि । पूर्वमक्षरं यस्यासौ

१५ पूर्वाक्षरः । पूर्वमक्षरं च सामर्थ्याब्जंजनं स्वराणां स्वरपूर्वकत्वात्संभवात् । अतश्चाभिवादक-

नामगतो व्यंजननिष्ठोऽतिमस्वरः प्लावनीयः अकारेणांतिमस्वरमात्रमुपलक्ष्यते । अशेषनाम्ना-

मकारांतत्वाभावात् । न त्वत्रापूर्वाकारो विधीयते । तथा च सत्येवं प्रयोगो भवति । आयुष्मान्भव सौम्य देवदत्ता इतीति । एतेषां मते पूर्वाक्षर इति पृथक्पदं द्रष्टव्यम् । अत्रातिरिक्ताकारपक्ष एव

शिष्टाचारानुगुणः । मनुः ( २।१२६ )—

२० “यो न वेत्त्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम् । नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः ॥

“नामधेयस्य ये केचिदभिवादं न जानते । तान् प्राज्ञोऽहमिति ब्रूयात्स्त्रियः सर्वास्तथैव च” ॥ ( १२९ ) इति ।

पतंजलिः—

“अविद्वांसः प्रत्यभिवादे नाम्नो येन प्लुतिं विदुः । कामं तेषु च विप्रोऽप्यस्त्रिष्विवायमहं वदेत्” ॥ इति ।

अहं वदेत् । अहमिति वदेदित्यर्थः । यमः—

२५ “यो न वेत्त्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम् । आशिषं वा कुरुश्रेष्ठ स याति नरकं ध्रुवम् ॥

“अभिवादे कृते यस्तु तं विप्रं नाभिवादयेत् । इमशाने जायते वृक्षो गृध्रकाकोपसेवितः ॥

“अभिवादे तु यः पूर्वमाशिषं न प्रयच्छति । यद् दुष्कृतं भवेत्तस्य तस्माद्भागं प्रचक्षते ॥

“तस्मात्पूर्वाभिभाषी स्याच्चंडालस्यापि धर्मवित् । सुरां पिबेतिवक्तव्यमेवं धर्मो न हीयते” ॥ इति ।

मनुः ( २।१२६ )—

३० “न वाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीयानपि यो भवेत् । भो भवत्पूर्वकं चैवमभिभाषेत धर्मवित्” ।

संनिधौ भोशब्दः । यथा भो यजमानेति । असंनिधौ भवच्छब्दः । यथा ‘तत्र भवान्यजमान’ इति ।

स्मृतिरत्ने—

“आचार्यं चैव तत्पुत्रं तद्भार्या दीक्षितं गुरुम् । पितरं च पितृंश्चैव मातरं मातुलं तथा ॥

३५ “हितैषिणं च विद्वांसं श्वशुरं यतिमेव च । न ब्रूयान्नामतो विद्वान्मातुश्च भगिनीं तथा” इति ॥

१५ इति प्रत्यभिवादननिरूपणम् । अथ ब्रह्मचारिधर्मः । संवर्धः—

“ ततोऽधीयीत वेदं तु वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् । सायं प्रातश्च भिक्षेत ब्रह्मचारी समाहितः ॥

“ निवेद्य गुरवेऽश्रीयात्प्राङ्मुखो वाग्यतः शुचिः ” ॥ दक्षः—

“ प्रातर्माध्यान्हयोः स्नानं वानप्रस्थगृहस्थयोः । यत्तेस्त्रिषवणं प्रोक्तं सकृत्तु ब्रह्मचारिणः ” ॥

अत्र विशेषमाह विष्णुः— “ दंडवन्मज्जनम् ” इति । अनेनाङ्गनैर्मल्यं न कार्यमित्युक्तम् । अत एवाहापस्तंबः ( १।२।३० ) “ नाप्सु श्लाघमानः स्नायात् ” इति । चंद्रिकायाम्—

“ मेखलामजिनं दंडमुपवीतं च नित्यशः । कौपीनं कटिसूत्रं च ब्रह्मचारी तु धारयेत् ” ॥

यमः—

“ दंडं कमंडलुं वेदं मौर्जीं च रशनां तथा । धारयेद्ब्रह्मचर्यं च भिक्षान्नाशी गुरौ वसन् ” ॥

वेदो दर्भमुष्टिः । गुरौ गुरुगृह इत्यर्थः । याज्ञवल्क्यः ( आ. २६ )—

“ गुरुं चैवाप्युपासीत स्वाध्यायार्थं समाहितः । आहूतश्चाप्यधीयीत लब्धं चास्मै निवेदयेत् ” ॥ १०

मनुः ( २।७४ )—

“ ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा । स्रवत्यनोक्तं पूर्वं परस्ताच्च विशीर्यते ” ॥

“ ब्रह्मरंभेऽवसाने च पादौ ग्राह्यौ गुरोः सदा ” ( ७१ ) । अंगिराः—

“ प्राप्ते वेदानुवचने निसर्गे चान्वहं गुरोः । उपसंग्रहणं कार्यं विप्रोष्य त्वागतेन च ” ॥

मनुः ( २।१९१-१९३ )—

“ चोदितो गुरुणा नित्यमप्रचोदित एव वा । कुर्यादध्ययने योगमाचार्यस्य हितेषु च ॥

“ शरीरं चैव वाचं च बुद्धौद्रियमनांसि च । नियम्य प्रांजलिस्तिष्ठेद्दीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥

“ नित्यमुद्धृतपाणिः स्यात्साध्वाचारः समाहितः । आस्यतामिति चोक्तः सन्नासीताभिमुखे गुरोः ” ॥

उद्धृतपाणिः वस्त्रादिभिरप्रच्छादितपाणिः ॥

“ हीनान्नवस्त्रेषः स्यात्सर्वदा गुरुसंनिधौ । उत्तिष्ठेत्प्रथमं चास्य चरमं चैव संविशेत् ॥ ( १९४ ) २०

“ प्रतिश्रवणसंभाषे शयानो न समाचरेत् । नासीनो न च भुंजानो न तिष्ठन्न पराङ्मुखः ” ॥ ( १९५ )

प्रतिश्रवणमात्मानं प्रति गुरुणा प्रयुज्यमानस्य वाक्यस्य श्रवणं प्रतिसंभाषा । गुरुं प्रति स्ववाक्यम्

प्रतिश्रवणसंभाषे कथं कुर्यादित्याकांक्षायामाह स एव ( १।१९६-१९७ )—

“ आसीनस्य स्थितः कुर्यादभिगच्छंस्तु गच्छतः । प्रत्युद्गम्यन्वा व्रजतः पश्चाद्धावंश्च धावतः ॥

“ पराङ्मुखस्याभिमुखो दूरस्थस्यैत्य चांतिकम् । प्रणम्य तु शयानस्य विदेशे चैव तिष्ठतः ” ॥ २५

प्रणम्य प्रणतो भूत्वा । विदेशे विनते देशेऽथवा दौ ।

“ नीचं शय्यासनं चास्य नित्यं स्याद् गुरुसंनिधौ । गुरोश्च चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत् ” ॥ ( १९८ )

नित्यमुत्तराश्रमेष्वपि ।

“ न व्याहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम् । न चैवास्यानुकुर्वीत गतिभाषितचेष्टितम् ” ॥ ( १९९ )

केवलं तत्र भवदादिशब्दरहितम् ।

“ गुरोर्यत्र परीवादो निंदा वाऽपि प्रयुज्यते । कर्णौ तत्र पिघातव्यौ गंतव्यं वा ततोऽन्यतः ” ॥ ( २०० )

“ परीवादी खरो भवति श्वा वै भवति निंदकः । परिभोक्ता कृमिर्भवति कीटो भवति मत्सरी ” ॥ ( २०१ )

परिभोक्ता गुरोर्भोगादधिकभागी ।

“ दूरस्थे नाव्हयेदेनं न क्रुद्धो नांतिके स्त्रियाः । यानासनस्थश्चैवैनमवरुद्धाभिवादयेत् ” ॥ ( २०२ )

अंतिके स्त्रिया रहसि पत्नीसहितमित्यर्थः ।

“प्रतिवातेऽनुवाते च नासीत गुरुणा सह । असंश्रवे चैव गुरौ न किञ्चिदपि कीर्त्तयेत् (२०३) ॥  
प्रतिवाते पुरतो नासीत । अनुवाते पृष्ठतः पार्श्वत्रातयोरप्युपलक्षणम् । यथा स्वशरीरस्पृष्टो वातो  
नैनं स्पृष्टेत्तथासीतिति । असंश्रवे सुखसंश्रवणायोग्यदेशे

“ गोश्वोष्ठयानप्रासादस्वास्तरेषु कटेषु च । आसीत गुरुणा सार्धं शिलाफलकत्रौषु च (२०४) ॥

५ गोश्वोष्ठयुक्तं यानं गोश्वोष्ठयानम् । स्वास्तरः तृणादिसमूहः ।

“बालः समानजन्मा वा शिष्यो वा यज्ञकर्मणि । अध्यापयन् गुरुसुतो गुरुवन्मानमर्हति” ॥ (२०८)  
यज्ञकर्मणि आचार्ये यज्ञादिकर्मपरवश इत्यर्थः । गुरुपुत्रे गुरुवृत्तिनां प्राप्तानामपवादमाह  
स एव ( २१२०९ )—

“ उच्छादनं च गात्राणां स्नापनोच्छिष्टभोजने । न कुर्याद्गुरुपुत्रस्य पादयोश्चावनेजनम् ॥

१० “अभ्यंजनं स्नापनं च गात्रोच्छादनमेव च । गुरुपत्न्या न कार्याणि गात्राणां च प्रसाधनम् (२११) ॥  
प्रसाधनं अलंकारः ।

“ अविद्वांसमलं केचिद्विद्वांसमपि वा पुनः । प्रमदा ह्युत्पथं नेतुं कामक्रोधवशानुगम् (२१४) ॥

“ मंत्रां स्वस्त्रा दुहित्रा वा न विविक्षासो भवेत् । बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥ (२१५)

“अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम् । वाक्चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममीप्सिता ॥ (१५९)

१५ “यस्य बाह्यमनसी शुद्धे सत्ये गुप्ते च सर्वदा । स वै सर्वमवाप्नोति वेदांतोपगतं फलम् ॥ (१६०)  
सर्वदा आश्रमांतरेऽपि ।

“नारुतुदः स्यादातीतंऽपि न परद्रोहकर्मधीः । यया चोद्विजते वाचा नालोक्यां तामुदीरयेत् ॥ (१६१)

“ सवेतेमांस्तु नियमान्ब्रह्मचारी गुरौ वसन् । संनियम्येन्द्रियग्रामं तपोबुद्ध्यर्थमात्मनः ॥ (१७५)

“नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद्विवाहं पितृतर्पणम् । देवताभ्यर्चनं चैव समिधाधानमेव च ॥ (१७६)

२० “वर्जयेन्मधुमांसानि गंधमाल्यरसान्निव्रयः । शुक्तानि चैव सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम् ॥ (१७७)

“अभ्यंगमंजनं चाक्षणोरुपानच्छत्रधारणम् । कामं क्रोधं च लोभं च नर्तनं गीतवादनम् ॥ (१७८)

“युतं च जनवादं च परिवादं तथाऽद्वृतम् । स्त्रीणां च प्रेषणालंभमुपघातं परस्य च” ॥ इति (१७९) ।

ग्राह्यवल्क्यः ( भा. ३३ )—

“ मधुमांसंजनोच्छिष्टशुक्तस्त्रीप्राणिहिंसनम् । भास्करालोकनाश्लीलपरिवादादि वर्जयेत् ” ॥

२५ मधु क्षौद्रमच्छिष्टमगुरोः । तथा च वसिष्ठः ( १४१२० ) । “ उच्छिष्टमगुरोरभोज्यम् ” इति ।

“ स चेद्याधीयीत कामं गुरोरुच्छिष्टं भेषज्यार्थं सर्वं प्राश्नीयात् ” ( २३९ ) इति च । व्याधीयीत  
व्याधिमनुभवतीत्यर्थः । माधवीये—

“नादर्शं चैव वीक्षेत नाचोद्वेतधावनम् । गुरुच्छिष्टं भेषजार्थं प्रयुंजीत न कासतः” ॥ इति

आपस्तम्बः ( १४१२१ )—“पितृज्येष्ठस्य च भ्रातुरुच्छिष्टं भोक्तव्यम् ” इति । गुरोरुच्छिष्टस्य

३० भोज्यत्वादेव तद्वर्षापुत्रेषु चैवमिति गुरुधर्मातिदेशेन प्राप्तस्योच्छिष्टभोजनस्यापवादमाह

गीतमः ( २१३८ )—“ नोच्छिष्टाशनस्नापनप्रसाधनपादप्रक्षालनोन्मर्दनोपसंग्रहणानि ” इति ।

स एव ( २११९-२१ )—“ वर्जयेन्मधुमांसगंधमाल्यदिवास्वमांजनभ्यंजनयानोपान-

त्तत्रुक्तामक्रोधलोभमोहवादवादनस्नानदंतधावनहर्षवृत्त्यगीतपरिवादभयानि । गुरुदर्शने 'कर्ण-

प्रावृतावसक्थिकापाश्रयणपादप्रसारणानि निष्ठीवनहसितविजृंभितावस्फोटनानि ” इति ।

३५ मनुः ( २१२१९ )—

“मुडो वा जटिलो वा स्यादथ वा स्याच्छिखाजटी” इति । कात्यायनः—“सशिक्षं वपनं कार्यमास्नानाद्ब्रह्मचारिणः” इति । एतच्छ्रद्धागमिप्रायम् । सुमंतुः—

“ब्रह्मचर्यं तपो भैक्ष्यं संधयोरग्निनिकर्म च । स्वाध्यायो गुरुवृत्तिश्च चर्येयं ब्रह्मचारिणः ॥

“यच्च शिष्येण कर्तव्यं यच्च दासेन वा पुनः । कृतमित्येव तत्सर्वं कृत्वा तिष्ठेत्तु पार्श्वतः ॥

“किंकरः सर्वकारी च सर्वकर्मसु कोविदः ।

“न स्नानेन न होमेन नैवाग्निपरिवर्यया । ब्रह्मचारी दिवं याति स याति गुरुपूजनात्” ॥

यमः—

“गुरुर्धीनोऽस्वतंत्रः स्यात्पूर्वोत्थायी गुरोर्गृहे । सदा जघन्यसंवेशी जितशिश्रो जितोदरः ॥

“जितनिद्रो जितालस्यो जितक्रोधो जितार्थवान् । गंधमाल्यं चित्रवस्त्रं वर्जयेद्दंथावनम् ॥

“सर्वं पर्युषितं वर्ज्यं घृतं च लवणं तथा । मलापकर्षणस्नानं शूद्राद्यैरपि भाषणम् ॥

“गुरोरवज्ञां च तथा ब्रह्मचारी विवर्जयेत्” ॥ व्यासः—

“अभुक्तवति नाश्रीयादर्पीतवति नो पिबेत् । न तिष्ठति तथासीत नासुप्ते प्रस्वपेत्तथा ॥

“नास्य निर्माल्यशयनं पादुकोपानहावपि । आक्रामेदासनं नास्य च्छायादीन्वै कदाचन ॥

“यथाकालमधीयीत यावन्न विमना गुरुः । आसीत न गुरोः कूर्चं पीठके वा समाहितः ॥

“आसने शयने चैव नैव तिष्ठेत्कथंचन” ॥ संवर्तः—

“द्विवा स्वपिति चेत्स्वस्थो ब्रह्मचारी तु पर्वणि । स्नात्वा सूर्यं समभ्यर्च्य गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥

“भिक्षाटनमकृत्वा तु स्वस्थोऽप्येकान्नमश्रुते । अस्नात्वा चैव यो भुङ्क्ते गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥

“ग्रासस्य नियमो नास्ति प्रथमाश्रमवासिनः । इतरेषां क्रमेणैव द्वात्रिंशत्षोडशाष्ट च ॥

“आपोशनमकृत्वा तु यो भुङ्क्तेऽनापदि द्विजः । भुंजानस्य यदा ब्रूयात् गायत्र्यष्टशतं जपेत्” ॥ इति ।

हारीतः—

“उषनीतो माणवको वसेद्गुरुकुलेष्वथ । गुरोः कुले प्रियं यत्स्यात्कर्मणा मनसा गिरा ॥

“ब्रह्मचर्यमधःशय्या तथा वनेरुपासनम् । उदकुम्भान्गुरोर्वद्याह्नोभासं चैधनानि च ॥

“कुर्यादध्ययनं चैव ब्रह्मचारी यथाविधि । विधिं त्यक्त्वा प्रकुर्वाणो न स्वाध्यायफलं लभेत् ॥

“यः कश्चित्कुरुते धर्मं विधिं हित्वा दुरात्मवान् । न तत्फलमवाप्नोति कुर्वाणोऽपि विधिच्युतः ॥

“तस्माद्देवतानीह चरेत्स्वाध्यायसिद्धये । शौचाचारमशेषं तु शिक्षयेद्गुरुसंनिधौ ॥

“शयनात्पूर्वमुत्थाय दर्भमृद्धंतथावनम् । वस्त्रादिकमथान्यच्च गुरवे प्रतिपादयेत् ॥

“स्नाने कृते ततः पश्चात्स्नानं कुर्वीत दंडवत्” ॥ इति । नारदः—

“अविद्याग्रहणाच्छिष्यः शुश्रूषेत्प्रयतो गुरुम् । तद्वृत्तिर्गुरुदारेषु गुरुपुत्रे तथैव च” ॥

हारीतः—“हयरथगजचैत्यवृक्षवृषभारोहणमहानदीप्रतरणमहासाहसविरुद्धानि वर्जयेत्” इति ।

आपस्तम्बः ( १।२।१९-२४ )—“आचार्याधीनः स्यादन्यत्र पतनीयेभ्यः । हितकारी गुरोर-

प्रतिलोमयन्वाचा । अधासनशायी । नानुद्देश्यं भुंजीत । तथा क्षारलवणमधुमांसानि । अदिवा

स्वापी” इति ( १।३।११-२१ ) । “अवृत्तदर्शी । सभाः समाजाश्चांगता । अजनवादशीलः । रह-

शीलः । गुरोर्वाचारैर्वक्तृत्वं स्वरिकर्माणि । स्त्रिभिर्यावदर्थसंभाषी । मृदुः शांतो दांतो नृमान्

हृदयतिः” इति च । शास्त्रः—“न वेदमनधीत्यान्यां विद्यामधीयीतान्यत्र वेदांगेभ्यः” इति ।

हारीतोऽपि—“वेदो विद्या ब्रह्माणस्य तत्परिज्ञानार्थमंगानि” इति । लघुव्यासः—



- “वेदस्याध्ययनं सर्वं धर्मशास्त्रस्य चापि यत् । अजानतोऽर्थं तत्सर्वं तुषाणां खंडनं यथा ॥  
 “यथा पशुभारहारी न तस्य भजते फलम् । द्विजस्तथार्थानभिज्ञो न वेदफलमश्नुते ॥  
 “ज्ञानं कर्म च संयुक्तमुक्त्यर्थं कथितं यथा । अधीतं श्रुतसंयुक्तं तथा श्रेष्ठं न केवलम् ॥  
 “समुच्चितं स्तोत्रमपि श्रुताधीतं विशिष्यते । चतुर्णामपि वेदानां केवलाध्ययनात् द्विजः” ॥ इति ।

#### ५ चंद्रिकायाम्—

“धर्मशास्त्रं तु विज्ञेयं शब्दशास्त्रं तथैव च । पुराणानीतिहासांश्च तथाख्यानानि यानि च ॥

“महात्मनां च चरितं श्रोतव्यं नित्यमेव च” ॥ इति । वसिष्ठः—

“यच्छास्त्रीयैस्तु संस्कारैः संस्कृतो ब्राह्मणो भवेत् । तच्छास्त्राध्ययनं कुर्यात् त्यक्त्वा तत्पतितो भवेत् ॥

“न जातु पारशास्त्रोक्तं बुधः कर्म समाचरेत् । आचरन्परशास्त्रोक्तं शास्त्रारंढः प्रकीर्तितः” ॥ इति ।

#### १० विद्याधिगमोपायमाह नारदः—

“योऽहेरिव गणाद्भूतः सौहित्यान्नरकादिव । राक्षसीभ्य इव स्त्रीभ्यः स विद्यामधिगच्छति ॥

“यत्कीटैः पांसुभिः श्लक्ष्णैर्वल्मीकः क्रियते महान् । न तत्र बलसामर्थ्यादुद्योगस्तत्र कारणम् ॥

“शनैर्विद्या शनैरध्वा आरोहेत्पर्वतं शनैः” ॥ सौहित्यं वृत्तिः । तथा विघ्नहेतूनपि स एवाह—

“धूतं पुराणशुश्रूषा नाटकासक्तिरेव च । स्त्रियस्तंद्री च निद्रा च विद्याविघ्नकराणि षट् ॥

१५ “गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा । अथवा विद्यया विद्या चतुर्थं नोपलभ्यते” ॥

अध्यापने च नियमविशेषानाह यमः—

“सततं प्रातरुत्थाय दंतधावनपूर्वकम् । स्नात्वा हुत्वा च शिष्येभ्यः कुर्यादध्यापनं नरः” ॥

गौतमः ( १४८ )—“शिष्यशिष्टिरवधेन” ॥ इति । शिष्टिः शासनम् । अवधेन ताडनम-  
 कृत्वेत्यर्थः । निर्भत्सनेन साधयितुमशक्तौ स एवाह ( १४९ )—“अशक्तौ रज्जुवेणुदलाभ्यां

२० तनुभ्याम्” इति । मनुरापि ( ८।३००-३०१ )—

“भार्या पुत्रश्च दासश्च शिष्यो भ्राता च सोदरः । प्राप्तापराधास्ताड्याः स्यू रज्ज्वावेणुदलेन वा ॥

“वृष्टतस्तु शरीरस्य नोत्तमांगे कथंचन । अतोऽन्यथा तु प्रहरन्प्रातः स्याच्चोरकिल्बिषम्” ॥

यमः—“संवत्सरोषिते शिष्ये गुरुज्ञानमनिर्दिशन् । हरते दुष्कृतं तस्य शिष्यस्य वसतो गुरुः” ॥

मनुः ( १२।१२४ )—

२५ “तपो विद्या पवित्रस्य निःश्रेयसकरं परम् । तपसा कल्मषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते” ॥

“अनेन क्रमयोगेन संस्कृतात्मा द्विजः शनैः । गुरौ वसन्संचिनुयाद्ब्रह्माधिगमिकं तपः” ॥ ( २।१६४ )

“तपोविशेषैर्विविधैर्व्रतैश्च विधिचोदितैः । वेदः कृत्स्नोऽधिगंतव्यः सरहस्यो द्विजमना” ॥ ( १६५ )

व्रतैः प्राजापत्यादिभिः । कृत्स्नः सांगः । अत्रापस्तंबः । ( १।५।१-४ )—“नियमेषु तपःशब्दः ।

तदतिक्रमे विद्याकर्म निम्नवति ब्रह्म सहापत्यादेतस्मात् । कर्तव्यमनायुष्यं च । तस्मादृष्योवरेषु

३० न जायंते नियमातिक्रमात्” इति । अस्मिन्ब्रह्मचारिधर्मप्रकरणे ये नियमा निर्दिष्टास्तेषु तपः

शब्दो द्रष्टव्यः । तेषां नियमानामातिक्रमे विद्याग्रहणं तत्कर्म ब्रह्म एतस्मान्नियमातिक्रमिणाध्येतुः

पुरुषादपत्यसहिताभिन्नवति ब्रह्मयज्ञादिषूपयुज्यमानमप्यकिंचित्करमित्येषोऽर्थो विवक्षितः ।

न केवलमकिंचित्करम् प्रत्युतानर्थकारीत्याह । कर्तव्यमनायुष्यं च इति । श्वभ्राभिधायी नरको

लक्ष्यते । पतत्यनेनेति पत्यम् । नरकपतनहेतुर्भवति । अनायुष्करं च तस्मान्नियमातिक्रमादवरे-

३५ ष्ववर्चानेषु कलियुगवर्तिषु ऋषयो मंत्रदृशो न भवन्ति । अनियमस्येदानीमवर्जनयित्वादित्यर्थः ।



अथ वेदव्रतानि । स एव— “छन्दसां साधनार्थं हि व्रतानीह चरेद्बुधः” इति । व्रतानि च तेनैवोक्तानि “प्राजापत्यं सौम्यमाग्नेयं वैश्वदेवं च” इति । भरद्वाजः— “अथातो व्रतादेश-  
विसर्जने व्याख्यास्यामः । पर्वण्युदगयन आपूर्यमाणपक्षे पुण्यनक्षत्रे होतृव्रतमुपनिषद्व्रतं शुक्रियं  
गोदानम्” इति । तथा बोधायनोऽपि— “चत्वारि वेदव्रतानि होतारः शुक्रियाण्युपनिषद  
आरणान्युदगयन आपूर्यमाणपक्षे पुण्ये नक्षत्रे शुक्रियारंभो गोदानं षोडशे वर्षे” इति । ५  
आश्वलायनोऽपि— “चत्वारि वेदव्रतानि महानाम्निमहाव्रतमुपनिषदो गोदानमिति ।  
उदगयन आपूर्यमाणपक्षे कल्याणे नक्षत्रे गोदानं षोडशे वर्षे कर्त्तव्यम्” इति । गर्गः—  
“व्रतं कुर्यात्तु सावित्रं विधिनारण्यकव्रतम् । वेदव्रतानि कुर्वीत ततो वेदान् समभ्यसेत् ॥  
“उत्तरायणगे सूर्यं शुक्ले पक्षे शुभे दिने । स्वाध्यायादिवसे कुर्यान्नक्षत्राण्यत्र चोलवत्” ॥ भरद्वाजः—  
“उत्तरायण आपूर्यमाणपक्षे च पर्वणि । वेदव्रतानि चत्वारि कुर्यात्पूर्वाह्ण एव च ॥ १७  
“दाक्षिणे त्वयने वाऽपि श्रावणस्य तु पर्वणि । सौम्यं वेदव्रतं कुर्यात्प्राजापत्यादि चात्र हि” ॥  
वृत्तात्रेयः—  
“वेदव्रतानि चत्वारि कुर्यात्कालस्तु चोलवत् । उपाकर्मवदिच्छंति व्रतेष्वन्येषु चैव हि” ॥ इति ।

आपस्तम्बः—

“सौम्यव्रतं प्रकुर्वीत यथावच्छुक्रियव्रतम् । प्राजापत्यादि चत्वारि भवेयुस्तद्दिनेऽपि वा ॥ १५  
“प्राजापत्यव्रतं कृत्वा तदधीत्य विसृज्य च । सौम्यव्रतमुपाकृत्य विसृज्याग्नेयमाचरेत् ॥  
“उत्सृज्य वैश्यदेवाख्यमुपक्रम्य समुत्सृजेत्” इति । स्मृत्यर्थसारे— “उपनयनाद्युपाकर्मितं  
सावित्रीव्रतं ततो वेदव्रतारण्यकव्रतानि प्रतिव्रतमुपनयनमेतेषां लोपे त्रीन्वा षड्वा द्वादश वा  
कृच्छ्रान् चरित्वा पुनर्व्रतं कुर्यात्” । इति ब्रह्मचारिधर्मनिरूपणम् । अथ पुनरुपनयनम् ।  
अत्रापस्तम्बः— १०

“अजिनं मेखलाददं भैक्षाचर्यं च यस्त्यजेत् । पुनःसंस्कारमर्हं तु विधिदृष्टेन कर्मणा” । इति ।  
पराशरः ( १२।३ )—

“अजिनं मेखलाददं भैक्षाचर्यव्रतानि च । यदि मध्ये निवर्त्तेरन्पुनः संस्कारमर्हति” ॥ इति ।  
व्यासः—

“सिंधुसौवीरसौराष्ट्रान् तथा प्रत्यंतवासिनः । अङ्गवङ्गकलिङ्गाश्च गत्वा संस्कारमर्हति” ॥ २५  
प्रत्यंतोऽन्त्यदेशः ।

“हिमवत्कौशिकौ विध्यं पारंपर्यस्य पश्चिमम् । तीर्थयात्रां विना गत्वा पुनः संस्कारमर्हति” ॥  
आदित्यपुराणे—

“सौराष्ट्रसिंधुसौवीरानवंतीद्रक्षिणापथम् । एतान्देशान्द्रिजो गत्वा पुनः संस्कारमर्हति” ॥  
बोधायनः— “अथोपनीतस्य व्रात्यव्रतानि भवन्ति । नान्यस्योच्छिष्टं भुंजीतान्यत्र पितृज्येष्ठाभ्यां १०  
न स्त्रिया सह भुंजीत मधुमांसं श्राद्धं सूतकान्नमदशाहक्षीरं छत्राकं निर्यासं विलयनं गणान्नं  
शूद्रान्नमित्येतेषूपयुक्तेषु पूर्वकृतसंस्कारो न तिष्ठति” इति । अतः पुनरुपनयनं कर्त्तव्यमित्यर्थः ।  
स एव—

“अमत्या वारुणीं पीत्वा प्राश्य मूत्रपुरीषके” । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः पुनः संस्कारमर्हति” ॥ इति ।



“प्रतिवेदं ब्रह्मचर्यं द्वादशवर्षानि पञ्च वा । ग्रहणातिक्रमिष्येक केशांश्चैव षोडशे ॥” केशांतो नाम गोत्रात्सूत्र्यं कर्म । तत्तु षोडशे वर्षे कार्यमित्यर्थः । बोधायनोऽपि ( १।२।१-६ )—  
 “अष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि वेदब्रह्मचर्यं चरेच्चतुर्विंशतिं वा द्वादश वा प्रतिवेदम् । संवत्सरावमं वा ।  
 प्रतिकांढं ग्रहणांतं वा । जीवितस्यास्थिरत्वात् ‘कुष्णकेशोऽग्नीनादधीतेति’ श्रुतिरपि । प्रतिकांढं प्राजापत्यादीनां पंचानां कांडात्तमेकस्मिन्कांडे संवत्सरावममित्यर्थः । ग्रहणांतपक्ष एव युक्त इत्यत्र हेतुः । जीवितस्येति । आपस्तंबः (१।२।११-१६)— “उपेतस्याचार्यकुले ब्रह्मचारिवासा अष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि पादुनम् अर्धेन त्रिभिर्वा द्वादशवराध्यम्” इति । एतदशकविषयम् । तथा च वेदलः—

“अतः परमष्टाचत्वारिंशद्वर्षिकं वेदव्रतचर्यामातिष्ठेदशकश्चेच्चतुर्विंशतिवर्षिकी वा ” इति ।  
 गौतमः ( ३।५१-५३ )—

“द्वादशवर्षाण्येकवेदे ब्रह्मचर्यं चरेत् । प्रतिद्वादश वा । सर्वेषु ग्रहणांतं वा ” इति । भारद्वाजः—  
 “अष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि पुराणं वेद ब्रह्मचर्यं संप्रतिशक्त्या वेदाध्ययनादित्येक आहुतागोदान-  
 कर्मण इत्येके ” इति । दक्षः—

“स्वीकरोति यदा वेदं चरेद्वेदव्रतानि च । ब्रह्मचारी भवेत्तावदूर्ध्वं स्नातो गृही भवेत् ” ॥  
 व्यासः—

“अधीत्य विधिवद्वेदं वेदार्थमधिगम्य च । व्रतानि क्रमशः कृत्वा समावर्तनमाचरेत् ॥

“वेदमेकं समभ्यस्य कृत्वा वेदव्रतानि च । गुरवे दक्षिणां दत्त्वाऽप्यशक्तस्तदनुज्ञया ॥

“समावृत्योद्देहत्कन्यां संन्यासमथवा व्रजेत् ” ॥ अथ गोदाननिरूपणम् । गर्गः—

“जन्मनः षोडशे वर्षे पूर्णमास्यामुदग्रवौ । चौलोकविधिवारेषु गोदानाख्यव्रतं चरेत् ॥

“यदि चेत्षोडशद्वर्षाग्नेदपारंगतो भवेत् । गौदानिकव्रतं कृत्वा समावर्तनमाचरेत्” ॥ प्रचेताः— २.

“गोदानं षोडशे वर्षे अर्वागवा कश्चिदिष्यते । यस्मिन् कस्मिन् वासरे वा गोदानं स्नानतः पुरा” ॥

भारद्वाजः— “षोडशे वर्षेऽस्य गोदानं कुर्वन्ति संवत्सरं कृतगोदानो ब्रह्मचर्यं चरत्यग्निगोदानो वा भवति ” इति ॥ आपस्तंबः— “एवं गोदानमन्यास्मिन्नपि नक्षत्रे षोडशे वर्षेऽग्निगोदानो वा स्यात् ” इति । अस्मिन्नाग्निरेव देवतेत्यर्थः । लघुव्यासः—

“ऋगादिकमधीत्यातो न्यायतस्तु तदर्थवित् । सम्यग्व्रतानि संसेव्य समावर्तनमर्हति” ॥  
 एतत्सर्वं समुच्चयसंपादनसमर्थविषयम् । अन्यथा तु व्रतमात्रसमाप्तावपि स्नानं भवत्येव । तथा च याज्ञवल्क्यः ( आ. ५१ )—

“गुरवे तु वरं दत्त्वा स्नायीत तदनुज्ञया । वेदव्रतानि वा पारं नीत्वाऽप्युभयमेव वा ” ॥ इति ।

एतेन स्नातकत्रैविध्यं प्रतिपादितं भवति । यथाह हारीतः— “त्रयः स्नातका भवन्ति । विद्या-  
 स्नातको व्रतस्नातको विद्याव्रतस्नातकः ” इति । “यः समाप्य वेदमसमाप्य वेदव्रतानि सप्ता-

वर्त्तते स विद्यास्नातकः । यस्तु सप्ताप्य व्रतानि असमाप्य वेदं स व्रतस्नातकः । यः पुनरुभयं स विद्याव्रतस्नातकः ” इति । एवं च व्रतस्नातकस्य परिणयतोत्तराकारमध्ययनं समापनं

तदर्थज्ञानं चेति मंतव्यमिति स्मृतिचंद्रिकायाम् । अत्र गर्गः—

“षट्त्रिंशदधिकं वाऽपि गुरोस्त्रैवेदिकं व्रजेत् । यद्वा द्वादशवर्षाणि षड्वाऽथ त्रीणि वा भवेत् ॥

“संवत्सरं वत्सरार्धं त्रिमासमथ वा भवेत् । मौजीबन्धाद्वादशाहं त्रिरात्रं वा चरेद्ब्रतम् ॥

“गोदानिकव्रतं कृत्वा समावर्त्तनमाचरेत्” इति ॥ अथ स्नातकविधिः । व्यासः—

“गुरुशुश्रूषया विद्यां संप्राप्य विधिवद्विजः । स्नायीत तदनुज्ञातो दत्त्वाऽस्मै दक्षिणां हि गाम्” ॥ इति ।  
एतत् गोदानं प्रीतिसाधनद्रव्योपलक्षणार्थम् । अत एव मनुः ( २।२४६ )—

५ “क्षेत्रं हिरण्यं गामश्वं छत्रं वोपानहं ततः । धान्यं वासांसि शाकं वा गुरवे प्रीतिमाहरेत् ॥

“न पूर्वं गुरवे किंचिदुपकुर्वीत धर्मवित् । स्नास्यंस्तु गुरुणाऽऽज्ञप्तः शक्त्या गुर्वर्थमाहरेत्” ॥ ( २४५ )  
लघुहारितः—

“एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्यं निवेदयेत् । पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्वत्त्वा त्वन्मृणो भवेत्” ॥  
एतच्च दक्षिणादानमाश्रमांतरप्रवेशेऽपि वेदितव्यम् । “गुरवे दक्षिणां दत्त्वा स यमिच्छेत्तमावसेत्”

१० इति स्मरणात् । दक्षिणादानसामर्थ्याभावे तदनुज्ञया स्नानमाह गौतमः ( ३।५४-५५ )—

“विद्यांते गुरुरर्थेन निमज्ज्यः । ततः कृतानुज्ञातस्य स्नानम्” इति । इति ब्रह्मचर्यकालनिरूपणम् ।

अथ नैष्ठिकधर्माः । तत्र दक्षः—

“द्विविधो ब्रह्मचारी तु दक्षशास्त्रे प्रपद्यते । उपकुर्वाणकः पूर्वो द्वितीयो नैष्ठिकः स्मृतः” ॥  
तत्रोपकुर्वाणधर्मोऽभिहितः । नैष्ठिकस्य धर्ममाह याज्ञवल्क्यः ( आ. ४९-५० )—

१५ “नैष्ठिको ब्रह्मचारी तु वसेदाचार्यसंनिधौ । तदभावेऽस्य तनये पत्न्यां वैश्वानरेऽपि वा ॥

“अनेन विधिना देहं साधयन्वाजितेन्द्रियः । ब्रह्मलोकमवाप्नोति न चेहा जायते पुनः” ॥  
एवमुक्तप्रकारेणात्मानं निष्ठासुत्क्रांतिकालं नयतीति नैष्ठिकः । स यावज्जीवं स्वातंत्र्यं विना  
आचार्यादिसमीपे वसेत् । अनेनोक्तविधिना देहं साधयन्क्षपयन्जितेन्द्रियः ब्रह्मचारी ब्रह्मलोक-  
ममृत्वमाप्नोतीत्यर्थः । तथा च मनुः ( २।२४३-२४४ )—

२० “यदि त्वात्यंतिकं वासं रोचयेत गुरोः कुले । युक्तः परिचरेदेनमा शरीरविमोक्षणात् ॥

“आ समाप्तेः शरीरस्य यस्तु शुश्रूषते गुरुम् । स गच्छत्यंजसा विप्रो ब्रह्मगः सप्त शाश्वतम्” ॥

“आचार्यं तु खलु प्रेते गुरुपुत्रे गुणान्विते । गुरुदारे सपिंडे वा गुरुवद्बुद्धिमाचरेत्” ॥ ( २४७ )

“एषु त्वविद्यमानेषु स्थानासनविहारवान् । प्रयुजानोऽग्निशुश्रूषां साधयेद्देहमात्मनः” ॥ ( २४८ )—

“एवं चरति यो विप्रो ब्रह्मचर्यमविप्लुतः । स गच्छत्युत्तमं स्थानं न चेहा जायते पुनः” ॥ ( २४९ ) इति ।

२५ हारीतः—

“यस्यैतानि सुगुप्तानि जिह्वोपस्थोदरं करः । संन्याससमयं कृत्वा ब्राह्मणो ब्रह्मचर्यया ॥

“तस्मिन्नेव नयेत्कालमाचार्यं यावदायुषम् । तदभावे च तत्पुत्रे तच्छिष्ये वाऽथवा कुले ॥

“न विवाहो न संन्यासो नैष्ठिकस्य विधीयते ॥

“इमं यो विधिमास्थाय त्यजेद्देहमतद्रितः । नेह भूयोऽभिजायेत ब्रह्मचारी दृढव्रतः ॥

३० “यो ब्रह्मचारी विधिना समाहितश्चरेत्पृथिव्यां गुरुसेवने रतः ॥

“संप्राप्य विद्यामतिदुर्लभां शुभां फलं च तस्याः सुलभं तु विदति” ॥ बृहस्पतिः—

“संध्याऽग्निकार्यं स्वाध्यायं भैक्षधः शयनं दयाम् । आ मृत्योर्नैष्ठिकः कुर्वन्ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्” ॥ इति ।

वसिष्ठः ( ७।७-१७ )—“संयतवाक् । चतुर्थषष्ठाष्टकाले भैक्ष्यभोजी । गुर्वधीनः । जटिलः । शिखा-

जटो वा । गुरुं गच्छंतमनुगच्छेदासीनं च तिष्ठेच्छयानं चासीन उपासीत । आहूतस्वाध्यायी ।

सर्वं लब्धं निवेद्य तदनुज्ञया भुञ्जीत । खट्वाशयनदंतप्रक्षालनांजनाभ्यंजनच्छत्रवर्जं । स्थानासन-  
शीलस्त्रिरन्होऽभ्युपेयादप इति ” । त्रिरन्ह इति त्रिषवणस्नायी स्यादित्यर्थः । यमः—

“आ निपाताच्छरीरस्य ये चरंत्यूध्वरेतसः । ते यान्ति ब्रह्मणः स्थानं जायंते न पुनर्भुवि ” ॥  
हारीतः—

“मृत्योः परस्तादमृतो भवन्ति ये ब्रह्मणा ब्रह्मचर्यं चरन्ति” इति । एतद्ब्रह्मनिष्ठविषयम् । ५  
“सर्व एते पुण्यश्लोका भवन्ति ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति ” इति श्रुतेः । सर्व एते चत्वारो ह्याश्र-  
मिणः पुण्यश्लोका भवन्ति पुण्यलोकभाजो भवन्ति । यः पुनरेषां मध्ये ब्रह्मसंस्थो ब्रह्मनिष्ठः सोऽ-  
मृतत्वमपुनरावृत्तिलक्षणं फलमेतीत्यर्थः । एतच्च नैष्ठिकत्वं कुब्जादीनां नित्यमित्याह विष्णुः—  
“कुब्जवामनजात्यंधक्लीबपंग्वार्चरोगिणाम् । व्रतचर्या भवेत्तेषां यावज्जीवं न संशयः ” ॥

चंद्रिकायाम्—

“पंग्वादीनामनंगत्वादसामर्थ्याच्च शास्त्रतः । नित्यं नैष्ठिकत्वं स्यात्कर्मस्वनधिकारतः” ॥ इति ।  
नन्वेवं कुब्जादीनामेवं नैष्ठिकत्वमस्तु नेतरेषाम् । मैवम् ।

“गार्हस्थमिच्छन्व्रतिकः कुर्याद्धारपरिग्रहम् । ब्रह्मचर्येण वा कालं नयेत्संकल्पपूर्वकम् ॥

“वैखानसो वाऽपि भवेत्परिव्राडथवेच्छया” इति पाक्षिकत्वप्रतिपादकव्यासादिवचनविरोधात् ।  
न हि कुब्जादीनां नैष्ठिकत्वं पाक्षिकमस्ति । न च यदितरेषां नैष्ठिकत्वं तर्हि ‘यावज्जीवमग्नि- १५

होत्रं जुहोतीति’ गृहस्थधर्मविधायकश्रुतिर्बाध्येतेति वाच्यम् । नैष्ठिकत्वस्य पाक्षिकत्वेन  
विषयांतरसंभवात् । ये हि भार्यादिरागवशाद्गार्हस्थ्यं कामयन्ते तद्विषया यावज्जीवमग्नि-  
विरोधः । तथा च जाबालिः—“यदि गृहमेव कामयेत तदा यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात्” इति ।

ननु स्मार्त्तनैष्ठिकत्वस्य श्रौताग्निहोत्रादीनां बाध एवास्तु । मैवम् । तस्यापि “ब्रह्मचार्याचार्य-  
कुलवासी द्वितीयोऽत्यंतमात्मानमाचार्यकुलेव सादयेत्” इति श्रुतिमूलत्वाविशेषात् । न च ब्रह्म- २०

चारिद्वैविध्ये ‘चत्वार आश्रमा’ इत्यापस्तंबादिवचनं बाध्येतेति शङ्कनीयम् । संकल्पभेदमात्रेण  
नित्यकाम्याग्निहोत्रवदनयोर्भेदोपपत्तेः । अत एव तु तद्धर्मातिदेशमाह आपस्तंबः (२।२।६)—

“यथा विद्यार्थस्य नियम एतेनैवांतमनूपसीदत आचार्यकुले शरीरन्यासो ब्रह्मचारिणः” । यथा  
विद्यार्थस्यौपकुर्वाणस्याग्नीन्धनादिनियम उक्तः । अनेन नियमेन शरीरन्यासः परित्यागः । ब्रह्म-  
चारिणो नैष्ठिकस्येत्यर्थः । गौतमः ( ३।४-८ )—

“तत्रोक्तं ब्रह्मचारिणः । आचार्याधीनत्व- २५  
मान्तम् । गुरोः कर्मशेषेण जपेत् । गुर्वभावे तत्पत्न्यै वृत्तिः । तदभावे तदपत्यवृत्तिस्तदभावे  
वृद्धे स ब्रह्मचारिण्यग्नौ वा । एवंवृत्तो ब्रह्मलोकमवाप्नोति जितेंद्रियः” इति । तत्रोपकुर्वाणप्रकरणे

यदुक्तमग्नीधनभैक्षचरणादि तन्नैष्ठिकस्यापि भवतीत्यर्थः । कर्मशेषेण गुरुशुश्रूषातिरिक्ते काले  
वेदं जपेत् । एवं वृत्तं यस्य सः एवंवृत्तो । ब्रह्मलोकमवाप्नोति स चेज्जितेंद्रियः । स च  
मनुना दर्शितः ( २।९८ )—

“हुत्वा सृष्ट्वा च दृष्ट्वा च श्रुत्वा घ्रात्वा च यो नरः न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेंद्रियः” ॥ इति ।  
स एव ( २।९८१ )—

“स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रं कर्मकामतः । स्नात्वाऽर्कमर्चयित्वा त्रिःपुनर्मामित्यृचं जपेत् ॥  
“एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कंदयेत्कचित् । कामाद्धि स्कंदयन्नरेतो हिनस्ति व्रतमेव तत् ॥ ( १८० )  
“एकादशेंद्रियाण्याहुर्नानि पूर्वं मनीषिणः । तानि सम्यक्प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ( ८९ ) ३५

“श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पंचमी । पायूपस्थौ हस्तपादौ वाक्चैव दशमी स्मृता ॥ (९०)  
 “ बुद्धीन्द्रियाणि पंचैषां श्रोत्रादीन्यनुपूर्वशः । कर्माद्रियाणि पंचैव पाय्वादीनि प्रचक्षते ॥ (९१)  
 “ एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम् । यस्मिन् जिते जितावेतौ भवतः पंचकौ गणौ ॥ (९२)  
 “ इन्द्रियाणां हि चरतां विषयेष्वपहारिषु । संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान्यत्नेव वाजिनाम् ॥ (८८)

५ “इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम् । संनियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं निगच्छति” ॥ (९३) इति ।  
 संवर्त्तः—

“ब्रह्मचारी तु यः स्कंदेत्कामतः शुक्लमात्मनः । अवकीर्णिव्रतं कुर्यात्स्नात्वा शुद्धेदकामतः ” ॥

कामतः बुद्धिपूर्वकमित्यर्थः । बोधायनः ( २।२।२९-३२ )—“ यो ब्रह्मचारी स्त्रियमुपे-  
 यात्सोऽवकीर्णी । स गर्दभं पशुमालभेत । नैऋतः पशुः पुरोडाशश्च रक्षोदेवतो यमदेवतो वा । शिश्रा-

१० त्प्राशिन्नमप्सवदानैश्चरतीति विज्ञायते” इति । नैऋत इति पशुः पुरोडाशश्च निर्ऋतिदेवतः रक्षो-  
 देवतः । यमदेवतो वा । यद्वैत्यः पशुस्तद्वैत्यः पुरोडाश इति परिभाषासिद्धस्यानुवादः । प्राशिन्नं  
 शिश्रावयवाद्वातव्यं हृदयावयवमप्सु प्रचरितव्यं अन्यलौकिकेऽग्नौ कर्तव्यमित्यर्थः । वसिष्ठस्तु—  
 ( २३।१-२ ) “ ब्रह्मचारी चेत्स्त्रियमुपेयादरण्ये चतुष्पथे लौकिकेऽग्नौ रक्षोदैवत्यं गर्दभ-

मालभेत् । तेन नैऋतं वा चरं निर्वपेत् ” इति । आपस्तम्बः ( १।२६।८-९ )—“गर्दभेनावकीर्णी

१५ निर्ऋतं पाकयज्ञेन यजेत । तस्य शूद्रः प्राश्नीयात्” इति । पाकयज्ञेन स्थालीपाकविधानेन । तस्य  
 गर्दभस्य । सैर्षिषं हविरुच्छिष्टं शूद्रः प्राश्नीयात्तेन सैर्षिष्मता ब्राह्मणं भोजयेदित्यस्यापवादः ।  
 अत्र मनुः ( २।१।११८ )—

“ अवकीर्णी तु काणेन गर्दभेन चतुष्पथे । पाकयज्ञविधानेन यजेत निर्ऋतिं निशि ” ॥ इति ।

हारीतः—अवकीर्णी निर्ऋत्यै चतुष्पथे गर्दभं पशुमालभेत पाकयज्ञेन धर्मेण भूमौ पशु-

२० पुरोडाशश्रपणमवदानैः प्रचर्याज्यस्य जुहोति कामावकीर्णोऽस्मि कामकामाय स्वाहेति ” ।

गौतमस्तु ( २३।१७-१९ )—“ गर्दभेनावकीर्णी निर्ऋतिं चतुष्पथे यजेत् । तस्याजिनमूर्ध्ववालं  
 परिधाय लोहितपात्रः सप्त गृहान्भैक्षं चरेत्कर्माऽऽचक्ष्णः । संवत्सरेण शुध्येत् ” इति । तस्यैव  
 गर्दभस्याजिनमूर्ध्ववालमुपरिलोमं वसित्वा पाँकेन लोहितं मृन्मयं पात्रं हस्ते गृहीत्वा  
 अवकीर्णिनि मह्यं भिक्षां देहीति स्वकर्माऽऽचक्ष्णः सप्तसु गृहेषु भैक्षं चरेत्संवत्सरमेतद्व्रतं

२५ चरन्नुद्धो भवतीत्यर्थः । तथा च मनुः ( १।१।२३ )—

“ तेभ्यो लब्धेन भैक्षेण वर्त्तयन्नैककालिकम् । उपस्पृशं स्त्रिषवणमब्देनैकेन शुध्यति ” ॥

संवर्त्तोऽपि—

“ ब्रह्मचारी तु यो गच्छेत्स्त्रियं कामप्रपीडितः । प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रमेकमब्दं समाहितः ॥

“ निर्वपेच्च पुरोडाशं ब्रह्मचारी तु पर्वणि । मंत्रैः शाकलहोमीर्यैर्ग्रावाज्यं च होमयेत् ” ॥ इति ।

३० शांडिल्यः—

“अवकीर्णी द्विजो राजा वैश्यश्चापि खरेण तु । इष्ट्वा भैक्षासनो नित्यं शुध्यत्यब्दात्समाहितः” ॥ इति ।

इदं च वार्षिकं वेईयागमनविषयम् । यदाह तुः संखलिखितौ—“ गुप्तायां वेईयायामवकीर्णः  
 संवत्सरं त्रिषवणमनुतिष्ठेत्क्षत्रियायां द्वे वर्षे ब्रह्मण्यां त्रीणि वर्षाणि ” इति । शिष्टं ब्रह्मचारि-  
 नियमातिक्रमप्रायश्चित्तं तत्प्रकरणे वक्ष्यते । इति नैष्ठिकधर्मादिनिरूपणम् ॥

अथ स्नातकधर्माः । तत्र मनुः ( ४।३३-३६ )—

१ विचरतामिति मुद्रितपाठः । २ क्ष-देवतं । ३ खग-सर्वं मिश्रितं । ४ क्ष-सिका ।

५ ख-पावके । ६ ख-वै ।

“राजतो धनमन्विच्छेत्संसीदन् स्नातकः शुधा । याज्यांतेवासिनोर्वाऽपि न त्वन्यत इति स्थितिः॥  
 “न सीदेत्स्नातको विप्रः शुधा शक्तः कथंचन । न जीर्णमलवद्वासा भवेच्च विभवे सति ॥  
 “कृत्तकेशनस्रश्मश्रुधौतशुक्लांबरः शुचिः । स्वाध्याये चैव युक्तः स्यान्नित्यमात्महितेषु च ॥  
 “वैणवीं धारयेद्यष्टिं सोदकं च कमंडलुम् । यज्ञोपवीतं वेदं च शुभे रौक्मे च कुंडले ” ॥ इति ।  
 वेदो दर्भपुंजः । व्यासः—

“वैणवीं धारयेद्यष्टिमंतर्वासस्तथोत्तरम् । यज्ञोपवीतद्वितयं सोदकं च कमंडलुम् ॥  
 “छत्रं चेष्णीषममलं पादुके चाप्युपानहौ । रौक्मे च कुंडले वेदं कृत्तकेशनस्रः शुचिः ॥  
 “स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्बहिर्मात्यं च धारयेत् । शुक्लांबरधरो नित्यं सुगंधः प्रियदर्शनः” ॥  
 स्मृतिरत्ने—

“धौतवस्त्रैर्गन्धपुष्पैः क्षालनैर्दत्तधानैः । श्रीकामी भूषणाद्यैश्च स्वशक्त्या भूषयेत्तनुम्” ॥ १०  
 बोधायनः ( १।३।२-६ )—“अंतर्वास्युत्तरीयं वैणवं दंडं धारयेत्सोदकं च कमंडलुं द्वियशो-  
 पवीत्युष्णीषमजिनं कृतोपानहौ छत्रं च ” इति । गौतमः ( १।२-३ )—“स्नातकः । नित्यं  
 शुचिः सुगंधिः स्नानशीलः ” इति । सुगंधत्वविधानादेव निर्गन्धमाल्यनिषेधः । तथा च  
 गोभिलः—“नागंधां स्रजं धारयेदन्यत्र हिरण्यस्रजः ” इति । वृद्धवसिष्ठः—

“चौलवत्सकलं ग्राह्यं स्नातकर्मणि भूपते । शुभे षष्ठे वासरं च चरेत्तु स्नातकव्रतम् ॥ १५  
 “समिद्धिर्यज्ञवृक्षोत्थैर्यद्वा व्रीहियवादिभिः । अग्निं यजेद्याहृतिभिर्यद्वा मंत्रैस्तु शाकलैः ॥  
 “तीर्थसेवी मिताहारी त्यजेदष्टांगमैथुनम् । स्मरणं कीर्तनं केलिप्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ॥  
 “संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रिया निर्वृत्तिरेव च । एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदंति मनीषिणः ” ॥ इति ।  
 काठकगृह्ये—

“विवाहदिवत्सापूर्वं तद्दिने स्नानमाचरेत् । विवाहदिवसाधस्ताद्भवेत्तु स्नातकव्रतम् ॥ २०  
 “विवाहदिवसे कुर्वन् कुर्यात्तीर्थसेवनम् । न च शाकलहोमोऽस्ति तदा नक्षत्रदर्शनात् ॥  
 “रात्रावेवोद्बहेत्कन्यां न स्नानं दिवसे दिवा ” इति । संग्रहे—  
 “स्नातस्तूपयमादर्वाङ्मृतो याति न सद्गतिम् । तस्मादासन्नवैवाह्यः स्नातकर्म समाचरेत् ” ॥  
 वृक्षः—“अनाश्रमी न तिष्ठेत् दिनमेकमपि द्विजः । आश्रमेण विना तिष्ठन्प्रायश्चित्तीयते हि सः ” ॥  
 इति । स्नातकधर्माः ॥ २५

अथ विवाहः । अत्र विष्णुः—

“वेदानधीत्य यत्नेन पाठतो ज्ञानतस्तथा । समावर्तनपूर्वं तु लक्षण्यां स्त्रियमुद्बहेत् ” ॥

मनुः ( ३।४ )—

“गुरुणाऽनुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि । उद्बहेत् द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ” ॥  
 अथ कन्यालक्षणम् ।

“नोद्बहेत्कपिलां कन्यां नाधिकांगीं न रोगिणीमानालोमिकां नातिलोमां न वाचालां न पिंगलाम् ॥ (८)  
 कपिलां केशाक्षिभ्यां पिंगलां त्वचा ।

“नक्षत्रक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् । न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न विभीषणनामिकाम् ॥ (९)  
 “अव्यंगांगीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् । तनुरोमकेशदशनां मृद्वंगीमुद्बहेत्स्त्रियम् (१०)” ॥

यमः—



“ह्रस्वा दीर्घा कृशा स्थूला पिंगाक्षी गौरपांडरा । न पूज्या न च सेव्या सा पतिमृत्युकरी यतः” ॥

नारदः—

“दीर्घकुत्सितरोगार्त्ता व्यंगा संस्पृष्टमैथुना । धृष्टाऽन्यगतभावा च कन्यादोषाः प्रकीर्तिताः” ॥

व्यासः—

५ “न श्मश्रुव्यंजनवर्ती न चैव पुरुषाकृतिम् । न वर्षरस्वरां क्षामां तथा काकस्वरां न च ॥

“नानिबद्धेक्षणां तद्वृत्ताक्षीं नोद्वहेद्वधः ॥

“यस्याश्च रोमशे अंघ्रे गुल्फौ यस्यास्तथोन्नता । गंडयोः कूर्पकौ यस्या हसंत्यास्तां च नोद्वहेत् ॥

“नातिरुक्षच्छविं पांडुकरजामरुणेक्षणाम् । आ पीनहस्तपादां च न कन्यामुद्वहेद्वधः ॥

“न वामनां नातिदीर्घा नोद्वहेत्संहतभ्रुवम् । न चातिच्छिद्रदशनानां न करालमुखी नरः ॥

१० “पाष्णिस्थूलां रोमशीलां यमलां श्यावदंतिनीम् । सन्नतभ्रूलतां चैव पिंगलाक्षीं च नोद्वहेत् ॥

“बन्धुहीना च या कन्या या कन्या चैव जन्मतः । रोगिणी वंशहीना च तां कन्यां परिवर्जयेत् ॥

“नातिकेशामकेशां वा नातिकृष्णां च पिंगलाम् । निसर्गतोऽधिकगां वा न्यूनां वाऽपि नोद्वहेत् ॥

“नाविशुद्धां सरोमां वा कुब्जां वाऽपि न रोगिणीमान् दुष्टां दुष्टवाक्यां वा बिहीनां पितृमातृतः” ॥ इति

शातातपः—

१५ “हंसस्वरां मेघवर्णां मधुपिंगललोचनाम् । तादृशीं वरयेत्कन्यां गृहस्थः स्वयमेधते” ॥

सवर्णोद्वाहे नियममाह मनुः ( ३।५ )—

“असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः । सा द्विजानां प्रशस्ता स्त्री दारकर्मण्यमैथुनी” ॥

अमैथुनी अक्षतयोनिः । असपिण्डा समान एकः पिण्डो देहो यस्याः सा सपिण्डा । न

सपिण्डा असपिण्डा । सपिण्डता च एकशरीरावयवान्वयेन भवति । तथाहि । पुत्रस्य पितृशरीरा-

२० वयवान्वयेन पित्रा सह सपिण्डता । एवं पितामहादिभिरपि पित्रादिद्वारेण एकशरीरावयवान्वयात् । एवं मातृशरीरावयवान्वयेन मात्रा । एवं मातामहादिभिरपि मात्रादिद्वारेण । तथा मातृ-

ष्वसृमातुलादिभिः पितृव्यपितृष्वस्रादिभिरपि एकशरीरावयवान्वयात् । तथा पत्युः सह पत्न्या

एकशरीरारम्भकतया । एवं भ्रातृभार्याणामपि परस्परमेकशरीरारम्भैः सहैकशरीरारम्भकत्वेन । एवं

यत्र यत्र सपिण्डशब्दस्तत्रतत्र साक्षात्परंपरया वा एकशरीरान्वयो वेदितव्यः । एकशरीरान्वयश्च

२५ श्रुतितोऽवगम्यते “आत्मा हि जज्ञ आत्मन” इति “प्रजामनुप्रजायसे” इति च । तथा

गर्भोपनिषदि—“एतत्पादकौशिकं शरीरं । त्रीणि पितृतस्त्रीणि मातृतः । अस्थिस्नायुमज्जानः पितृतः ।

एवं त्वङ्गान्सरुधिराणि मातृतः” इति । “अङ्गादङ्गात्संभवासि प्रजायस्व प्रजया । तत्रायं जायते

स्वयम्” इति च । आपस्तम्बः (२।२४।२)—“स एवायं विरूढः पृथक्प्रत्यक्षेणोपलभ्यते” इति ।

निर्वाप्य पिण्डान्वयेन तु सापिण्ड्ये मातृसंताने भ्रातृपितृव्यादिषु च सापिण्ड्यं

३० न स्यात् । समुदायशक्त्याङ्गीकारेण रूढिपरिग्रहे अवयवशक्तिस्तत्र तत्रावगम्यमाना परित्यक्ता

स्यात्” इति । विज्ञानेश्वरीये (पृ. १२ पं २१-३०; पृ १३; पं १-५) । स्मृतिचंद्रिकायां तु

(पृ. ६७ प. ११) “एकस्यां पिण्डदानक्रियायां दातृत्वेन पिण्डभाक्त्वेन लेपभाक्त्वेन वाऽनुप्रविष्टानां

भवति सापिण्ड्यम्

“लेपभाजश्चतुर्थायाः पित्रायाः पिण्डभागिनः । पिण्डदः सप्तमस्तेषां सापिण्ड्यं सप्तपुरुषम्” ॥ इति



स्मृतेः । न च निर्वाण्य पिण्डापेक्षया सापिण्ड्यवर्णने भ्रातृपितृव्यादिषु सापिण्ड्यं न स्यादिति शङ्कनीयम् । एकोद्देश्यावच्छेदेनैकक्रियान्ववित्वसंभवात् ” इत्यभिहितम् । अत्र सार्वभौमः—

“एकोद्देश्यावच्छेदेन एकक्रियान्वयिनः सपिण्डा इत्यभिधानेन भ्रातृपितृव्यादिसापिण्ड्य-  
सिद्धावपि स्वसृजितमातृव्यसमातुलतद्विहितुणामेकक्रियान्वयित्वाभावेन सापिण्ड्यं न स्यात् ।  
ततश्च पञ्चमात्सप्तमादित्यादिवचननिचयस्य वैयर्थ्यं स्यात् । अतो लेपभाजश्चतुर्थाद्या ५  
इत्युक्तं सापिण्ड्यम् ।

“अनन्तरः सपिण्डो यस्तस्य तस्य धनं भवेत् ” “पुत्राभावे सपिण्डा मातृसपिण्डाः शिष्याश्च  
द्वयः” । इति मनुगौतमाद्युक्तदायभाक्तौर्ध्वदेहिककर्तृत्वविषयमिति एकशरीरावयवान्वयद्वारेण  
साक्षात्पारंपर्येण वा सापिण्ड्यवर्णने सर्वत्र सर्वस्य यथाकथंचिदनादौ संसारे तत्संभवादिति  
योऽतिप्रसंगः संभवति स दोषो मन्वादिवचनैः परिहर्तव्यः । तथा च मनुः ( ५।६० )— १०

“सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते” । गौतमः (४।१।३)—“गृहस्थः सदृशीं भार्यां  
विदेतानन्यपूर्वां यवीयसीम् । असमानप्रवरैर्विवाहः । ऊर्ध्वं सप्तमात्पितृबंधुभ्यो बीजिनश्च मातृ-  
बन्धुभ्यः पञ्चमात् ” इति ।

शङ्खश्च—“दाराणाहरेत्सदृशानसमानार्षेयानसंबंधान्सप्तमात्पितृमातृबन्धुभ्यः” इति ॥

वसिष्ठश्च ( ८।१-२ )—“असमानार्षेयामस्पृष्टमैथुनामवरवयसीं भार्यां विदेत । पञ्चमीं १५  
मातृबन्धुभ्यः सप्तमीं पितृबंधुभ्यः” इति । अतीत्येति शेषः ।

यदाह पैठीनसिः—“असमानार्षेयां कन्यां पंच मातृतः परिहरेत्सप्त पितृतः” इति ।

विष्णुरपि ( २४।९-१० )—“असगोत्रामसमानप्रवरां भार्यां विन्देत् । मातृतः पञ्चमादूर्ध्वं पितृतः  
सप्तमात्” इति । याज्ञवल्क्यः ( आ. ५२-५३ )—

“अविप्लुतब्रह्मचर्यो लक्षणयां स्त्रियमुद्वहेत् । अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डो यवीयसीम् ॥ २०

“अरोगिणीं भ्रातृमत्नीमसमानार्षगोत्रजाम् । पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा” ॥ इति ।

अनन्यपूर्विकां पुरुषान्तरापरिगृहीताम् । कान्तां कमनीयाम् । वादुः मनोनयनेष्टकारि-

णीम् । “यस्यां मनश्चक्षुषोर्निबन्धस्तस्यामृद्धिः” इति आपस्तंबस्मरणात् ( गृ. सू. १।३।२० ) ।

यवीयवसीं वयसा प्रमाणतश्च न्यूनाम् । इति कन्यालक्षणम् ।

अथ वधूवरयोर्व्याः प्रमाणम् । अत्र बृहस्पतिः—

“त्रिंशद्वर्षो दशाब्दां तु भार्यां विदेत् मानवः । एकविंशतिवर्षो वा सप्तवर्षमवाप्नुयात् ” ॥ २५

अङ्गिराः—

“वयोधिकां नोपयच्छेद्दीर्घां कन्यां स्वदेहतः । स्ववर्षाद्वित्रिपचादिन्यूनां कन्यां समुद्वहेत् ” ॥

विष्णुः—

“वर्षैरेकगुणां भार्यामुद्वहेत् त्रिगुणो वरः । त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षो वा वयोमात्रावरा च या ” ॥ ३०

वयोमात्रावरा च येत्युक्तेर्द्वित्र्यादिकतिपयमासैरूना नोद्वाह्या । नारदः—

“हीनाङ्गामधिकाङ्गां च वरादीर्घां वयोधिकाम् । नोपेयाद्रोगिणीं नारीं दीर्घमायुर्जिजीविषः” ॥ इति ।

अरोगिणीं “वातगुल्माश्मरीकुष्ठमहौदरभगंदराः । अर्शांसि ग्रहिणीत्यष्टौ महारोगाः प्रकीर्त्तिताः”

इत्युक्तमहारोगरहिताम् । भ्रातृमतीं पुत्रिकाकरणभयात् । यदाह मनुः ( ३।११ )—

“यस्यास्तु न भवेद्भ्राता न विज्ञायेत वा पिता । नोपयच्छेत तां कन्यां पुत्रिकाधर्मशंकया ” ॥  
 अनेन न पितुः संकल्पमात्रादपि पुत्रिका भवतीति गम्यते । अत एव गौतमः ( २८।१७ )—  
 “अभिसन्धिमात्रात्पुत्रिकेत्येके” इति । सा च कथं पुत्रिका भवतीत्यपेक्षिते मनुराह ( ९।१२७ )—  
 “अपुत्रोऽनेन विधिना सुतां कुर्वीत पुत्रिकाम् । यदपत्यं भवेदस्यां तन्मम स्यात्स्वधाकरम्” ॥ इति ।

५ वसिष्ठोपि ( १७।१७ )—

“अभ्रातृकं प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृताम् । अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भवेदिति” ॥  
 इयमेव मे पुत्र इति वा । एतच्चाग्रे वक्ष्यते । असमानार्धगोत्रजाम् । आर्धः प्रवरः गोत्रं  
 प्रसिद्धम् । समानता नामतो वेदितव्या । गोत्रप्रवरौ पृथक्पृथक्पर्युदासे निमित्तम् । समानार्ध-  
 जामसमानगोत्रजामिति । “परिणीय सगोत्रां तु समानप्रवरां तथेति” च भेदेन स्मरणात् ।

१० बोधायनः—

“एक एव ऋषिर्यावत्प्रवरेष्वनुवर्तते । तावत्समानगोत्रत्वमन्यत्राङ्गिरसो भृगोः” ॥  
 समानगोत्रत्वं समानप्रवरत्वम् । भृग्वंगिरोगणेषु विशेषमाह स एव—

“व्यार्षेयसंनिपाते अविवाहस्यार्षेयाणां त्र्यार्षेयसंनिपाते पञ्चार्षेयाणाम्” इति ।

“अत्र चासपिण्डामित्यनेन पितृष्वसृमातृष्वसृमातुलादिदुहितृनिषेधः । असगोत्रामित्यने-  
 १५ नासपिण्डाया अपि भिन्नसन्तानजायाः समानगोत्राया निषेधः । असमानप्रवरामित्यनेन अस-  
 पिण्डजाया असगोत्राया अपि समानप्रवराया निषेधः । यथा यास्कवाधूलमौनमोक्तानां  
 गोत्रभेदेऽपि तेषां भार्गवव्रीहव्यसावेदसेति समानप्रवरत्वम् ।

“पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वमिति मातृतः मातृसंताने पञ्चमादूर्ध्वं पितृतः पितृसंताने सप्तमादूर्ध्वं  
 सापिण्ड्यं निवर्तते” इति शेषः । अतश्चायं सपिण्डशब्दोऽवयवशक्त्या वर्तमानः पङ्कजादि-  
 २० शब्दवन्नियतविषय एव । तथा च पित्रादयः षट् सपिण्डाः । पुत्रादयश्च षट् आत्मा च सप्तमः ।  
 संतानभेदेऽपि यतः संतानभेदस्तमादाय गणयेत् । यावत्सप्तम इति सर्वत्र योजनीयम् ।  
 सपिण्डसमानगोत्रसमानप्रवरासु सुभार्यात्वमेव नोत्पद्यते । रोगिण्यादिषु तु उत्पन्नेऽपि भार्यात्वे  
 दृष्टविरोध एवेति विज्ञानेश्वरेणोक्तम् ( पृ. १३ पं. २५-२६ ) । “अप्रत्तानां तु स्त्रीणां  
 सापिण्ड्यं त्रिपुरुषं विज्ञायत” इति ( ४।१८ ) वसिष्ठवचनमाशौचे विषयमिति विज्ञाने-

२५ श्वरादिभिर्निर्णीतम् ( प्रा. पृ. १८१ ) मातृगोत्रजामपि अपरिणेत्यां केचिदिच्छन्ति

“मातुलस्य सुतामूढ्वा मातृगोत्रां तथैव च । समानप्रवरां चैव गत्वा चान्द्रायणं चरेत्” ॥ इति  
 शातातपस्मरणात् । “सगोत्रां मातुरप्येके नेच्छन्त्युद्वाहकर्मणि” इति व्यासस्मरणाच्चेति ।  
 मातृगोत्रामिति गोत्रग्रहणं सपिण्डपरमित्यन्ये । अखण्डादर्श— “कूटस्थमंतराले स्थाप्य  
 तमादायान्योन्यगणने सति पितृपक्षे सप्तपुरुषानतीत्य या कन्या विवाहेच्छोः पुरुषस्याष्टमी भवति

३० सा विवाह्या । तथा मातृपक्षे कूटस्थमारभ्यान्योन्यगणने सति पञ्चपुरुषानतीत्य विवाहेच्छोः  
 पुरुषस्य षष्ठी भवति सैव विवाह्याऽस्य” इति । एवं च बहुस्मृतिसंमतत्वात्पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वमेव  
 विवाहः न ततोऽर्वागिति स्थितम् । तथा च नारदः ( १२।७ )—

“पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं बन्धुभ्यः पितृमातृतः । अविवाह्या सगोत्रा च समानप्रवरा तथा” ॥ विष्णुः—

“पञ्चमात्सप्तमाद्धीनां यः कन्यामुद्बहेद् द्विजः । गुरुतल्पी स विज्ञेयः सगोत्रां चैवमुद्बहन्” ॥ इति ।

३५ यत्तु—“पञ्चमी मातृपक्षात् पितृपक्षात् सप्तमीम् । गृहस्थ उद्बहेत्कन्यां न्याय्येन विधिनोत्तमाम्” ॥

इति व्यासवचनं तत् पञ्चमीं सप्तमीमतीत्योपरितनामुद्बहेदित्येवं परम् । अत एव मरीचिः—  
“पञ्चमे सप्तमे चैव येषां वैवाहिकी क्रिया । क्रियापरा अपि हि ते पतिताः शूद्रतां गताः”॥ इति ।  
मनुः ( ११।१७१-१७२ )—

“पैतृष्वसेयीं भगिनीं स्वस्त्रीयां मातुरेव च । मातुश्च भ्रातुरासस्य गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥  
“एतास्तिस्त्रस्तु भार्यार्थे नोपयच्छेत् बुद्धिमान् । ज्ञातित्वेनानुपेयास्ता पतितो ह्युपयचारः” ॥ ५  
व्यासः ( )—

“जन्मनाम्नोरविज्ञान उद्बहेदविशंकितः । मातुः सपिण्डा यत्नेन वर्जनीया द्विजातिभिः ॥  
“तृतीयां मातुतः कन्यां तृतीयां पितुतस्तथा । शुल्केन चोद्बहिष्यन्ति विप्राः पापविमोहिताः”॥ इति ।  
मातुतः मातृपक्षे तृतीयां मातुलसुतां पितुतः पितृपक्षे तृतीयां पैतृष्वसेयीमित्यर्थः । शातातपः—  
“समानप्रवरां कन्यामेकगोत्रामथापि वा । विवाहयति यो मूढस्तस्य वक्ष्यामि निष्कृतिम् ॥ १०  
“उत्सृज्य तां ततो भार्या मातृवत्परिपालयेत् । कृत्वा तस्याः समुत्सर्गमतिकृच्छ्रं विशोधनम्”॥ इति ।  
“गायत्रीं यस्य यो दद्याद्यो वा दद्यादिमां द्विजः । तद्गोत्रे तत्कुले वाऽपि विवाहं नैव कारयेत्”॥  
आपस्तम्बः—

“समानप्रवरां कन्यां सगोत्रामुपगम्य च । तस्यामुत्पाद्य चण्डालं ब्राह्मण्यादेव हीयते”॥ इति ।  
कल्पसारे—

“अमत्योढा सगोत्रा चेन्मातृवद्विभृयात्तु ताम् । चान्द्रायणं चरित्वाऽन्यामुपयच्छेत् कन्यकाम् ॥  
“कृच्छ्राब्दपादं कुर्वीत प्रजाता यदि सा भवेत् । मिन्दाहुती द्वे जुहुयात्तस्यान्ते चरितव्रतः ॥  
“तस्यां प्रसूते निर्दोषः काश्यपो गोत्रतः स्मृतः । ऊढा चेत् बुद्धिपूर्वं स्यादुरुतल्पसमं चरेत् ॥  
“तस्यां प्रसूतश्चण्डालः सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥ ” इति । स्मृत्यर्थसारे—

“यदि कश्चित् ज्ञानतस्तां कन्यामूढोपगच्छति । गुरुतल्पव्रताच्छुद्धो गर्भस्तज्जोऽन्त्यतां व्रजेत् ॥ २०  
“भोगतस्तां परित्यज्य पालयेज्जननीमिव । अज्ञानाच्चेदैन्दवेन शुध्येद्गर्भस्तु काश्यपः”॥ इति ।  
आपस्तम्बः ( २।११।१५-१६ )—“सगोत्राय दुहितरं न प्रयच्छेन्मातुश्च योनिसंबन्धेभ्यः”॥ इति ।  
कान्त्यायनः “प्रवरैरेषामविवाहः” इति । माधवीये पराशरोऽपि—

“पितुः पितृष्वसुः पुत्राः पितुर्मातृष्वसुः सुताः । पितुर्मातुलपुत्राश्च विज्ञेयाः पितृबान्धवाः ॥  
“मातुः पितृष्वसुः पुत्राः मातुर्मातृष्वसुः सुताः । मातुर्मातुलपुत्राश्च विज्ञेया मातृबान्धवाः ॥ २५  
“विवाहो नैष्यते तत्र पितुर्मातुश्च बन्धुषु ”॥

सुमन्तुः—“पितृष्वसुसुतां मातृष्वसुसुतां मातुलसुतां मातृसगोत्रामुद्वाह्य चान्द्रायणं चरेत् ।  
परिष्वज्यैनां विभृयात् ” इति ।

पैठीनसिः—“पितृमातृष्वसुदुहितरो मातुलसुता धर्मतो भगिन्यस्तां वर्जयेत् ” । स एव—

“उद्बहेत् सगोत्रां तु तनयां मातुलस्य च । ऋषिभिश्चैव तुल्योऽपि स तु चान्द्रायणं चरेत्”॥ इति । १०

गौतमः ( २१।१-२ )—“ब्रह्महा सुरापी गुरुतल्पगो मातृपितृयोनिसंबन्धागस्तेननास्तिक-  
निन्दितकर्माभ्यासिपतितात्याग्यपतितत्यागिनः पतिताः । पातकीसंयोजकाश्च ” इति ।

चान्द्रिकायाम् ( आ. ६७२ पं. १८ )—

“स्त्रीसंततिस्तथा पुंसां न विवाह्ये उभे मते । स्त्रीपुंसोस्तु विवाह्या स्यात्पञ्चमात्सप्तमात्परम् ॥” इति ।

‘चतुर्थीमुद्रहेत्’ इत्यादीनि अर्वाग्विवाहपराणि वचनानि विजातीयविषयाणि ।  
यथाह शङ्खः—

“यद्येकजाता बहवः पृथक्क्षेत्राः पृथक्जनाः । एकपिण्डाः पृथक्शौचाः पिण्डस्त्वावर्त्तते त्रिषु॥” इति ।  
एकस्माद्वाह्मणादेर्जाताः पृथक्क्षेत्राः भिन्नजातीयासु स्त्रीषु जाता ते पृथक्जनाः । समान-  
५ जातीयासु भिन्नासु स्त्रीषु जातास्ते एकपिण्डाः सर्पिण्डाः । किंतु पृथक् शौचाः शौचप्रकरणे  
वक्ष्यते । पिण्डस्त्वावर्त्तते त्रिष्विति त्रिपुरुषमेव सापिण्ड्यमित्यर्थः । तथैव चतुर्थीविवाहः  
क्षत्रियविषय इति व्यक्तमुक्तवान् । अखण्डादर्शकारः—

“त्रीनतीत्य मातृतः पंचातीत्य पितृतः” इति पैठनसिवचनं क्षत्रियाविषयमिति  
व्याख्येयम् इति ।

१० “तृतीयाक्षत्रियो मातुः पञ्चमात्पितृतः पराम् । समुद्रहेत्सवर्णी तु पञ्चमात्सप्तमात्पराम्”॥  
इति कण्ववचनबलात् ‘त्रीनतीत्य मातृतः’ इति पैठनसिवचनं क्षत्रियादिविषयमिति  
वरदराजीये निर्णीतम् । विज्ञानेश्वरीयेऽपि ( पृ. १४ पं. ७५ ) यदपि वसिष्ठेनोक्तम्—

“पञ्चमीं सप्तमीं चैव मातृतः पितृतस्तथेति” यदपि “त्रीनतीत्य मातृतः पञ्चातीत्य  
पितृतः” इति पैठनसिनाऽपि अर्वाङ्घ्रिषेधार्थं न पुनस्तत्प्राप्त्यर्थमिति सर्वस्मृतीनामविरोधः । एतच्च  
१५ पंचमात्सप्तमाद्दुर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथेति वचनं समानजातीये द्रष्टव्यम् । विजातीये तु “यद्येकजाता  
बहवः” इति शङ्खवचनात् त्रिपुरुषमेव सापिण्ड्यमिति सार्वभौमीये । चतुर्थ्यादिविवाहे प्रवर्त्त-  
मानस्य लोकस्य भ्रान्तिरेव मूलम् । विजातीयविषयस्य चतुर्थीमुद्रहेदित्यादेः सजातीयविषय-  
त्वावगमात् । अन्धपरंपरा वा नान्यत्किंचित्मूलम् । यदि कथंचित्किंचिद्वचनं कृच्छ्रलब्धं तथापि  
“मन्वर्थविपरीता तु या स्मृतिः सा न शस्यते । एकतः सर्वमुनयो याज्ञवल्क्यस्तथैकतः ॥

२० “यदुक्तवान्धर्मशास्त्रं तत्प्रमाणं प्रमीयताम्” इति मनुयाज्ञवल्क्यादिप्रबलस्मृतिविरोधेन  
तदेव त्याज्यम् । एवं शास्त्रविरोधे लोकाचारश्च त्याज्यः । तथा कात्यायनः—

“स्मृतेर्वेदविरोधे तु परित्यागो यथा भवेत् । तथैव लौकिकाचारं स्मृतिबाधात्परित्यजेत् ॥”  
वसिष्ठोऽपि ( १४-५ )—“श्रुतिस्मृतिविहितो धर्मस्तदलाभे शिष्टाचारः प्रमाणम्” इति ।  
शास्त्रविरोधे शिष्टाचारो न प्रमाणमित्यर्थः । तथा गौतमः ( ११२० )—

२५ “देशजातिकुलधर्मा आन्नायैरविरुद्धाः प्रमाणम्” इति । तदेवमुसवर्णासु नारीषु विवाहश्च द्विजा-  
तिभिरिति कलावसवर्णाविवाहनिषेधान्मनुयाज्ञवल्क्यादिभिः पञ्चमात्सप्तमाद्दुर्ध्वमेव विवाह-  
विधानात्तद्वर्वाक्पातित्यादिप्रत्यवायस्मरणाच्च पञ्चमात्सप्तमाद्वर्वाग्विवाहो निन्दितः । सप्तमी-  
मातुः मातृत्वनिरूपणम् । एवमाऽपञ्चमात्सप्तमात्मातृबन्धुवर्गोऽपि परिहार्यः । तत्रैकशरीरावयव-  
न्वयलक्षणसापिण्ड्याभावेऽपि अतिदेशे न सापिण्ड्यसिद्धेः । तथा सुमन्तुः—“पितृपत्न्यः  
३० सर्वा मातरस्तद्भातरो मातुलास्तत्सुता मातुलसुतास्तत्सप्तसारश्च मातृष्वसारस्तत्सुता मातृस्वसृसुता-  
स्तद्बह्वितरश्च भगिन्यस्तदपत्यानि भागिनेयानि तस्मात्ता नोपयन्तव्याः । अन्यथा संकरकारिकाः  
स्युः” इति । स्मर्यते चापि सापिण्ड्यम् । “एकत्वं सा गता भर्तुः पिंडे गोत्रे च सूतके” इति ।

“भर्तुः पत्न्या सहैकशरीरोत्पादकलक्षणसापिण्ड्यसद्भावाच्च पुत्रादीनां पितृ-  
शरीरावयवान्वयद्वारेण सप्तमीमातृतत्सापिण्डैः सह भवति सापिण्ड्यम् । अत्र एव हि ‘मातृतः

पितृतस्तथा मातृबन्धुभ्यः पञ्चमीं मातृपक्षाच्च' इत्यादिषु सामान्येन मातृशब्दाः प्रयुक्तास्तस्मा-  
ज्जननीबन्धुवर्गवत्सपत्नीमातृयोनिर्बन्धो बन्धुवर्गश्च परिहार्य एव । स्मृत्यन्तरे—

“भ्रातृस्तु पत्नीभगिनीं तत्सुतां चैव वर्जयेत् । पितृस्तु पत्नी भगिनीं तत्सुतां चैव वर्जयेत्” इति ।  
एवं सामान्येन पितृशब्दप्रयोगाज्जनकव्यतिरिक्तपितृकुलमपि सप्तमावधि परिहार्यम् ।

तथा गौतमः ( ४।२-२ )—“असमानप्रवरैर्विवाह ऊर्ध्वं सप्तमात्पितृबन्धुभ्यो बीजिनश्च” ॥ इति । ५  
परक्षेत्रे नियोगादुत्पन्नः पुत्र उभयोरपि भवति ।

“अपुत्रेण परक्षेत्रे नियोगोत्पादितः सुतः । उभयोरप्यसौ र्विथी पिण्डदाता च संमतः” ॥ इति  
याज्ञवल्क्य ( व्य. १।१७ ) स्मरणात् । “बीजिनः क्षेत्रिणश्चैव ग्रामुष्यायणको हि सः” इति  
स्मृत्यन्तराच्च । तथा दत्तादीनां ग्रामुष्यायणत्वेन गोत्रद्वयं परिहार्यम् ।

“गोत्ररिक्थे जनयितुर्न भजेद्दत्तमः सुतः । जनकस्य तु गोत्रेण ह्युपनीतो द्विगोत्रकः ॥ १०

“उपनेतुर्भजेद्गोत्रमसंप्रज्ञातगोत्रवान् । प्रज्ञातगोत्रस्तु भवेदुभयं दत्तपुत्रवत्” ॥ इति  
स्मरणात् स एव उपनयनानन्तरमिति पूर्णसंग्रहे । एतच्चोपनयनानन्तरं दत्तपुत्र-  
विषयम् । तथा पैठीनसिः “अथ दत्तक्रीतकुत्रिमपुत्रिकापुत्राः परिग्रहेणापेण जातास्ते  
संहता गोत्राग्रामुष्यायणा भवन्ति” इति । अत उभयत्र पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वमेव विवाह  
इति विज्ञानेश्वरीय—( पृ. १४१ ) अखण्डादर्शवरदराजीयादिषु निर्णीतम् । अपरे १५  
तु चन्द्रिकाकारादय आहुरेकोद्देशावच्छेदेनैकक्रियान्वयिन एव सपिण्डता । तथा च  
मार्कण्डेयः—

“पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः । पिण्डसंबन्धिनो ह्येते विज्ञेयाः पुरुषास्त्रयः ॥

“लेपसंबन्धिनश्चान्ये पितामहपितामहात् । प्रभृत्युक्तास्त्रयस्तेषां यजमानस्तु सप्तमः ॥

“इत्येष मुनिभिः प्रोक्तः संबंधः सप्तपुरुषः” इति । एवं च सति मातुलसुतादीनामेकपिण्ड- २०  
क्रियानुप्रवेशाभावेनासपिण्डत्वात्तद्विवाहोऽभिमतः । एव ‘पंचमान्मातृतः’ ‘सगोत्रान्मातुरप्येके  
नेच्छन्ति’ इत्यादिवचनजातं पुत्रिकाकरणविषयम् । आसुरादिविवाहोऽसंतातिविषयं च । अन्यथा  
मातुः पतिगोत्रत्वेन गोत्रांतराभावाच्च भूतपूर्वगत्या मातृसगोत्रत्वं वर्तमाने संभवति भूतपूर्वगते-  
रन्यायत्वात् । पतिगोत्रत्वं च

“स्वगोत्राद्भ्रश्यते नारी विवाहात्सप्तमे पदे । एकत्वं सा गता भर्तुः पिण्डे गोत्रेऽथ सूतके” ॥ २५  
इत्यादिस्मृतिभ्योऽवगम्यते । पुत्रिकापुत्रस्य मातृगोत्रत्वमाह लौगाक्षिः—

“मातामहस्य गोत्रेण मातुः पिण्डोदकक्रिया । कुर्वीत पुत्रिकापुत्र एवमाह प्रजापतिः” ॥ इति ।  
आसुरादिविवाहविषये मार्कण्डेयः—

“ब्राह्मादिषु विवाहेषु याऽनुद्धा कन्यका भवेत् । भर्तृगोत्रेण कर्तव्या तस्याः पिण्डोदकक्रियाः ॥

“आसुरादिविवाहेषु पितृगोत्रेण धर्मवित्” ॥ मातृपितृगोत्रेणेत्यर्थः । एवं च पुत्रिकाकरणे आसुरादि- ३०  
विवाहेषु “होमपूर्वं तु यो दत्तः स एव जनकस्य च । गोत्रेण विवहेत्तस्य पुत्रादौ न निषेधकृत् ॥

“दातृगोत्रसमुद्भूतां गृहीतृकुलगोत्रजः । उद्बहेद्दशमादव्यं नोद्बहेद्देति गौतमः ॥

“गायत्री यस्य यो दद्याद्यो वा दद्यादिमां द्विजः” । तद्गोत्रे तत्कुले वाऽपि च उदक-  
पूर्वदानाभावेन स्वपितृसपिण्डस्य सगोत्रत्वस्य च निवृत्तेर्मातुः स्वपित्रादिसापिण्डसद्भा-  
वात् । “असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः” इत्यादीनि वचनानि तद्विषयाणि वेदित- ३५

व्यानि । न तु पुत्रस्य मातृसर्पिण्डत्वाद्या मातुः सर्पिण्डा सा पुत्रस्यापीति । किमर्थं मातृग्रहणम् ।  
उच्यते । यदा तु पुत्रिकासुतस्यैव मातामहाभ्यां परित्यागस्तदा तत्सर्पिण्डचानिवृत्त्या तत्स-  
र्पिण्डाया विवाहप्राप्तौ तन्मा भूदिति मातृग्रहणम् । एवं दत्तपुत्रादेस्त्यागेनैव पितृगोत्रनिवृत्त्या  
तत्सगोत्राया विवाहप्राप्तौ तन्मा प्रसांक्षीदिति पितृग्रहणमिति ब्राह्मादिभिर्विवाहो निवृत्तपितृ-

५ सर्पिण्डायाः पुत्रस्य मातुलसुतादीनां पञ्चमात्सप्तमादूर्वाचीनानामपि परिणयन अभिमतमेव ।  
मातुलसुतादिविवाहनिषेधवचनानि सर्वाणि आसुरादिविवाहोढापुत्रविषयाणि पुत्रिका-  
पुत्रविषयाणि च । मातुलसुताविवाहानुग्रहकराणि तु ब्राह्मादिविवाहोढाविषयाणीति व्यवस्था ।  
**मातुलसुतोद्वाहविषयः । तत्र नारदः—**

“तृतीयां मातृपक्षाच्च पंचमीं पितृतस्तथा । विवाहं तु कचिद्देशे संकोच्याऽपि सर्पिण्डताम् ॥

१० “चतुर्थीमुद्गहेत्कन्यां चतुर्थः पंचमीमपि । षष्ठीं तु नोद्गहेत्कन्यां पंचमो न तु पंचमीम् ॥

“तृतीयो वरयेत्कन्यां चतुर्थीं पंचमीं तथा ” ॥

**षट्त्रिंशन्मते—**

“तृतीयां मातृतः कन्यां तृतीयां पितृतस्तथा । विवाहयेन्मनुः प्राह पाराशर्योऽगिरा यमः ” ॥

**चतुर्विंशतिमते—**

१५ “तृतीयां वा चतुर्थीं वा पक्षयोरुभयोरपि । विवाहयेन्मनुः प्राह पाराशर्योऽगिरा यमः ” ॥

**स्मृतिसारे—**

“मातुलस्य सुतां केचित्पैतृष्वसृमुतादिकम् । विरहंति कचिद्देशे संकोच्याऽपि सर्पिण्डता ॥

“चतुर्थः पंचमीं कन्यां पंचमीं षष्ठ उद्गहेत् । चतुर्थीमुद्गहेत्कन्यां पंचमो न तु पंचमीम् ॥

“पंचमः पंचमीं कन्यां नोद्गहेदिति यत्स्मृतम् । पितृपक्षे निषेधोऽयं मातृपक्षे न तद्भवेत् ” ॥

२० **स्मृतिरत्ने—**

“अब्रह्मचारिदारायैः सार्धभोजनकर्म च । मातुलादिसुतायां च विवाहः शिष्टसंमतः ॥

“इत्येते दाक्षिणात्यानामपि गीता उदाहृताः ।

“समुद्रयानं मांसस्य भक्षणं शस्त्रजीविका ।

“शीघ्रपानमुदीच्यानामविगीतानि धर्मतः ” ॥

२५ **बृहस्पतिः—**

“उदाहृते दाक्षिणात्यैर्मातुलस्य सुता द्विजैः । मध्यदेशे कर्मकराः शिल्पिनश्च गवाशिनः ॥

“मत्स्यादाश्च नराः सर्वे व्यभिचाररताः स्त्रियः । उत्तरे मथपा नार्यः स्पृश्या नृणां रजस्वलाः ॥

“अप्रजातां प्रगृह्णति भ्रातृभार्यामभर्तृकाम् ॥

“देशजातिकुलाचारधर्माः सत्त्वप्रवर्त्तिताः । तथैव ते पालनीयाः प्रजाः प्रक्षुभ्यतेऽन्यथा ॥

३० “विरुद्धाः प्रतिदृश्यंते दाक्षिणात्येषु संप्रति । स्वमातुलसुतोद्वाहो मातृबंधुत्वदूषिताः ॥

“अभर्तृकभ्रातृभार्याग्रहणं चातिदूषिते । कुले कन्याप्रदानं च देशेष्वन्येषु दृश्यते ॥

“इत्थं विरुद्धानाचारान्प्रभूतान्न निवर्त्तयेत् । तथा भ्रात्रीविवाहोऽपि पारसीकेषु दृश्यते ॥

“तथैकादशरात्रादौ श्राद्धे भुक्तं तयोर्द्विजैः । तेभ्यः श्राद्धे पुनर्दानं केचिन्नेच्छंति देहिनः ॥

“दत्त्वा धान्यं वसंतेऽन्यैः शरादि द्विगुणं पुनः । भुज्यते बंधकक्षेत्रं प्रविष्टे द्विगुणे धने ॥

३५ “भुज्यतेऽन्यैरप्रविष्टमूल्यं तच्च विरुध्यते ॥

“देशजात्यादिधर्मस्थ प्रामाण्यादविरोधिनः । शास्त्रेणातो नृपः सर्वं शास्त्रं दृष्ट्वा प्रवर्त्तयेत्” ॥ इति । अतो ब्राह्मादिविवाहेषु निवृत्तसर्पिंडभावाया मातुरसर्पिंडत्वान्मातुलसुता परिणया । एवं पैतृष्व-सीय्यपि च । न च तथाविधा मातृवसा तद्वदुहिता च किमिति न परिणयेति वाच्यम् । शास्त्रा विरोधेऽपि लोकविरुद्धत्वात् धर्म्यमपि लोकविद्विष्टं तन्नानुष्ठेयम् । तदुक्तं मनुना—

“अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्म्यमप्याचरेन्न तु” इति । वराहमिहिरोऽपि—

“देशाचारस्तावदादौ विचिंत्यो देशे देशे या स्थितिः सैव कार्या ।

“लोकविद्विष्टं पंडिता वर्जयन्ति दैवशोऽतो लोकमार्गेण यायात्” ॥ इति । दाक्षिणा-  
त्यानां मध्ये आंग्रेषु त्रैविद्यवृद्धा वेदार्थानुष्ठानाः शिष्टा अपि मातुलादिद्विहवृत्तिपरिणयनमाचरन्ति । द्रविडेषु तथाविधाः शिष्टाः चतुर्थ्यादिविवाहमाचरन्ति । मातृष्वसृद्विहवादिवाहं सर्वत्र वर्ज-  
यन्ति । उक्तं च तथाचारस्य प्रामाण्यं मनुना “शिष्टाचारस्मृतिर्वेदास्त्रिविधं धर्मलक्षणम्” इति । १०

“सद्भिराचरितं यस्माद्धर्मिकैस्तु द्विजातिभिः । तद्देशकुलजातीनामविरुद्धं प्रकल्पयेत्” ॥ इति । आपस्तम्बः—

“येषां परंपराप्राप्ताः पूर्वजैरप्यनुष्ठिताः । त एव तैर्न दुष्येयुराचारा नेतरे पुनः” ॥

वेवलः—

“यस्मिन्देसे य आचारो न्यायदृष्टस्तु कल्पितः । स तस्मिन्नेव कर्त्तव्यो देशाचारः स्मृतो भृगोः” ॥ १५

“येषु देशेषु ये देवा येषु देशेषु ये द्विजाः । येषु देशेषु यत्तोयं या च यत्रैव मृत्तिका ॥

“येषु देशेषु यच्छौचं धर्माचारश्च यादृशः । तत्र तान्नावन्येत धर्मस्तत्रैव तादृशः ॥

“यस्मिन्देसे पुरे ग्रामे त्रैविद्ये नगरेऽपि वा । यो यत्र विहितो धर्मस्तद्धर्मं न विचालयेत्” ॥

बोधायनः ( १।५।१७-२२ )— पंचधा विप्रतिपत्तिर्दक्षिणतस्तथोत्तरतः । यानि दक्षिणतस्तानि व्याख्यास्यामः । यथैतदनुपेतं सह भोजनं स्त्रिया सह भोजनं पयुषितभोजनं मातुल- २०

पितृष्वसृद्विहवृत्तिगमनमिति । अथोत्तरत ऊर्णाविक्रयः शीघ्रपानमुभयतोदद्भिर्व्यवहार आयुधी-  
यकं । समुद्रसंयानमिति । इतरदितरस्मिन् कुर्वन् दुष्यति इतरदितरस्मिन्स्तत्र तत्र देशे प्रामाण्य-  
मेव स्यात्” इति । अथमर्थः । दक्षिणतः । दक्षिणेन नर्मदामुत्तरेण कन्यातीर्थम् । अथोत्तरतः ।

दक्षिणेन हिमवंतमुत्तरेण विध्यम् । एतद्देशे प्रसूतानां शिष्टानां परस्परं पंचधा विप्रतिपत्तिः  
विसंवादः । मातुलपितृष्वसृद्विहवृत्तिगमनं परिणयनं उर्णायास्तद्विकारस्य च कंबलादेर्विक्रयः । २५

उभयतोदतः अश्वादयः । व्यवहारो विक्रयादि । आयुधीयकं शस्त्रधारणम् । समुद्रसंयानं नावा  
द्वीपांतरगमनम् । इतरदनुपेतसहभोजनादि इतरस्मिन्नुत्तरापथे कुर्वन् दुष्यति । एवमूर्णाविक्रया-  
दीनि इतरत्र दक्षिणापथे कुर्वन् दुष्यति । तत्र देशप्रामाण्यमेव स्यादिति । एवं व्यवस्थित-

विषयैव मूलश्रुतिः कल्पते । तस्माद्व्यवस्थितमेवानुष्ठानं तद्वर्जनं चेति । यत्तु अनन्तरमेव  
बोधायनोक्तं ( १।१२३-२४ )— “मिथ्यैतदिति गौतमः । उभयं चैतन्नाद्रियेत । दृष्टस्मृति- ३०

विरोधदर्शनादिति” तन्न । पूर्वोक्तनिराकरणार्थं गौतमग्रहणात् । किंतु दृष्टस्मृतिविरोधदर्शना-  
द्वौतमस्य मातृसर्पिंडापरिणयनमभिप्रेतमिति दर्शयितुमिति चंद्रिकायां व्याख्यातम् ।

यद्याप्यापस्तम्बवचनम् ( १।१२।१०-१२ ) “यत्र तु प्रीत्युपलब्धितः प्रवृत्तिर्न तत्र शास्त्रमस्ति ।  
तदनुवर्तमानो नरकाय राध्यति” इति । तदपि मातृसर्पिंडामातुलसुतापरिणयनादिविषयं वेदि-

तव्यम् । यदिदमपि वसिष्ठस्मरणम् ( १।१७ ) “देशकुलधर्मा आम्नायैरविरुद्धाः प्रमाणम्” इति । ३५



तदप्यत्राग्रायविरोधाभावादानुकूलमेवानुकूल एव चान्नाथे श्रूयन्ते “आयाहीन्द्र पथिभिरीलि-  
तेभिर्भ्यज्ञमिमं नो भागधेयं जुषस्व । तृतां जुहुर्मातुलस्येव योषा भागस्ते पैतृष्वसेयीवपाम्”  
इति । एहीन्द्र पथिभिर्मागीरीलितेभिः प्रशस्तैर्नः अस्माकं इमं यज्ञमायाहि आगच्छ । आगत्य  
च इदमस्माभिः दीयमानं भागधेयं जुषस्व सेवस्व । अतः एते यजमानाः तृतामाज्यादिना  
५ संस्कृतां पक्वां वपां त्वामुद्दिश्य जुहुः त्यक्तवन्तः । अत्र दृष्टांतद्वयम् । यथा मातुलस्य योषा  
दुहिता दौहित्रस्य भागः भजनीया परिणेतुं योग्या यथा च पैतृष्वसेयी पौत्रस्य तथाऽयं तव  
भागो वपास्य इति मन्त्रार्थः । तेन श्रुतितः स्मृतितः आचारादपि सिद्धं मातुलसुतादिपरि-  
णयनमिति स्मृतिचंद्रिकाकारेण देवणभट्टोपाध्यायैरन्यैरपि स्वदेशाचारानुसारिभिर्बुद्धि-  
मद्भिः समर्थितं मातुलसुतादिपरिणयनम्” । इति । इति मातुलसुताविवाहविषयकनिरूपणम् ।

१० अथ विवाहे वर्जनीयानि कुलान्याह मनुः ( ३६-७ )—

“महांत्यपि समृद्धानि गोजाविधनधान्यतः । स्त्रीसंबन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥  
“हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छंदोरोमशाशंसम् । क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्चित्रिकुष्टिकुलानि च ” ॥  
हीनक्रियं श्रौतस्मार्त्ताचारहीनम् । निष्पुरुषं स्त्रीशेषं । तद्वर्जयेत् । कुतः संतत्यभावानुसारिभयात् ।  
निश्छंदो निरध्ययनम् । रोमशं रोमबहुलं निर्ऋतिरूपत्वात् । तथा हि श्रुतिः—

१५ “निर्ऋत्यै विकृतरूपं देहं रोमशमालभेत । सा ह्यस्या स्वः तनुः” इति । अर्योऽस्यास्तीत्यर्शसः  
क्षयी । क्षयरोग उक्तं आमयो महोदरादि । तद्युक्तमामयाविव्याधिसंक्रातिभयादेतानि वर्जयेत् ।  
याज्ञवल्क्योऽपि ( आ. ५७ )—

“दशपुरुषविख्याता श्रोत्रियाणां महाकुलात् । स्फीतादपि न संचारीरोगदोषसमन्वितात्” ॥

पुरुष एव पुरुषः । दशभिः पुरुषैः मातृतः पितृतश्च पंचभिर्विख्यातं यत्कुलं महत्कुलं पुत्रपौत्रपशु-  
२० दासीग्रामादिसमृद्धं तस्मात्कुल्या आहर्त्तव्या । तत्रापवादः । स्फीतादपीति संचारिरोगाः  
कुष्ठापस्मारादयः । एतैः समन्वितात्पूर्वोक्तान्महाकुलादपि नाहर्त्तव्येत्यर्थः । यमः—

“कुलानीमान्यपि सदा अविवाह्यानि निर्दिशेत् । अनार्षेयं ब्राह्मणानामृत्विजां चैव वर्जयेत् ॥

“हीनांगमतिरिक्तांगमामयाविकुलानि च । तथाश्चित्रिकुलादीनां कुर्याद्विपरिवर्जनम् ॥

“सदा कामीकुलं वर्जं रोमशानां च यत्कुलम् । अपस्मारिकुलं यच्च यच्च पांडुकुलं भवेत् ॥

२५ “अत्युच्चमतिनीचं च अतिवर्णं च वर्जयेत्” । अनार्षेयमविज्ञातप्रवरम् । मनुः ( ४।२४७ )—

“उत्तमैरुत्तमैर्नित्यं संबंधानाचरेत्सह । निनीषुः कुलमुत्कर्षमधमानधमांस्त्यजेत् ॥

“विशुद्धाः कर्मभिश्चैव श्रुतिस्मृतिनिर्दिष्टाः । अविप्लुतब्रह्मचर्या महाकुलसमन्विताः ॥

“महाकुले च संबन्धो महत्त्वे च व्यवस्थिताः । संतुष्टाः सज्जनहिताः साधवः समदर्शिनः ॥

“अक्रोधनाः सुप्रसादाः कार्याः संबन्धिनः सदा । ये स्तेनाः पिशुनाः क्लीबा ये च नास्तिकवृत्तयः ॥

३० “विकर्मणा च जीवंतो विकृताकृतयस्तथा । प्रबद्धवैराः शूरैर्ये राजकिल्बिषिणस्तथा ॥

“ब्रह्मस्वादानित्याश्च कदर्याश्च विगर्हिताः । अप्रचायेषु वंशेषु स्त्रीप्रजाप्रसवांस्तथा ॥

“पतिव्रतं स चाऽन्यत्र ताश्च यत्नेन वर्जयेत् ॥

“पितुर्वा भजते रूपं मातुर्वोभयमेव वा । न कथंचन दुर्योनिः प्रकृतिं स्वां विमुंचति ” ॥

हारीतः—

३५ “मातुलान्भजते पुत्रः कन्यका भजते पितृन् । यथाशीला भवेन्माता तथाशीलो भवेन्नरः ” ॥



विष्णुः—

“अश्वं पित्रा परीक्षेत मात्रा कन्यां परीक्षयेत् । तृणाद्भूमिं परीक्षेत आचारेण कुलं तथा”॥इति । विवाहे वर्ज्यकुलानिरूपणम् । अथासवर्णोद्वाहः । सवर्णोद्वाहनियमेन प्रतिषिद्धमसवर्णोद्वाहमधिकारिविशेषोऽनुजानाति मनुः ( ३।१२-१३ )—

“सवर्णाग्रे द्विजातीनां प्रशस्ता दारकर्मणि । कामतस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशोऽवराः॥ ५  
“शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृतः । ते च स्वा चैव राज्ञः स्युस्ताश्च स्वा चाग्रजन्मतः”॥ प्रथमतः सवर्णैव वोढव्या । तदनुभोगेच्छायां असवर्णा अपि क्रमेण वोढव्याः । ब्राह्मणस्य चतस्रः क्षत्रियस्य तिस्रः वैश्यस्य द्वे शूद्रस्य सवर्णैकेवेत्यर्थः । अथ ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां सवर्णायां प्रथममुद्बोद्धुमशक्त्यामसवर्णाऽपि वोढव्या । न कदाचिदपि प्रथमं शूद्रेत्याह स एव ( ३।१४ )—

“न ब्राह्मणक्षत्रिययोरापद्यपि हि तिष्ठतोः । न कस्मिंश्चित् वृत्तान्ते शूद्रा भार्योपदिश्यते”॥ वृत्तं धर्मः । अतो निर्णयः । धर्मशास्त्रमित्यर्थः । भार्या नोपदिश्यते भार्यात्वेन नोपदिश्यते । किं तु काम्यत्वेनेत्यर्थः । शूद्रां प्रथमं भार्यात्वेन उद्धृतः प्रत्यवायमाह स एव ( ३।१५ )—  
“हीनजातिं स्त्रियं मोहादुद्ग्रहंतो द्विजातयः । कुलान्येव नयंत्याशु ससंतानानि शूद्रताम् ” ॥ केवलशूद्रभार्यात्वं तदपत्यत्वं च ब्राह्मणस्य दोषावहमित्याह स एव ( ३।१७-१८ )— १५  
“शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगतिम् । जनयित्वा सुतं तस्यां ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥  
“दैवपित्रातिथेयानि तत्प्रधानानि तस्य तु । निन्दन्ति पितृदेवास्तं न च स्वर्गं स गच्छति ” ॥ मतांतराण्युपन्यस्य स्वमतं सिद्धांतयति ( ३।१६ )—

“शूद्रावेदी पतत्यत्रैरुच्यतनयस्य च । शौनकस्य सुतोत्पत्त्या तदपत्यतया भृगोः” ॥ शूद्रावेदी शूद्रां भार्यात्वेन विंदतीति शूद्रावेदी । अत्रेः उच्यतनयस्य गौतमस्य शूद्रायां २० सुतोत्पादनेन न पुनस्तस्यागमनेनेति शौनकस्य मतम् । शूद्रामूढवानपि तस्यां सुतोत्पत्तिभया-दुतौ तां नोपेयादित्यर्थः । तदपत्यतया तस्यां शूद्रायामेवापत्यं यस्य तदपत्यतया पततीति भृगोर्मतम् । भृगुमुखेन मन्वादिशास्त्रस्य प्रोच्यमानत्वादिति मानवानीमानि वचनानि टीका-कृतैव व्याख्यातानि । याज्ञवल्क्यः (आ. ५७)—

“तिस्रो वर्णानुपूर्व्येण द्वे तथैका यथाक्रमम् । ब्राह्मणक्षत्रियविशां भार्या स्वा शूद्रजन्मनः ॥ २५  
“यदुच्यते द्विजातीनां शूद्रादारोपसंग्रहः । न तन्मम मतं यस्मात्तत्राऽयं जायते स्वयम्”॥इति (५६)  
मानवेन समानार्थमिति चंद्रिकायाम् । पैठीनसिः—

“अलाभे विप्रकन्यायाः स्त्रियोऽन्यास्तिस्र एव तु शूद्रायाः प्रतिलोभ्येन तथान्ये पतयिष्यः”॥इति जातूकर्णः—

“अलाभे कन्यायाः स्नातकव्रतं चरेदपि वा क्षत्रियायां पुत्रानुत्पादयीत वैश्यायां वा”॥इति । ३०  
नारदः ( १।१।५-६ )—

“ब्राह्मणस्यानुलोभ्येन स्त्रियोऽन्यास्तिस्र एव तु । शूद्रायाः प्रतिलोभ्येन तथाऽन्यपतयिष्यः ॥  
“द्वे भार्ये क्षत्रियस्यान्ये वैश्यस्यैका प्रकीर्तिता । वैश्याया द्वौ पती श्रेयावेकोऽन्यः क्षत्रियापतिः”॥

विष्णुः ( २६।५ )—

“द्विजस्य भार्या शूद्रा तु धर्मार्थं न भवेत्कचित् । रत्यर्थमेव सा तस्य रागाधस्य प्रकीर्तिता”॥ ३५

व्यासः—

“शूद्रायोनौ पतद्बीजं हाहाशब्दं द्विजन्मनः । कृत्वा पुरीषगर्तेषु पतितोऽस्मीति दुःखितः ॥

“मामधः पातयेदेष पापात्मा काममोहितः । अधोगतिं व्रजेत्क्षिप्रमिति शप्त्वा पतेत्तु तत् ” ॥

वसिष्ठोपि (१२५-२७)— “शूद्रामप्येके मंत्रवर्जं तद्वत् । तथा न कुर्यात् । अतो हि ध्रुवः

५ कुलापकर्षः प्रेत्य चास्वर्गः ” इति । मनुः ( ३।१९ )—

“वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च । तस्यां चैव प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥

“शिल्पेन व्यवहारेण शूद्रापत्यैश्च केवलैः । गोभिरश्वैश्च यानैश्च कृष्या राजोपसेवया ॥ (६४)

“अयाज्ययाजनैश्चैव नास्तिक्येन च कर्मणा । कुलान्यकुलतां यांति यानि हीनानि मंत्रतः ॥ (६६)

इति । गोभिरश्वैर्विक्रीयमाणैरित्यर्थः । अयं चासवर्णाविवाहः युगांतरविषयः । “असवर्णासु

१० कन्यासु विवाहश्च द्विजातिभिः ” इति कलौ निषेधत्वात् ।

इत्यसवर्णाविवाहनिरूपणम् । अथ वरलक्षणम् । मनुः ( १।८८ )—

“उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च । अप्राप्तसमयां तस्मै कन्यां दद्याद्विचक्षणः ” ॥

यमोऽपि—

“कुलं च शीलं च वपुर्वयश्च विद्यां च वित्तं च सनाथतां च ॥

१५ “एतान्गुणान्सप्त परीक्ष्य देया कन्या बुधैः शेषमर्चितनीयम्” ॥ यत्तु विष्णुनोक्तम्—

“ब्राह्मणस्य कुलं ग्राह्यं न वेदाः संपदः क्रमात् । कन्यादाने तथा श्राद्धे न विद्यातत्र कारणम्” ॥

इति तत्कुलस्य प्रधान्यप्रतिपादनपरम् । न पुनर्विद्यानिराकरणार्थम् । अत एवाश्वलायनः—

“कुलमग्रे परीक्षेत ” इति । आपस्तम्बः (२।११।१७) “वपुशीललक्षणसंपन्नश्रुतवानरोग इति

वरसंपत् ” इति । गौतमः ( ४।४ )—“विद्याचारित्रिबंधुशीलसंपन्नाय दद्यात्” इति । शातातपः—

२० “वरो वरयितव्योऽर्थी कुलशीलसमन्वितः । रूपवान्पण्डितः प्राज्ञो युवा शीलसमन्वितः” ॥

याज्ञवल्क्यः ( आ. ५५ )—

“एतैरेव गुणैर्युक्तः सवर्णः श्रोत्रियो वरः । यत्नात्परीक्षितः पुंस्त्वे युवा धीमान् जनप्रियः” ॥ इति ।

कात्यायनोऽपि—

“अपत्यार्थं स्त्रियः सृष्टा स्त्री क्षेत्रं बीजिनो नराः । क्षेत्रं बीजवते देयमतो बीजं परीक्षयेत्” ॥ इति ।

२५ बीजं वीर्यमित्यर्थः । तत्परीक्षोपायमाह नारदः ( १३।१०-१३ )—

“यस्याप्सु प्लवते बीजं जहादि मूत्रं च फेनिलम् । पुमान् स्याल्लक्षणैरैतैर्विपरीतस्तुषं ढकः ” ॥

ह्लादि शब्दवत् ।

“चतुर्दशविधः शास्त्रे षण्डो दृष्टो मनीषिभिः । चिकित्स्यश्चाचिकित्स्यश्च तेषामुक्तो विधिः क्रमात् ॥

“निसर्गषण्डोऽमुष्कश्च पक्षपण्डस्तथैव च । अभिशापाद्गुरो रोगाद्देवक्रोधात्तथैव च ॥

३० “ईर्ष्याषण्डश्च सेव्यश्च वातरेता मुखेभगः । आक्षितो मोघबीजश्च शालीनोऽन्यापतिस्तथा ” ॥

एतेषां लक्षणानि । निसर्गषण्डः स्वभावतो लिंगवृषणहीनः । अमुष्कः भिन्नवृषणः । पंचदश-

दिनानि स्त्रियमनासेव्य सकृद्भोगक्षमः पक्षषण्डः । गुरुशापषण्डादयस्त्रयः स्पष्टाः । ईर्ष्यायां पुंस्त्व-

मुत्पाद्यते यस्य स ईर्ष्याषण्डः । रुयुपचारविशेषणपुंस्त्वशाक्तिर्यस्य स सेव्यषण्डः । वातोपहृतेतस्फो-

वातरेताः । मुख एव पुंस्त्वशाक्तिर्न योनौ यस्य स मुखेभगः । रेतोनिरोधात्षण्डीभूतः आक्षिपण्डः ।

३५ गर्भाधानासमर्थबीजः मोघबीजः । अप्रगल्भतया क्षोभाद्वा नष्टपुंस्त्वः शालीनः । यस्य भार्या-

व्यतिरेकेणान्यासु पुरुषभावः सोऽन्यापतिः ।

“तत्राद्यावप्रतिकारौ पक्षपदं च वर्जयेत् । अनुक्रमानु यस्यास्य कालः संवत्सरः स्मृतः ॥ (१४)  
 “ईर्ष्यापंडादयो येऽन्ये चत्वारः समुदाहृताः । त्यक्तव्यास्ते पतितवत्क्षतयोन्याऽपि च स्त्रियः ॥ (१५)  
 “आक्षिप्तमोषबीजाभ्यां कृतेऽपि पतिकर्मणि । पतिरन्यः स्मृतो नार्या वत्सरार्थं प्रतीक्ष्य तु ॥ (१६)  
 “शालीनस्यापि दृष्टस्त्रीसंयोगादृश्यते ध्वजः । तं हीनवेषमंतः स्त्रीबाला रहसि बोधयेत् ॥ (१७)  
 “अन्यस्यां यो मनुष्यः स्यादमनुष्यः स्वयोषिति । लभते साऽन्यभर्तारमेतद्वाक्यं प्रजापतेः” इति १८  
 भर्त्रंतरपरिग्रहोऽयं युगांतरविषयः । “ऊढायाः पुनरुद्वाहः” इति कलौ निषेधस्मरणात् । परंतु  
 कलावपि बालयावाक्यमिदं परं प्रयोक्तव्यमाक्षितवीर्यस्य तत्कालं धैर्याद्याद्वा रागविशेषाद्वा  
 स्यादपि वीर्योत्पत्तिः । कात्यायनः—

“उन्मत्तः पतितः कुष्ठी तथा षंडः स्वगोत्रजः । चक्षुश्रोत्रविहीनश्च तथाऽपस्मारदूषितः ॥  
 “वरदोषाः स्मृतास्त्वेते कन्यादोषाश्च कीर्तिताः । दूरस्थानामविद्यानां मोक्षमार्गानुसारिणाम् ॥ १०  
 “शूराणां निर्हृतां च न देया कन्यका बुधैः” इति । अपरार्क—  
 “अनार्यता निष्ठुरता क्रूरता निष्क्रियात्मता । पुरुषं व्यंजयंतीह लोके कलुषयोनिजम्” ॥  
 इति वरलक्षणनिरूपणम् । अथ कन्यकादानकालः । तत्र बोधायनः (४।१।१२)—  
 “दद्याद्गुणवते कन्यां नग्निकां ब्रह्मचारिणे । अपि वा गुणहीनाय नोपरुंध्याद्रजस्वलाम्” ॥  
 नग्निका अनागतार्त्तवा । वसिष्ठः (१७।७०)—

“प्रयच्छेन्नग्निकां कन्यामृतुकालभयात्पिता । ऋतुमत्यां हि तिष्ठत्या दोषः पितरमृच्छति” ॥  
 नग्निकालक्षणं स एवाह—  
 “यावन्न लज्जयाऽगानि कन्या पुरुषसंनिधौ । योन्यादीन्युपगूहेत तावद्भवति नग्निका ॥  
 “यावच्चेलं न गृह्णाति यावत्क्रीडति पांसुभिः । यावद्दोषं न जानाति तावद्भवति नग्निका” ॥  
 संवर्त्तः—

“यावन्न लज्जते कन्या यावत्क्रीडति पांसुषु । यावत्तिष्ठति गोमार्गे तावत्कन्यां विवाहयेत् ॥  
 “अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा तु रोहिणी । दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला” ॥  
 अत ऊर्ध्वं रजस्वलेत्येतत्काचित्काभिप्रायं तदा रजसो नियमेनासंभवात् । यतः स एवाह—  
 “प्राप्ते तु द्वादशे वष यः कन्यां न प्रयच्छति । मासि मासि रजस्तस्याः पिता पिबति शोणितम् ॥  
 “माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च । त्रयस्ते नरकं यांति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ २५  
 “गौरीं ददन्नाकपृष्ठं वैकुण्ठं याति रोहिणीम् । कन्यां ददद्ब्रह्मलोकं रौरवं तु रजस्वलाम् ॥  
 “तस्माद्विवाहयेत्कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत् । विवाहस्त्वष्टवर्षायाः कन्यायास्तु प्रशस्यते ॥  
 “रोमकाले तु संप्राप्ते सोमो भुंक्ते तु कन्यकाम् । रजो दृष्ट्वा तु गंधर्वः कुचौ दृष्ट्वा तु पावकः” ॥ इति  
 यमः—

“अष्टमे तु भवेद्गौरी नवमे नग्निका भवेत् । दशमे कन्यका प्रोक्ता द्वादशे वृषली तथा” ॥ ३०  
 वृषली रजस्वला ।  
 “वंध्या तु वृषली ज्ञेया वृषली च मृतप्रजा । अपरा वृषली ज्ञेया कुमारी या रजस्वला” ॥  
 इति देवलस्मरणात् । आपस्तंबः—

“अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा तु रोहिणी । दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥

“संप्राप्ते द्वादशे वर्षे रजः स्त्रीणा प्रत्तर्वते” ॥ इति । एतच्च प्रायिकामिप्रायं न पुनर्द्वादश एव रजस्वला भवतीति कासांचिद्वर्गागपि रजोदर्शनसंभवात् । अत एव यमसंवर्त्तौ—

“दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला” इति । एवं च यावत् रजोदर्शनं न भवति तावत्कन्यात्वमुक्तं भवति । अत एव यमः—“तस्मादुद्वाहयेत्कन्या यावन्नर्तुमती भवेत्” ॥

५ मनुरपि ( ९।९४ )—

“त्रिंशद्वर्षो वहेत् कन्यां ह्ययां द्वादशवार्षिकीम्” इति । एतद्रजोदर्शनाभावे वेदितव्यम् । अत एव बृहस्पतिः—

“पितुर्गृहे तु या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता । भ्रूणहत्या पितुस्तस्याः सा नारी वृषली स्मृता ॥

“यस्तां विवाहयेत्कन्यां ब्राह्मणो मदमोहितः । असंभाष्यो ह्यपांक्तेयः स विप्रो वृषलीपतिः ॥

१० “वृषलीसंग्रहीता यो ब्राह्मणो मदमोहितः । सततं सूतकं तस्य ब्रह्महत्या दिने दिने ॥

“यः करोत्येकरात्रेण वृषलीसिवनं द्विजः । तद्द्वैक्षभुजपन्नित्यं त्रिभिर्वषैर्व्यपोहति ॥

“वृषलीगमनं चैव मासमेकं निरंतरम् । इह जन्मनि शुद्रत्वं मृतः श्वा चैव जायते” ॥ नारदः (१।२६)—

“यावंतश्चर्त्तवस्तस्याः समतीयुः पतिं विना । तावत्यो भ्रूणहत्यास्युस्तस्य यो न ददाति ताम्” ॥

याज्ञवल्क्योऽपि ( आ. ६४ )—“अप्रयच्छन्समामोति भ्रूणहत्यामृतावृतौ” ॥ इति ।

१५ व्याघ्रपादः—

“उपायनोदितः कालः स्त्रीणामुद्वाहकर्मणि । स्त्रीणामुपनयस्थाने विवाहं मनुरब्रवीत्” ॥

यमः—

“विवाहं चोपनयनं स्त्रीणामाह पितामहः । तस्माद्रर्भाष्टमः श्रेष्ठो जन्मतो वाऽष्टवत्सरः ॥

“देशकालादिवैषम्यादधर्मोद्वाहसंशये । सदृशे संभवे कन्यां नग्निकामपि दापयेत् ॥

२० “बालिश या भवेत्कन्या गुणाढ्यो यदि लभ्यते । दद्यादप्राप्तकालेऽपि देशकालभयान्नरः” ॥ इति ।

बालिशविवाहमंगीकृत्य संस्कारविशेषमाह प्रजापतिः—

“द्विवर्षात्प्राग्विवाहश्चेत्कन्यकामरणं यदि । सननं नैव कर्त्तव्यं मंत्रसंस्कारमाचरेत्” ॥ इति ।

यत्तु मनुनोक्तम् ( ९।८९ )—

“काममा मरणात्तिष्ठेद्गृहे कन्यर्तुमत्यपि । न त्वेवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्” ॥

२५ इति तद्वृणवति संभवति गुणहीनाय न दद्यादित्येवंपरं न पुनर्गुणहीननिषेधार्थम् । यदाह तु

यमबोधायनौ ( ४।१।१२ )—

“दद्याद्गुणवते कन्यां नग्निकामेव शक्तिः । अपि वा गुणहीनाय नोपसंध्याद्रजस्वलाम्” ॥ इति ।

यदा प्रौढामपि पितादिः तां न प्रयच्छति तदा कन्यैव सदृशं भ्रतारं वरयेदित्याह यमः—

“कन्या द्वादशमे वर्षे या त्वदत्ता गृहे वसेत् । भ्रूणहत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वरयेत्स्वयम्” ॥ इति ।

एतच्च वरणं ऋतुप्रभृतिवर्षत्रयादूर्ध्वं वेदितव्यम् । बोधायनः ( ४।१।१३-१६ )—

३० “त्रीणि वर्षाण्यृतुमती यः कन्यां न यच्छति । सं तुल्यं भ्रूणहत्याया दोषमुच्छत्यसंशयम् ॥

“न याचते चेदेवं स्याद्याचते चेत्पृथक्पृथक् । एकैकास्मिन्तौ दोषं पातकं मनुरब्रवीत् ॥

“त्रीणि वर्षाण्यृतुमती कांक्षेत पितृशासनम् । ततश्चातुर्ये वर्षे तु विंदेत सदृशं पतिम् ॥

“अविद्यमाने सदृशे गुणहीनमपि श्रयेत्” ॥ इति । मनुरपि ( ९।९० )—

“त्रीणि वर्षाण्युपासीत कुमार्यृतुमती सती । ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥

“अदीयमाना भर्तारमधिगच्छेद्यदि स्वयम् । नैनः किञ्चिदवाप्नोति न च यं साऽधिगच्छति ॥  
 “अलंकारं नाददीत पित्र्यं कन्या स्वयं वरा । मातृकं भ्रातृदत्तं वा स्तेयं स्याद्यदि तं हरेत् ॥  
 “पित्रे न दद्याच्छुल्कं तु कन्यामृतमर्ती हरन् । स च स्वाम्यादतिक्रामेदतूनां प्रतिरोधकः” ॥ इति ।  
 इति कन्यादानकालः । विवाहमध्ये रजोदर्शने । विवाहकाले रजोदर्शने कर्त्तव्यमाह अग्निः—  
 “विवाहे वितते यज्ञे होमकाल उपास्थिते । कन्यामृतमर्ती दृष्ट्वा कथं कुर्वति याज्ञिकाः ॥  
 “स्नापयित्वा तु तां कन्यामर्चयित्वा हुताशनम् । जुञ्जानमाहुतिं हुत्वा ततः कर्म प्रयोजयेत् ॥  
 “प्रधानहोमे निर्वृत्ते कुमारी यदि सार्त्तवा । त्रिरात्रेऽपगते पश्चाच्छेषं कार्यं समापयेत् ” ॥

स्मृतिभास्करेऽपि—

“विवाहहोमे प्रक्रान्ते यदि कन्या रजस्वला । त्रिरात्रं दंपती स्यातां पृथक् शय्यासनाशनौ ॥  
 “चतुर्थेऽहनि संस्नातौ तस्मिन्नग्नौ यथाविधि । विवाहहोमं कुर्यातामित्यादि स्मृतिसंग्रहे” ॥ इति । १०  
 यस्तु कन्यां प्रदाय पुनस्तामपहरति स राज्ञा दंड्य इत्याह याज्ञवल्क्यः ( आ. ६५ )—  
 “सकृत्प्रदीयते कन्या हरंतां चोरदंडभाक् ” ॥ मनुरपि ( १।४७ )—  
 “सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते । सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सकृत्सकृत् ॥  
 “न दत्त्वा कस्याचित्कन्यां पुनर्दद्याद्विचक्षणः । दत्त्वा पुनः प्रयच्छेद्यः प्राप्नोति पुरुषानृतम्” ॥ ७१ इति  
 “शतमश्वानृतं हंति सहस्रं पुरुषानृतः” इत्युक्तदोषमाप्नोतीत्यर्थः । काश्यपः— १५  
 “सप्त पौनर्भवाः कन्या वर्जनीयाः कुलाधमाः । वाचा दत्ता मनोदत्ता कृतकौतुकमंगला ॥  
 “उदकं स्पर्शितां या च या च पाणिगृहीतिका । अग्निं परिगता यां च पुनर्भूः प्रसवा च या ॥  
 “इत्येताः काश्यपेनोक्ता दहंति कुलमग्निवत् ॥

“प्ररोहत्यग्निना दग्धः पादपः सुचिरादपि । न च पौनर्भवा दग्धं कुलं कापि प्ररोहति” ॥

मनुः ( १।९९ )—

“एतत्तु न परे चकुर्नापरे जातु साधवः । यदन्यस्मै प्रतिश्रुत्य यदन्यस्मै प्रदीयते” ॥  
 बोधायनः— “वाग्दत्ता मनोदत्ताऽग्निं परिगता सप्तमपदं नीता भुक्ता गृहीतगर्भा प्रसूता चेति  
 सप्तविधा पुनर्भूः । तां गृहीत्वा न प्रजां न धर्मं विंदत ” इति । आपस्तम्बः—( १।३।१२ )—  
 “दत्तां गुप्तां द्योतामृषभां शरभां विनतां विकटां मुंडां मंडूषिकां सांकारिकां  
 रातां पालीं मित्रां स्वनुजां वर्षकारीं च वर्जयेत् ” इति । दत्ता अन्यस्मै वाचा प्रतिश्रुता २५  
 उदकपूर्वं वा प्रतिपादिता । गुप्ता कंचुकाद्यावृता । द्योता बभ्रुकेशी । ऋषभा वृषगतिः । शरभा शीर्ण-  
 दीप्तिः । विनता कुब्जा । विकटा विकटजंघा । मुंडा अपगतकेशा । मंडूषिका अल्पकाया । सांकारिका  
 कुलांतरस्य दुहितृत्वं गता । राता ऋतुस्नाता । पाली क्षेत्रादिपालिका । मित्रा सखी । शोभ-  
 नोऽनुजा यस्याः सा स्वनुजा । वरजन्मसंवत्सर एव पश्चाज्जाता वर्षकारी । अधिकवयस्कैत्यर्थः ।  
 सर्वाणीमानि दत्तादिविषयाणि वचनानि अदुष्टवराभिप्रायाणि । यदाह नारदः ( १।३।३२ )— ३०  
 “दत्त्वा न्यायेन यः कन्यां वराय न ददाति ताम् । अदुष्टश्चेद्दरो राज्ञा स दंड्यस्तत्र चोरवत्” ॥  
 गौतमोऽपि ( ५।२१ )— “प्रतिश्रुत्याप्यधर्मसंयुक्ताय न दद्यात् ” इति ।

याज्ञवल्क्योऽपि ( आ. ६५ )—

“दत्तामपि हरेत्कन्यां श्रेयांश्चेद्दर आव्रजेत् ” ॥ इति । आव्रजेत् आगच्छेदित्यर्थः ।

काश्यपः—

“कुलशीलविहीनस्य षण्ढादेः पतितस्य च । अपस्मारिविकर्मस्थरोगिणां वेषधारिणाम् ॥

“दत्तामपि हरेत्कन्यां सगोत्रोढां तथैव च । मंत्रसंस्काररहिता देयाऽन्यस्मै वराय तु ॥

“अन्यथा तु हरन् दंड्यो व्ययं दद्याच्च सोदयम्” ॥ शातातपः—

“वरश्चेत्कुलशीलाभ्यां न युज्येत कथंचन । पुनर्गुणवते दद्यादिति शातातपोऽब्रवीत् ॥

५ “हीनस्य कुलशीलाभ्यां हरन्कन्यां न दोषभाक्” ॥ कात्यायनः—

“स तु यद्यन्यजातीयः पतितः क्लीब एव वा । विकर्मस्थः सगोत्रो वा दासो दीर्घामयोऽपि वा ॥

“दत्तापि देया साऽन्यस्मै संप्रावरणभूषणाम् ।

“विधिवत्प्रतिगृह्यापि त्यजेत्कन्यां विगर्हिताम् । व्याधितां विप्रकृष्टां वा छद्मना चोपपादिताम्” ॥

नारदः ( १३।३१ )—

१६ “नादुष्टां दूषयेत्कन्यां नादुष्टं दूषयेद्वरम् । दोषे सति न दोषः स्यादन्योन्यं त्यज्यतो द्वयोः” ॥ इति ।

एतानि सप्तमपदादर्वाङ्गेदितव्यानि । अत्र चंद्रिकायां वाग्दानप्रभृति सप्तमपदादर्वाङ्गदोषदर्शने

मरणादौ वा कन्यामन्यस्मै दद्यान्नोर्ध्वमिति । तथा च मनुः ( ८।२२८ )—

“पाणिग्रहणिका मंत्रा नियतं दारलक्षणम् । तेषां निष्ठा तु विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पदे ” ॥

निष्ठा परमावधिः । कन्यावरयोर्दोषदर्शनेऽपि सप्तमपदादूर्ध्वं न परित्याग इत्यर्थः ॥ अत्र यमः—

१५ “नोदकेन न वाचा वा कन्यायाः पतिरुच्यते । पाणिग्रहणसंस्कारात्पतित्वं सप्तमे पदे” ॥

वसिष्ठः—

“स्त्रीपुंसयोस्तु संबंधे वरणं प्राग्विधीयते । वरणाब्रह्मणं पाणेः संस्कारो हि विलक्षणः ॥

“तयोरनियतं प्राहुर्वरणं दोषदर्शनात्” इति । स्त्रीपुंससंबंधे विवाहे पूर्व वरणम् ।

तदनु तद्विलक्षणः पाणिग्रहणाख्यः संस्कारः । तयोर्मध्ये दोषदर्शने सति वरणमनियतम् ।

२० दानमात्रेण पतित्वानुत्पत्तेरित्यर्थः । तथा व्यासः—

“कन्याऽन्यस्मै प्रदातव्या वाग्दाने तु कृते वरे । मृतेऽन्यस्मै प्रदातव्या मृते सप्तपदात्पुरा ॥

“दत्तामपि हरेत्कन्यां सगोत्रोढां तथैव च । मंत्रसंस्काररहिता देयाऽन्यस्मै वराय तु” ॥

एवं च सप्तमपदादर्वाङ्गपरिणेतुर्मरणेऽपि न विधवात्वमित्युक्तं भवति । तथा च वसिष्ठः ( १७।७२ )—

“अद्भिर्वाचा च दत्ता या भ्रियेतादौ वरो यदि । न च मंत्रोपनीता स्यात्कुमारी पितुरेव सा” ॥

२५ सा पितुरेव न प्रतिग्रहीतुरित्यर्थः । कात्यायनोऽपि—

“वरयित्वा तु यः कश्चित्प्रणश्येत्पुरुषो यदा । रक्तागमांस्त्रीनतीत्य कन्याऽन्यं वरयेद्वरम् ” ॥

रक्तागमो रजोदर्शनम् । नारदः ( १३।२४ )—

“प्रतिगृह्य तु यः कन्यां वरो देशांतरं व्रजेत् । त्रीन्तून्समतिक्रम्य कन्याऽन्यं वरयेद्वरम् ” ॥

शुल्कदाने विशेषमाह मनुः ( ९।९७ )—

३० “कन्यायां दत्तशुल्कायां भ्रियते यदि शुल्कदः । देवराय प्रदातव्या यदि कन्याऽनुमन्यते ॥

“प्रदाय शुल्कं गच्छेयः कन्यायाः स्त्रीधनं तथा । धार्या सा वर्षमेकं तु देयाऽन्यस्मै विधानतः ॥

“यस्या भ्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः । तामनेन विधानेन निजो विदेत देवरः” ॥ ( ६९ ) इति ।

कात्यायनः—

“पूर्ववृत्ता तु या कन्या वृताऽन्येन यदा भवेत् । असंस्कृता प्रदेया स्यादस्यै पूर्व प्रतिश्रुता” ॥

३५ चेद्गुणवत्तर इति शेषः ।

“अनेकेभ्यो हि दत्तायामनूढायां तु तत्र वै । वरागमश्च तर्पणां वहते चान्तिमस्तु ताम् ॥

“अथागच्छेयुरूढायां दत्तं पूर्वं धनं हरेत् ॥ यत्तु पाणिग्रहणादुपर्यन्यस्मै दानमाह वसिष्ठः ( १७।७४ )—

“पाणिग्राहे कृते कन्या केवलं मंत्रसंस्कृता । सा चेदक्षतयोनिः स्यात्पुनः संस्कारमर्हति ॥ यदपि स्मृत्यन्तरम्—

“कन्याऽन्यस्मै प्रदातव्या मृते सप्तपदात्पुरा । पुरा पुरुषसंयोगान्मृते देयेति केचन ॥

“ऋतौ च दृष्टे कन्यैव मृतौ देयेति चापरे । आ गर्भधारणात्कन्या पुनर्देयेति केचन” ॥ इति ।

नारदः—

“उदाहिताऽपि या कन्या न चेत्संप्राप्तमैथुना । पुनः संस्कारमर्हति यथा कन्या तथैव सा” ॥ इति ।

यदपि बोधायनः ( ४।१।१८३ )—

“निसृष्टायां हुते वाऽपि यस्या भर्ता प्रियेत सः । सा चेदक्षतयोनिः स्याद्गतप्रत्यागता सति ॥

“पौनर्भवेन विधिना पुनः संस्कारमर्हति ॥” इति यदपि मनुराह ( नारदः १२।९७ )—

“नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ । पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते” ॥ इति ।

सप्तपदादूर्ध्वमपि पुनर्विवाहपराण्येतानि वचनानि युगांतरविषयाणि । यद्ग्रह व्यासः—

“ऊढायाः पुनरुद्वाहं ज्येष्ठांशं गोवधं तथा । कलौ पंच न कुर्वीत भ्रातृजायां कर्मण्डलम्” ॥ इति । १५

कतुः—

“देवरात्र सुतोत्पत्तिः दत्ता कन्या न दीयते । न यज्ञे गोवधः कार्यः कलौ न च कर्मण्डलुः” ॥

बोधायनः—

“विधिर्येऽनुष्ठितः पूर्वं क्रियते नैव सांप्रतम् । पुराकल्पः स यद्वच्च विधवाया नियोजनम्” ॥ इति ।

चंद्रिकायामपि—

“देवरेण सुतोत्पत्तिं गोमेधं च कर्मण्डलम् । अक्षतां पौरुषं मेधं कलौ पंच विवर्जयेत्” ॥ इति ।

“अपुत्रां गुर्वनुज्ञातो देवरः पुत्रकाम्यया । सर्पिणो वाऽसगोत्रो वा घृताभ्यक्तो ऋतावियात् ॥

“आ गर्भसंभवं गच्छेत्पतितस्त्वन्यथा भवेत् । अनेन विधिना जातः क्षेत्रज्ञः स भवेत्सुतः” ॥ इति ।

याज्ञवल्क्यादिभिरुक्ता देवरसुतोत्पत्तिः कलौ वर्जनीया । गोमेधो गवालंभनम् । कर्मण्डलुं

मृन्मयकर्मण्डलुधारणम् । २५

“कर्मण्डलुर्द्विजातीनां शौचार्थं विहितः पुरा । ब्राह्मणैः मुनिमुख्यैश्च तस्मात्तं धारयेत्सदा” ॥ इति

बोधायनादिभिरुक्तम् । अक्षतां अक्षतयोनिः । पुरुषमेधः कतुविशेषः । एतानि कलौ वर्जये-

दित्यर्थः । अक्षताया वर्ज्यत्वमाह नारदोऽपि ( १२।४६ )—

“कन्या चाक्षतयोनिर्या पाणिग्रहणदूषिता । पुनर्भूः प्रथमा प्रोक्ता पुनःसंस्कारकर्मणि” ॥

याज्ञवल्क्योऽपि ( आ. ६७ )— “अक्षता च क्षता चैव पुनर्भूः संस्कृता पुनः” इति । यस्तु ३०

कन्या द्रोषमनभिधाय प्रयच्छति स राज्ञा दंड्य इत्याह नारदः ( १२।३३ )—

“यस्तु दोषवती कन्यामनाख्याय प्रयच्छति । तस्य कुर्यान्नुपो दंडं पूर्वसाहसचोदितम्” ॥

पणशतद्वयं सत्त्वधिकं पूर्वसाहसम् । यत्तु याज्ञवल्क्येनोक्तं ( आ. ६६ )—

“अनाख्याय दुद्वोषं दंड्य उत्तमसाहसम् । अदुष्टां तु त्यजन् दंड्यो दूषयंस्तु मृषा शतम्” ॥ इति ।

तद्वोषभूयस्त्वभिप्रायमिति चंद्रिकायाम् । ३५



“साशीतिपणसाहस्रं भवेदुत्तमसाहसम्” नारदः ( १२।३५ )—

“प्रतिग्रह्य तु यः कन्यामदुष्टामुत्सृजेन्नरः । विनेयः सोऽप्यकामोऽपि कन्यां तामेव चोदहेत्” ॥  
विनेयो दण्ड्य इत्यर्थः । इति विवाहकाले रजोदर्शनादिप्रायश्चित्तम् ॥

अथ कन्यादातुर्निर्णयः । तत्र याज्ञवल्क्यः ( आ. ६३-६४ )—

५ “पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा । कन्याप्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परः परः ॥

“अप्रयच्छन्नवाप्नोति भ्रूणहत्यामृतावृतौ । गम्यं त्वभावे दातॄणां कन्या कुर्यात्स्वयं वरम्” इति ।  
पित्रादीनां पूर्वपूर्वाभावे परः परः कन्याप्रदः । पूर्वनाशे प्रकृतिस्थश्चेत्यनुमादादिदोषवान्  
भवति यस्याधिकारः सोऽप्रयच्छन्नभ्रूणहत्यामृतावृतावाप्नोतीति यदा पुनर्दातॄणामभावस्तदा  
कन्यैव गम्यं गमनार्हमुक्तलक्षणं स्वयमेव वरयेदित्यर्थः । नारदः ( १२।२०-२३ )—

१० “पिता दद्यात्स्वयं कन्यां भ्राता वाऽनुमतः पितुः । मातामहो मातुलश्च सकुल्यो बांधवस्तथा ॥

“माता त्वभावे सर्वेषां प्रकृतौ यदि वर्त्तते । तस्यामप्रकृतिस्थायां कन्यां दद्युः स्वजातयः ॥

“यदा तु नैव कश्चित्स्यात्कन्या राजानमाव्रजेत् । अनुज्ञया तस्य वरं प्रतीतं वरयेत्स्वयम् ॥

“सवर्णमनुरूपं च कुलशीलबलश्रुतैः । सहधर्मं चरेत्तेन पुत्रांश्चोत्पादयेत्ततः ॥

“स्वतंत्रोऽपि हि यत्कार्यं कुर्यादप्रकृतिं गतः । तदप्यकृतमेव स्यादस्वतंत्रत्वहेतुतः” ॥ इति ।

१५ मनुः ( ५।१५० )—

“यस्मै दद्यात्पिता कन्यां भ्राता वाऽनुमतौ पितुः । तं शुश्रूषेत जीवंतं स्वर्यातं च न लंघयेत्” ॥ इति ।

एतयोः प्राधान्यप्रतिपादनार्थं न पुनरन्यनिषेधाद्य । इति कन्यादातुर्निर्णयः ॥

अथ विवाहभेदाः । तत्र मनुः ( ३।२०-२१ )—

“चतुर्णामपि वर्णानां प्रेत्येह च हिताहितान् । अष्टाविमान्समासेन स्त्रीविवाहाब्जिबोधत ॥

२० “ब्राह्मो दैवस्तथैवार्वाः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः । गांधर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः” ॥

आर्षात्प्राजापत्यस्य श्रेष्ठ्येऽपि वृत्तभंगभयादत्र क्रमभंगः । ब्राह्मादीनां लक्षणमष्टभिः श्लोकैराह  
स एव ( ३।२७ )

“आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतशीलवते स्वयम् । आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः” ॥

धर्मसाधनत्वाद्विवाह एव धर्मशब्देन प्रतिपाद्यते । ब्रह्मशब्दो धर्मवचनः । धर्मातिशय-

२५ युक्तत्वाद्ब्राह्मत्वम् ।

“यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते । अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते” ॥ ( २८ )

दैवकार्याधिकृताय दानाद्वैवत्वम् ।

“एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः । कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते ॥ ( २९ )

धर्मत आदाय धर्मार्थमादाय न धनार्थं यत्कन्याप्रदानं स आर्षो धर्मः । विक्रयदोषभया-

३० हृषिभिरनुकवेतनैरेव विद्या दीयते । शुश्रूषादिकं शिष्यतः किञ्चिदादीयते च । आर्षेऽपि कन्या

दीयते वरात्किञ्चिदादीयते च । तेन दानादानसामान्येनार्षत्वम्—

“सहोभौ चरतां धर्ममिति वाचाऽनुभाष्य तु । कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः” ॥ ( ३० )

उभौ युवां सह धर्मचरतं न पृथगिति वाचानुभाष्य अहं गृहाश्रमस्थ एव धर्मं चरिष्यामि

नान्याश्रमस्थ इति वरं प्रतिश्राव्येत्यर्थः । प्राजापत्यो विधीयत इति विधिः विवाहः ।

३५ गार्हस्थ्यप्राधान्यनिबन्धनं प्राजापत्यत्वं गार्हस्थप्रधानो हि प्रजापतिः ।



“ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायै वाऽपि शक्तिः। कन्याप्रदानं स्वाच्छंद्यादासुरो धर्म उच्यते॥”(३१)  
कन्याया ज्ञातिभ्यः स्वशक्तिः वरस्य शक्तितोऽधिकं दत्त्वा दापयित्वा स्वाच्छंद्याल्लोकशास्त्र-  
मर्यादातिलंघनेन यत्कन्यादानं स आसुरः। परस्वापहारस्वाच्छंद्यनिबन्धनमासुरत्वम् । असुरा हि  
स्वाच्छंद्येन परवित्तमपहरन्ति इति ।

“इच्छयाऽन्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च । गांधर्वः स विधिर्ज्ञेयो मैथुन्यः कामसंभवः”॥(३२) ५  
मैथुन्यः मैथुनपर्यंत अन्योन्यसंयोगः कामसंभवो गांधर्वः । गंधर्वत्वं कामपरत्वनिबन्धनम् ।  
गंधर्वा हि कामपराः । “स्त्रीकामा वै गंधर्वा ” इति श्रुतेः । स्मरति च भगवान्वाल्मीकिः  
“ तीक्ष्णकामास्तु गंधर्वास्तीक्ष्णकोपा भुजंगमाः ” इति ।

“हत्वा छित्त्वा च भित्त्वा च क्रोशन्तीं रुदन्तीं गृहात् । प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते”॥(३३)  
विवाहविरोधकान्हत्वा छित्त्वा भित्त्वा च कन्यां परिभूय यद्धरणं स राक्षसः । हिंसाप्राधान्या- १०  
द्राक्षसत्वम् । हिंसाप्रधाना हि राक्षसाः ।

“सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति । स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचः प्रथितोऽष्टमः”॥(३४)  
सुप्तमत्तप्रमत्तकन्याभोगनिबन्धनं पैशाचत्वम् । पिशाचा हि सुप्तमत्तप्रमात्तानां विंशतिः ।  
ब्राह्मादीनां फलमाह स एव ( ३३७-३८ )—

“ दश पूर्वापरान्वंश्यानात्मानं चैकविंशकम् । ब्राह्मीपुत्रः सुकृतकुन्मोचयेदेनसः पितृन् ॥ १५  
“ दैवोढायाः सुतश्चैव सप्तसप्तपरावरान् । आर्षोढायाः सुतस्त्रींस्त्रीन्षट् षट् कायोढजः सुतः ” ॥  
प्राजापत्येनोढायाः सुतः विभक्तिव्यत्ययः । चतुर्षु विवाहेष्वामुष्मिकं फलं प्रत्येकमुक्त्वा ऐहिकं  
च समुदाये फलं श्लोकद्वयेनाह ( ३३९-४२ )—

“ ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः । ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसंमताः ॥

“ रूपसत्त्वगुणोपेता धनवंतो यशस्विनः । पर्याप्तभोगा धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतं समाः ” ॥ २०

आसुरादिषु चतुर्षु जातपुत्रगुणमाह—

“ इतरेषु तु शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः । जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः ” ॥

“ अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्दा भवति प्रजा । निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निन्द्यानि वर्जयेत् ” ॥  
अननुज्ञातविवाहविषयेयं निन्दा इतरथा हि क्षत्रियादिषु गांधर्वराक्षसाद्युपदेशानर्थक्यप्रसंगात् ।  
याज्ञवल्क्योऽपि ( आ. ५८-६१ )—

“ ब्राह्मो विवाह आहूय दीयते शक्यलंकृता । तज्जः पुनात्युभयतः पुरुषानेकविंशतिम् ॥

“ यज्ञस्थ ऋत्विजे देव आदायार्षस्तु गोयुगम् । चतुर्दश प्रथमजः पुनात्युत्तरजस्तु षट् ॥

“ इत्युक्त्वा चरतां धर्मं सह या दीयतेऽर्थिने । स कायः पावयेत्तज्जः षट्षड्वंश्यान् सहात्मनाम् ॥

“ आसुरो द्रविणादानात् गांधर्वः समयान्मिथः । राक्षसो युद्धहरणात्पैशाचः कन्यकाच्छलात् ” ॥

मनुः ( ३१२-२४ )—

“ षडानुपूर्व्या विप्रस्य क्षत्रस्य चतुरो वरान् । विट्शूद्रयोस्तु तानेव विद्याद्धर्म्यनराक्षसान् ॥

“ चतुरो ब्राह्मणस्यायान्प्रशस्तान्कवयो विदुः । राक्षसं क्षत्रियस्यैकमासुरं वैश्यशूद्रयोः ” ॥

मतांतरमाह स एव ( ३२५ )—

“ पंचानां तु त्रयो धर्म्या द्वावधर्म्यौ स्मृताविव । पैशाचश्चासुरश्चैव न कर्त्तव्यौ कथंचन ” ॥

पाश्चात्यानां पंचानां प्राजापत्यादीनां मध्ये त्रयो धर्म्याः । पैशाचश्चासुरश्च द्वावधर्म्यौ न कर्त्तव्यौ । कर्तृविशेषानिर्देशादस्य मतस्य सर्वसाधारणत्वं गम्यते । चंद्रिकायाम्—  
“चत्वारो ब्राह्मणस्याद्याः शस्ता गांधर्वाक्षसौ । राजस्तथासुरो वैश्ये शूद्रे चान्त्यस्तु गर्हितः”॥  
गर्हितः न कस्यापि प्रशस्त इत्यर्थः । विवाहांतरालाभे पैशाचमाह वत्सः—

- ५ “सत्रोपायैरसाध्यः स्यात्सुकन्या पुरुषस्य वा । चौर्येणापि विवाहेन सा विवाह्या रहः स्थिता”॥  
आपस्तम्बः (२।५।१२।३-४)—“तेषां त्रय आद्याः प्रशस्ताः । पूर्वः पूर्वः श्रेयान् । यथा युक्तो विवाहस्तथा युक्ता प्रजा भवति” इति । बोधायनोऽपि (१।११।१-१७)—“अष्टौ विवाहाः । श्रुतशीले विज्ञाय ब्रह्मचारिणेऽर्थिने दीयते स ब्राह्मः । आच्छाद्यालंकृत्यैषा सह धर्म-  
श्र्वर्यतामिति प्राजापत्यः । पूर्वा लाजाहुतिं हुत्वा गोमिथुनं कन्यावते दद्यात्स आर्षः । दक्षिणासु  
१० नीयमानास्वतर्वेदि ऋत्विजे स दैवः । सकामेन सकामायां मिथः संयोगः स गांधर्वा धनेनोप-  
तोष्यासुरः । प्रसह्य हरणाद्राक्षसः । सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वोपयच्छेदिति पैशाचः । तेषां चत्वारः पूर्वं  
ब्राह्मणस्य । तेष्वपि पूर्वः पूर्वः श्रेयान् । उत्तरेषामुत्तरोत्तरः पापीयान् । तत्रापि षष्ठसप्तमौ क्षत्रधर्मा-  
नुगतौ तत्प्रत्ययत्वात्क्षत्रस्य पंचमाष्टमौ वैश्यशूद्राणाम् । अयन्नित्रतलत्रा हि वैश्यशूद्रा भवन्ति ।  
कर्षणशुश्रूषाधिकृतत्वात् गांधर्वमप्येके प्रशंसन्ति । सर्वेषां स्नेहानुगतत्वात् यथा युक्तो विवाह-  
१५ स्तथा युक्ता प्रजा भवतीति विज्ञायते” इति । पूर्वा लाजाहुतिमिति वैवाहिकीनां लाजाहुतीनां  
प्रथमाहुत्यनंतरं कन्यास्वामिने गोमिथुनं वरः कन्यावते प्रदाय तस्या एव पुनर्ग्रहणमार्षो नाम  
विवाहः । दक्षिणास्त्विति ऋत्विग्वरणवेलायामेव वरसंप्रयुक्तम् । कंचिदृत्विक्तेन वृत्वा दक्षिणाकाले  
तदीयभागेन सह कन्यां तस्मै दद्यात्स च तां प्रतिगृह्य समाप्ते यज्ञे शुभनक्षत्रे विवाहं कुर्यात्स दैवः ।  
उत्तरेषां क्षत्रियादीनां वर्णानां तत्प्रत्ययत्वाद्धनबलप्रधानत्वात्क्षत्रियस्य । अयन्नित्रतलत्राः ।  
२० अयन्नित्रतलत्रा नित्यं कलत्रं येषां ते तथा दारेष्वत्यंतानियमस्तेषां भवति । निकृष्टकुषिशुश्रूषा-  
याधिकृतत्वात्तयोर्विवाहोऽपि तादृश एवेत्यर्थः । इति गोविंदस्वामी । गौतमोऽपि (४।४-१३)—  
“ब्राह्मो विद्याचारित्र्यबंधुशीलसंपन्नाय दद्यादाच्छाद्यालंकृताम् । संयोगमंत्रः प्राजापत्ये सह  
धर्मश्र्वर्यतामित्यार्षे गोमिथुनं कन्यावते दद्यादंतर्वृत्तिवजे दानं देवोऽलंकृत्येच्छन्त्या स्वयं संयोगो  
गांधर्वा वित्तेनानतिः स्त्रीमतामासुरः । प्रसह्यादानाद्राक्षसोऽसंविज्ञातोपसंगमात्पैशाचश्चत्वारो  
२५ धर्म्याः प्रथमाः षडित्येके” इति । प्राजापत्ये विवाहे सह धर्मश्र्वर्यतामिति एष संयोगमंत्रः प्रदान-  
मंत्र इत्यर्थः । आर्षमपि केचित् प्रशस्तं नेच्छन्ति । तत्रादिशुल्कग्रहणात् । तथा च मनुः (३।५३)—  
“आर्षं गोमिथुनं शुल्कं केचिदाहुर्मृषैव तत् । अल्पो वाऽपि महान्वाऽपि विक्रयस्तावतैः सह” ।  
गोमिथुनं शुल्कमाहुः । अनुजानते तन्मृषा तदयुक्तम् । अल्पो वा महान्वा द्रव्यलोभादीयमानं  
शुल्कं विक्रय एवेत्यर्थः । केचिद्वैवं व्याचक्षते । आर्षं विवाहे गोमिथुनं शुल्कमिति वदन्ति ।  
३० तन्मिथ्या । विक्रयः क्रयसाधनं मूल्यदेशकालाद्यपेक्षयाऽल्पं महद्वा भवति । आर्षं तु गोमिथुनं  
परिमाणस्य नियतत्वान्न क्रयक्रीतेत्यर्थ इति । तथा च देवलः—  
“पूर्वे विवाहाश्चत्वारो धर्म्यास्तोयप्रदानकाः । अशुल्का ब्राह्मणाहर्हाश्च तारयन्ति द्वयोः कुलम्”॥ इति ।  
तथा आपस्तम्बः (२।१३।११)—“विवाहे दुहितृमते दानं काम्यं धर्मार्थं” श्रूयते—“तस्मादु-  
हितृमतेऽधिरथं शतं देयं तन्मिथुयाकुर्यादिति तस्यां क्रयशब्दः संस्तुतिमात्रं धर्माद्धि-  
३५ संज्ञः” इति । आर्षं विवाहे दुहितृमते दानं कचिद्वै श्रूयते । तामेव श्रुतिमुदाहरति

तस्माद्बहिर्भूत इति दुहितृमते रथेनार्थिकां गवां शतं देयम् । तच्च शतं दुहितृमान् मिथुयाकुर्या-  
न्मिथ्याकुर्यादित्यर्थः । कन्यायै वराय च क्षेत्रालंकरादिप्रत्यर्पणेन तद्द्रव्यादानसाम्यगतक्रयवृत्तिं  
वितथीकुर्यादित्यर्थः । यद्वा मिथुया मिथुनं वरदत्तद्रव्यं मिथुनस्य कुर्यादित्यर्थः ।  
मिथ्यार्थत्वं मिथुनार्थत्वं च मिथुया शब्दस्य श्रूयते (आथर्व सं. ४।३९।९) । “ मा देवानां  
मिथुया कर्मभागधेयं आपो वा अग्नेर्मिथुयाः मिथुनवान्भवतीति ” । तदिदं दानं काम्यं काम- ५  
निमित्तं यथा युक्तो विवाहस्तथायुक्ता प्रजा भवतीति ( १।१२।८ ) ऋषितुल्याः पुत्रा यथा  
स्युरिति ततश्च धर्मार्थं न क्रयार्थम् । अयज्ञो वा एष योऽपत्नीक ” इत्यादिकश्रुतेः पाणि-  
ग्रहणादधिग्रहमेधि नोर्वतमिति सपत्नीकस्यैव धर्माधिकारस्मरणाच्च विवाहस्य धर्मार्थत्वेन  
तदर्थं दानमपि धर्मार्थमेव यस्तस्यां विवाहक्रियायां क्रयशब्दः कचित्समृत्तौ दृश्यते स  
संस्तुतिमात्रं द्रव्यप्रदानसाम्यात् । न मुख्यकर्मत्वप्रतिपादनार्थं । कुतः । हि यस्मान्दमर्मादेव १०  
हेतोः संबंधो दंपत्योरित्यर्थः । एवं च धर्मार्थं दानविधानात् “ सर्वाण्युदकपूर्वाणि दानानि  
अह्वयार्थानि ” इति स्मरणात् “ दुहितृमते च स्वदेयमुदकपूर्वमेव दद्याद्दुहितृमांश्च कन्याम्  
अङ्गिरव द्विजातीनां विवाहस्तु प्रशस्यते ” इति स्मरणात् उदकपूर्वमेव दद्यात् “ दुहितृमतेऽ-  
धिरथं शतं देयं तन्मिथुयाकुर्यादिति ” श्रुत्या गोमिथुनादधिकमप्यादाय वरयोषिभ्यां गृह-  
क्षेत्रभूषणादिद्वारप्रत्यर्पणे सति स विवाहो धर्म्य एवेति गम्यते । न चैवम् “ आसुरो द्रविणादनात् ” १५  
इति स्मरणादासुरत्वं शंकरनीयं कन्यावतो भोगार्थं द्रव्यादाने तथोक्तत्वात् । तथा च गौतमः  
( ४।९ ) “ वितेनानतिः स्त्रीमतामासुरः ” इति । आनतिः कन्यादानं “ प्रत्यानुगुण्यं स्त्रीमतम् ”  
इति वचनात्कन्यायै गृहक्षेत्रादि दत्त्वा विवाहेऽपि नासुरत्वमिति हरदत्तः । कन्याया भूषणाद्यर्थं  
छादनाद्यर्थं वराद्धनादानं न दोषावहमित्याह मनुरपि ( ३।५४ ) —  
“ यासां न ददते शुल्कं ज्ञातयो न स विक्रयः । अर्हणं तत्कुमारीणामानुशंस्यं च केवलम् ” ॥ २०  
यासां कन्यानां न ददते नोपजीवंति केवलं निश्चितम् । एतदेवाष्टभिः श्लोकैः समर्थयति स  
एव ( ३।५५—६२ )  
“ पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवैस्तथा । पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥  
“ यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवताः । यत्रैतास्तु न पूज्यंते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ॥  
“ शोचंति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् । न शोचंति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा ॥ २५  
“ जामयो यानि गेहानि शपंत्यप्रतिपूजिताः । तानि कृत्याहतानीव विनश्यति समंततः ” ॥  
जामयः स्वसारः । कृत्या अभिचाराक्रियाः ।  
“ तस्मादेताः समभ्यर्च्या भूषणाच्छादनाशनैः । भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेणोत्सवेषु च ॥  
“ संतुष्टो भार्यया भर्ता भर्ता भार्या तथैव च । यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥  
“ यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत् । अप्रमोदात्पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्त्तते ॥ ३०  
“ स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचेत कुलम् । अस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोधते ” ॥  
यत एवं कन्या भूषयितव्या । अतो ज्ञातिभिर्वराङ्भूषणार्थं धनादानं न दोषावहमित्यर्थः ।  
स्वोपभोगार्थद्रव्यग्रहणे पित्रादीनां दोषमाह स एव ( ३।५१—५२ ) —  
“ न कन्यायाः पिता विद्वान्गृह्णीयात् शुल्कमणवपि । गृह्णन् हि शुल्कं लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविक्रयी ॥  
“ स्त्रीधनानि तु ये मोहादुपजीवंति बांधवाः । नारीयानानि वस्त्रं वा ते पापा यांत्यधोगतिम् ” ॥ ३५  
नारी शुल्कगृहीता पापीत्याह स एव ( ९।९८—१०० ) —

“आददीत न शूद्रोऽपि शुल्कं दुहितरं ददत् । शुल्कं हि गृह्णन्कुरुते च्छन्नं दुहितृविक्रयम् ॥

“नानुशुश्रूम् जात्वेतत्पूर्वेष्वपि हि जन्मसु । शुल्कसंज्ञेन मूल्येन च्छन्नं दुहितृविक्रयम्” ॥

संवर्त्तः—

“कन्याविक्रयिणो मूर्खा महापापस्य कारकाः । पतंति नरके घोरे यावदा भूतसंघवम् ॥

५ “क्रयक्रीता तु या कन्या न सा पत्नी विधीयते । सा तु दैवे च पित्र्ये च दासी स्यान्न च साश्रिता ॥

“यस्तां विवाहयेत्कन्यां ब्राह्मणो मदमोहितः । असंभाष्यस्त्वपांक्तयः स विप्रो वृषलीपतिः” ॥ इति ।

यमः—

“यो मनुष्यां हि विक्रीय यत्किञ्चिद्धनमुच्छति । तस्या मूत्रं पुरीषं च स परत्रोपजीवति ॥

“कन्याविक्रयिणो मूर्खा इह किल्बिषकारकाः । पतंति नरके घोरे दहंत्या सप्तमम् कुलम् ॥

१० “कन्यां तु जीवनार्थाय यः शुल्केन प्रयच्छति । उपभुंक्ते पुरीषं च मूत्रं तस्याः परस्य च” ॥ इति ।

ननु च

“शुल्कं प्रदाय कन्यायाः प्रत्यादानविधानतः । वित्तहेतुर्विवाहोऽयमासुरः षष्ठ उच्यते”

इति देवलस्मरणेन शुल्कनिबन्धन आसुरो विवाहः । ननु आसुरविवाहः कथं धर्म्यत्वेन मन्वादि-

भिराश्रित इति चेन्न । पूर्वतनविवाहाऽसंभवे आपद्धर्मत्वेन तस्याप्याश्रयणात् । तथा च

१५ नारदः—

“विवाहास्त्वष्टधा भिन्ना ब्राह्मणा मुनिसत्तमाः । पूर्वः पूर्वः परो ज्ञेयः पूर्वाभावे परः परः” ॥ इति ।

चंद्रिकायामपि—

“क्रीता द्रव्येण या नारी न सा पत्नी विधीयते । तथा दैवे च पित्र्ये च दासी तां काश्यपोऽबवीत्” ॥ इति ।

यत्काश्यपवचनम्—

२० “कुविवाहैः क्रियालोपैर्वेदानध्ययनेन च । कुलान्यकुलतां याति ब्राह्मणातिक्रमेण च” ॥ इति ।

यदपि मनुवचनं तत्प्रशस्तविवाहसंभवविषयमिति । अत्र केचिदाहुः—

“भूमिव्रीहियवाजाश्ववृषभधेन्वनहुश्चेति स्थावरे विक्रयो नास्ति” इति । च गौतमादिभिः

(अ. ८ सू. १५)—प्रतिषिद्धेऽपि भूमिविक्रये

“भूमिं यः प्रतिगृह्णाति यश्च भूमिं प्रयच्छति । तावुभौ पुण्यकर्माणौ नियतं स्वर्गकामिनौ” ॥

२५ इति भूदानप्रशंसादर्शनाच्च विक्रयोऽपि कर्त्तव्यो “हिरण्योदकदानेन षड्भिर्गच्छति मेदिनी”

इति स्मरणात् सहिरण्योदकं दत्वा दानरूपेण स्थावरविक्रयं कुर्यादिति विज्ञानेश्वरेणोक्तम् ।

तद्वीत्याऽत्रापि— “कन्याविक्रयिणो मूर्खाः । पैशाचश्चासुरश्चैव न कर्त्तव्यौ कथंचन” इति

कन्याविक्रयनिषेधात् ।

“नामिचिन्नरं याति न कन्यादो यतः स्मृतः । विश्वजित्संमितो यज्ञः कन्यादानं महाफलम् ॥

३० “ज्योतिष्टोमातिरात्राणां शतं शतगुणं कुतम् । प्राप्नोति कन्यकां दत्वा होममंत्रैस्तु संस्कृताम् ॥

“कनकाश्च तिला नागा दासीगृहमहीरथाः । कन्यका कपिला चैव महादानानि वै दश ॥

“दशानां तु सहस्राणां युक्तानां धुर्यवाहिनाम् । सुपात्रे विनियुक्तानां कन्यां विद्याच्च तत्समम् ॥

“अन्नविद्यावधूत्राणगोभूरुक्माश्वहस्तिनाम् । दानान्युत्तमदानानि ह्युत्तमद्रव्यदानतः” ॥ इत्यादिभिः

कन्यादानप्रशंसादर्शनाच्च द्रव्यदानमन्तरेण ‘कन्यानधिगमे पाणिग्रहणाद्धि सहत्वं कर्मसु’ इति

३५ पाणिग्रहणमारभ्यैव विवाहसिध्याग्निहोत्रादिश्रौतस्मार्तकर्मधिकारस्मरणात्तदनुष्ठानायावश्य-

कर्तव्ये च विवाहे “अद्भिरेव द्विजातीनां विवाहस्तु प्रशस्यते” इति स्मरणादुदकपूर्वमेव द्रव्यं दातव्यं दत्त्वा सहिरण्योदकपूर्वमेव कन्याऽप्यादातव्येति न चासुरादिविवाहेषु सप्तमपदातिक्रमणाभावेन पतित्वभार्यात्वयोरनुत्पत्तिरिति शङ्कनीयम् । तत्रापि स्वीकारानन्तरमेव संस्कारविधानात् ।  
वेवलः—

“गांधर्वादिविवाहेषु पुनर्वैवाहिको विधिः । कर्त्तव्यश्च त्रिभिर्वर्णैः समयेनाग्निसाक्षिकम्” ॥  
गृह्यपरिशिष्टेऽपि—

“गांधर्वासुरपैशाचविवाहो राक्षसश्च यः । पूर्वं परिश्रयस्तेषां पश्चाद्धोमो विधीयते” ॥  
परिश्रयः स्वीकारः । अत एव न बलादपहारमात्रेण भार्यात्वमित्याह वसिष्ठः ( १७।७३ )—  
“बलतश्चेद्धृता कन्या मंत्रैर्यदि न संस्कृता । अन्यस्मै विधिवद्देया यथा कन्या तथैव सा” ॥ इति ।  
अथ विवाहांगविशेषमाह मनुः ( ३।४३—४४ )—

१४

“पाणिग्रहणसंस्कारः सवर्णासूपदिश्यते । असवर्णास्वयं ज्ञेयो विधिरुद्धाहकर्मणि ॥  
“शरः क्षत्रियया धार्यः प्रतोदो वैश्यकन्यया । वासोदशा शूद्रया तु वर्णोत्कृष्टस्य वेदने” ॥  
करेण करस्य ग्रहणं पाणिग्रहणमेव संस्कारः पाणिग्रहणसंस्कारः । उत्कृष्टवेदने सवर्णादुत्तरस्य वर्णस्य लाभे विवाह इति यावत् ।

अथ शोभनद्वयसंनिपाते संग्रहकारः—

१५

“एकोदराणां पुंसां स्याद्विवाहो नैकवत्सरे । भिन्नोदराणां कुर्वीत स्त्रीणां चैव न संशयः” ॥  
बराहमिहिरः—

“एकोदरप्रसूतानामेकस्मिन्नेव वत्सरे । विवाहो नैव कर्त्तव्यो गर्गस्य वचनं यथा” ॥  
एतद्वतुत्रयादवर्गविषयम् । यथाह गर्गः—

“एकमातृप्रसूतानामेकस्मिन्वत्सरे यदि । विवाहो नैव कर्त्तव्यो निर्गते तु ऋतुत्रये ॥

२०

“ग्रामांतरे तु कर्त्तव्यः कर्त्तव्यो नैकवेश्मनि” ॥ अंगिराः—

“एकमातृप्रसूतानां शुभद्वयमृतुत्रये । न कुर्याद्वर्षभेदे तु त्रिमासादूर्ध्वमाचरेत् ॥

“फाल्गुने चैत्रमासे च पुत्रोद्वाहोपनायने । भेदे त्वद्वयस्य कुर्वीत नर्तुत्रयविलंबनम् ॥

“न पुंविवाहोर्ध्वमृतुत्रयेण विवाहकार्यं दुहितुः प्रकल्पयेत् ।

“न मंडनाच्चापि हि मुंडनं च स्यान्मुंडनान्मंडनमन्वगेव” ॥ मंडनं विवाहः । मुंडनमुपन- २५

यनम् । शातातपः—

“मंडनं मुंडनं चैव न कुर्यादेकवत्सरे । मुंडनं प्रथमं कुर्यान्मंडनं तु ततः परम्” ॥ श्रीधरीये—

“पुत्रस्य पाणिग्रहणात्परस्तात्र मासषट्कात्तनयाविवाहः ।

“तद्विवाहादपि नोपनीतिस्तथोपनीतेः परतश्च चौलम्” ॥ गर्गः—

“एकमातृप्रसूनां कन्यकापुत्रयोर्द्वयोः । सहोद्वाहो न कर्त्तव्यः तथा नैवोपनायनम्” ॥ ३७

स्मृतिरत्ने—

“एकस्मिन्लोभने वृत्ते दिशुभं न तु कारयेत् । यदि कुर्यात्प्रमादेन तत्र स्यादशुभं ध्रुवम्” ॥

पुत्रीविषये विशेषमाहांगिराः—

“उद्वाह्य पुत्रीं न पिता विदध्यात्पुत्र्यंतरस्योद्ग्रहणं न जातु ।

“यावच्चतुर्थीदिनमंगलस्य समापनं तावदतो विदध्यात्” ॥ गर्गः—

३५

“पुत्रीपरिणयादूर्ध्वं यावद्दिनचतुष्टयम् । पुत्र्यंतरस्य कुर्वीत नोद्वाहमिति सूरयः ॥

“एकस्मिंस्तु गृहे कुर्यादेकमेव शुभक्रियाम् । अनेकास्तु प्रकुर्वाणः स नाशमाधिगच्छति ॥

“द्विशोभनं त्वेकगृहेषु नेष्टं शुभं तु कुर्यान्नवतो पुरस्तात् ।

“आवश्यं शोभन उत्सुकश्चेदाचार्यभेदेन तथैव कुर्यात्” ॥ नारदः—

५ “शुभकृतपुत्रोद्वाहात्पश्चात्पुत्रकरग्रहः । एकतिथ्यामपि प्राह भार्गवो भिन्नवेलया ॥

“एकोदरोद्भवसुतासुतयोर्विवाहं मासांतरे मनुवशिष्टपराशराद्याः ।

“इच्छंति मंगलमथाशु वदंति गर्गाः केचित्तथैकदिवसेऽप्युभयप्रभेदे ॥

“एकलग्नेऽपि भिन्नांशे वशिष्ठात्रिपराशराः । द्वयोर्विवाहमिच्छंति पृथग्ग्रामेऽथ मंडपे” ॥

बृहस्पतिः—

१० “एकस्मिन्दिवसे त्वेकलग्ने भिन्नांशके तथा । एकगर्भोत्थयोत्रीचोर्विवाहः शुभकृद्भवेत् ॥

“देशभेदात्कुलाचारादिभेदधर्माः प्रकीर्तिताः । एकलग्ने द्विलग्नौ वा गृहे यत्र द्विशोभनम्” ॥

“द्वयोरन्यद्विनष्टे स्याद्वर्ततेऽन्यदिति स्थितिः ॥

“एकमातृप्रसूतानामेकस्मिन्नेव वत्सरे । एक एव न कुर्वीत विवाहं व्रतबंधनम् ॥

“एकः कर्ता शुभं कुर्यान्न पुत्र्योः पुत्रयोरपि । षण्मासे वा चतुर्मासे पूर्णे वर्षे शुभावहम्” ॥

१५ शातातपः—

“एकमातृप्रसूतानां नाग्निकार्यद्वयं भवेत् । भिन्नोदरप्रसूतानां नेति शातातपोऽब्रवीत्” ॥

“यत्रोपयमनादूर्ध्वं षण्मासाभ्यंतरेऽपि वा । पुत्र्युद्वाहं न कुर्वीत विवाहाद्व्रतबंधनम्” ॥ उपयमनं

विवाहः । विवाहाद्व्रतबंधनं विवाहादूर्ध्वं षण्मासाभ्यंतरे व्रतबंधनमुपनयनं न कुर्वीत । एतानि

वचनानि यमलव्यतिरिक्तविषयाणि । कालदीपे यमलविषये विशेषो दर्शितः—

२० “भ्रातृद्वये स्वसृयुगे स्वसृभ्रातृयुगे तथा । समानाऽपि क्रिया कार्या मातृभेदे तथैव च” ॥

भ्रातृद्वये यमल इत्यर्थः । अत्र प्रथमज एव ज्येष्ठः ।

यमलज्यैष्ठ्यचनिरूपणम् । तथा च मनुः (१।१२५-१२६) —

“सदृशस्त्रीषु जातानां पुत्राणामविशेषतः । न मातृतो ज्यैष्ठ्यमास्ति जन्मतो ज्यैष्ठ्यमुच्यते ॥

“जन्मज्येष्ठ्येन चाव्हानं सुब्रह्मण्यास्वपि स्मृतम् । यमयोश्चैकगर्भेऽपि जन्मतो ज्येष्ठता स्मृता” ॥

२५ संग्रहेऽपि—

“यमयोर्जातयोर्ज्यैष्ठ्यं जन्मतः प्रोच्यते बुधैः । गर्भस्य कस्यचिल्लोके चिराज्जननदर्शनात् ॥

“यमयोर्जननाज्ज्यैष्ठ्यमाधानं चेज्यते बुधैः” इति । यत्तु

“यमलौ चैकगर्भे तु स्त्री वाऽपि पुरुषोऽपि वा । कनिष्ठ आयजातः स्यात्पश्चाज्जातोऽग्रजः स्मृतः” ॥

इति स्मरणं तत्समभागस्थगर्भव्यतिरिक्तोपर्यधोभागस्थविषयम् ।

३० “पार्श्वयोः संस्थितौ गर्भौ तयोर्यः पूर्वजः स तु । ज्येष्ठ इत्युच्यते सद्भिर्जातकादिषु कर्मसु” ॥

इति बादरायणीयस्मरणात् । दत्तविषये विशेषः स्मृत्यंतरेऽभिहितः—

“औरसे तु समुत्पन्ने दत्तो ज्येष्ठो न चेज्यते ।” औरसः कनिष्ठोऽपि दत्तविवाहात्पूर्वं विवहेदित्यर्थः ।

“होमपूर्वं तु यो दत्तः स एव जनकस्य च । गोत्रेण विवहेत्कन्यां पुत्रादौ न निषेधकृत् ॥

३५ “दातृगोत्रसमुद्भूतां गृहीतृकुलसंभवः । उद्वेहद्विवाहादूर्ध्वं नोद्वेहदिति गौतमः” ॥ इति सप्तस्त्री-

पुत्रयोस्तु पितुर्जीवनदशायां जन्मज्येष्ठक्रमेण विवाहः पितृमरणानंतरं तु विवाहे न क्रमनियम इति केचित् । अथ पुंसवनसंस्कृतस्य जन्ममासज्येष्ठमासयोरुत्सवनिषेधमार्हांगिराः—

“मौज्जिनिबंधव्रतकर्मणी च चूडाकुतिश्च प्रथमो विवाहः ।

“स्नानं च पुंसः प्रथमस्य नेष्टं ज्येष्ठाख्यमासेऽपि च जन्ममासे” ॥ कालादर्शेऽपि—

आद्यगर्भोऽस्थयोज्येष्ठमासीनोद्वाहमाचरेत् । प्रथमगर्भप्रसूतयोस्त्रीपुंसयोर्येष्ठमासि उद्वाहकर्म ५ नाचरेदित्यर्थः । रत्नमालायामपि—

“जन्ममासि न च जन्मभे तथा नैव जन्मदिवसे च कारयेत् ।

“आद्यगर्भदुहितुः सुतस्य वा ज्येष्ठमासि न तु पाणिपीडनम्” ॥ अत्रिः—

“जन्मभे जन्मदिवसे जन्ममासे शुभं त्यजेत् । ज्येष्ठमासाद्य गर्भस्य शुभं वर्ज्यं स्त्रिया अपि” ॥

मौज्युद्वाहप्रतिष्ठादीन्केचित्तत्रापि कुर्वते । नारदः—

“जन्ममासे च जन्मर्क्षे न च जन्मदिने तथा । आद्यगर्भसु तस्याथ दुहितुर्वा करग्रहः ॥

“नैवाद्वाहो ज्येष्ठमासे दंपत्योस्तु परस्परम् । ज्येष्ठमासे तयोरेकज्येष्ठः श्रेष्ठस्तु नान्यथा” ॥ गर्गः—

ज्येष्ठस्य ज्येष्ठकन्यया विवाहो न प्रशस्यते । द्वौ ज्येष्ठौ मध्यमौ प्रोक्तौ ज्येष्ठमेकं शुभावहम् ॥

“ज्येष्ठत्रयं न कुर्वीत विवाहं बहुसंमतम् । आषाढः प्रौष्ठपन्माघौ मार्गशीर्षस्तथैव च ॥

“चत्वारो दूषिता मासा वर्णसंस्कारकर्मणि” । सिंहस्थे गुरौ गुरुशुक्रमौढ्यादौ च विवाहनिषेधः । १५ मत्स्यः—

“सिंहस्थिते सुरगुरावधिमासके च ज्येष्ठे तथाऽद्यतनयस्य तु शुक्रगुर्वोः ।

“मौढ्ये तथा स्थविरबालकयोश्च कुर्याज्जन्मस्थिते सुरगुरौ न हि मंगलानि” ॥ गर्गः—

“गुरौ सिंहस्थिते चैव सूर्ये च धनुषि स्थिते । विवाहमपि नेच्छन्ति मुनयः काश्यपादयः” ॥

धनुर्गतेर्के विवाहनिषेधः द्वितीयविवाहनिषेधपरः । यतः प्रथमस्य तत्र दक्षिणायनत्वेन निषेधो २०

विहितः । गुरौ सिंहस्थित इत्यत्राप्ययमेव न्यायः । नारदः—

“गुरौ तु सिंहराशिस्थे भागे भाग्यवती भवेत् । पैत्रैर्यमर्क्षे सा नारी विवाहे विधवा भवेत्” ॥

एतन्नर्मदोत्तरविषयम् । यदाह व्यासः—

“नर्मदोत्तरदेशे तु सिंहस्थे देवमंत्रिणि । विवाहं नैव कुर्वीत निषेधो नास्ति दक्षिणे” ॥

एवं च द्वितीयविवाहकर्तुर्न दोष इतिपर्यवसन्नम् । श्रीधरीथे—

“नर्मदोत्तरभागेषु सिंहस्थेऽमरपूजिते । विवाहादि न कुर्वीत नायं दोषोऽस्ति दक्षिणे ॥

“सिंहराशौ सिंहभागे यावत्तिष्ठति ब्राह्मणः । नर्मदायाम्यकोणेषु न दोषो दक्षिणापथे” ॥

अर्णले—

“अन्नप्राशनवैवाहे पुंसो जन्मर्क्ष एव च । जन्ममासे च वर्ज्यं स्यान्नर्मदातीर उत्तरे ॥

“नर्मदादक्षिणे भागे विवाहादिषु मंगलम् । जन्ममासे शुभं प्रोक्तं बहूनां संमतं कृतम्” ॥ इति ॥ १०

व्यासः—

“अन्नप्राशनमातिथ्यं विवाहो वास्तुकर्म च । रात्रावहनि वा कुर्याच्छेषाण्यहनि कारयेत् ॥

“आषाढः प्रौष्ठपन्माघौ मार्गशीर्षस्तथैव च । चत्वारो दूषिता मासा वर्णसंस्कारकर्मणि ॥

“मीने धनुषि सिंहे च स्थिते सप्ततुरंगमे । क्षौरमन्त्रं न कुर्वीत विवाहं मौजिबंधनम् ॥

“माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासाः शुभावहाः । मध्यमाः कार्तिको मार्गशीर्षको निदिताः परे ॥ ३५



“न कदाचिदशिक्षेषु भानोराद्राप्रवेशनात् । पौषे चैत्रे शुभौ मार्गे नेति प्राह बृहस्पतिः ॥

“श्रावणं केचिदिच्छन्ति नेच्छन्त्यन्ये महर्षयः । कन्याकुम्भकुलीरस्थे खौ क्षौरं विवर्जयेत् ॥

“आषाढादिचतुर्मासांश्चान्द्रान्पौषं च वर्जयेत् । सार्वकालिकमिच्छन्ति विवाहं गौतमादयः” ॥

आपस्तम्बः ( १।२।१२ )—“सर्वतर्वा विवाहस्य शैशिरौ मासौ परिहाप्योत्तमं च नैदाधम् ”

५ इति । शैशिरौ माघफाल्गुनौ निदाधस्य ग्रीष्मस्य यश्रोत्तमौऽस्य आषाढस्तानेतान्छीन्मासान्परिहाप्य वर्जयित्वा सर्वतर्वा विवाहस्य काल इत्यर्थः । आश्वलायनश्च—“सार्वकालिकमेके विवाहमिच्छन्ति ” इति । संग्रहे—

“कार्तिकाश्वयुजौ मासावुद्वाहे दक्षिणायने । शंसन्ति श्रवणं चान्ये मासास्त्वन्ये विगर्हिताः ” ॥

अत्र व्यवस्थामाह । व्यासः—“अधर्म्या ये विवाहास्ते संमताः सार्वकालिकाः” इति । दक्षः—

१० “राक्षसासुरगांधर्वपैशाचा ब्राह्मणस्य तु । निषिद्धे तिथिमासेऽपि संमता इति निश्चयः” ॥  
गृह्यपरिशिष्टे “धर्म्येष्वेव विवाहेषु कालप्रतीक्षणं नाधर्म्येषु ” इति ॥

बोधायनः—

“यस्मिन्काले विरोधोऽस्ति ज्योतिषोक्तागमोक्तयोः । ज्योतिषोक्तं विहायैव स्मृतिचोदितमाचरेत्” ॥

व्यासः—

१५ “विष्णोः प्रस्थापनोत्थानमध्येनैवोपनायनम् । विवाहं नैव कुर्वीत नैव कुर्यान्महोत्सवम् ” ॥

स्मृत्यर्थसारे—

“अंधः श्वित्रि च कुनस्त्री हीनांगः पंगुरेव च । कालप्रदौ भवेद्यत्र कुलक्षयकरं हि तत्” ॥

कालप्रदः मुहूर्तविधाता । देवलः—

“देवोत्सवे प्रवृत्ते तु न मनुष्योत्सवो मतः । तस्मिन्ग्रामे न कुर्वीत कुर्याच्चेत् स विनश्यति ” ॥

२० इति शोभनद्वयसन्निपातादिनिरूपणम् ॥ ऋद्धिपरीक्षामाह आपस्तम्बः—( गृ. सू. १।३।१५-१८ )

“शक्तिविषये द्रव्याणि प्रतिच्छन्नान्युपनिधाय ब्रूयादुपस्पृशेति । नानाबीजानि संसृष्टानि वेद्याः

पां५सूक्ष्मक्षेत्रालोष्ठ५शक्रुच्छामशानलोष्ठमिति । पूर्वेषामुपस्पृशने यथालिङ्गमृद्धिरुत्तमं परिचक्षते” ॥ इति ।

नानाबीजानि ब्रीहियवादिबीजानि संसृष्टान्येकस्मिन्मृत्पिण्डे क्षिप्तानि प्रतिच्छन्नानि कृत्वा

स्थापयित्वा वेद्याहृतान् पां५सूक्ष्मक्षेत्रात्सस्यसंपन्नादाहृतं लोष्ठं शक्रुच्छमशानलोष्ठं च पृथक्-

२५ पिण्डेषु निक्षिप्य प्रतिच्छन्नानि एकस्मिन्भाजने निधाय कन्यां ब्रूयात् एषां पिंडानामेकमुपस्पृशेति

पूर्वेषां तूर्णामुपस्पृशने यथायोग्यमृद्धिः । नानाबीजानामुपस्पृशने प्रजासमृद्धिः वेद्याः पां५सूनां

यज्ञसमृद्धिः । क्षेत्रालोष्ठस्य सस्यसमृद्धिः । शक्रुत्तश्च पशुवृद्धिः । उत्तमं स्मशानलोष्ठं परिचक्षते

गर्हन्ते शिष्टा इत्यर्थः । आश्वलायनः ( १।५।४-६ ) “अष्टौ पिंडान्गृहीत्वा ऋतमग्रे प्रथमं

जज्ञ ऋते सत्यं प्रतिष्ठितं यदिदं कुमार्यभिजाता तदिदमिह प्रतिपद्यतां यत्सत्यं तद्वश्यतामिति

३० पिंडानभिर्मन्त्र्य कुमारीं ब्रूयाद्देशामेकं ग्रहाणेति । क्षेत्राच्चेदुभयतः सस्याद्गृहीयात् अन्न-

वत्यस्याः प्रजा भविष्यतीति विद्यात् । गोष्ठात्पशुमती वेदिपुरीषाद्ब्रह्मवर्चस्विन्यविदासिनो

हृदात्सर्वसंपन्ना देवनात्कितवी चतुष्पथाद्विप्रवाजिनीरिणादधन्या इमशानात्पतिघ्नी ” ॥ इति

इमशानपिंडस्पर्शने तस्या एव वैधव्यं भविष्यतीत्यर्थः । हारीतः—

“प्रत्युद्गहो नैव कार्यो नैकस्मै दुहितृद्वयम् । न चैकजातयोः पुंसोः प्रयच्छेदुहितृद्वयम्” ॥ इति ।

३५ “पितुः स्वसारं मातुश्च मातुलानीं स्तुषामपि । मातुः सपत्नीं भगिनीमाचार्यतनयां तथा ॥



आचार्यपत्नीं स्वसुतां गच्छंस्तु गुरुतल्पगः ” । इति दोषस्मरणात्साक्षात्परंपरया वा “श्वश्रुः पूर्वजपत्नी च मातृतुल्याः प्रकीर्तिताः ” “पितृपत्न्यः सर्वा मातरः ” इत्यतिदेशेन वा तादृशी नोद्वाह्येत्यर्थः । **कन्यादानकालनियमक्रमः संग्रहकारः—**

“भुक्तां समुद्रहेत्कन्यां सावित्रीग्रहणं तथा । उपोषितः स वै दद्यादर्चिताय द्विजातयः ” ॥  
इति भुक्तोद्वाहस्मरणमधर्मविवाहविषयम् । तदाह **व्यासः—**

“गांधर्वासुरयोरेव भुक्ता तु परिणीयते । ब्राह्मादिषु विवाहेषु भोजनं नेति काश्यपः ॥

“ब्राह्मादिषु विवाहेषु पूर्वं होमः प्रशस्यते । कन्यास्वीकरणं पश्चात् अत्ययस्वासुरादिषु ॥

“स्वगृह्योक्तविधानेन पौर्वापर्यव्यवस्थितिः ” ॥ **व्यासः—**

“दद्यात्पूर्वमुखः कन्यां गृह्णीयादुत्तरामुखः । दंपत्योर्वर्धते चायुर्दातुश्चैव विवर्धते ” ॥  
**स्कंदोऽपि—**

“नामगोत्रे समुच्चार्य प्राङ्मुखो वारिपूर्वकम् । उदङ्मुखाय व दद्यात्कन्यां चैव यवीयसीम् ” ॥  
**वसिष्ठस्तु विशेषमाह**

“प्राक्प्रत्यङ्मुखयोश्चैव दातृग्राहकयोः स्थितिः । उद्वाहे चैव गोदानादानयोरेवमेव हि ॥  
**आग्नेयपुराणे—**

“दद्यात्तु प्राङ्मुखस्तस्मै वरः प्रत्यङ्मुखो वधूम् । गृहीत्वा शोभने लग्ने ईक्षेदापादमस्तकम् ” ॥ १५

**आश्वलायनः—**

“वरस्योदक्स्थितां कन्यां प्राङ्मुखीं प्राङ्मुखायताम् । समभ्यर्च्य पिता दद्यात्तत्पाणौ मंत्रवज्जले ॥

“दद्यात्प्रत्यङ्मुखः स्थित्वा गृहीत्वा प्राङ्मुखोजलिम् ” ॥ **बोधायनगृह्ये—** अत्र स्मृतीनां विरोधे विकल्पो द्रष्टव्यः । **व्यासः—**

“आच्छाद्यालंकृतां कन्यां गृह्णन् वामकरेण तु । गोत्रमादौ तु संकीर्त्य प्रपितामहपूर्वकम् ॥ २०

“प्रपितामहपूर्वाय फलमुद्दिश्य दापयेत् । नांदीमुखे विवाहे च प्रपितामहपूर्वकम् ॥

“नामसंकीर्त्तयेद्विद्वानन्यत्र पितृपूर्वकम् ” ॥ **दक्षः—** “नामगोत्रे समुच्चार्य प्रपितामहपूर्वकम् ”

इति । **जमदग्निः—** “कन्यां वामकरे धृत्वा प्रपितामहपूर्वकम् ” इति ॥ **देवीपुराणेऽपि—**

“गोत्रं नाम तु संकीर्त्य कीर्त्तयेत्प्रपितामहम् । पितामहं च पितरं कन्यामेवं वराय च ॥

“आसीनायास्त्रियास्तिष्ठन् गृह्णामीत्यद्भिरंततः । गृह्णीयात्पाणिमुत्तानं सांगुष्ठांगुलिदक्षिणाम् ” ॥ इति । २५

**औपासनात्पूर्वमग्निनाश पुनर्विवाहः । संग्रहे—**

“पूर्वमौपासनारंभादग्निनाशो यदा भवेत् । पुनर्विवाहः कर्त्तव्यः परतस्तु न विद्यते ” ॥ “ऋग्वेदिनां प्रवेशहोमात्पूर्वं यजुर्वेदिनामौपासनारंभात्सामवेदिनां लेखाहोमात्पूर्वमग्निनाशो पुनर्विवाहः ” इति **बोधायनः—** “अथ चेदौपासनारंभात्प्राक् ज्वलनस्य नाशः पुनर्विवाहं कुर्वीत ” इति । पुनर्विवाहकल्पोऽपि तेनैव व्याख्यातः—

“अङ्कुरं च प्रतिसरं वरणं च प्रतिग्रहम् । वाससा परिधानं च कर्माण्येतानि वर्जयेत् ” ॥ इति ।

उपनयनविवाहजातकर्मश्मशानाग्निनाशो प्रायश्चित्तमाह **बोधायनः—** “अथ यद्युपनयनाग्निर्विवाहाग्निर्जातकर्मग्निः स्मशानाग्निरा चतुर्थाद्वा द्वादशाहादा संचयाद्वा तस्मात्सर्वं तदपहतेति प्रोक्ष्य स्थंडिलमुद्धृत्याग्निमुपसमाधाय संपरिस्तीर्य प्रायश्चित्तं जुहोत्ययाश्चाग्ने पंच

होता ब्राह्मण एक होता मनस्वतीमिंदाहुती महाव्याहृतिव्याहृतयश्च प्रायश्चित्तं जुहुयात् ” इति बोधायनगृह्ये—

“ औपासनारंभकालमाह आपस्तंबः ( गृ. सू. ३।७।१९ )—

“ सायं प्रातरत ऊर्ध्वं हस्तेनैते आहुती तंडुलैर्यवैर्वा जुहुयात् ” इति । अत ऊर्ध्व-  
५ माग्नेयस्थालीपाकांताद्विवाहादूर्ध्वं रात्रावौपासनस्यारंभः । यदि नव नाड्यो नातीताः । अतीताश्चेद-  
परेद्युः सायमेवाग्निहोत्रवेलायामिति गृह्यतात्पर्यदर्शने । स्मृतिरतने—

“ त्रेधा कृत्वा यामिनीं पूर्वभागे स्थालीपाको नित्ययुक्तो द्वितीये—

“स्थालीपाको नैव युक्तस्तृतीये नैव स्थाली नैव नित्यो विवाहे” ॥ नित्य औपासनहोमः ।

व्यासः—

१० “ रात्रौ विवाह उत्पन्ने बन्धिं परिचरेत्तदा । रात्रावतीतकालश्चेत् श्वः सायं तदुपक्रमेत् ॥

“ प्रातर्होमः संगवांते काले त्वनुदिते तथा । सायमस्तमिते होमकालस्तु नवनाडिका ” ॥ इति ।

अथ स्थालीपाकोपक्रमः । तत्रापस्तंबः ( ३।७।१७—१८ )—“ एवमत ऊर्ध्वं दक्षिणा-  
वर्जमुपोषिताभ्यां पर्वसु कार्यः । पूर्णपात्रस्तु दक्षिणेत्येके ” इति । अत ऊर्ध्वमाग्नेयस्थाली-  
पाकात् परमित्येवं वर्दताग्नेयस्थालीपाकानंतरं शेषहोमात्पूर्वं पर्वसंभवेऽपि आग्नेयस्थालीपाकः

१५ कार्य इत्युक्तं भवति । यथाहुः—

“ विवाहशेषमध्ये तु पर्वण्युत्पातिते सति । तस्मिन्नपि च कर्त्तव्यः स्थालीपाको यथाविधि ॥

“ तत्र यद्यप्यमावास्या विवाहात्स्यादनंतरम् । यदि वा पौर्णमासी स्यात् स्थालीपाकक्रियामिति ” ॥  
इति । अत्रामावास्यायामपि स्थालीपाकस्मरणमागामिपौर्णिमास्यां मौढ्यादिदोषदुष्टत्वे द्रष्टव्यम् ।  
तदाह गौतमः—

२० “ पाकयज्ञस्य चारंभमन्वारंभणमेव च । पौर्णिमास्यां यजेत्पूर्वं दर्शनैव कथंचन ॥

“ मौढ्यादि दोषमासे तु पौर्णिमास्यां यजेत्कथम् । दर्शं वाऽपि यजेत्पूर्वं पौर्णिमासीममामपि ॥

“ अतिकालांतरारंभो यजमानस्य पापकृत् । आयुः श्रियं यशो हन्यात् तस्मात्तौ न व्यतिक्रमेत् ” ॥  
यावद्दर्शं पौर्णिमासस्य कालत्वाद्दर्शात् पूर्वमेव पंचम्यादौ द्वितीयां चतुर्दशीं सप्तदशीं विनैव  
त्विति निषेधात् पौर्णिमासस्थालीपाकं कृत्वा स्वकाले त्वमामपि यजेत् । न तु प्रतिपदि पौर्णि-

२५ मासमपि सह यजेदित्यर्थः । यत्तु

“ मौढ्ये वाऽप्यधिमासे वा ग्रहणे चंद्रसूर्ययोः । अन्वारंभं प्रकुर्वीत समनंतरपर्वणि ” ॥  
इति स्मरणम् । यदपि—

“ आषाढेऽप्यधिमासे वा संक्रांतौ ग्रहणेऽपि वा । अन्वारंभं प्रकुर्वीत समनंतरपर्वणि ” ॥  
इति तत्समनंतरपर्वण्यवश्यकर्तव्यताप्रतिपादनपरम् । मौढ्यादौ तु दोषमरणात् । यथाहुः—

३० “ आधानानंतरा पौर्णिमासी चेन्मलमासगा । तत्रारंभणीया स्यादिति बृद्धेन भाषितम् ” ॥  
स्मृत्यर्थसारे च—“ वसंतकालेऽपि मलमासादिकं चेत् कर्मान्वारंभो नास्ति अन्वारंभणादिकं  
न कर्त्तव्यम् ” इति । अत्रान्वारंभं स्थालीपाकः ।

“ उपरागोऽधिमासो वा यदि प्रथमपर्वणि । नाहरेत्प्रथमामिष्टिं मौढ्ये च गुरुशुक्रयोः ॥

“ स्थालीपाकक्रिया कुर्याद्विवाहादुत्तरायणे । पितृमासचतुष्केषु यदि कुर्याद्विनश्यति ॥

३५ “ आरंभं दर्शपूर्णध्याग्निहोत्रस्य चादिमम् । प्रतिष्ठामपि कर्माद्यं मलमासे विवर्जयेत् ॥

“प्रारब्धे तु तृतीयादौ प्रोक्तदोषो न विद्यते । ऋतुत्रयमतिक्रम्य स्थालीपाकं विना कृतम् ॥

“अजस्रं लौकिकं विद्यान्मासत्रयमथापि वा ” ॥ इदं देशांतरगमनविषयम् ।

“ऋतुमेकमतिक्रम्य स्थालीपाकं विना कृतम् । अजस्रं लौकिकं विद्यादिति वेदविदो विदुः ” ॥

इति स्मरणात् । इति स्थालीपाकोपक्रमनिरूपणम् । अथाधिवेधनम् । तत्र मनुः (१।८०-८३)

“मद्यपाऽसद्यवृत्ता च प्रतिकूला च या भवेत् । व्याधिता चाधिवेत्तव्या हिंसाऽर्थग्री च सर्वदा ॥ ५

“वंध्याऽष्टमेधिवेद्याद्धे दशमे तु मृतप्रजा । एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥

“या रोगिणी स्यात्तु हिता संपन्ना चैव शीलतः । सानुज्ञाप्याऽधिवेत्तव्या नावमान्या च कर्हिचित् ॥

“अधिविन्ना तु या नारी निर्गच्छेद्रोषिता गृहात् । सा सद्यः संनिरोद्धव्या त्याज्या वा कुलसन्निधौ” ॥

त्यागः जनककुले प्रेषणम् । याज्ञवल्क्यः ( आ. ७३ )—

“सुरापी व्याधिता धूर्ता वंध्याऽर्थघ्न्यप्रियंवदा । स्त्री प्रसूश्चाधिवेत्तव्या पुरुषद्वेषिणी तथा ” ॥ १०

यस्यां हि विद्यमानायां भार्यातरपरिग्रहः साऽधिवेत्तव्येत्यर्थः ।

“अधिविन्ना तु भर्तव्या महदेनोऽन्यथा भवेत् । यत्रानुकूल्यं दंपत्योस्त्रिवर्गस्तत्र वर्धते (७४) ॥

“आज्ञासंपादिनीं दक्षां वीरसूं प्रियवादिनीम् । त्यजन्दाप्यस्तृतीयांशमद्रव्यो भरणं स्त्रियाः” ॥ (७६)

“त्यजन्नधिविन्दन् स्वस्य धनस्य तृतीयांशं दाप्यः । निर्धनस्तु स्त्रिया भरणं ग्रासाच्छादनादि

दाप्य इत्यर्थः । पराशरमाधवीये—

“धर्मविघ्नकरीं भार्यामसतीं चातिकोपिनीम् । त्यजेद्धर्मस्य रक्षार्थं तथैवाप्रियवादिनीम् ” ॥

त्यजेदधिविन्देत् । दक्षः—

“प्रथमा धर्मपत्नी स्याद्वितीया रतिविधनी । दृष्टमात्रफलं तस्यामदृष्टं नोपलभ्यते ॥

“धर्मपत्नी समाख्याता निर्दोषा यदि सा भवेत् । दोषेष्वपि न दोषः स्यादन्योद्वाहे विजानतः” ॥

स्मृतिरत्ने—

“एकामुत्क्रम्य कामार्थमन्यां लब्धुं य इच्छति । समर्थस्तोषयित्वार्थैः पूर्वोद्दामपरां वहेत् ” ॥

बोधायनः ( २।२।५९ )—

“अप्रजां दशमे वर्षे स्त्रीप्रजां द्वादशे त्यजेत् । मृतप्रजां पंचदशे सद्यस्त्वप्रियवादिनीम् ” ॥

दशम इत्याद्यार्तवानंतरं वेदितव्यं न तु पाणिग्रहणात् । आपस्तम्बः ( २।२।१२-१३ )—

“धर्मप्रजासंपन्ने दारे नान्यां कुर्वीतान्यतराभावे कार्या । प्रागग्न्याधेयात्” इति । श्रौतेषु स्मार्तेषु च १५

कर्मसु श्रद्धाभक्तिश्च धर्मसंपत्तिः पुत्रवत्वं प्रजासंपत्तिः एतद्युक्ते दारे सति अन्यां भार्यां नोद्वहेत् ।

धर्मप्रजयोरन्यतरस्याभावे कार्या उद्वाह्या । अत्र दारे सतीति वचनान्मृते तस्मिन्प्रागूर्ध्वं चाधाना-

त्सत्यामपि पुत्रसंपत्तौ धर्मसंपत्त्यर्थं दारग्रहणं भवत्येव ।

“दारशब्दस्यैकवचनस्यौगश्चछांदसः । शातातपः—

“मद्यपानप्रवृत्ता च दीर्घरोगा च या भवेत् । प्रतारिकाऽनपत्या स्त्री प्रसूः परुषभाषिणी ॥ १०

“अर्थग्री च पतिद्वेषी स्त्री तिष्ठत्यपि चोद्वहेत् ” । पादेन वाऽक्षरिप्रयोगो भवत्यार्षः । रामायण-

देवीमहात्म्ययोस्तथादर्शनात् । स्मृत्यंतरे—

“व्याधितां स्त्रीप्रजां वन्ध्यामुन्मत्तां विगतार्त्तवाम् । अदुष्टाऽर्हति इत्यकुं तीर्थतो न तु धर्मतः” ।

तीर्थं योनिः । गर्गः—

“गृही स्यादेकपत्नीकः सकामी चेद्वहेत्पराम् । तृतीयां नोद्वहेत्कन्यां चतुर्थीमपि चोद्वहेत्” ॥  
अर्कविवाहः ।

“तृतीयामुद्वहेत्कन्यां मोहादज्ञानतोऽपि यः । धनधान्यायुषां हानिः रोगी स्याद्यदि जीवति ॥  
“तृतीयोद्वाहसिद्ध्यर्थमर्कवृक्षं समुद्वहेत् । ग्रामात्प्राचीमुदीचीं वा गच्छेद्यत्रैव तिष्ठति ॥

- ५ “यथार्हं शोभनं कृत्वा कृत्वा भूमिं च शोभिताम् । वस्त्रेण तंतुना वेष्ट्य ब्राह्मणस्तं परिश्रयेत् ॥  
“स्वशाखोक्तविधानेन होमान्तेऽग्निं स्व आत्मानि । आरोप्यैव वरो धीरो ब्रह्मचर्यं चरेत् ज्यहम् ॥  
“एकाहमपि वा कन्यामुद्वहेद्विशंकितः” । अयं च द्वितीयादिविवाहः प्रजासंपत्त्यभावे  
मृतायां वा द्रष्टव्यः । श्रुतिः—“जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवा जायते ब्रह्मचर्येणर्षिभ्यो यज्ञेन  
देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः । तस्मादेको द्वे जाये विंदते तस्मादेको बह्वीर्जाया विंदत” इत्यादि  
१० श्रुतितो धर्मप्रजार्थमनेकभार्यापरिग्रहावगमात् ।

द्वितीयविवाहकालः । गार्ग्यः—

“भार्यांतरविवाहः स्यादयुगमे वत्सरे शुभः । युगमे भर्तृविनाशाय गार्ग्यस्य वचनं यथा” ॥

वसिष्ठः

“भार्याहीनस्तु वैवाहं कुर्यात्तस्मिन्स्तु वत्सरे । वत्सरांतरिते कुर्यादयनांतरितेऽपि वा” ॥

- १५ युगमेऽप्ययुगमासे वा शौनको मुनिरब्रवीत्” ॥

अथ परिवेदनम् । गर्गः—

“सोदर्ये तिष्ठति ज्येष्ठे न कुर्याद्वारसंग्रहः । आवसथ्यं तथाऽऽधानं पतितस्त्वन्यथा भवेत्” ॥

आवसथ्यमावसथ्याधानम् । आधानं गार्हपत्याद्याधानम् । यमः—

“पितृव्यपुत्रान्सापत्नान्परपुत्रांस्तथैव च । दाराग्निहोत्रधर्म्येषु नाधर्मः परिविंदतः” ॥

- २० परपुत्रा दत्तक्रीतादयः । शातातपः—

“कृत्रिभे देशांतरस्थे च पतिते भिक्षुकेऽपि वा । योगशास्त्राभियुक्ते च न दोषः परिवेदने” ॥

कात्यायनः—

“देशांतरस्थकृत्रिभेकवृषणानसहोदरान् । वेक्ष्यातिसक्तपतितशूद्रतुल्यातिरोगिणः ॥

“जडमूकाधबधिरकुब्जवामनखेटकान् । अतिवृद्धानभार्याश्च कृषिसक्ताश्च कामतः ॥

- २५ “धनवृद्धिप्रसक्ताश्च कामतः कारिणस्तथा । कुहकोन्मत्तचोराश्च परिविन्दन्तु दुष्यति” ॥  
खेटकः भग्नदोःपादद्वयः । अभार्या नैष्ठिकब्रह्मचारिणः । कामतः कारिणः स्वेच्छयैव विवाहान्निवृत्ताः ।  
तेषामपि परिविन्नत्वं नास्तीति प्रतिभाति । यद्यपि जडमूकादीनामपि विवाहोऽस्ति तथापि  
परिविन्दन्तु दुष्यति । पराशरः

“द्वादशैव तु वर्षाणि ज्यायां धर्मार्थयोगतः । न्याय्यः प्रतीक्षितुं भ्रात्रा श्रूयमाणः पुनः पुनः ॥

- ३० धर्मार्थयोः धर्मार्थमर्थार्थं च देशांतरं गतः । जीवतीति पुनः पुनः श्रूयमाणः द्वादशवर्षाणि  
प्रतीक्ष्य इत्यर्थः । वसिष्ठोपि— “अष्टौ दशद्वादशवर्षाणि ज्येष्ठभ्रातरमनिविष्टमप्रतीक्षमाणः  
प्रायश्चित्तीभवति” इति । अनिविष्टमकृतविवाहाग्निहोत्रम् । कार्यान्तरार्थः देशांतरगतविषये  
अष्टौ दश वेति पक्षद्वयम् । धर्मार्थमर्थार्थं वा गतविषये द्वादशवर्षाणीति विवेकः । विद्या-  
ग्रहणार्थं गतविषयेऽपि गौतमः (अ. १८ सू. १७-१८)—“विद्यासंबन्धे भ्रातरि चैवं ज्यायसि  
३५ यदीयान् कन्यागन्त्युपयमेष्विति” । शंखः—

“ज्येष्ठे तिष्ठत्यनूढे वा अग्निहोत्राधिकारिणि । अनुज्ञया विनाऽधानं विवाहं नैव कारयेत्” ॥  
संग्रहे—

“देशान्तरगते ज्येष्ठे द्वादशाब्दं निरीक्ष्य तु । पश्चात्कनिष्ठो विधिवत्कुर्याद्वै दारसंग्रहम्” ॥  
एवं प्रतीक्षणमुन्मत्तादिव्यतिरिक्तविषयम् ।

उन्मत्तादीनां विवाहनिराकरणम् । तथा चंद्रिकायाम्—

“उन्मत्तः किल्बिषी कुष्ठी पतितः क्लीब एव वा । राजयक्ष्मामयावी च न न्याय्यः स्यात्प्रतीक्षितुम् ॥

“मत्तोन्मत्तजडक्लीबपतितानां द्विजन्मनाम् । नोद्वाहो नैव संस्कारो नाशौचं नोदकक्रिया ॥

“रंभाविवाहः कर्त्तव्यस्तदलाभेऽर्कशाखया । विवाहं मनुजाः कुर्युरित्येतन्मनुरब्रवीत्” ॥

मनुशातातपौ ( ३।१७१ )—

“दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते । परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः” ॥ १०

पराशरः ( ४।२० )—

“परिवित्तिः परिवेत्ता यया च परिविद्यते । सर्वे ते नरकं यांति दातृयाजकपंचमाः ॥

“कुब्जवामनघंडेषु गद्गदेषु जडेषु च । जात्यंधे बधिरे मूके न दोषः परिवेदने ( २३ ) ॥

“पितृव्यपुत्रः सापत्नः परनारीसुतस्तथा । दाराग्निहोत्रसंयोगे न दोषः परिवेदने ( २४ ) ॥

“परिवेतुर्न चाग्निस्तु न वेदा न तपांसि च । न च श्राद्धं कनिष्ठस्य या च काऽन्या विरूपिता” ॥ १५

विवाहाधिकारण्यां ज्येष्ठायां सत्यां कनिष्ठाया उद्वाहो न कार्यः । विरूपितायां तु ज्येष्ठाया-  
मनूढायामपि कनिष्ठायां उद्वाहो न दोषयेति ।

“ज्येष्ठायां यद्यनूढायामुह्यते त्वनुजा भवेत् । सैवाग्नेदिधिषूर्जेया पूर्वा तु दिधिषूः स्मृता” ॥

बोधायनोऽपि ( २।१।३९ )—

“परिवित्तिः परिवेत्ता च या चैनं परिविंदति । सर्वे ते नरकं यांति दातृयाजकपंचमाः” ॥ २०

कन्यायाः पातित्ये सति कृतप्रायश्चित्ताया एव विवाह इत्याह यमः—

“स्त्री यदा बालभावेन महापापं करोति हि । प्रायश्चित्तव्रतस्यार्धं पित्रा तु व्रतचारिणीम् ॥

“उद्बहेदभिरूपां तामन्यथा पतितस्तु सः” ॥

पतितादीनां धर्मनिरूपणम् पतितैः सह योनिसंबंधे पातित्यमाह व्यासः—

“संवत्सरेण पतति संसर्गः कुरुते तु यः । यानशय्यासनैर्नित्यं जानन्वै पतितो भवेत् ॥

“याजनं योनिसंबंधं तथैवाध्यापनं द्विजः । कृत्वा सद्यः पतेत् ज्ञानात्सहभोजनमेव वा” ॥

देवलः—“याजनं योनिसंबंधं स्वाध्यायं सह भोजनम् । कृत्वा सद्यः पतत्येव पतितेन न संशयः ॥

आपस्तम्बः ( १।२।१५ )—

“न पतितैः संव्यवहारो विद्यते” इति । कृतप्रायश्चित्तैरपि पतितैरुत्पादितानां

पुत्राणामपि पातित्यमस्तीति पूर्वपक्षपूर्वकं प्रतिपादयति स एव ( १।२९।८—१८ )—“अथा- ३०

भिशास्ताः समवसाय चरेयुर्धार्म्यमिति सांशित्येतेरतरयाजका इतरेतराध्यापका मिथो विवह-

मानाः । पुत्रान्संनिष्पाद्य ब्रूयुर्विप्रव्रजतास्मदेवं ह्यस्मत्स्वार्याः संप्रत्यपत्स्यन्तेत्यथापि न सेंद्रियः

पतति । तदेतेन वेदितव्यमंगहीनो हि सांगं जनयति । मिथ्यैतदिति हारीतः । दधिधानीसधर्मा स्त्री

भवति । यो हि दधिधान्यामप्रयतं पय आतच्य मंथति न तेन धर्मकृत्यं क्रियते । एवमशुचि शुक्लं

यन्निवर्त्तते न तेन सह संप्रयोगो विद्यते” इति । अभिशास्ताः पतिताः समवसाय चरेयुः । अवसानं ३५

गृहम् समित्येकीभावे । ग्रामाद्बहिरेकस्मिन्प्रदेशे गृहाणि कृत्वा चरेयुः । धार्म्यं धर्म्यं वक्ष्यमाणं

- वृत्तमिति सांशित्य संशितां तीक्ष्णां बुद्धिं कृत्वा निश्चित्येत्यर्थः । इतरेतरं याजयंत इतरे-  
तरमध्यापयंतः परस्परं विवाहसंबंधं कुर्वन्तश्चरेयुर्वर्तेरात्रिति । अथ ते पुत्रान् संनिष्पाद्य ब्रूयुः ।  
हे पुत्राः अस्मदस्मत्तः विप्रव्रजत विवधं प्रकर्षेण च स्नेहमुत्सृज्यार्यसमीपं गच्छत । एवं ह्यस्मत्सु  
अस्मासु आर्याः शिष्टाः संप्रतिपत्स्यन्ते संप्रतिपत्तिं करिष्यन्ति । आर्याणामप्येतदभिप्रेतं भविष्यति  
५ यस्मादस्माभिरव पतनीयं कर्मानुष्ठितं न च भवद्भिर्न च पतितेनोत्पादितस्य पातित्ये मन्य-  
त्वात् । एतदेवोपपादयति । अथापि न सेंद्रियः पतति । न हि पतितो भवन्निन्द्रियेण सह पतति ।  
पुरुष एव पतति नेंद्रियं शुक्लमिति । तदनंतरोक्तमर्थरूपमेतेन वक्ष्यमाणेन निदर्शनेन वेदितव्यं ।  
पातित्यम् । चक्षुराद्यंगहीनोऽपि सांगं चक्षुरादिमतं जनयति । एवमधिकाराविकलः साधिकारं जन-  
यिष्यति । स्त्रिया अपि कारणत्वात्तस्याश्च दोषाभावात् । दूषयति मिथ्यैतदिति । एतदनंतरोक्तं  
१० मिथ्या न युक्तमिति हारीतो मन्यते । हारीतग्रहणं पूजार्थम् । दधि धीयते यस्यां सा दधिधानी ।  
स्थाली । तया सधर्मा सदृशी स्त्री भवति । ततः किं । यो हि पुरुषो दधिधान्यां स्थात्यामप्रयतं  
श्वानुपहतं पय आतच्य तक्राद्यातंच तेन संकृत्य । मंथति न तेन तदुत्पन्नममृतादिना धर्मकृत्यं  
यागादिकं क्रियते । एवं पतितसंबन्धेनाशुचि शुक्लं स्त्रियां निषिकं शोणितेनाक्तं यन्निर्वर्तते येन  
रूपेण निष्पद्यते न तेन सह संप्रयोगो विद्यते शिष्टानामित्यर्थः ।  
१५ बोधायनः (२।१।६२)—“संवत्सरेण पतति पतितेन समाचरन् । याजनाध्यापनाद्यौनात्सद्यः”  
इति । स एव ( २।१।४९-५१ )—“ अथ पतिताः समवसाय धर्माश्चरेयुरितरेतरयाजका  
इतरेतराध्यापका मिथो विवाहमानाः पुत्रान्संनिष्पाद्य ब्रूयुर्विप्रव्रजतास्मत् एवमार्यानिपि ।  
संप्रतिपत्स्यन्तेथापि न सेंद्रियः पतति तदेतेन वेदितव्यमंगहीनोऽपि सांगं जनयेन्मिथ्यैतदिति  
हारीतः । दधिधानीसधर्माः स्त्रियः स्युर्यो हि दधिधान्यामप्रयतं पय आतच्य मंथति न तच्छिष्टा  
२० धर्मकृत्येषूपयोजयत्येवमशुचिशुक्लं यन्निर्वर्तते न तेन सहसंप्रयोगो विद्यते अशुचिशुक्लोत्पन्नानां  
तेषामिच्छतां प्रायश्चित्तिः । पतनीयानां वृतीयोऽशस्त्रीणामंशस्तृतीयः इति ॥ समानायामप्युत्पन्नौ  
पुत्र एव पतति न दुहिता । तथा च । वसिष्ठः (१।७।५१-५२)—“पतिनोत्पन्नाः पतितो भवंत्यन्यत्र  
स्त्रियाः । सा हि परगामिनी । तामशुक्लामुपेयात्” इति । अशुक्लां कृतप्रायश्चित्तामुपेयादित्यर्थः । तथा  
च याज्ञवल्क्यः ( प्रा. २६१ )—“ कन्यां समुद्रहेदेषां सोपहारामकिंचनाम्” इति । एषां ब्रह्महादी  
२५ नामकिंचनामशुक्लाम् । हारीतोऽपि—“ तस्य तु कुमारीमहोरात्रोषितां प्रातः शुद्धामहतेन  
वाससाऽऽच्छादितां नाहमेतेषां मम नेते इति त्रिरुच्चैरभिधानां तीर्थं स्वगृहे वोद्वहेत् ” इति ।  
वारसंग्रहस्य फलमाह । याज्ञवल्क्यः ( आ. ७८ )—  
“ लोकानन्त्यं दिवः प्राप्तिः पुत्रपौत्रपौत्रकैः । यस्मात्तस्मात्स्त्रियः सेव्याः कर्त्तव्याश्च सुरक्षिताः” ॥  
पुत्रादिभिः लोक आनन्त्यं वंशस्याविच्छेद अग्निहोत्रादिभिश्च स्वर्गप्राप्तिरेतद्वयं यस्मात् स्त्रीभ्य एव  
३० भवति तस्मात्स्त्रियः सेव्याः उपभोग्याः प्रजार्थं रक्षितव्याश्च धर्मार्थमित्यर्थः ।  
स्त्रीरक्षणक्रमः । मनुः ( १।२-१७ )—  
“ अस्वतन्त्राः स्त्रियः कार्याः पुरुषैः स्वैर्दिवानिशम् । विषये सज्जमानाश्च संस्थाप्या ह्यात्मनो वशे ॥  
“ पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने । पुत्रस्तु स्थविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति” ॥ इति ।  
‘पुत्रस्तु स्थविरीभाव’ इत्यनेन सत्यपि भर्तुरि पुत्रेणैव पालनं कार्यमिति प्रतीयते । “ वृद्धौ च  
३५ मातापितरौ ” इत्यादिना तस्यैव पालनाधिकारविधानात्स्वातन्त्र्यं च स्वरक्षन्नयोग्यकारविधा-  
यिनीत्वम् ।

- “सूक्ष्मेभ्योऽपि प्रसंगेभ्यः स्त्रियो रक्षया विशेषतः । द्वयोर्हि कुलयोः शोकमावहेयुररक्षिताः ॥ ( ५ )
- “इमं हि सर्ववर्णानां पश्यन्तो धर्ममुत्तमम् । यतन्ते रक्षितुं भार्या भर्तारो दुर्बला अपि ॥ ( ६ )
- “स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च । स्वं च धर्मं प्रजाश्चैव जायां रक्षन्ति रक्षति ॥ ( ७ )
- “पतिर्भार्या प्रविश्य स्वां गर्भो भूत्वेह जायते । जाययास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः ॥
- “यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथाविधम् । तस्मात्प्रजाविशुद्ध्यर्थं स्त्रियो रक्षेत्रयत्नतः ॥ ५
- “न कश्चिद्योषितः शक्तः प्रसह्य परिरक्षितुम् । एतैरुपाययोगैस्तु शक्याः स्युः परिरक्षितुम् ॥
- “अर्थस्य संग्रहे चैनान् व्यये चैव नियोजयेत् । शौचे धर्मेऽन्नपक्त्त्यां च पारिणह्यस्य चेक्षणे ॥
- “अरक्षिता गृहे रुद्धाः पुरुषैरातकारिभिः । आत्मानमात्मना यास्तु रक्षेयुस्ताः सुरक्षिताः ॥
- “पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् । स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीणां दुष्णानि षट् ॥
- “नैता रूपं प्रतीक्षन्ते नासां वयसि संस्थितिः । विरूपं रूपवंतं वा पुमानित्येव भुञ्जते ॥ १०
- “पौत्रैश्चालाचालचित्याच्च नैस्नेह्याच्च स्वभावतः । रक्षिता यत्नतोऽपीह भर्तृष्वेता विकुर्वते ॥
- “एवं स्वभावं ज्ञात्वाऽऽसां प्रजापतिनिसर्गजम् । परमं यत्नमातिष्ठेत्पुरुषो रक्षणं प्रति ॥
- “शय्यासनमलंकारं कामं क्रोधमनार्जवम् । द्रोहभावं कुचर्यां च स्त्रिभ्यो मनुरकल्पयत् ” ॥
- “यादृग्गुणेन भर्ता स्त्री संयुज्येत यथाविधि । तादृग्गुणा सा भवति समुद्रेणेव निम्नगाः ॥ ( २२ )
- “प्रजनार्था महाभागाः पूजार्हा ग्रहदीप्तयः । स्त्रियाश्च यस्य गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥ ( २६ ) १५
- “प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टा संतानार्थं च मानवाः । तस्मात्साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः ॥ ( २६ )
- “उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् । प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम् ॥ ( २५ )
- “अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा । दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च हि ॥ ( २८ )
- “विधाय वृत्तिं भार्यायाः प्रवसेत्कार्यवाचनम् । अवृत्तिकर्षिता हि स्त्री प्रदुष्येत्स्थितिमत्यपि ॥ ( ७४ )
- “विधाय प्रोषिते वृत्तिं जीवेन्नियममास्थिता । प्रोषते त्वविधायैव जीवेच्छिल्पैरगर्हितः ॥ ( ७५ ) २०
- “यदि स्वाश्वापराश्चैव विदैन्योषितो द्विजाः । तासां वर्णक्रमेण स्याज्ज्यैष्ठं पूजा च वैश्मनि ॥ ( ८५ )
- “भर्तुः शरीरशुश्रूषा धर्मकार्यं च नैत्यकम् । स्वां चैव कुर्यात्सर्वेषां नास्वजातिः कथंचन ॥ ( ८६ )
- “यस्तु तत्कारयेन्मोहात्स्वजात्या स्थितयाऽन्यया । यथा ब्राह्मणचंडालः पूर्वदृष्टस्तथैव सः ॥ ( ८७ )
- “तथा नित्यं यतेयातां स्त्रीपुंसौ तु कृतक्रियौ । यथा नातिचरतां तौ नियुक्तवितैरतरम् ॥ ( १०२ )

दक्षः—

- “ग्रहाश्रमात्परो नास्ति यदि भार्या वंशानुगा । तथा धर्मार्थकामारुखं त्रिवर्गफलमश्नुते ॥
- “आनुकूल्यं कलत्रस्य स्वर्गो भवति निश्चितम् । प्रातिकूल्यं कलत्रस्य नरको नात्र संशयः ॥
- “स्वर्गेऽपि दुर्लभं ह्येतदनुरागः परस्परम् । नक्तमेकं विरक्तं चेत्तस्मात्कष्टतरं तु किम् ॥
- “ग्रहाश्रमः सुखस्तस्य पत्नीमूलं हि तत्सुखम् । सा पत्नी या विधिज्ञा तु चित्तज्ञा वंशवर्तिनी ॥
- “दुःखांतिकः कलिर्भेदश्चित्तपीडापरस्परम् । प्रतिकूलकलत्रस्य द्विदारस्य विशेषतः ॥ ३०
- “जलूकावत्स्त्रियः सर्वा भूषणाच्छादनाशनैः । सुपूजिता सुखाद्वाऽपि पुरुषं ह्यपकर्षति ॥
- “जलूका रक्तमादत्ते केवलं सा तपस्विनी । इतरा तु धनं चित्तं मांसं वीर्यं तथा सुखम् ॥
- “साशंका बालभावे तु यौवने विषयोन्मुखी । तृणवन्मन्यते पश्चाद्बुद्धभावे स्वक्रं पतिम् ॥
- “अकार्यं वर्तमाना सा स्नेहेन न निवारिता । आवार्या तु भवेत्पश्चाद्यथाव्याधिरुपेक्षितः ॥
- “अनुकूला सदा हृष्टा दक्षा साध्वी प्रजापतिः । एभिरेव गुणैर्युक्ता श्रीरेव स्त्री न संशयः ॥ ३५



“प्रहृष्टमानसा नित्यं स्थानमानविचक्षणा । भर्तुः प्रियकरी या तु सा भार्या इतरा जरा ॥

“अदुष्टां विनतां भार्या यौवने यः परित्यजेत् । सप्तजन्म भवेत्स्त्रीत्वं वैधव्यं च पुनः पुनः ॥

“दरिद्रं व्याधितं मूर्खं भर्तारं याऽवमन्यते । सा मृता जायते स्त्रीश्वा सूकरी च पुनः पुनः ॥

“जीवे भर्तारं या नारी उपोष्य व्रतचारिणी । आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥

५ “जीवभार्या शिशुभ्रातृमित्रद्वन्द्वसमाश्रिता । यस्यैतानि विनीतानि तस्य लोकेऽपि गौरवम् ॥

याज्ञवल्क्यः ( आ. ७५ ) —

“मृते जीवति वा पत्यौ या नान्यमुपगच्छति । सेह कीर्तिमवाप्नोति मोदते चोभया सह ॥

“स्त्रिभिर्भर्तुवचः कार्यमेष धर्मः परः स्त्रियाः । आ शुद्धेः संप्रतीक्ष्यो हि महापातकद्वषितः ॥ ( ७७ )

“भर्तृभ्रातृपितृज्ञातिवशूश्वशुरदेवैः । बंधुभिश्च स्त्रियः पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ॥ ( ८२ )

१० “संयतोपस्करा दक्षा हृष्टा व्ययपराद्भुमुखी । कुर्याच्छुशुरयोः पादवंदनं भर्तृतत्परा” ॥ ( ८३ )

संयतोपस्कराः स्वस्थानावस्थापितदृषदुपलोलूखलादिगृहोपकरणवर्गाः ।

प्रोषितभर्तुकस्त्रीधर्मः । प्रोषिते भर्तुकया कर्तव्यमाह स एव ( अ. ८४-८८ ) —

“क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम् । हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्तुका ॥

“रक्षेत्कन्यां पिता विना पतिः पुत्रस्तु वार्धके । अभावे ज्ञातयस्तेषां स्वातंत्र्यं न कचिच्छ्रियाः ॥

१५ “पतिप्रियहिते युक्ता स्वाचारा विजितेन्द्रिया । इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमां गतिम् ॥

“सत्यामन्यां सवर्णायां धर्मकार्यं न कारयेत् । सवर्णासु विधौ धर्म्यं ज्येष्ठया न विनेतरा ” ॥

सत्यां सवर्णायामसवर्णा नैव धर्मकार्यं कारयेत् । सवर्णास्वपि बह्वीषु धर्म्यं विधौ धर्मानुष्ठाने

ज्येष्ठया विना ज्येष्ठां मुक्त्वा इतरा मध्यमा कनिष्ठा वा न नियोक्येत्यर्थः । शंखः —

“नानुक्ता गृहान्निर्गच्छेन्नानुत्तरीया न त्वरिता व्रजेन्न परपुरुषमभिभाषेतान्यत्र वणिक्प्र-

२० व्रजितवृद्धवैद्येभ्यो न नाभिं दर्शयेद्वा गुल्फाद्वासः परिदध्यान्न स्तनौ विवृतौ कुर्यान्न हसेद-

पावृतं भर्तारं तद्वंधून्वा न द्विष्यान्न गणिकाधूर्ताऽभिसारिणीप्रव्रजिताप्रेक्षणिकामायामूल-

कुहककारिकाडुःशीलादिभिः सहैकत्र तिष्ठेत्संसर्गेण हि चारित्र्यं दुष्यति” इति । पराशरः

“दरिद्रं व्याधितं मूर्खं भर्तारं याऽवमन्यते । सा शुनी जायते मृत्वा सूकरी च पुनः पुनः ॥

“पत्यौ जीवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत् । आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥

२५ “अष्टद्वया चैव भर्तारं या नारी कुरुते व्रतम् । सर्वं तद्राक्षसान् गच्छेदित्येवं मनुरब्रवीत् ॥

“नास्या जपतपोहोमदानव्रतमखादयः । स्त्रीणां पतिपराणां तु पत्यौ जीवति किंचन ॥

“तदाज्ञया तु कर्तव्यमकार्यमपि चेत्तया । भर्तुरप्यवलितस्य कार्याकार्यमजानतः ॥

“पत्न्याप्याज्ञा तु कर्तव्या पतितस्य तु सर्वदा ” ॥ इति । आश्वलायनः —

“बांधवानां स्वजातीनां दुर्वृत्तं कुरुते तु या । गर्भपातं च या कुर्यान्न तां संभाषयेत् कचित् ॥

३० “यत्पापं ब्रह्महत्यायां द्विगुणं गर्भपातने । प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति तस्यास्त्यागो विधीयते ॥”

पतिव्रताधर्मः । मार्कण्डेयः —

“नारी खल्वननुज्ञाता पित्रा भ्रात्रा सुतेन वा । निष्फलं तु भवेत्तस्या यत्करोति व्रतादिकम्” इति ।

कात्यायनः — “भार्या भर्तुर्मतेनैव व्रतादीनाचरेत् ” इति । महाभारतेऽपि पतिशुश्रूषापराया

उत्तमां गतिमुक्त्वा व्रतादिपराया अन्यस्या भार्यायास्तदभावं ज्ञापयितुमुदाहृतम् —

३५ “यमोऽथ लोकपालांस्तु बभाषे पुष्कलं वचः । मा शुचस्त्वं निवर्तस्व न लोकाः संति तेऽनघे ॥



“ स्वधर्मविधुरा नित्यं कथं लोकान् गमिष्यसि । दैवतं हि पतिर्नार्याः स्थापितः सर्वदैवतः ॥  
 “ मोहेन त्वं वरारोहे न जानीषे स्वदैवतम् । पतिमत्या स्त्रिया लोके धर्मः पत्यर्पितस्त्विति ” ॥  
 मनुरपि ( ५।१५४ )—

“ नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम् । पतिं शुश्रूषते यत्तु तेन स्वर्गे महीयते ॥  
 “ अन्ततावृतकाले च मंत्रसंस्कारकृत्पतिः । सुखस्य नित्यदातेह परलोके च योषितः ॥ (१५२) ५  
 “ अशनादि पयः पथ्यं भर्त्रा यच्च विवर्जितम् । आत्मनश्च तथा तत्स्याच्छयनं चासनं तथा ॥  
 “ अशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः । न स्त्रिया परिवर्ज्यः स्यात्सततं देववत्पतिः ॥ (१५३)  
 “ पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा । पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत्किंचिदप्रियम् ॥ (१५५)  
 बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता । न स्वातंत्र्येण कर्तव्यं कार्यं किंचिद्ब्रूहेष्वपि ॥ (१५६)  
 “ बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने । पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत स्वतंत्रता ॥ (१५७) १०  
 “ पित्रा भर्त्रा सुतैर्वाऽपि नेच्छेद्विरहमात्मनः । एषां हि विरेहेण स्त्री हीने कुर्यादुभे कुले ॥ (१५८)  
 “ सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्यं च दक्षया । सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ” ॥ (१५९)

कात्यायनः—

“ अग्निहोत्रादिशुश्रूषां बहुभार्यः सवर्णया । कारयेत्तद्बहुत्वे च ज्येष्ठया गर्हिता न चेत् ॥  
 “ तथा वीरसुवामासामाज्ञासंपादिनी च या । दक्षा प्रियंवदा शुद्धा तामत्र विनियोजयेत् ॥ १५  
 “ दिनक्रमेण वा कर्म यथाज्येष्ठमशक्तिः । विभज्य सहसा कुर्युर्यथाज्ञानमशक्तिः ” ॥

धर्मसारे—

“ यद्गृहे कलहो नास्ति पूज्यंते यद्गृहे स्थिताः । तद्गृहे वसते लक्ष्मीर्नित्यं पूर्णकलान्विता ” ॥

व्यासः—

“ कुरूपो वा कुवृत्तो वा दुःस्वभावोऽथ वा पतिः । रोगान्वितः पिशाचो वा मद्यपः क्रोधनोऽथ वा ॥ २०  
 “ वृद्धो वाऽथ विदग्धो वा मूर्खोऽथो बधिरोऽपि वा । रौद्रो वाऽथ दरिद्रो वा कदर्याकुत्सितोऽथ वा ॥  
 “ कातरः कितवो वाऽपि ललनालंपटोऽपि वा । सततं देववत्पूज्यः साध्व्या वाक्कायकर्मभिः ॥  
 “ अहंकारं विहायार्थं कामक्रोधौ च सर्वदा । मनसो रंजनं पत्युः कार्यमन्यस्य वर्जनम् ” ॥

रत्नावल्याम्—

“ न पिता नात्मजो नात्मा न माता न सुहृज्जनाः । गतिर्भवति सत्स्त्रीणां पतिस्त्वेकः परा गतिः ” ॥ २५

व्यासः—

“ द्वारोपवेशनं नित्यं गवाक्षावेक्षणं तथा । असत्प्रलापो हास्यं च दूषणं कुलयोषिताम् ॥  
 “ सकामं वीक्षिताऽप्यन्यैः प्रियैर्वाक्यैः प्रलोभिता । स्पृष्टा वा जनसंमर्दे न विकारमुपैति या ॥  
 “ पुरुषं सेवते नान्यं मनोवाक्कायकर्मभिः । लोभिताऽपि परेणार्थैः सा सती लोकभूषणम् ॥  
 “ दैन्येन प्रार्थिता वाऽपि बलेन विधृताऽपि वा । वस्त्राद्यैर्वासिता वाऽपि नैवान्यं भजते सती ॥ ३०  
 “ वीक्षिता वीक्षते नान्यं हसिता न हसत्यपि । भाषिता भाषिते नैव सा साध्वी साधुलक्षणा ॥  
 “ रूपयौवनयुक्ताऽपि गीतनृत्येऽपि कोविदा । स्वानुरूपं नरं दृष्ट्वा न याति विकृतिं सती ॥  
 “ सुरूपं तरुणं रम्यं कामिनीनां च वल्लभम् । या नेच्छति परं कांतं विज्ञेया सा महासती ॥  
 “ भुंक्ते भुक्तेऽथ या पत्यौ दुःखिते दुःखिता च या । मुदिते मुदिताऽत्यर्थं प्रोषते मलिनांबरा ॥  
 “ सुप्ते पश्चाच्च या शेते पूर्वमेव प्रबुध्यते । नान्यं कामयते चित्ते सा विज्ञेया पतिव्रता ॥ ३५

- “ भर्किं श्वशुरयोः कुर्यात्पत्युश्चापि विशेषतः । धर्मकार्येऽनुकूलत्वमर्थकार्येषु संयमम् ॥  
 “ प्रागल्भ्यं कामकार्येषु शुचित्वं निजविग्रहे । मंगलं संमतं पत्युः सततं प्रियभाषणम् ॥  
 “ भाव्यं मंगलकारिण्या गृहमंडनशीलया । गृहोपस्करसंस्कारतज्ज्ञया प्रतिवासरम् ॥  
 “ क्षेत्राद्वनाद्वा ग्रामाद्वा गृहं भर्तारमागतम् । प्रत्युत्थायाभिनंदेच्च स्वासनेनोदकेन च ॥  
 १ “ प्रसन्नभांडमृष्टान्ना काले भोजनदायिनी । संयता गुप्तयाऽन्या च सुसंमृष्टनिवेशना ॥  
 “ गुरुणां पुत्रमित्राणां बंधूनां कर्मकारिणाम् । आहूतानां च भृत्यानां दासीदासजनस्य च ॥  
 “ अतिथ्यभ्यागतानां च भिक्षुकाणां च लिंगिनाम् । आसने भोजने दाने संमाने प्रियभाषणे ॥  
 “ तत्तद्गुणानुसारेण प्राप्ते काले यथोचितम् । दक्षया सर्वदा भाव्यं भार्यया गृहमुख्यया ॥  
 “ ग्रहव्ययाय यद् द्रव्यं दिशेत्पत्न्याः करे पतिः । निर्वर्त्य गृहकार्यं सा किंचिद्बुध्याऽवशेषयेत् ॥  
 १० “ दानार्थमर्पिते द्रव्ये लोभात्किंचिन्न धारयेत् । भर्तुराज्ञां विना नैव स्वबंधुभ्यो दिशेद्धनम् ॥  
 “ अत्यालापमसंतोषं परव्यापारसंगताम् । अतिहासातिरोषौ च क्रोधस्थानं च वर्जयेत् ॥  
 “ यच्च भर्ता न पिबति यच्च भर्ता न खादति । यच्च भर्ता न चाश्राति सर्वं तद्वर्जयेत्सती ॥  
 “ तैलाभ्यंगं तथा स्नानं शरीरोद्वर्त्तनक्रियाम् । मार्जनं चैव दंतानामलकानां च कर्त्तनम् ॥  
 “ भोजनं वसनं निद्रां परिधानं च वाससाम् । प्रारंभं मंडनानां च न कुर्यात्पश्यति प्रिये ॥  
 १५ “ आहूता या तु वै भर्ता स्त्री न याति त्वरान्विता । सा ध्वांक्षी जायते नूनं दशजन्मानि पंच च ॥  
 “ कामाद्रोषान्मत्सराद्वा भर्तारं याऽवमन्यते । सा सप्तजन्मकं यावन्नारकी स्यान्न संशयः ” ॥  
 अत्रिः—

- “ न व्रतेनोपवासेन धर्मेण विधिना न च । नारी स्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति पतिपूजनात् ॥  
 “ जीवितेनाथ वित्तेन भर्तारं वंचयेत्तु या । क्रिमियोनिशतं गत्वा पुल्कसी जायते ततः ॥  
 २० “ जपस्तपस्तीर्थसेवा प्रव्रज्या मंत्रसाधनम् । देवताराधनं चैव स्त्री शूद्रपतनानि षट् ” ॥ व्यासः—  
 “ हरिद्रां कुंकुमं चैव सिंदूरं कज्जलं तथा । कूर्पासकं च तांबूलं मंगल्याभरणं शुभम् ॥  
 “ केशसंस्कारकबरीकरकण्ठविभूषणम् । भर्तुरायुष्यमिच्छंतीं दूषयेन्न पतिव्रता ॥  
 “ प्रातःकाले तु या नारी दद्यादर्घ्यं विवस्वते । सत जन्मनि वैधव्यं सा नारी नैव पश्यति ॥  
 “ कृत्वा मंडलकं बाह्वे तूष्णीमेवाक्षतादिभिः । पूजयेत्सततं यावत्तस्यास्तुष्यति देवताः ॥  
 २५ “ यद्गृहं राजते नित्यं मंगल्यैरनुलेपनैः । तद्गृहे वसते लक्ष्मीः नित्यं पूर्णकलान्विता ॥  
 “ न ददाति तु या नारी ज्येष्ठायै प्रत्यहं बलिम् । भोज्यादन्नाद्यथाशक्ति सा प्रेत्य नरकं व्रजेत् ॥  
 “ अवश्यमेव नारीभिः ज्येष्ठायै बलिकर्मणा । प्रीणनं प्रत्यहं कार्यं पुत्रपौत्रधनेप्सुभिः ” ॥

बाल्मीकिः—

- “ न पिता नात्मजो नात्मा न माता न सखीजनः । इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा ॥  
 ३० “ न कृतं न कुलं विद्यां न दत्तं नापि संग्रहम् । स्त्रीणां गृह्णाति हृदयमनित्यहृदया हि ताः ॥  
 “ साध्वीनां तु स्थितानां हि शिले सत्ये श्रुते शमे । स्त्रीणां पवित्रं परमं पतिरेको विशिष्यते ॥  
 “ नातंत्री वाद्यते वीणा नाचक्रो वर्तते रथः । नापतिः सुखमेधेत या स्यादपि शतात्मजा ॥  
 “ नगरस्थो वनस्थो वा पापी वा यदि वा शुभः । यासां स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां लोका महोदयाः ॥  
 “ दुःशीलः कामवृत्तो वा धनवान्यदि वाऽधनः । स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः ॥  
 “ पतिशुश्रूषणं नार्यास्तपो नान्याद्विधयिते ” ॥ व्यासः—

“पतिव्रता तु या नारी भर्तृशुश्रूषणोत्सुखा । न तस्या विद्यते पापमिह लोके परत्र च ॥

“पतिव्रता धर्मरता रुद्राण्येव न संशयः । तस्याः पराभवं कर्तुं शक्नोति न जनः कचित्” ॥

बोधायनः—“भर्तृहिते यतमानाः स्वर्गलोकं जयेरन्” इति । इति । अथ गर्भिणीधर्माः—

याज्ञवल्क्यः ( आ. ७९ )—“षोडशर्तुनिशाः स्त्रीणां तस्मिन्पुंगुमासु संविशेत्” इति ।

पराशरः ( ४।१३-१४ )—

“ऋतुस्नाता तु या नारी भर्तारं नोपसर्पति । सा मृता नरकं याति विधवा च पुनः पुनः ॥

“ऋतुस्नातां तु यो भार्या संनिधौ नोपगच्छति । घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः” ॥ इति ।

पूर्वमेव गर्भाधानं सविस्तरमभिहितम् । स्मृतिचंद्रिकायाम् ( )—

“नावस्करेषूपविशेन्मुसलोलूखलादिषु । जलं च नावगाहेत शून्यागारं च वर्जयेत् ॥

“वल्मीके नाधितिष्ठेत् न चोद्विग्नमना भवेत् । विलिखेन्न नखैर्भूमिं नांगारेण न भस्मना ॥ १०

“न श्यालुः सदा तिष्ठेद्यायामं च विवर्जयेत् । न तुषांगारभस्मास्थिकपालेषु समाविशेत् ॥

“वर्जयेत्कलहं लोके गात्रभंगं तथैव च । न मुक्तकेशी तिष्ठेत् नान्धुचिः स्यात्कदाचन ॥

“न शयीतोत्तरशिरा न चैवाधःशिरा कचित् । न वस्त्रहीना नोद्विग्ना न चार्द्रचरणा सती ॥

“नामंगल्यं वदेद्वाक्यं न च हास्यादि किंचन । कुर्याच्छशुरयोर्नित्यां पूजां मंगलतत्परा ॥

“तिष्ठेत्प्रसन्नवदना भर्तुः प्रियहिते रता” ॥ स्मृतिरत्ने— १५

“संध्ययोनैव भोक्तव्यं गर्भिण्या तु प्रयत्नतः । न स्नातव्यं न गंतव्यं वृक्षमूलेषु सर्वदा ॥

“न श्यालुः सदा तिष्ठेत्खट्वाद्यायां विवर्जयेत् । सर्वौषधीभिः कोष्णेन वारिणा स्नानमाचरेत् ॥

“कृतरक्षा सुभूपा च वास्तुपूजनतत्परा । दानशीला वृतीया या पार्वत्या नक्तमाचरेत् ॥

“इतिव्रता भवेन्नारी विशेषेण तु गर्भिणी । यस्तु तस्या भवेत्पुत्रः स्थिरायुर्वृद्धिसंयुतः ॥

“अन्यथा गर्भपतनमवाप्नोति न संशयः” ॥ याज्ञवल्क्यः ( आ. ७९ )— २०

“द्वौहदस्याप्रदानेन गर्भो दोषमवाप्नुयात् । वैरूप्यं मरणं वाऽपि तस्मात्कार्यं प्रियं स्त्रियाः” ॥

सुश्रुतेऽपि—“ततः प्रभृति व्यायामव्यवसायातितर्पणदिवास्वप्नरात्रिजागरणशोकभयारोहण-

वेगधारणकुक्कुटासनशोणितमोक्षणानि परिहरेत् । अभिलषितं दत्त्वा वीर्यवंतं चिरायुषं पुत्रं

जनयति” इति । ततः प्रभृति गर्भग्रहणप्रभृतीत्यर्थः । तद्ग्रहणं च श्रमादिलिगैरवगंतव्यम् ।

अन्यान्यपि तत्रैत्रोक्तानि—“सद्यो गृहीतगर्भायां श्रमोऽग्लानिपिपासासक्थिस्पंदनं पुत्रं २५

जनयति शुक्रशोणितयोः संबंधे स्फुरणं च योन्याः” इति । बृहस्पतिरपि—

“सद्यो गृहीतगर्भायां श्रमः स्याद्योऽभिजायते । पिपासा च ततो ग्लानिर्योन्यां तु स्फुरणं भवेत्” ॥

काश्यपः—

“गर्भधारणमारभ्य व्यायामव्यसनानि च । तत्क्षणं च दिवा स्वप्नं रात्रौ जागरणं तथा ॥

“गजाश्वारोहणं शोकं वेगं धारणमेव च । विरेचनं नैव कुर्यात्क्षाराद्यन्नं च वर्जयेत्” ॥ ३०

गर्भोपनिषदि—“ऋतुकाले प्रयोग एकरात्रोषितं कलिरुं भवति सप्तरात्रोषितं बुद्धुं भवत्य-

र्धमासाभ्यंतरेण पिंडो भवति मासाभ्यंतरेण कठिनो भवति मासद्वयेन शिरः कुरुते मासत्रयेण

पादप्रदेशो भवत्यथ चतुर्थे मासेऽगुलजठरकटिप्रदेशो भवति पंचमे मासे षष्ठवंशो भवति षष्ठे

मासे नासाक्षिश्रोत्राणि भवंति सप्तमे मासे जीवेन संयुक्तो भवत्यष्टमे मासे सर्वसंपूर्णो भवति

पितृरेतोतिरिक्तापुरुषो भवति मातृरेतोतिरिक्तास्त्रियो भवत्युभयोर्वीर्यतुल्यत्वान्नपुंसको भवति ३५

व्याकुलितमनसाऽन्धाः खंजाः कुब्जा वामना भवंत्यन्योन्यवायुपीडितानां शुक्रद्वेषे स्त्रियो योन्या युग्माः प्रजायंतेऽथ नवमे मासि सर्वलक्षणसंपूर्णो भवति । पूर्वजातिस्मरो भवति कृताकृतं च कर्म भवति शुभाशुभं च कर्म विन्दति ।

“नानायोनिहस्त्राणि दृष्ट्वा चैव ततो मया । आहारा विविधा भुक्ताः पीताश्च विविधाः स्तनाः ॥

५ “जातस्यैव मृतस्यैव जन्म चैव पुनः पुनः । अहो दुःखोदधौ मग्नो न पश्यामि प्रतिक्रियाम् ॥”

“यदि योन्याः प्रमुंचामि सांख्ययोगं समाश्रये । अशुभक्षयकर्तारं फलमुक्तिप्रदायिनम् ॥

“यदि योन्याः प्रमुंचामि तं प्रपद्ये महेश्वरम् । अशुभक्षयकर्तारं फलशक्तिप्रदायिनम् ॥

“यदि योन्याः प्रमुंचामि भजेन्नारायणं विभुम् ॥

“यन्मया परिजनस्यार्थं कृतं कर्म शुभाशुभम् । एकाकी तेन दह्यामि गतास्ते फलभोगिनः ॥

१० “एवं जंतुस्त्रियोनिशतं प्राप्य योनिद्वारियंत्रेणैव पीड्यमानो महता दुःखेन जातमात्रस्तु वैष्णवेन वायुना संस्पृष्टस्तदानीं स्मरति जन्मभरेण न च कर्म शुभाशुभम्” इति ।

याज्ञवल्क्यः ( प्रा. ७५ )

“प्रथमे मासि संक्लेदभूताया तु विमूर्च्छितः । मासे द्वितीये बुद्बुदस्त्वृतीये चंद्रियैर्युतः ॥

“आत्मा गृह्णात्यजः सर्वं तृतीये स्यंदते ततः । स्थैर्यं चतुर्थे त्वंगानां पंचमे शोणितोद्भवः ॥

१५ “षष्ठे बलस्य वर्णस्य नखरोम्णां च संभवः । मनश्चेतन्ययुक्तोऽसौ नाडीस्नायुशिरायुतः ॥

“सप्तमे चाष्टमे चैव त्वङ्मांसस्मृतिमानपि । पुनर्धात्रीं पुनर्गर्भमोजस्तस्य प्रधावति ॥

“अष्टमे मास्यतो गर्भो जातः प्राणैर्विभ्युचते । नवमे दशमे वाऽपि प्रबलैः सूतिमारुतैः ॥

“निःसार्थनेवाण इव यंत्रछिद्रेण सत्वरः” । इति । संक्लेदभूतः द्रवभूतः । बुद्बुदमीषत्कठिनम् ।

“हृदि तिष्ठति यच्छुद्धमीषदक्तं सपित्तकम् । ओजः शरीरे संख्यातं तन्नाशान्नाशमृच्छति” ॥

२० इति लक्षितमोजः । अष्टमे मासि चंचलतया मातरं गर्भं च पुनः पुनर्जंति अतस्तत्र जातो म्रियत इत्यर्थः ।

अथ विधवाधर्माः । तत्र याज्ञवल्क्यः ( आ. ८६ )—

“पितृमातृसुतभ्रातृश्वश्रुवशुरमातुलैः । हीना न स्याद्दिना भर्ता गर्हणीयाऽन्यथा भवेत्” ॥

भर्ता विना भर्तृरहिता पित्रादिरहिता न स्याद्यस्मात्तद्रहिता गर्हणीया निन्धा भवेत् ।

२५ आश्वलायनः—

“मृते भर्तृर्यपुत्रा तु बालपुत्रा च याऽगना । बंधूनाश्रित्य सा जीवत्संयता जनकादिकान्” ॥

एतच्च ब्रह्मचर्यपक्षे । “भर्तरी प्रेते ब्रह्मचर्यं तदन्वारोहणम्” इति विष्णुस्मरणात् ।

व्यासः ( अ. २५ सू. १५ )—

“पत्यौ मृते या योषिद्वैधव्यं पालयेत्कचित् । सा पुनः प्राप्य भर्तारं स्वर्गभोगान्समश्नुते ॥

३० “विधवाकबरीबंधो भर्तृबंधाय कल्पते । शिरसो वपनं तस्मात्कार्यं विधवया तथा ॥

“एकाहारः सदा कार्यो न द्वितीयः कदाचन । त्रिरात्रं पंचरात्रं वा पक्षव्रतमथापि वा ॥

“मासोपवासं वा कुर्याच्चांद्रायणमथापि वा । कुर्यात्कृच्छ्रं पराकं वा तप्तकृच्छ्रमथापि वा ॥

“यवान्नैर्वा फलाहारैः शाकहारैः पयोधृतैः । प्राणयात्रां प्रकुर्वीत यावत्प्राणः स्वयं व्रजेत् ॥

“पर्यंकशायिनी नारी विधवा पातयेत्पतिम् । तस्मान्द्रूशयनं कार्यं पतिसौख्यसमीहया ॥

३५ “न चांगोद्वर्तनं कार्यं स्त्रिया विधवया क्वचित् । गंधद्रव्यस्य संभोगो नैव कार्यस्तथा क्वचित् ॥

“तर्पणं प्रत्यहं कार्यं भर्तुः कुशिलोदकैः । तत्पितुस्तत्पितुश्चापि नामगोत्राभिपूर्वकम् ॥  
“विष्णोस्तु पूजनं कार्यं पतिबुद्ध्या न चान्यथा । पतिभेव सदा ध्यायेद्दिष्णुरूपधरं परम् ॥  
“एवं चर्चापरा नित्यं विधवाऽपि शुभा मता । एवं धर्मपरा युक्ता विधवाऽपि पतिव्रता ॥

आश्वलायनः—

“जपेच्च रुद्रवत्सा तु नमेत्रविमथावनौ । दीपं च भर्तृचिंता स्यान्नान्यस्या वा विधीयते ॥ ५  
“जपश्च प्रणवस्तस्य वैदिकस्तु विधीयते ” ॥ पराशरः—  
“मृते भर्तरि या नारी ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता । सा मृता लभते स्वर्गं यथा ते ब्रह्मचारिणः ” ॥  
ब्रह्मचारिणः ते प्रसिद्धाः । मनुः ( ५।१५६ )—  
“कामं तु क्षपयेद्देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः । न च नामापि गृह्णीयात्पत्यौ प्रेते परस्य तु ॥  
“मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता । स्वर्गं गच्छत्यपुत्रा वै यथा ते ब्रह्मचारिणः ” ॥ इति । १०  
“तौबुलोऽभर्तृकस्त्रीणां यतीनां ब्रह्मचारिणम् । एकेकं मांसतुल्यं स्यात् मिलितं तु सुरासमम् ” ॥  
आपस्तम्बः “यावज्जीवं प्रेतपत्न्युदकोपस्पर्शनमेकभुक्तमधःशय्या ब्रह्मचर्यं क्षारलवणमधु-  
मांसवर्जनं च ” इति । इति विधवाधर्माः ॥

अथानुगमनम् । तत्र विष्णुः ( २५।१४ )—

“भर्तरि प्रेते ब्रह्मचर्यं तदन्वारोहणमेव वा ” इति । पैतृकं वा यत्र सैषा प्रदीयते । कुलत्रयं १५  
पुनात्येषा भर्तारं याऽनुगच्छति ” ॥ तत्र पराशरः—  
“तिस्रः कोट्यर्धकोटी च यानि रोमाणि मानुषे । तावत्कालं वसेत्स्वर्गे भर्तारं याऽनुगच्छति ” ॥  
तावत्कालं तावत्सहस्रं संवत्सरम् । तथा च हारीतः—  
“मृते भर्तरि या नारी धर्मशीला पतिव्रता । अनुगच्छति भर्तारं शृणु तस्यास्तु यत्फलम् ॥  
“तिस्रः कोट्यर्धकोटी च यानि रोमाणि मानुषे । तावत्सहस्रमाणि स्वर्गलोके महीयते ॥ २०  
“मातृकं पैतृकं चैव यत्र कन्या प्रदीयते । कुलत्रयं पुनात्येषा भर्तारं याऽनुगच्छति ” ॥  
न केवलं स्वयमेवानुगमने स्वर्गे वसति किंतु स्वभर्तारं पापफलभोगाय नरकमार्गाभिमुख-  
मपि स्वकीयेन प्रबलसुकृतेनोद्धरतीत्याह पराशरः—

“व्यालग्राही यथा व्यालं बिलादुद्धरते बिलात् । एवं स्त्री पतिमुद्धृत्य तेनैव सह मोदते ” ॥

त्रिकांडी—

२५

“अपि दुष्कृतकर्माणं समुद्धृत्य च तत्पतिम् । यावत्स्वल्लोमसंख्याऽस्ति तावत्कोट्ययुतानि च ॥  
“भर्त्रा स्वर्गे सुखं भुंक्ते रममाणा पतिव्रता । यमदूताः पलायंते पतिमालोक्य दूरतः ” ॥ इति ।  
तथा च शंखागिरसौ—

“तिस्रः कोट्यर्धकोटी च यानि रोमाणि मानुषे । तावत्कालं वसेत्स्वर्गे भर्तारं याऽनुगच्छति ॥  
“व्यालग्राही यथा व्यालं बिलादुद्धरते बिलात् । तद्वदुद्धृत्य सा नारी सह तेनैव मोदते ॥ ३०  
“तत्र सा भर्तृपरमा स्तूयमानाऽप्सरोगणैः । क्रीडते पतिना सार्धं यावद्दिवाश्वतुर्दश ॥  
“ब्रह्मघ्नो वा कुतघ्नो वा मित्रघ्नो वा भवेत्पतिः । पुनात्यविधवा नारी तमादाय मृता तु या ॥  
“मृते भर्तरि या नारी समारोहेद्भुताशनम् । साऽरुंधतीसमाचारा स्वर्गलोके महीयते ॥

“यावच्चाग्रौ मृते पत्यौ स्त्री नात्मानं प्रदाहयेत् । तावन्न मुच्यते सा हि स्त्रीशरीरात्कथंचन” ॥ इति ।

अंगिराः—

“साध्वीनामेव नारीणामग्निप्रपतनादृते । नान्यो धर्मो हि विज्ञेयो मृते भर्तरि कर्हिचित् ॥

“आर्त्ताऽर्त्तं मुदिते दृष्टा प्रोषिते मलिना कुशा । मृते भ्रियेत वा पत्यौ सा स्त्री ज्ञेया पतिव्रता” ॥

५ उपमन्युः—

“अनपत्या च या नारी ब्राह्मणी यदि वेतरा । तस्या नान्या गतिः प्रोक्ता सहानुगमनादृते” ॥

अत्र विज्ञानेश्वरीये (पृ. २३ पं. २७-२८) “अयं च सर्वासां स्त्रीणामबालापत्यानामा-  
चांडालं साधारणो धर्मः । भर्तारं याऽनुगच्छति इत्यविशेषणोपादानात्” इति । स्मृतिरत्नेऽपि—

“धर्मोऽयं सर्वनारीणां पत्युश्चित्यधिरोहणम् । अन्यत्र गर्भिणीबालाऽपत्ययुक्ताभ्य एव च” ॥ इति ।

१० और्वः—

“बालापत्याश्च गर्भिण्यो ह्यदृष्टार्त्तव एव च । रजस्वला राजसुता नारोहंति चितांशुभे” ॥

स्मृत्यंतरे—

“बालापत्या तु या नारी भर्त्रा सह न संव्रजेत् । रजस्वला तु गच्छेत्तु गंत्रिकक्षेतु गर्भिणी” ॥ अन्यत्र तु—

“सार्त्तवा सूतिका वाऽपि भर्त्रानुमरणोत्सुका । सद्यः शुद्धिमवाप्नोति भर्तुः पापापहारिणी ॥

१५ “बालापत्या तु या नारी सूतिका वा रजस्वला । सर्वासामपि च स्त्रीणामेष साधारणो विधिः” ॥  
इति गर्भिण्या निषेध एव । बालापत्यादीनां विकल्प इत्याहुः । पृथक्चित्तिविषयमित्यन्ये । तत्  
कपोताख्यानव्याजेन दर्शयति व्यासः—

“पतिव्रता संप्रदीप्तं प्रविवेश हुताशनम् । ततश्चित्रांगधरं भर्तारं साऽन्वपद्यत” ॥

“ततः स्वर्गं गतः पक्षी भार्यया सह संगतः । कर्मणा पूजितस्तत्र रमे च सह भार्यया” ॥ इति ।

२० ननु ब्राह्मण्या अनुगमननिषेधोऽपि स्मर्यते । तत्र पैठीनसिः—

“मृतानुगमनं नास्ति ब्राह्मण्या ब्रह्मशासनात् । इतरेषां तु वर्णानां स्त्रीधर्मोऽयं परः स्मृतः” ॥

विराट्—

“अनुवर्त्तत जीवंतं नानुयायान्मृतं पतिम् । जीव्य भर्तुर्हितं कुर्यान्मरणादात्मघातकी” ॥

अंगिराः—

२५ “या स्त्री ब्राह्मणजातीया मृतं पतिमनुव्रजेत् । सा स्वर्गमात्मघातेन नात्मानं न पतिं नयेत्” ॥

व्याघ्रपादः—

“न भ्रियेत समं भर्त्ता ब्राह्मणी शोकमोहिता । प्रव्रज्यागतिमाप्नोति मरणादात्मघातकी” ॥ इति ॥

एवमादीनि वचनानि पृथक्चित्त्यधिरोहणविषयाणि इति विज्ञानेश्वरीये (पृ. २४ पं. १८-२०)

माधवीयस्मृतिरत्नादिषु व्यवस्थापितानि । अत एवोशनाः—

३० “पृथक्चित्तिं समारुह्य न विप्रां गंतुमर्हति । अन्यासां चैव नारीणां स्त्रीधर्मोऽयं परः स्मृतः” ॥ इति ।

यत्त्वपरार्कः—

“देशांतरमृते पत्यौ साध्वी तत्पादुकाद्वयम् । निधायोरसि सश्रद्धा प्रविशेज्जातवेदसम् ॥

“दयितं याऽन्यदेशस्थं मृतं श्रुत्वा पतिव्रता । समारोहति दीप्तेऽग्नौ तस्याः शक्तिं निबोधत ॥

“यदि प्रविष्टो नरकं बद्धः पाशैः सुदारुणैः । संप्राप्तो यातनास्थानं गृहीतो यमकिंकरैः ।

३५ “तिष्ठते विवशो दीनो वेष्ट्यमानः स्वकर्मभिः ॥

“ ब्यालप्राही यथा सर्प बिलाद्गूह्यात्यशंकितः । सा तं भर्तारमादाय दिवं याति सती च या ॥  
 “सा भर्तृपरमा स्वर्गे स्तूयमानाऽस्सुरोगैः । क्रीडते पतिना सार्धं यावदिन्द्राश्चतुर्दश” ॥  
 एतत्पृथक्कचित्तिमरणं ब्राह्मणव्यतिरिक्तविषयम् । यत्तु “ तस्मादुह न पुराण्युः स्वर्ग-  
 कामी प्रेयादिति ” श्रुतिविरोधादनुगमनमयुक्तमिति तच्च “ न स्वर्गकाम्यायुषः प्राह न  
 प्रेयादिति ” स्वर्गफलोद्देशेनायुषः प्रागायुर्व्ययो न कर्त्तव्यः मोक्षार्थिना । यस्मादायुषः शेषे ५  
 सति नित्यनैमित्तिककर्मनुष्ठानेन क्षपितांतःकरणकलंकस्य श्रवणमनननिदिध्यासनसंपत्तौ  
 सत्यामात्मज्ञानेन नित्यनिरतिशयानंदब्रह्मप्राप्तिलक्षणमोक्षसंभवस्तस्मादनित्याल्पस्वर्गार्थमायु-  
 र्व्ययो न कर्त्तव्यमित्यर्थः । अतश्च मोक्षमनिच्छंत्या स्वर्गार्थिन्या अनुगमनं युक्तं इतीतर-  
 काम्यानुष्ठानवदिति ” विज्ञानेश्वरः ( पृ. २४ ) । इदं चानुमरणं पतिव्रतयाऽनुष्ठितमुक्तीत्या  
 दंपत्योरुभयोः श्रेयो हेतुः । पापीयस्यानुष्ठितं चेत्पापक्षयहेतुर्भवेति । तथा च व्यासशतातापौ— १०  
 “ अवमत्य च या पूर्वं पतिं दुष्टेन चेतसा । वर्तते याश्च सततं भर्तृगां प्रतिकूलतः ॥  
 “ भर्त्रानुमरणं काले याः कुर्वति तथाविधाः । कामात्क्रोधान्नयान्मोहात्सर्वाः पूता भवंत्युत ॥  
 “ आदिप्रभृति या साध्वी भर्तुः प्रियपरायणा । ऊर्ध्वं गच्छति सा तत्र भर्त्रानुमरणं गता” ॥ इति ।  
 पुराणसारे— ब्राह्मणीं प्रति नारदः—

“ पापं यदि कृतं भद्रे परपुरुषसेवनात् । तथाऽन्यस्यापि पापस्य नाशो बन्धिप्रवेशनात् ॥ १५  
 “ पतिव्रता धर्मपत्नी भर्तृशुश्रूषणे रता । याऽनुगच्छति भर्त्रा सा स्वर्गं यात उभौ ध्रुवम् ” ॥ इति ।  
 गूढव्यभिचारिणीं प्रत्याह याज्ञवल्क्यः ( आ. ७० )—

“ हताधिकारां मलिनां पिंडमात्रोपजीविनीम् । परिभूतामधःशय्यां वासयेद्व्यभिचारिणीम् ” ॥  
 पिंडमात्रजीविनीं प्राणयात्रामात्रभोजनमधःशय्यामास्तरणाशिविहीनस्थलशायिनीं परिभूतां  
 धिकारभर्त्सनकुत्सना वेश्मन्येव वासयेत् । मनुः ( ५११६० )— २०

“ अपत्यलोभाद्या तु स्त्री भर्तारमतिलंबयेत् । सेह निश्मवाप्नोति परलोकादिहीयते ॥  
 “ व्यभिचारानु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निच्यताम् । सुगाऽयोनिं प्राप्नोति पः परोगैश्च पीडयते ॥ ( १६३ )  
 “ पतिं हित्वाऽपकुष्ठं स्वमुत्कुष्ठं योपसेवते । निधैव लोके भवति परपूर्वेति चोच्यते ॥ ( १६२ )  
 “ नान्योत्पन्ना प्रजा स्त्रीह नान्यस्यान्यपरिग्रहः । नाद्वितीयश्च साध्वीनां कचिद्भर्तापदिश्यते ॥ ( १६१ )  
 श्रुतिरपि— “ तस्मान्नैका द्वौ पती विंदते ” इति । याज्ञवल्क्यः ( आ. ७२ )— २५

“ व्यभिचारादृतौ शुद्धिर्गर्भे त्यागो विधीयते । गर्भभर्तृवधादौ च तथा महति पातके ” ॥  
 कृतावृतौ शुद्धिरित्येतन्मानसव्यभिचाराभिप्रायम् । “ रजसा स्त्री मनोदुष्टा ” इत्युक्तत्वात् ‘ गर्भे  
 त्याग ’ इति शूद्रकुते गर्भे त्यागः ।

“ ब्राह्मणक्षत्रियविशां भार्याः शूद्रेण संगताः । अप्रजाता विशुध्यन्ति प्रायश्चित्तेन नेतराः” ॥  
 इति मनुस्मरणात् । तथा गर्भवधे भर्तृवधे महापातके च आदिग्रहणाच्छिष्यादिगमने १०  
 च त्यागः ।

“ चतस्रस्तु परित्याज्याः शिष्यगा गुरुगा च या । पतिर्ज्ञां च विशेषेण जुंगितोपगता च या ॥” इति ।  
 जुंगितः प्रतिलोमजः । प्रतिलोमसार्कार्यं त्यागश्च उपभोगधर्मकार्ययोः । न तु सर्वथा तस्या ‘ विप्रदुष्टां  
 स्त्रियं भर्ता निरुध्यादेकवेष्टमनि ” इति नियमात् । उशनाः— “ व्यभिचारिणीं भार्यां कुचेलपिंड-  
 परिभूतां निवृत्ताधिकारां चांद्रायणप्रायश्चित्तं प्राजापत्यं चाचारयेत् ” इति । ३५

याज्ञवल्क्यः—“ यत्पुंसां परदारेषु तच्चैनां चारयेद् व्रतम् ” इति । भृगुः—

“ अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाऽप्यूनषोडशः । प्रायश्चित्तार्धमर्हति स्त्रियो व्याधित एव च॥ ” इति ।

मनुः ( ११।१८९ )— “ कुतनिर्णेजनां चैतां न जुगुप्सेत कर्हिचित् ।

“सोमः शौचं ददौ स्त्रीणां गंधर्वाश्च शुभां गिरम्” “पावकः सर्वमेध्यत्वं मेध्या वै योषितो ह्यतः॥” इति ।

५ कुतनिर्णेजनां चैतां कुतप्रायश्चित्तां परिणयनात्पूर्वं सोमगंधर्वाग्रयः स्त्रियो यथाक्रमं तासां शौचमधुरवचनसर्वमेध्यत्वादीनि दत्तवन्तस्तस्मात्स्त्रियः सर्वत्र स्पर्शनालिंगनादिषु मेध्यकरा इत्यर्थः । यस्त्वंतरेणैव निमित्तं दारान्परित्यजति या च भर्तारं परित्यजति । तयोर्निष्कृति-  
माहापस्तंबः ( १।२।१९-२ )— “ दारव्यतिक्रमी स्वराजिनं बहिर्लोम परिधाय ”  
दारव्यतिक्रमिणे भिक्षाम् इति सप्तागाराणि चरेत्सा वृत्तिः षण्मासान् । स्त्रियास्तु भर्तृव्यतिक्रमे

१० कुच्छ्रद्धादशरात्राभ्यासस्तावन्तं कालम् इति । इति स्त्रीधर्मः ॥

गृहस्थधर्मानाह वक्षः— ( ३।१-१९ )

“ विधा नव गृहस्थस्य ईषदानानि वै नव । नव कर्माणि तस्यैव विकर्माणि तथा नव ॥

“ प्रच्छन्नानि नवान्यानि प्रकाशानि पुनर्नव । सफलानि नवान्यानि निष्फलानि तथा नव ॥

“ अदेयानि नवान्यानि वस्तुजातानि सर्वदा । नवका नवनिर्दिष्टा गृहस्थोन्नतिकारकाः ॥

१५ “ विधावस्तूनि वक्ष्यामि विशिष्टे गृहमागते । मनश्चक्षुर्मुखं वाक्यं सौम्यं दद्याच्चतुष्टयम् ॥

“ अभ्युत्थानमिहागच्छ पूर्ववादः प्रियंवदः । उपासनमनुव्रज्या कार्याण्येतानि यत्नतः ॥

“ ईषदानानि चान्यानि भूम्युदकं तृणानि च । पादशौचं तथा स्नानमासनं शयनं तथा ॥

“ किंचिद्देयं यथाशक्त्या नास्यानश्नगृहे वसेत् । सजलं चार्थिने देयमेतान्यपि सदा गृहे ॥

“ संध्या स्नानं जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्चनम् । वैश्वदेवे क्षणातिथ्यमुद्धृत्यापि स्वशक्तितः ॥

२० “ पितृदेवमनुष्याणां दीनानाथतपस्विनाम् । गुरुमातृपितॄणां च संविभागो यथार्थतः ॥

“ एतानि नव कर्माणि विकर्माणि तथा पुनः । अनृतं परदाराश्च तथा भक्ष्यस्य भक्षणम् ॥

“ अगम्यागमनापेयपानं स्नेयं च हिंसनम् । अश्रौतकर्मचरणं मैत्रधर्मबहिष्कृतम् ॥

“ नवैतानि विकर्माणि तानि सर्वाणि वर्जयेत् ॥

“ पैशून्यमनृतं मायां कामं क्रोधं तथाऽप्रियम् । द्वेषं संगं परद्रोहं विकर्माणि विवर्जयेत् ॥

२५ “ नृत्यं गीतं कृषिः-सेवा वाणिज्यं लवणं क्रयः । मृतकर्मयुधीयं च न प्रशस्तानि कर्मसु ॥

“ आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं मंत्रमैथुनभेषजम् । आयं दानावमानं च नव गोप्यानि सर्वदा ॥

“ प्रायोग्यमृणशुद्धिश्च दायभागश्च विक्रयः । कन्यादानं वृषोत्सर्गो रहः पापमकुत्सनम् ॥

“ मातापित्रोर्गुरोर्मित्रे विनीते चोपकारिणि । दीनानाथविशिष्टभ्यो दत्तं तु सफलं भवेत् ॥

“ धूर्ते बंदिनि मल्ले च कुर्वैवे कितवे शठे । चाटुचारणचोरेभ्यो दत्तं भवति निष्फलम् ॥

३० “ सामान्यं याचितं न्यासमाधिर्दारांश्च तद्धनम् । भयदानं च निक्षेपः सर्वस्वं चाम्बये सति ॥

“ आपत्स्वपि न देयानि नव वस्तूनि सर्वदा । यो ददाति स मूढात्मा प्रायश्चित्तीयते द्विजः ॥

“ नवकस्य च वेत्तारमनुष्ठानः परं द्विजैः । इह लोके परत्रापि श्रीश्चैनं न विमुञ्चति ” ॥

अथ गार्हस्थ्यप्रशंसा ।

तत्र मनुः ( ६।८९ )—

१ क्ष-सम्यक्तानि नवैव च । २ सुधा इति मुद्रितपाठः । ३ क्ष-द्वयानि । ४ क्ष-दुर्धनम् ।

५ क्ष-परम् ।



“ सर्वेषामेव चैतेषां वेदश्रुतिविधानतः । गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान्बिभर्ति हि ” ॥  
वेदश्रुतिविधानतः वेदश्रुत्या प्रत्यक्षेण विधानतः । वैदिकानामाधानादीनां कर्मणां गृहस्थमभि-  
कृत्य विधानस्य प्रत्यक्षश्रुतिमूलत्वादित्यर्थः । स एव ( ६।१० )—

“ यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यांति संस्थितिम् । तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यांति संस्थितिम् ॥

“ संन्यस्य सर्वकर्माणि कर्मदोषानपानुदत् । नियतो वेदमभ्यस्यन्पुत्रैश्वर्यं सुखं वसेत् ॥ (१५) ५

“ पुत्रान्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते तु सः । तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥

“ एवं संन्यस्य कर्माणि स्वकार्ये परमोऽस्पृहः । संन्यासेनापहन्त्येनः प्राप्नोति परमां गतिम् ” ॥ (१६)

अत्र संन्यासः काम्यकर्मत्यागः । तथा चोक्तं भगवद्गीतासु (१८।२)—

“ काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः । नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ॥ (१८।७)

“ यज्ञो दानं तपश्चैव न त्याजं कार्यमेव तत् । यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ (१८।५) १०

“ एतान्यपि तु कर्माणि संगं त्यक्त्वा फलानि च । कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥ (६)

“ ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः । लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवोभसा ॥ (५।१०)

“ कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि । योगिनः कर्म कुर्वति संगं त्यक्त्वाऽऽत्मशुद्धये ॥ (५।११)

“ युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शांतिमाप्नोति नैष्ठिकीम् । अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ” ॥ इति ।

वृक्षः ( ५।१२ )—

“ गृहस्थो हि क्रियायुक्तो न गृहेण गृही भवेत् । न चापि पुत्रद्वारायैः स्वकर्मपरिवर्जितः ॥

“ देवैश्चैव मनुष्यैश्च तिर्यग्भिश्चोपजीव्यते । गृहस्थः प्रत्यहं यस्मात्तस्माच्छ्रेयान्गृहाश्रमी ॥

“ यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवंति जंतवः । तथा गृहस्थमाश्रित्य सर्वे जीवंति भिक्षवः ॥

“ चतुर्णामाश्रमाणां तु गृहस्थो योनिरुच्यते । सीदमानेन तेनेह सीदंत्यन्येऽपि ते त्रयः ॥

“ मूलप्राणो भवेत्स्कंधः स्कंधाच्छाखाः सपल्लवाः । मूलेनैव विनष्टेन सर्वमेतद्विनश्यति ॥ २०

“ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रक्षणीयो गृहाश्रमी ” ॥ राज्ञेति शेषः

“ राजा चान्यैस्त्रिभिः पूज्या रक्षणीयश्च सर्वदा ।

“ दया लज्जा क्षमा श्रद्धा प्रज्ञा त्यागः कृतज्ञता । एते यस्य गुणाः संति गृहस्थो मुख्य उच्यते ” ॥

व्यासः—

“ नित्यं स्वाध्यायशीलः स्यान्नित्यं यज्ञोपवीतवान् । सत्यवादी जितक्रोधो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २५

“ संध्यास्नानरतो नित्यं ब्रह्मयज्ञपरायणः । अनसूयुर्मुदुर्दातो गृहस्थः प्रत्यवर्धते ॥

“ वीतरागभयक्रोधो लोभमोहविवर्जितः । सावित्रीजप्यनिरतः श्राद्धकुन्मुच्यते गृही ॥

“ मातापित्रोर्हिते युक्तो गोब्राह्मणहिते रतः । यज्वा च देवभक्तश्च ब्रह्मलोके महीयते ॥

“ त्रिवर्गसेवी सततं देवतानां च पूजनम् । कुर्यादहरहर्नित्यं नमस्येत्सततं सुरान् ॥

“ विभागशीलः सततं क्षमायुक्तो दयालुकः । गृहस्थस्तु समाख्यातो न गृहेण गृही भवेत् ॥ ३०

“ यथाशक्ति चरेत्कर्म निर्दितानि च वर्जयेत् । विधूय मोहकलिलं लब्ध्वा योगमनुत्तमम् ॥

“ गृहस्थो मुच्यते बंधान्नात्र कार्या विचारणा ” ॥ इति । पराशरः—

“ निवापेन पितृनर्चन्यज्ञैर्द्विंशस्तथातिथीन् । अञ्जैर्मुनींश्च स्वाध्यायैरपत्येन प्रजापतिम् ॥

“ बलिकर्मणां च भूतानि वात्सल्येनाखिलं जगत् । प्राप्नोति लोकान्पुरुषो निजकर्मसमार्जितान् ॥

“ भिक्षाभुजस्तु ये केचित्परिवाद्ब्रह्मचारिणः । तेऽप्यत्रैव प्रतिष्ठन्ते गार्हस्थ्यं तेन वै परम् ॥ ३५

“यस्तु सम्यकरोत्येतं गृहस्थः परमं विधिम् । स्वकर्मबंधमुक्तोऽसौ लोकानाम्नोत्यनुत्तमान्” ॥ इति ।

याज्ञवल्क्यः ( प्रा. १९०-१९३ )—

“वेदानुवचनं यज्ञो ब्रह्मचर्यं तपो दमः । श्राद्धोपवासस्वातंत्र्यमात्मनो ज्ञानहेतवः ॥

“स ह्याश्रमैर्विजिज्ञास्यः समस्तैरेवमेव तु । द्रष्टव्यस्त्वथ मंतव्यः श्रोतव्यश्च द्विजातिभिः ॥

५ “न एवमेनं विंदन्ति ये चारण्यकमाश्रिताः । उपासते द्विजाः सत्यं श्रद्धया परया युताः ॥

“क्रमात्ते संभवंत्यर्चिरहः शुक्लं तथोत्तरम् । अयनं देवलोकं च सवितारं सवैद्युतम् ॥

“ततस्तान् पुरुषोऽभ्येत्य मानवो ब्रह्मलौकिकान् । करोति पुनरावृत्तिस्तेषामिह न बिद्यते ॥

“यज्ञेन तपसा दानैर्ये हि स्वर्गजितो नराः । धूमं निशां कृष्णपक्षं दक्षिणायनमेव च ॥ (१९५)

“पितृलोकं चंद्रमसं वायुं वृत्तिं जलं महीम् । क्रमात्ते संभवंतीह पुनरेव व्रजन्ति च ॥ (१९६)

१० “न्यायागतधनस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः श्राद्धकृत्सत्यवादी च गृहस्थोऽपि विमुच्यते ॥ (२०५)”

इति । सर्वेषामाश्रमिणामात्मसाक्षात्कारे सति तत्प्रातिरूपासकानायाचिराद्विगमनद्वारा

तत्प्राप्तिः । काम्यकर्मानुष्ठायिनां तु धूमादिमार्गेण स्वर्गावातिः । कर्मक्षये पुनरा-

वृत्तिः । न केवलं परित्राज एव मुक्तिः किंतु कर्मिणस्तत्त्वज्ञाननिष्ठस्य गृहस्थस्यापीत्यर्थः ।

भूयते च—“ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति तथ इत्थं विदुर्ये चेमेऽरण्ये श्रद्धातप इत्युपासते तेऽर्चिष-

१५ मभिसंभवंत्यर्चिषो हरेत आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान् षडुदंडिति मासास्तान्मासेभ्यः

संवत्सरं संवत्सरादादित्यमादित्याच्चंद्रमसं चंद्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः स एना-

न्ब्रह्मगमयत्येष देवयानः पंथा इत्यथ य इमे ग्राम इष्टापूर्ते दत्तामित्युपासते ते धूममभिसंभवन्ति

धूमाद्रात्रीं रात्रेरपरपक्षमरपक्षाद्यान् षड्दक्षिणेति मासांस्तान्नैते संवत्सरमभिप्राप्नुवन्ति मासेभ्यः

पितृलोकं पितृलोकादाकाशमाकाशाच्चंद्रमसमेष सोमो राजा तद्देवानामन्नं तद्देवा भक्षयन्ति

२० तस्मिन्यावत्संपातमुषित्वाऽथैतमेवाध्वानं पुनर्निर्वर्तते यथैतमाकाशमाकाशाद्वायुं वायुर्भूत्वा धूमो

भवति धूमो भूत्वाऽन्नं भवत्यन्नं भूत्वा मेघो भवति मेघो भूत्वा प्रवर्षति त इह ब्रीहियवा ओषधि-

वनस्पतयस्तिलमाषा इति जायन्ते इतो वै खलु तन्निष्प्रपतनं यो यो ह्यन्नमत्ति यो यो रेतः

सिंचति तद्भूय एव भवति तदथ इह रमणीयचरणाभ्याशनं ह रमणीयां योनिमापद्येरन्ब्राह्मण-

योनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाऽथ य इह कपूयचरणाभ्याशो हयन्ते कपूयां योनि-

२५ मापद्येरन् श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चण्डालयोनिं वेति । उपासकाः क्रमादग्न्याद्यभिमानि-

देवतास्थानेषु मुक्तिमार्गभूतेषु विश्रम्यतैः प्रस्थापिताः परं पदं प्राप्नुवन्ति” । आर्चिर्वन्निर्विद्युत्तेजः ।

ये पुनर्विहितैर्यादिभिः स्वर्गफलभोक्तारः क्रमाद्धमादिचंद्रपर्यंतपदार्थाभिमानिनीर्देवताः प्राप्य

पुनरेवाकाशादिद्वारेण शुक्लत्वमवाप्य संसारिणो योनिं व्रजन्तीत्यर्थः । मनुः ( २।९ )—

“श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः । इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमां गतिम्” ॥ इति ।

३० भगवानपि—

“वर्णाश्रमविधिं कृत्स्नं कुर्वाणो मत्परायणः । तेनैव जन्मना ज्ञानं लब्ध्वा याति शिवं पदम्” ॥ इति ।

बोधायनः ( २।२।१ )—“नित्योदकी नित्ययज्ञोपवीती नित्यस्वाध्यायी वृषलानवर्जी ॥

“ऋतौ च गच्छन्निधिवच्च जुहन्नब्राह्मणश्च्यवते ब्रह्मलोकात् ॥

“आयुषा तपसा युक्तः स्वाध्यायेज्यापरायणः प्रजामुत्पादयेद्युक्तः स्वे स्वे वर्णे जितेंद्रियः ॥ (२।९।३)

“स्वाध्यायेन ऋषीन् पूज्या सोमेन च पुरंदरम् । प्रजया च पितृन्पूर्वान्वृणो दिवि मोदते ॥ (२।९।४)  
“पुत्रेण लोकान्जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते । अथ पुत्रस्य पौत्रेण नाकमेवाधिरोहयेत्” ॥ इति । (२।९।६)  
विज्ञायते च (२।९।७-११) — “जायमनो वै ब्राह्मणः त्रिभिः ऋणवा जायते पितृभ्य” इत्येव-  
मृणसंयोगवेदो दर्शयति । बंधमृणमोक्षं च प्रजायां चायत्तं पितृणां चानुकर्षणं प्रजायां दर्शयति ।  
अनुत्सन्नः प्रजावान्भवति यावदेनं प्रजासुगृह्णीते तावदेवाक्षय्यान् लोकाञ्जनयति सत्पुत्रमुत्पाद्य ५  
आत्मानं तारयति सप्तावरान् सप्तपूर्वान् षडन्यानान् सप्तमान् सत्पुत्रमधिगच्छानस्तारयत्येनसो  
भयात् तस्मात्प्रजासंतानमुत्पाद्य फलमवाप्नोति तस्माद्यत्नवान्प्रजामुत्पादयेदात्मना फललाभाय  
तस्मात्पुत्रं चोत्पाद्यात्मानमेवोत्पादयेत्” इति ॥

विज्ञायते—“आत्मा वै पुत्र नामासीत्येवं द्वितीय आत्मा जीवता द्रष्टव्यो यः पुत्रमुत्पादयति” इति ॥  
बोधायनः (२।६।२९) — “एकाश्रम्यं त्वाचार्या अप्रजनत्वादितरेषाम्” इति । १०

गौतमोऽपि ( ३।३ ) — “तेषां गृहस्थो यो निरप्रजनत्वादितरेषाम्” इति । एकाश्रम्यं  
चाचार्याः प्रत्यक्षविधानाद्गार्हस्थ्यस्येति च ” ( ४।३५ ) । तेषां चतुर्णामाश्रमाणां गृहस्थो  
यो निरुत्पत्तिस्थानम् गृहस्थेनैवोत्पादिताश्चतुर्भिराश्रमैरधिक्रियन्ते नेतरैस्तेषामप्रजनत्वात् ।  
शास्त्रेण प्रजोत्पादनस्य निषिद्धत्वादतस्तैरतिक्रांतनिषेधैरुत्पादिता अपि आश्रमेष्वनाधिकारिण-  
श्चंडालाः प्रत्यवसिताः परिव्राजकतापसास्तेषां जातापत्यानि चंडालैः सह वासयेत् इति १५  
शातातपस्मरणात् । एकाश्रममिति सर्वेषु वेदेषु धर्मशास्त्रेषु पुराणेष्वितिहासेषु गृहस्था एवाग्नि-  
होत्रिणः प्राचुर्येण विधीयन्ते स्तूयन्ते च । ततो गार्हस्थ्यस्य प्रत्यक्षविधानात्स एवैक आश्रमः । इतरे  
तु तत्राशक्तानां विधीयन्त इति बहव आचार्या मन्यन्ते । तथा च गीता ( ३।२० )

“ कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ” इति ।

आपस्तम्बोऽपि ( २।९।२३।१०-१२; २।९।२४।१-८ ) — “त्रैविद्यवृद्धानां तु वेदाः प्रमाणमिति २०  
निष्ठा । तत्र यानि श्रूयन्ते व्रीहियवपश्वाज्यपयःकपालपत्नीसंबंधान्युच्चैर्नीचैः कार्यमिति तैर्विरुद्ध  
आचारोऽप्रमाणमिति मन्यन्ते । यत्तु स्मशानमुच्यते नानाकर्मणामेषोऽन्ते पुरुषसंस्कारो विधीयते ।  
ततः परमनन्त्यं फलं स्वर्गशब्दः श्रूयते । अथाप्यस्य प्रजातिममृतमाप्नाय आह । प्रजामनु  
प्रजायसे तदु ते मर्त्यामृतामिति । अथापि स एवायं विरुद्धः पृथक्प्रत्यक्षेणोपलभ्यते दृश्यते-  
ऽपि च सारूप्यं देहत्वमेवान्यत् । शिष्टेषु कर्मसु वर्तमानाः पूर्वेषां सांपरायेणाकीर्तिं स्वर्गं च २५  
वर्धयंत्येवमवरोवरः परेषामा भूतसंस्तुवाचे स्वर्गजितः पुनः सर्गे बीजार्थी भवतीति भविष्यत्पुराणे—  
“ अथापि प्रजापतेर्वचनम् त्रयीं विद्यां ब्रह्मचर्यं प्रजार्तिं श्रद्धां तपो यज्ञमनुप्रदानम् । एतानि  
कुर्वते तैरित्सह स्मो रजो भूत्वा ध्वंसतेऽन्यत् प्रशंसन्ति” ।

अयमर्थः । त्र्यवयवा विद्या त्रयो वेदाः । तान्येव पाठतश्चार्थतश्च विंदति ते त्रैविद्यास्ते  
पक्कज्ञानाच्चैविद्यवृद्धास्तेषां वेदा एव प्रमाणमतीन्द्रियेऽर्थ इति निष्ठा निर्णयः । यथाह भगवान् १०  
जैमिनिः—( १।१ ) “चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः” इति । ततश्च तत्र वेदेषु यानि कर्माणि श्रूयन्ते  
वीह्यादिसंबंधान्युच्चैर्नृचा क्रियते उपांशुयजुषेत्यैवंप्रकाराणि तैर्विरुद्ध आचारः प्रमाणं न  
भवतीति ते मन्यन्ते । एतदुक्तं भवति । सर्वेषु वेदेषु सर्वासु शाखासु चाग्निहोत्रादीनि कर्माण्येव  
तात्पर्यतो विधीयन्ते । अतो गार्हस्थ्यमेव श्रेष्ठं यदि वेदाः प्रमाणमिति । यत्तु गृहस्थानां स्मशानं

- श्रूयते 'इमशानानि भेजिर' इति स एष नानाकर्मणामग्निहोत्रादीनामन्ते पितृमेधाख्यपुरुषसंस्कारो विधीयते । न तु पिशाचा भूत्वा इमशानमेव सेवंत इति । कुत इत्यत आह ततः परम् इति । इमशानकर्मणोऽन्तरमपरिमितं स्वर्गशब्दवाच्यं फलं श्रूयते 'स एष यज्ञायुधी यजमानोऽञ्जसा स्वर्गं लोकमेति' । अथापि अपि चास्य गृहस्थस्य प्रजातिप्रजासंतानममृतममरणमाप्नायो वेद्
- ५ आह 'प्रजामनुप्रजायस' इति । हे मर्त्य मरणधर्मन्प्रजां जायमानामनु त्वं प्रजायसे प्रजारूपेण जायते तदेव ते अमृतममरणमिति न त्वं म्रियसे यतस्त्वं प्रजारूपेण वर्तसे । उपपन्नं चैतदित्याह 'अथापि स एवायम्' इति । अपि च स एवायं पृथग्विरूढः प्रत्यक्षेणोपलभ्यते । स एव द्विधा भूत इति लक्ष्यते । दृश्यते हि सारूप्यं च द्रव्योर्देहमात्रं तु भिन्नदेहत्वमिति । स्वार्थिकस्त्वप्रत्ययः । ते पुत्राः शिष्टेषु चोदितेषु कर्म-
- १० स्ववस्थिताः पूर्वेषां पितृपितामहादीनां सांपरायेण परलोकेन संबद्धानां कीर्तिं स्वर्गं च वर्धयन्ति । एवमवरोवरः परेषां कीर्तिं स्वर्गं च वर्धयति । भूतसंप्लवो महाभूतप्रलयः । अतस्मात्ते पुत्रिणः स्वर्गजितो भवन्ति । प्रलयानंतरः सर्गः पुनः सर्गस्तत्र संसारबीजार्थाः प्रजा भवन्तीति भविष्यत्पुराणे पठ्यते । अथापि अपि च गार्हस्थमेव वरिष्ठमित्यत्र प्रजापतेर्वाक्यमपि भवति । त्रयी विद्यां वेदानामध्ययनं ब्रह्मचर्यमनिषिद्धकाले स्त्रीसंगमनं प्रजाति प्रजात्वाद्भव
- १५ भ्रन्दामास्तिवयं तप उपवासादि यज्ञमग्निहोत्रादीनि सोमयागांतानि कर्मण्यनुप्रदान-मन्त्रवेदिदानमेतानि ये कुर्वन्ते तैरित्सह स्मः । त एवास्माकं सहायाः अन्यदाश्रमांतरं प्रशंसन्पुरुषो रजः पांसुर्भूत्वा ध्वंसते नश्यतीति यथैवैते हि शिष्टेषु कर्मसु वर्त्तमानाः पुत्राः पूर्वेषां कीर्तिं स्वर्गं च वर्धयन्ति तथा प्रतिषिद्धेषु वर्त्तमाना अकीर्तिनरकं च वर्धयेथ ।

- तत्रापि स एव (२।२४।९—) —“तत्र ये पापकृतस्त एव ध्वंसन्ति यथा पर्णं वन-  
२० स्पृशेत् परान्हिसन्ति । नास्यास्मिन्लोके कर्मभिः संबद्धो विद्यते । तथा परस्मिन्कर्मफलैस्तदेव वेदितव्यम् । प्रजापतेर्ऋषीणामिति सर्गोऽयम् । तत्र ये पुण्यकृतस्तेषां प्रकृतयः परा ज्वलन्त्य उग्रह्मन्ते स्यात्तु कर्मावयवेन तपसा वा कश्चित्सशरीरोऽतवन्तं लोकं जयति संकल्पसिद्धिश्च स्मात् न तु तज्ज्यैष्ठ्यमाश्रमाणां” इति ।

- “तत्र प्रजासंताने ये पापस्य कर्तारस्त एव ध्वंसन्ति न परान्पित्रादीन्हिसन्ति यथा पर्णं वनस्पतेः  
२५ कीटादिभिर्दूषितं तदेव पतति न वनस्पतिं शाखां वा पातयति । तद्वदस्य पित्रादेः पूर्वपुरुषस्या-स्मिन्लोके पुत्रकृतैः कर्मभिः संबन्धो न विद्यते । यथा पुत्रकृतेषु कर्मसु पित्रादेः कर्तृत्वं नास्ति तथा परस्मिन्लोके कर्मफलैरपि संबन्धो नास्तीत्यर्थः । तत्पापकृत एव ध्वंसन्तीत्येतदर्थरूप-मेतेन वक्ष्यमाणहेतुना वेदितव्यम् । प्रजापतेरिहण्यगर्भस्य ऋषीणां च मरीच्यादीना-मयं सर्गः देवतादिस्तिर्यगतस्ते चाध्वस्ता एव स्वे स्वे पदे वर्तन्ते । अत्रोदाहरणमाह ।
- ३० तत्र ये पुण्यकृतो वसिष्ठादयस्तेषां प्रकृतयः शरीराणि परा उत्कृष्टा ज्वलन्त उपलभ्यन्ते विवि यथा सप्तर्षिमंडलम् । श्रूयते च “सुकृतां वा एतां ज्योतिर्दृष्टि यन्नक्षत्राणि” इति । इदं प्रमाणं न पुत्राणां ध्वंसे पूर्वेषां ध्वंस इति कर्मावयवेन पुण्यकर्मणामेकदेशेन भुक्तशेषेण तपसा वा तीव्रेण कश्चिदाश्रमांतरवर्ती सह शरीरेणातवन्तं लोकं जयतीति यत्तत्स्यात्संभवेदपि संकल्पादेव सिद्धिश्च स्यान्न तत्राश्रमांतरस्व ज्यैष्ठ्यं कारणमित्यर्थः । अनेन गार्हस्थ्यप्रशंसा
- ३५ कृतेति द्रष्टव्यम् । यतः स एवाह “तेषु यथोपदेशमव्यक्त्रो वर्त्तमानः क्षेमं गच्छति” इति ।

तेष्वाश्रमेषु सर्वेषु यथाशास्त्रमव्यग्रः समाहितमना वर्तमानः क्षेममभयं पदं गच्छतीत्यर्थः ॥  
वसिष्ठः—

“गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तप्यते तपः । चतुर्णामाश्रमाणां तु गृहस्थस्तु विशिष्यते” ॥ इति ।

इति गृहस्थधर्माः । अथ वानप्रस्थधर्माः । मनुः ( ६।१ )—

“एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्सनातको द्विजः । वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः ॥ ५

“संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम् । पुत्रेषु भार्या निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ॥ (३)

“द्वितीयमायुषो भागमुषित्वा तु गृहे द्विजः । तृतीयमायुषो भागं गृहमेधी वने वसेत् ॥

“उत्पाद्य धर्मतः पुत्रानिष्ट्वा यज्ञैश्च शक्तितः । दृष्ट्वापत्यस्य चापत्यं ब्राह्मणोऽरण्यमाविशेत्” ॥

याज्ञवल्क्यः ( प्रा. ४५ )—

“सुतविन्यस्तपत्नीकस्तया वाऽनुगतो वनम् । वानप्रस्थो ब्रह्मचारी साम्निः सौपासनो व्रजेत्” ॥ १०

संवर्त्तः—

“गच्छेद्वनं वनं प्राज्ञः सभार्यो ह्येक एव वा । गृहीत्वा चाग्निहोत्रं तु होमं तत्र न हापयेत् ॥

“कुर्याच्चरुपुरोडाशा वन्यैर्या मेध्यसेविभिः । भिक्षां तु भिक्षवे दद्याच्छाकमूलफलादिभिः ॥

“वेदविद्याव्रतस्थांश्च श्रोत्रियान्वेदपारगान् । योजयेद्धव्यकव्येषु विपरीतास्तु वर्जयेत् ॥

“गायत्रीमात्रसारोऽपि वरो विप्रः सुयंत्रितः । नायंत्रितश्चतुर्वेदी सर्वाशी सर्वविक्रयी ॥ १५

“कुर्यादध्ययनं नित्यमग्निहोत्रपरायणः । इष्टीः पर्वाग्रायणीयाः प्रकुर्यात्प्रतिपर्वसु” ॥

हारीतः—

“गृहस्थः पुत्रपौत्रादि दृष्ट्वा पलितमात्मनः । भार्या पुत्रेषु संस्थाप्य सह वा प्रविशेद्वनम् ॥

“जटाश्च विभृयान्नित्यं नखरोमाणि धारयेत् । अग्निहोत्रं च जुहुयात्पंचयज्ञान् समाचरेत् ॥

“वन्यान्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा । वीतरागो भवेन्नित्यं स्नात्वा त्रिषवणं शुचिः ॥ २०

“सर्वभूतानुकंपी स्यात्प्रतिग्रहविवर्जितः” ॥

मनुः ( ६।६-२३ )—

“वसीत चर्मचिरं वा सायं स्नायात्प्रगे तथा । जटाश्च विभृयान्नित्यं स्मश्रुलोमनखानि च ॥

“यद्भक्षः स्यात्ततो दद्याद्दलं भिक्षां च शक्तितः । अम्मूलफलभक्षाभिरर्चयेदाश्रमागतम् ॥

“स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दांतो मैत्रः समाहितः । दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकंपनः ॥ २५

“वैतानिकं च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधि । दर्शमस्कन्दयनर्पर्व पौर्णमासं च योगतः ॥

“ऋक्षेष्टचाग्रयणे चैव चातुर्मास्यानि चाहरेत् । तुरायणं च क्रमशो दक्षस्यायनमेव च” ॥

ऋक्षेष्टिः नक्षत्रेष्टिः । तुरायणं संवत्सरसाध्यः ऋतुविशेषः । दाक्षायणं दश विकृतिः । क्रमश-  
स्तत्र तत्र काले ।

“वासंतशारदैर्मध्येर्मुन्यन्नैः स्वयमाहृतैः । पुरोडाशांश्चरुं चैव विधिवन्निर्वपेत्पृथक् ॥

“देवताभ्यश्च तद्धुत्वा वन्यं मेध्यतरं हविः । शेषमात्मनि युंजीत लवणं च स्वयं कृतम् ॥

“स्थलजोदकशाकानि पुष्पमूलफलानि च । मेध्यवृक्षोद्भवानन्यान् स्नेहांश्च फलसंभवान् ॥

“त्यजेदाश्वयुजे मासे मुन्यन्नं पूर्वसंचितम् । जीर्णानि चैव वासांसि शाकमूलफलानि च ॥

“न फालकृष्टमश्रीयादुत्कृष्टमपि केनचित् । न ग्रामजातान्यार्त्ताऽपि पुष्पाणि च फलानि च ॥

“अग्निप्रकाशनो वा स्यात्कालपक्वभुगेव वा । अश्मकुट्टो भवेद्वाऽपि दंतोलूखलिकोऽपि वा ” ॥  
फलादीन्यश्मनि निपीड्य ये भक्षयन्ति ते अश्मकुट्टाः । दंतैरेवोलूखलकार्यं ये कुर्वन्ति ते  
दंतोलूखलिकाः ।

“सद्यः प्रक्षालिको वा स्यान्माससंचयिकोऽपि वा । षण्मासनिचयो वा स्यात्समानिचय एव वा” ॥

५ प्रतिदिनं जीवनं संपाद्यं भुक्त्वा अश्वस्तनिको हस्तप्रक्षालनं यः करोति स सद्यः प्रक्षालिकः ।

“नक्तं वाऽन्नं समश्रीयाद्वा वाऽहृत्य शक्तितः । चतुर्थकालिको वा स्यात् स्याद्वा षष्ठाष्टमाशनः ॥

“चांद्रायणविधानैर्वा शुक्ले कृष्णे च वर्तयेत् । पक्षांतयोर्वाऽप्यश्रीयाद्यवागूं कथितां सकृत् ॥

“पुष्पमूलफलैर्वाऽपि कैवल्यैर्वर्तयेत्सदा । कालपक्वैः स्वयं शीर्णैर्वैखानसमते स्थितः ॥

विखनसा प्रोक्तं तत्र वैखानसमतम् । तत्र हि वानप्रस्थधर्मस्य पूर्ण उपदेशः ।

१० “भूमौ विपरिवर्त्तते तिष्ठेद्वा प्रपदैर्दिनम् । स्थानासनाभ्यां विहरेत्सवनेषूपयन्नपः ॥

विपरिवर्त्तते शयीत । प्रपदैः पादांगुल्याग्रैः । अप उपयन् त्रिषवणस्नायी ।

“ग्रीष्मे पंचतपास्तु स्याद्वर्षास्वभ्रावकाशकः । आर्द्रवासास्तु हेमन्ते कमशो वर्धयस्तपः” ॥

व्यासः—

“एकपादेन तिष्ठेत्तमरीचीः प्रपिबेत्तदा । पंचाग्निधूमपो वा स्याद्वृषपः सोमपोऽथ वा ” ॥

१५ “पयः पिबेच्छुक्लपक्षे कृष्णे पक्षे च गोमयम् । शीर्णपर्णाशनो वा स्यात्कुच्छ्रैर्वा वर्तयेत्सदा ॥

“जितेन्द्रियो जितक्रोधस्तत्त्वज्ञानविर्चितकः । ब्रह्मचारी भवेन्नित्यं स्वपत्नीं प्रति संश्रयेत् ॥

“यस्तु पत्न्या समं गत्वा मैथुनं कामतश्चरेत् । तद्व्रतं तस्य लुप्येत प्रायश्चित्तीयते द्विजः ॥

“तस्यां यो जायते गर्भो न संस्पृश्यो द्विजातिभिः । न वेदेऽप्यधिकारोऽस्ति तद्वंशे योऽप्यजायते” ॥

विष्णुः ( ३३।६ )—

२० “त्रिविधं नरकस्येह द्वारं नाशनमात्मनः । कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्” ॥

एवं गृहस्थसमस्य धर्मा उक्ताः ।

अथ भिक्षुसमस्य वानप्रस्थस्य धर्मानाह मनुः ( ६।२५-३० )—

“अग्निन्स्वात्मनि वैनानान्समारोप्य यथाविधि । अनग्निरनिकेतः स्यान्मुनिर्मूलफलाशनः ॥

“अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः । शरणे त्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः ॥

२५ “तापसेष्वेव विप्रेषु यात्रार्थं भैक्षमाचरेत् । गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु ॥

“ग्रामादाहृत्य वाऽश्रीयादष्टौ ग्रासान्वने वसन् । प्रतिगृह्य पुटेनैव पाणिना शकलेन वा” ॥

शकलेन भिन्नभांडशकलेन ।

“एतांश्चान्यांश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन् । विविधाश्चौपनिषदीरभ्यसेच्छुद्धये द्विजः” ॥

प्रकारांतरमाह स एव ( ६।३१-३२ )

३० “अपराजितां वाऽप्यास्थाय व्रजेद्दिशमजिम्हगः । आ निपाताच्छरीरस्य युक्तो वार्यनिलाशनः” ॥

अपराजितां प्रागुदीचीम् ।

“आसां महर्षिचर्याणां त्यक्त्वाऽन्यतमया तनुम् । वीतशोकोऽभयो विप्रो ब्रह्मलोके महीयते” ॥

याज्ञवल्क्यः ( प्रा. ५५ )—“वायुभक्षः प्रागुदीचीं गच्छेद्वा वर्ष्मसंक्षयात् ”

व्यासः—

“महाप्रस्थानिकं वाऽयं कुर्यादनशनं तु वा । अग्निप्रवेशमन्यद्वा ब्रह्मार्पणविधौ स्मृतः” ॥

“यस्तु सम्यगिममाश्रमं शिवं संश्रयत्यशिवपुंजनाशनम् ॥

“तापहन्त्रमलमैश्वरं पदं याति यत्र जगतोऽस्य संस्थितिः” ॥

हारीतः—

“अग्निं स्वात्मनि कृत्वा तु प्रव्रजेदुत्तरं दिशम् । आ देहपातं वनगो मौनमास्थाय तापसः ॥ ५

“स्मरन्नतीन्द्रियं ब्रह्म ब्रह्मलोके महीयते ॥

“तपो हि योऽसावकरोद्वनस्थो वने वसन्सत्त्वसमाधियुक्तः ।

“विमुक्तपापो विमलः प्रज्ञातः स याति दिव्यं पुरुषं पुराणम्” ॥ इति ।

अयं च वानप्रस्थाश्रमः “देवरेण सुतोत्पत्तिर्वानप्रस्थाश्रमग्रहः” इति कलौ निषिद्धः ।

इति वानप्रस्थधर्मनिरूपणम् ।

अथ यतिधर्मः ।

तत्र मनुः ( ६।३३।३४ )—

“वनेषु तु विद्वत्यैवं तृतीयं भागमायुषः । चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा संगान् परिव्रजेत् ॥

“आश्रमादाश्रमं गत्वा हुतहोमो जितेंद्रियः । भिक्षाबलिपरिश्रांतः प्रव्रजन्प्रेत्य वर्धते” ॥

हुतहोमः कृतसमिदाधानाग्निहोत्रहोमः । भिक्षाबलिपरिश्रांतः । भिक्षाचरणवैश्वदेवबलिहरणाभ्यां १५

परिश्रांतः । आश्रमादाश्रमं गत्वा ब्रह्मचार्याश्रमाद्गार्हस्थ्यं ततो वानप्रस्थाश्रमं गत्वेत्यर्थः । ब्रह्मचर्या

गार्हस्थ्ये कृत्वा वानप्रस्थमकृत्वाऽपि संन्यासः कर्त्तव्यः । नान्यथेत्याह स एव ( ६।३५-३७ )

“ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् । अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यधः ॥

“अधीत्य विधिवद्वेदानुपुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः । इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत् ॥

“अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथाऽऽत्मजान् । अनिष्ट्वा चैव यज्ञैस्तु मोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः” ॥ २०

मोक्षं मोक्षसाधनं संन्यासाश्रमम् । अनेन पूर्वोक्तश्रुतुराश्रमसमुच्चयपक्षः पाक्षिक इति द्योतयति ।

तथा च याज्ञवल्क्यः ( प्रा. ५६-५७ )—

“वनाद्गृहाद्वा कृत्वेष्टिं सार्ववेदसदक्षिणाम् । प्राजापत्यां तदंते तानग्नीनारोप्य चात्मनि ॥

“अधीतवेदो जपकृतपुत्रवानन्नदोऽग्निमान् । शक्त्या च यज्ञकृन्मोक्षे मनः कुर्यात्तु नान्यथा” ॥

व्यासः—

२५

“एवं वनाश्रमे स्थित्वा तृतीयं भागमायुषः । चतुर्थमायुषो भागं संन्यासेन नयेत्क्रमात् ॥

“प्राजापत्यां निरूप्येष्टिमाग्नेयीमथ वा पुनः । दांतः पक्ककषायोऽसौ ब्रह्माश्रममुपाश्रयेत्” ॥

संवर्त्तः—

“उषित्वैवं वने सम्यग्वितृष्णः सर्ववस्तुषु । चतुर्थमाश्रमं गच्छेद्भुतहोमो जितेंद्रियः ॥

“संसेव्य चाश्रमान्सर्वान्जितक्रोधो जितेंद्रियः । ब्रह्मलोकमवाप्नोति वेदशस्त्रार्थवित् द्विजः” ॥ ३०

हारीतः—

“एवं वनाश्रमे तिष्ठन्तपसा दग्धकिल्बिषः । चतुर्थमाश्रमं गच्छेत्संन्यासविधिना द्विजः ॥

“इष्टिं वैश्वानरीं कृत्वा प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा । अग्निं स्वात्मनि संरोप्य मंत्रवत्प्रव्रजेत्पुनः” ॥

वृक्षः—

“सर्वेऽपि क्रमशस्त्वेते यथाशास्त्रनिषेविताः । यथोक्तकारिणं विप्रं नयन्ति परमां गतिम् ॥ ३५

“त्रयाणामानुलोम्यं स्यात्प्रातिलोम्ये न विद्यते । प्रातिलोम्येन यो याति न तस्मात्पापकृत्तमः”<sup>॥</sup>  
 आपस्तम्बोपि ( २।२१।२ )—“तेषु सर्वेषु यथोपदेशमव्यग्रो वर्तमानः क्षेमं गच्छति” इति ।

बोधायनस्तु विकल्पमाह ( २।१०।२-७ )—“अत एव ब्रह्मचार्यवान्प्रव्रजती-  
 त्येकेषामथ शालीनयायावराणामनपत्यानां विधुरो वा प्रजां स्वधर्मे प्रतिष्ठाप्य वा सत्पत्या  
 ५ ऊर्ध्वं संन्यासमुपदिशति वानप्रस्थस्य वा कर्मविरामे” इति ।

गौतमोऽपि ( ३।१ )—“तस्याश्रमविकल्पमेके ब्रुवते” इति । वसिष्ठः—“चीर्णब्रह्मचर्यो  
 यमिच्छेत्तमावसेदत्” इति । चतुर्णामाश्रमाणां मध्ये यमिच्छेत्तत्रैव निष्ठां यायादित्यर्थः ।

उशानाः—

“आचार्येणाभ्यनुज्ञातश्चतुर्णामेकमाश्रमम् । आविमोकाच्छरीरस्य सोऽनुतिष्ठेद्यथाविधि”<sup>॥</sup> इति ।

१० अंगिराः—

“संन्यसेद्ब्रह्मप्रचर्येण संन्यसेद्वा गृहादपि । वनाद्वा संन्यसेद्विद्वानातुरो वा तु दुःखितः”<sup>॥</sup>

यमः—

“चीर्णवेदव्रतो विद्वान्ब्राह्मणो मोक्षमाश्रयेत् । समः सर्वेषु भूतेषु चरेषु स्थावरेषु च”<sup>॥</sup>

“उत्पन्नज्ञानविज्ञानो वैराग्यं परमं गतः । प्रव्रजेद्ब्रह्मचर्यात्तु यदिच्छेत्परमां गतिम्”<sup>॥</sup>

१५ “जातपुत्रो गृहस्थो वा विदितात्मा जितेन्द्रियः”<sup>॥</sup>

कात्यायनः—

“ब्रह्मचर्याद्गृहाद्वाऽपि वनाद्वा संन्यसेद्विजः । पुत्रेषु भार्या निक्षिप्य मृतपत्नीक एव वा”<sup>॥</sup>

“ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथ वा पुनः । विरक्तः सर्वकामेभ्यः परिव्रज्यां समाश्रयेत्”<sup>॥</sup>

विष्णुपुराणेऽभविष्यत्पुराणेऽपि—

२० “गृहीतविद्यो गुरवे दत्त्वा च गुरुदक्षिणाम् । गार्हस्थ्यमिच्छन्भूपाले कुर्याद्धारपरिग्रहम्”<sup>॥</sup>

“ब्रह्मचर्येण वा कालं कुर्यात्संकल्पपूर्वकम् । वैखानसो वाऽपि भवेत्परिब्राड्यथवेच्छया”<sup>॥</sup>

महाभारतेऽपि—

“गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वानप्रस्थोऽपि वा पुनः । य इच्छेन्नमोक्षमादातुमुत्तमां वृत्तिमाश्रयेत्”<sup>॥</sup> इति ।

आरण्यकोपनिषद्—“गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वानप्रस्थो वा लोकाग्निमुदराग्नौ

२५ समारोपयेत्” इति । जाबालिभ्रुतिस्तु चतुर्णां त्रयाणां द्वयोर्वा समुच्चयमाह—“ब्रह्मचर्यं  
 समाप्य गृही भवेत् । गृही भूत्वा वनी भवेद्वनी भूत्वा प्रव्रजेद्यदि वेतरथा ब्रह्मचर्यादेव गृहाद्वा  
 वनाद्वा” इति । गार्हस्थेनेतराश्रमबाधश्च गौतमबोधायनाभ्यां दर्शितः ( ३।३५ )—“एकाश्रम्यं  
 त्वाचार्याः प्रत्यक्षविधानात् गार्हस्थ्यस्य” इति ।

अत्र विज्ञानेश्वरः ( प्रा. पृ. १९९-२०० )—“एषां च समुच्चयविकल्पबाधेपक्षाणां

३० सर्वेषां श्रुतिस्मृतिमूलत्वादिच्छया विकल्पः । अतो यत्कैश्चित्पण्डितैर्मन्यैरुक्तं यावज्जीवमग्निहोत्रं  
 जुहोतीत्यादिप्रत्यक्षश्रुतिसिद्धगार्हस्थ्येनेतराश्रमबाधः गार्हस्थ्यानधिकृतपंगवादिविषयमाश्रमां-  
 तरमिति तत्त्वाध्यायाध्ययनवैधुर्यनिबन्धनमित्युपेक्षणीयम् । किं च यथा विष्णुक्रमाज्यावेक्षणा-  
 यक्षमतयाऽधपंगवादीनां श्रौतेष्वनधिकारः तथोदकुंभाहरणभिक्षाचर्यायक्षमत्वात्कथमधपंगवादि-  
 विषयतयाऽश्रमांतरनिर्वाहः ।



कणानि त्रीण्यपकुण्येत्यादीनि वचनानि अनपाकृतकृणत्रयस्वगृहस्थस्य प्रव्रज्यायामनधिकार इत्येवंपराणि । यदा तु ब्रह्मचर्यात्प्रव्रजति तदा न प्रजोत्पादनादिनियमः । अकृतदारपरिग्रहणस्य तत्रानधिकाराद्रागप्रयुक्तत्वाच्च विवाहस्य ।

“ ननु जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिः प्रजया पितृभ्य इति । जातमात्रस्यैव प्रजोत्पादनादीनि दर्शयति नैवं न हि जातमात्रोऽकृतदारपरिग्रहो यज्ञादिषु अधिक्रियते तस्मादधिकारी जायमानो ब्राह्मणादिर्यज्ञादीननुतिष्ठेदिति तस्यार्थः । अतश्चोपनीतस्य वेदाध्ययनमेवावश्यकं कर्मकृतदारपरिग्रहस्य प्रजोत्पादनादीति निरवयमिति यस्य समुच्चयानुष्ठानसामर्थ्यं नास्ति तस्यायमाश्रमविकल्पः ” इति ॥ स्मृतिचंद्रिकायाम्—

“ अधीत्य विधिवद्वेदानुष्ठानानुत्पाद्य धर्मतः ” इत्यादीनि वचनानि यस्य ऐहिकामुष्मिकभोगेष्वदावेव वैराग्यं न जायते तद्विषयाणीति स्मृतिरस्नादावभिहितम् । अन्ये त्वध्ययननियोग- निवृत्त्युत्तरकालं यस्य पुरुषस्य यदा वैराग्यं जायते तस्याश्रमिणोऽनाश्रमिणो वा तदैव संन्यास इति वदन्ति । तथा च जाबालश्रुतिः—“ अथ पुनरवती वती वा स्नातको वोत्सन्नाग्निरग्निरनग्निर्को वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रवजेत्तथायद्यातुरः स्यान्मनसा वाचा वा संन्यसेत् ” इति । बृहस्पतिः—

“ संसारमेव निःसारं दृष्ट्वा सारदिदृक्षया । प्रवजेदकृतोद्वाहः परं वैराग्यमाश्रितः ” ॥ १५ पराशरः

“ परिव्रज्या तु वैराग्यात्कर्तव्या विधुरादिभिः । विधिनैव च कुर्वीत संन्यासमिह बुद्धिमान् ” ॥ अंगिराः—

“ विरक्तः संन्यसेद्विद्वाननिष्ठाऽपि द्विजोत्तमः । प्रकर्तुमथ शक्तोऽपि जुहोति यजति क्रियाः ॥

“ अंधः पंगुर्दरिद्रो वा विरक्तः संन्यसेद्विजः । सर्वेषामेव वैराग्यं संन्यासे तु विधीयते ॥ २०

“ पतेदेवाविरक्तो यः संन्यासं कर्तुमिच्छति । पुनर्दार्क्रियाभावे मृतभार्यः परिव्रजेत् ” ॥ इति । अंधपंगवोः संन्यासविधानं विरक्तिप्रशंसार्थं न पुनस्तत्प्राप्त्यर्थम् ।

“ आरूढपतितो ब्राह्म्यः कुनसी श्यावदंतकः । क्षयी तथाऽगविकलो न तु संन्यासमर्हति ” ॥ वक्षस्मरणात् अंगिराः—

“ यदा मनसि संजातं वैतृष्ण्यं सर्ववस्तुषु । तदा संन्यासमिच्छन्ति पतितः स्याद्विपर्यये ” ॥ २५ हारीतः—

“ विरक्तः प्रवजेद्धीमान्संरक्तस्तु गृहे वसेत् । सरागो नरकं याति प्रवजन् हि द्विजाधमः ” ॥

व्यासः—

“ यस्यैतानि सुगुप्तानि जिह्वोपस्थोदरं करः । संन्यसेदकृतोद्वाहो ब्राह्मणो ब्रह्मचर्यवान् ॥

“ परमात्मनि यो रक्तो विरक्तोऽपरमात्मनि । सर्वेषणाविनिर्मुक्तः स भैक्षं भोक्तुमर्हति ॥ ३०

“ पूजितो वंदितश्चैव सुप्रसन्नो यथा भवेत् । तथा चेत्ताड्यमानस्तु तदा भवति भैक्षभुक् ” ॥

क्रतुः—

“ अहमेवाक्षरं ब्रह्म वासुदेवाख्यमव्ययम् । इति भावो भवेद्यस्य तदा भवति भैक्षभुक् ॥

“यस्मिन्क्षातिः शमः शौचं सत्यं संतोष आर्जवम् । आर्किचिन्मदंभश्च स कैवल्याश्रमे वसेत् ॥

“यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेषु पावकम् । कर्मणा मनसा वाचा तदा भवति भैक्षभुक्” ॥  
माधवीये पराशरे—

“परिभोगात्परिच्छेदात्परिपूर्णावलोकनात् । परिपूर्णफलत्वाच्च परिव्राजक उच्यते ॥

५ “परितो व्रजते नित्यं परं वा व्रजते पुनः । हित्वा चैवं परं जन्म परिव्राजक उच्यते” ॥

व्यासः

“प्रवृत्तिलक्षणं कर्म ज्ञानं संन्यासलक्षणम् । तस्माज्ज्ञानं पुरस्कृत्य संन्यसेदिह बुद्धिमान्” ॥

मनुः ( ६।९४ )—

“दशलक्षणकं धर्ममनुतिष्ठन्समाहितः । वेदांतान्विधिवच्छ्रुत्वा संन्यसेद्वृणो द्विजः ॥

१० “धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः । ऋर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्” ॥ (९२)

धृतिः स्वधर्मापरित्यागः । क्षमा अवमानसहत्वम् ॥

वक्षः—“तस्मात्सक्तकषायेण कर्त्तव्यं दण्डधारणम् । इतरस्तु न शक्नोति विषयैश्चाभिभूयते” ॥

जाबालिः—

“संन्यासनिश्चयं कृत्वा पुनर्न च करोति यः । स कुर्यात्कृच्छ्रमश्रांतः षणमासान्वृत्यनंतरम् ॥

१५ “संन्यासं पातयेद्यस्तु पतितं न्यासयेत्तु यः । संन्यासविघ्नकर्त्ता च त्रीनेतान्पतितान्विदुः ॥

“संप्रत्यवसितानां च महापातकिनां तथा । वात्यानामभिशस्तानां संन्यासं नैव कारयेत् ॥

“व्रतयज्ञतपोदानहोमस्वाध्यायवर्जितम् । सत्यशौचपरिभ्रष्टं संन्यासं नैव कारयेत्” ॥

बृहस्पतिः—

“अतीतान्न स्मरेद्भोगान्न तथाऽनागतानपि । प्राप्तांश्च नाभिनन्देद्यः स कैवल्याश्रमे वसेत् ॥

२० “अन्तस्थानीन्द्रियाण्यन्तर्बहिष्ठान्विषयान्बहिः । शक्नोति यः सदा कर्त्तुं स कैवल्याश्रमे वसेत्” ॥

आतुरसंन्यासविधिः । अंगिराः—

“उत्पन्ने संकटे घोरे चोरव्याघ्रादिगोचरे । भयभीतस्य संन्यासमंगिरा मुनिरब्रवीत्” ॥

सुमंतुः—

“आपत्काले तु संन्यासं कर्त्तव्य इति शिष्यते । जरयाऽभिपरीतेन शत्रुभिर्व्यथितेन च ॥

२५ “आतुराणां च संन्यासे न विधिर्नैव च क्रिया । प्रेषमात्रं समुच्चार्य संन्यासं तत्र पूरयेत् ॥

“संन्यस्तोऽहमिति ब्रूयात् सवनेषु त्रिषु क्रमात् । त्रीन्वारांस्तु त्रिलोकात्मा शुभाशुभविशुद्ध्ये ॥

“यत्किंदिद्वन्धकं कर्म कृतमज्ञानतो मया । प्रमादालस्यदोषाद्यत् तत्सर्वं संत्यजाम्यहम् ॥

“एवं संचित्य भूतेभ्यो दयादभयदक्षिणाम् ।

“पद्भ्यां कराभ्यां विरहन्नाहं वाक्कायमानसैः । करिष्ये प्राणिनां हिंसां प्राणिनः संतु निर्भयाः” ॥

३० संग्रहे—

“आतुराणां संन्यासे संकल्पसावित्रीप्रवेशनपाणिहोमप्रेषोच्चारणाभयदानानि विहितानि” इति ।

विष्णुः

“संन्यस्तमिति यो ब्रूयात्प्राणैः कण्ठगतैरपि । न तत्कृतुशतेनापि प्राप्नुं शक्नोति मानवः” ॥ इति ।

अंगिराः—

“ आतुराणां विशेषोऽस्ति न विधिर्नैव च क्रिया । प्रैषमात्रस्तु संन्यास आतुराणां विधीयते ” ॥

श्रुतिरपि— “ यद्यातुरः स्यान्मनसा वाचा वा संन्यसेत् ” इति ॥

संन्यासफलनिरूपणम् । संन्यासफलमाह यमः—

“ ये च संतानजा दोषा ये च स्युः कर्मसंभवाः । संन्यासस्तान्दहेत्सर्वास्तुषामिदं काञ्चनम् ” ॥ ५

मनुः ( ५।१०७ )—

“ मृत्तोर्यैः शुध्यते शोध्यं नदी वेगेन शुध्यति । रजसा स्त्री मनो दुष्टा संन्यासेन द्विजोत्तमः ॥

“ यो दत्त्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात् । तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः ॥ (६।३९)

“ यस्मादपीह भूतानां भयं नोत्पद्यते क्वचित् । तस्य देहाद्विमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन ॥ (४०)

“ यदा भावेन भवति सर्वभावेन निस्पृहः । तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ” ॥ (८३) १०

याज्ञवल्क्योऽपि ( प्रा. ३२ )—

“ अकार्यकारिणां दानं वेगो नद्याश्च शुद्धिकृत् । शोध्यस्य मृच्च तोयं च संन्यासोऽथ द्विजन्मनाम् ” ॥

पराशरः—

“ द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमंडलभेदिनौ । परित्राट् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ॥

“ संन्यस्तं ब्राह्मणं दृष्ट्वा स्थानाच्चलति भास्करः । एष मे मंडलं भित्वा परं स्थानं प्रयास्यति ” ॥ १५

व्यासः—

“ द्वे रूपे वासुदेवस्य चरं चाचरमेव च । चरं संन्यासिनां रूपमचरं प्रतिमादिकम् ” ॥

विष्णुः—

“ एकरात्रोषितस्यापि यतेर्या गतिरुच्यते । न सा शक्या गृहस्थेन प्राप्तुं ऋतुशतैरपि ” ॥

वृक्षः—

२०

“ त्रिंशत्परान् त्रिंशदपरान् त्रिंशच्च परतः परान् । सद्यः संन्यसनादेव नरकात्रायते पितृन् ” ॥

अंगिराः—

“ षष्टिं कुलान्यतीतानि षष्टिमागामिकानि च । कुलान्युद्धरते प्राज्ञः संन्यस्तमिति यो वदेत् ” ॥

यमः—

“ ज्ञानेन मुच्यते भिक्षुस्तपसा स्वर्गमाप्नुयात् । नरकं विषयासंगात्रयो मार्गास्तपस्विनाम् ” ॥ २५

व्यासः—

“ दिव्यतेजोमयः श्रीमान्सूर्यचंद्राग्निमंडलम् । भित्वा प्रयाति संन्यासी स्वधर्मपरिपालनात् ” ॥ इति ।

तथा च श्रुतिः—

“ त्याग एव हि सर्वेषां मोक्षसाधनमुत्तमम् । त्यजतैव हि तत् ज्ञेयं त्यक्तुः प्रत्यक्परं पदम् ” ॥ इति ।

“ संन्यस्य सर्वकर्माणि सर्वमात्मावबोधतः । हत्वा विद्यां धियैवेयात्तद्विष्णोः परमं पदम् ” ॥ इति । च ३०

तैत्तिरीयके श्रूयते ( नारायणोपनिषदि )

“ न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैकं अमृतत्वमानशुः ” इति । आधानादिकर्मणा प्रजया

धनेन च अमृतत्वमपवर्गं नानशुर्नाश्रुवते किंतु त्यागेनैव एक इति अधिकारिदौर्लभ्यं दर्शयति ।

पूर्वमधीतवेदा अधिगतसांगवेदार्था अनुष्ठितयथोदितसकलधर्माणो विशुद्धांतःकरणा जितेंद्रिया

अनन्तरं संत्यक्तकर्माणो वेदांतवाक्यश्रवणादिजनितब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानाः केचिदेवामृतत्वमश्रवंत इत्यर्थः । तथा च तत्रैव श्रूयते—

“वेदांतविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः ।

ते ब्रह्मलोके तु परांतकाले परामृतात्परिमुच्यन्ति सर्वे ” ॥ इति ।

५ ब्रह्मणो लोके दर्शने सति परांतकाले पश्चिमजन्मसमाप्तिकाले परामृतात्परमुत्कृष्टं तदेवा-  
मृतममरणधर्मं ब्रह्म तस्मादनुभवगोचराद्ब्रह्मणो हेतोः परिमुच्यंत इत्यर्थः ।

बृहदारण्यकेऽपि— “एतमेव प्रवाजिनो लोकमिच्छंतः प्रव्रजंति ” इति । प्रकृतमात्मानमेव लोकमिच्छंतः प्रव्रजेयुरित्यर्थः ।

जाबालश्रुतौ—

१० “अथ परित्राड्विवर्णवासो मुंडोऽपरिग्रहः शुचिरद्रोही भैक्षमाणो ब्रह्मभूयाय भवति ” इति ।

“शतं कुलानां पुरतो बभूव तथा पराणां च शतं समग्रम् ।

एते भवंति सुकृतस्य लोके येषां कुले संन्यसतीह विप्राः ॥

“संन्यासाद्ब्रह्मणः स्थानं वैराग्यात्प्रकृतौ लयः । ज्ञानात्कैवल्यमाप्नोति तिस्रस्ता गतयः स्मृताः” ॥ इति ।  
अस्मिंश्चाश्रमे ब्राह्मणस्यैवाधिकारः ।

१५ ‘आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद्ब्रह्मात्’ । ‘एष वोऽभिहितो धर्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः’ ॥

इति उपक्रमोपसंहाराभ्यां मनुना ब्रह्मणस्यैवाधिकारप्रतिपादनात् । “ब्राह्मणाः प्रव्रजन्ति” ॥ इति  
श्रुतेऽप्यजन्मन एवाधिकारो न द्विजातिमात्रस्येति विज्ञानेश्वरः ( पृ. १९९ पं. २४-२६ )

अत्रिरपि—

“न तावन्मुच्यते दुःखाज्जन्ममृत्योश्च बंधनात् । यावन्न धारयेद्विप्रो विष्णवं लिंगमाद्रात् ॥

२० “मुखजानामयं धर्मो वैष्णवं लिंगधारिणम् । बाहुजातोरुजातानां नायं धर्मो विधीयते” ॥ इति ।  
वैष्णवलिंगधारणं संन्यासः । व्यासः—

“चत्वार आश्रमाश्चैते ब्राह्मणस्य प्रकीर्तिताः । गार्हस्थ्यं ब्रह्मचर्यं च वानप्रस्थत्रयस्मृताः ॥

“क्षत्रियस्यापि कथिता य आचारा द्विजस्य हि । ब्रह्मचर्यं च गार्हस्थ्यमाश्रमद्वितयं विशः ॥

“गार्हस्थ्यमुदितं चैकं शूद्रस्य परिकीर्तितम्” ॥ इति । अन्ये तु “त्रयाणां वर्णानां चत्वार आश्रमा

२५ इति ” सूत्रकारादिवचनाद्विजातिमात्रस्याधिकारमाहुः । व्यासोऽपि—

“ऋणत्रयमपाकृत्य निर्ममो निरहंकृतिः । ब्राह्मणः क्षत्रियो वाऽथ वैश्यो वाऽथ व्रजेद्ब्रह्मात्” ॥ इति ।

द्विजातिमात्रस्याधिकारमाहुः । क्षत्रियवैश्ययोः प्रव्रज्यानिषेधवचनानि काषायदंडनिषेधपराणीति  
स्मृतिरत्नेऽप्यभिहितम् । व्यासः—

“अग्न्याधेयं गवालंभं संन्यासं पलपैतृकम् । देवरेण सुतोत्पत्तिं कलौ पंच विवर्जयेत्” ॥ इति ।

३० तस्यापवादमाह स एव

“यावद्दूर्णविभागोऽस्ति यावद्देदः प्रवर्तते । तावन्न्यासोऽग्निहोत्रं च कर्त्तव्यं तु कलौ युगे” ॥ इति ।

कात्यायनः—

“कृच्छ्रांस्तु चतुरः कृत्वा पावनार्थमनाश्रमी । आश्रमी चेत्तप्तकृच्छ्रं तेनासौ योग्यतां व्रजेत्” ॥

बह्वचपरिशिष्टेऽपि— “मुमुक्षुरात्मविशुद्धये एकं तप्तकृच्छ्रं कृत्वा अनाश्रमी चतुरः

३५ प्राजापत्यान्” इति ।

**बोधायनः**—“अनाश्रमी चतुरः कृच्छ्रानात्मशुद्ध्यर्थं विदध्यादाश्रमी तप्तकृच्छ्रमेकम्” इति ।  
**स्मृतिसारे**—

“कुर्याच्चत्वारि कृच्छ्राणि संन्यासेप्सुरनाश्रमी । आश्रमी कृच्छ्रमेकं तु कृत्वा संन्यासमर्हति” ॥ इति ।

**जीवश्रान्दादिनिरूपणम् । व्यासः**—

“देयं पितृभ्यो वेदेभ्यः स्वपितृभ्योऽपि यत्नतः । दत्त्वा श्रान्दमृषिभ्यश्च मनुजेभ्यस्तथाश्रमे ॥ ५

“इष्टिं वैश्वानरीं कृत्वा प्राजापत्यमथापि वा । अग्नीन् स्वात्मनि संरोप्य मंत्रवत्प्रव्रजेत्पुनः” ॥

**बोधायनः**—

“दैवं चैवार्षकं दिव्यं पित्र्यं मातृकमानुषम् । भौक्तिकं चात्मनश्चांते अष्टौ श्रान्दानि निर्वपेत्” ॥

**अत्रिः**—

“दैवमार्षे ततो दिव्यं मानुषं भौतिकं तथा । पितॄणां दिव्यमातॄणामात्मनो वृद्धितत्परः” ॥ १०

**शौनकः**—

“दैवं च वार्षिकं चैव दिव्यं मानुषमेव च । भूतश्रान्दं पितृश्रान्दं मातॄणामात्मनस्तथा ॥

“एकैकस्मिन्दिने कुर्यादकैकं श्रान्दमर्थवत् । नादीमुखविधानेन विधिरेषां प्रकीर्तितः ॥

“वसवोऽष्टौ स्मृतास्तत्र रुद्रा एकादशापि च । तथैव द्वादशादित्या दैवश्रान्दे तु देवताः ॥

“मरीचिरज्यंगिरसो पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः । प्रचेताश्च वसिष्ठश्च आर्षे सभृगुनारदः ॥ १५

“दिव्ये हिरण्यगर्भोऽपि विराट् प्रजापतिरेव च । सनकश्च सनंदश्च तृतीयश्च सनातनः ॥

“कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पंचशिखस्तथा । एते मानुष्यके श्रान्दे मनुष्याः सप्त देवताः ॥

“पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च । एतानि पंच भूतानि भूतश्रान्दे तु देवताः ॥

“पितृश्रान्दे कव्यवाहनलः सोमोऽर्यमा तथा । अग्निष्वात्ता बर्हिषदः सोमपाश्चैव देवताः ॥

“गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया । देवसेना स्वधा स्वाहा मातृश्रान्दे तु देवताः ॥ २०

“आत्मश्रान्दे देवता तु परमात्मा प्रकीर्तितः” ॥ इति ॥ **अत्रिः**—

“पार्वणं च यथा वृद्धिश्रान्दं कुर्याद्यथाविधि । एकैको मंत्रवात्पिंडो देयस्तूष्णीमथापरः ॥

“सर्वमंत्रेषु कर्त्तव्यं नादीमुखविशेषणम् । उत्थार्य च ततो विद्वान्हृष्टपुष्टेन चेतसा ॥

“प्रदक्षिणं ततः कृत्वा नमस्कृत्य द्विजोत्तमान् । क्षंतव्यमिति तान्ब्रूयात्प्रणम्य शिरसा नतः ॥

“संन्यासार्थं मया श्रान्दं कृतमेतद्विजोत्तमाः । अनुज्ञां प्राप्य युष्माकं सिद्धिं यास्यामि शाश्वतीम्” ॥ २५

ततः परेषुः पुण्याहवाचनपूर्वकं वपनं कुर्यात् । **संन्यासक्रमः** । तदाह **शौनकः**—

“पूर्वेद्युर्नादीमुखं कृत्वा ब्राह्मणान्भोजयित्वा पुण्याहं वाचयित्वा केशश्मश्रुलोम-  
नस्नानि वापयित्वा यथाविधि स्नात्वा होमादिद्रव्यव्यतिरिक्तद्रव्यजातं पुत्रादिभ्यो  
दत्त्वा दंडादीनि संनिधाय देवायतने ग्रामे वा पुलिने वाऽरण्ये वा स्थित्वा बह्मणे नमः इन्द्राय  
नमः आत्मने नमः अंतरात्मने नमः परमात्मने नमः इति ब्रह्मांजलिं कृत्वा मानसं जपित्वाऽपि १०  
उपस्पृश्य दर्भीजलिं कृत्वा वेदादीञ्जित्वा सक्तुमुष्टिं प्राश्याप आचम्य ‘ओं भूः सावित्रीं  
प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यम् । ॐ भुवः सावित्रीं प्रविशामि भर्गो देवस्य धीमहि । ॐ सुवः  
सावित्रीं प्रविशामि धियो यो नः प्रचोदयात् । ॐ भूर्भुवः सुवः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितु-  
र्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्’ इति जपित्वा किञ्चनाप्राश्य पुरस्तादादित्यस्या-

स्तमयादाज्यं विलाप्योत्पूय स्रुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वा समिद्धेऽग्नौ ॐ भूर्भुवः सुवः स्वाहेति पूर्णाहुतिं हुत्वा सायमग्निकार्यं कृत्वाऽऽन्युत्तरदेशेषु पात्राणि सादयित्वा दक्षिणदेशे दर्भान्संस्तीर्य कृष्णाजिनं चान्तर्धीय तस्यां रात्र्यां जागरणं कृत्वेति “ आपो हि ष्ठा मयो भुवः ” इति द्वाभ्यां इमश्रुरोमनस्वानि च गौदानिकविधानेन सर्वमंत्राभियोजयेत् ॥

- ५ “ शेषस्य कर्मणः सिध्यै केशान्सप्ताष्ट वा पुनः । संरक्ष्य वापयेत्सर्वं केशश्मश्रुनस्वानि च ” ॥ इति कात्यायनस्मरणात् । सप्ताष्ट वा केशान् स्थापयित्वा वापयेत् । दक्षिणजानुनि उत्तानं वामहस्तं कृत्वा तदुपरि सपवित्रानुत्तानदक्षिणहस्तनिधानं ब्रह्मांजलिः “ संहत्य हस्तावध्येयः स हि ब्रह्मांजलिः स्मृतः ” इति मनुस्मरणात् ( २।७१ ) । तथा कृत्वा ‘ ब्रह्मणे नम ’ इत्यादि मनसा जपेदित्यर्थः । सक्तुमुष्टिप्राशनं प्रणवेन कृत्वाऽऽचम्य नाभिमभिमंत्रयेत् ।
- १० तथा बह्वहचपरिशिष्टे “ अथ सक्तुन्प्राश्याचम्य नाभिमभिमंत्रयेत् । “ आत्मने स्वाहा अंतरात्मने स्वाहा प्रजापतये स्वाहा ” इति । ततः पयोदधिघृतानि त्रिवृत्कृतानि ‘ त्रिवृदसि ’ इति मंत्रेण प्रथमं प्राश्नीयात् । ‘ प्रवृदसि ’ इति द्वितीयं ‘ संवृदसि ’ इति तृतीयं ‘ आपः पुनंतु ’ इत्युदकं प्राश्नीयात्तदलाभ इति ।

- अत्र बोधायनः ( २।१०।१४-२१ )—“ पुण्याहं स्वस्त्यृद्धिमिति ” वाचयित्वा केशश्मश्रुलोम-
- १५ नस्वानि वापयित्वा उपकल्पयते यष्ट्यः शिष्यं जलपवित्रं कमंडलुं पात्रमित्येतत्समादाय ग्रामांते ग्रामसीमांतेऽन्यगारे वाऽऽज्यं पयोदधीति त्रिवृत्प्राश्यापवसेदपो । वा ओं भूः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यमो भुवः सावित्रीं प्रविशामि भर्गो देवस्य धीमहि ॐ सुवः सावित्रीं प्रविशामि धियो यो नः प्रचोदयादिति पच्छोर्धर्चशस्ततः समस्ताव्यस्ताश्चाश्रमादाश्रममुपनीय ब्रह्मभूयो ब्रह्मभूतो भवतीति विज्ञायते पुरादित्यस्यास्तमयाद्गार्हपत्यमुपसमाधायान्वाहार्यपचनमाहृत्य
- २० ज्वलंतमाहवनीयमुद्धृत्य गार्हपत्ये आज्यं विलाप्योत्पूय स्रुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वा समिद्धत्याहवनीये पूर्णाहुतिं हुत्वा ओं स्वाहेत्येत्तद्ब्रह्मान्वाधानमिति विज्ञायतेऽथ सायं हुतेऽग्निहोत्रे उत्तरेण गार्हपत्यं तृणानि संस्तीर्य तेषु द्वंद्वं न्यंचि पात्राणि सादयित्वा दक्षिणेनाहवनीयं ब्रह्मायतने दर्भान्संस्तीर्य तेषु कृष्णाजिनं चान्तर्धीयैतां रात्रिं जागर्ति य एवं विद्वान्ब्रह्मरात्रमुपोष्य ब्राह्मणोऽ- नग्नीन्समारोप्य वा प्रमीयते सर्वं पाप्मानं तरति तरति ब्रह्महत्यामिति ” । अयमर्थः । पूर्वाह्ने
- २५ वपनं कृत्वा अपराह्ण उपकल्पयते आर्जयति यष्ट्यादीन्यष्टयः दंडाः शिष्यं रज्जुनिर्मितं भिक्षापात्रधारणम् ।

“ कुशकार्पाससूत्रैर्वा क्षौमसूत्रैरथापि वा । कुशलैर्ग्रथितं शिष्यं पद्माकारसमन्वितम् ॥

“ षट्पादं पंचपादं वा बंधद्वयविशोभितम् ” ॥ इति स्मरणात् ।

जलपवित्रमुदकशोधनार्थं वस्त्रं विकेशं सितमस्पृष्टं सर्वतो द्वादशांगुलम् ।

- ३० “ द्विगुणं त्रिगुणं वाऽपि सर्वतोऽष्टांगुलं तु वा । प्रादेशमात्रं वा सूक्ष्मकार्पासैः कृतमव्रणम् ” ॥

“ चंडालाद्यकृतं चैतस्मृतं जलपवित्रकम् ” ॥ इति स्मरणात् ।

पात्रं भैक्ष्याचरणार्थं अलाबुमुन्मयादि । आदिशब्द आसनाद्युपलक्षणार्थम् ॥

“ चतुरस्रं वर्तुलं वाऽऽप्यासनं दारवं शुभम् । कौपीनाच्छादनं वासः कन्थां शीतनिवारणाम् ”

इति स्मरणात् । त्रिवृत्प्राशनमंत्रः ॥ “ ॐ भूः सावित्रीम् ” इति “ आश्रमादाश्रमम् ”

- ३५ इति वचनात्त्रिवृत्प्राशनादूर्ध्वं प्रत्यापात्तिर्नास्तीति दर्शयति । ब्रह्म सावित्री । तथा पूतः ब्रह्मभूयो

भवति । त्रिवृत्प्राशनेनैव संन्यास इत्यर्थः । ब्रह्मन्वाधानमिति यथा दर्शपूर्णमासयोरन्वाधानं तद्वदेतदपि ब्रह्मप्रवेशस्येति ।

**दिनांतरकृत्यमाह शौनकः**—“ ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय यथाविधि स्नात्वा प्रातरग्निकार्यं कृत्वा व्याहृतीः जपित्वा ‘ तरत्समन्दीधावति ’ इति सूक्तमप्सु जपेत् ” इति ।  
**वृत्तात्रेयः**—

“ ब्रह्मरात्रीं ततो नीत्वा पौर्णमास्यां द्विजोत्तमः । प्रातर्हृत्वा स्वकल्पेन कृत्वा स्नानादिकाः क्रियाः ॥

“ प्राजापत्यां प्रतिपदि त्विष्टिं कुर्याद्यथाविधि । ततो विप्राय दद्यात्तु सर्ववेदसदक्षिणाम् ” ॥

**शौनकः**—“ प्राजापत्येष्ट्या पुनराहवनीयमुद्धृत्य प्राणापानौ समौ कृत्वा सर्वं निदधाति । यच्च पूर्तो यच्च प्रजापतौ तन्मनसि जुहोमि विमुक्तोऽहं देवकिल्बिषात्स्वाहा । अयं ते योनिर्ऋ-  
त्विय इत्यात्मन्याग्नीन् समारोपयति प्राणेन गार्हपत्यमपानेन दक्षिणाग्निं व्यानेनाहवनीयमुदानेना- १०  
वसथ्यं समाने सभ्यं पुनराहवनीयं गत्वा ‘ अभ्यः संभूत ’ इत्यादित्यमुपस्थायोत्तरेण गृहा-  
ग्निष्कमेत् ” इति ।

**आत्रेयः**—“ मृन्मयान्यश्ममयानि चाप्सु जुहुयाद्गुरवे तैजसानि दद्यात् ” इति ।

**बोधायनः**—“ अथ ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय काल एव प्रातरग्निहोत्रं जुहोत्यथ पृष्ठ्यां-  
स्तीर्त्वाऽपः प्रणीय वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपति सा प्रसिद्धेष्टिः संपद्यतेथाऽऽहवनीयेऽ १५  
ग्निहोत्रद्रव्याणि प्रक्षिपत्यमृन्मयान्यश्ममयानि गार्हपत्येरणीभवतो न तन्मनसावित्यथात्मन्याग्नी-  
न्समारोपयते “ या ते अग्ने यज्ञिया तनूः ” इति त्रिष्टिरैकैकं समाजिघ्रतीति शौनकः । अथ  
पुत्रं दृष्ट्वा जपति ‘ त्वं ब्रह्म त्वं यज्ञस्त्वं लोक ’ इति । स पुत्रः प्रत्याह “ अहम् ब्रह्माहं यज्ञोऽहं  
लोक ” इति ।

**बबहचपरिशिष्टे**—अथ पुत्रान्सुहृदो बधून्प्रत्याह न मे कश्चिन्नाहं कस्यचित् इति २०  
जलाशयं गत्वा “ एतस्मादाश्रमात्संन्यासाश्रमं गच्छामि ” इति संकल्पयेत्ततः अप्सु चोदकाहुति  
द्वयमाह कपिलः—“ अद्भः स्वाहा पुत्रेषणाया वित्तेषणाया लोकेषणायाश्च व्युत्थितोहं  
स्वाहेत्यभ्य एवापः पाणिना हुत्वा ” इति ।

**बोधायनः**—“ अथ यज्ञोपवीतं विमृज्याद्भिः संस्पृश्याप्सु जुहोति । वेदांतविज्ञान ” इति ।

**आरण्यकोपनिषदि** च ‘ उपवीतं भूमावप्सु वा विमृजेत् ’ इति । २५

**काठकश्रुतिः**—“ सशिवान्केशान्निष्कृत्य विमृज्य यज्ञोपवीतं भूः स्वाहा ” इति ।

**अत्राथर्वणी श्रुतिः**—“ ब्रह्मसूत्रमहमेवेति विद्वानत्रिवृत्सूत्रं त्यजेत् । विद्वान्यं एवं वेदसंन्यस्तं  
मयेति त्रिः कृत्वा ‘ अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ” इति ।

**बबहचपरिशिष्टे** तु “ प्राङ्मुखस्तिष्ठन्पूर्वबाहुर्ब्रूयात् । ॐ भूः संन्यस्तं मया । ॐ भुवः  
संन्यस्तं मया । ॐ सुवः संन्यस्तं मया । ॐ भूर्भुवःसुवः संन्यस्तं मया ” इति । ३०

“ त्रिरुपांशुत्रिर्मध्यमं त्रिरुच्चैः ” इति ।

**प्रकारांतरमाह शौनकः**—“ ॐ भूर्भुवः सुवः संन्यस्तं मया ” इति ‘ मंद्रमध्यमोत्तमस्वरेणोक्त्वा-  
अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः ’ इति प्राङ्मुख उदङ्मुखः पूर्णजलिं निनयनं कृत्वा यथाधिकारं  
यथाविधि दंडादि गृहीत्वा स्वधर्मनिष्ठो भवेत् ” इति ।

बोधायनस्त्वाह “ अथांतर्वेदितिष्ठन्नो भूर्भुवः सुवः संन्यस्तं मया संन्यस्तं मयेति त्रिरुपांशूक्ता-  
निर्मध्यमं त्रिरुचैः ‘त्रिषत्या हि देवाः’ इति विज्ञायते ‘अभयं सर्वं भूतेभ्यो मत्त’ इति चापां  
पूर्णमंजलिं निनयति ” ॥ इति । अत्र यमः—

“ दत्त्वा तोयांजलिं विप्रो भक्त्या संप्रार्थयेद्धरिम् । सर्ववेदात्मके तोये तोयाहुतिमहं हरे ॥

५ “ दत्त्वा सर्वेषणां त्यक्त्वा युष्मच्चरणमागतम् । त्राहि मां सर्वलोकेश गतिरन्या न विद्यते ॥

“ संन्यस्तं मे जगन्नाथ पाहि मां मधुसूदन । पाहि मां सर्वसर्वेश वासुदेव सनातन ॥

“ संन्यस्तं मे जगद्योने पुंडरीकाक्ष मोक्षद । अहं सर्वाभयं दत्त्वा भूतानां परमेश्वर ॥

“ युष्मच्चरणमापन्नस्त्राहि मां पुरुषोत्तम ” ॥ इति ।

“ततो दिगंबरो भूत्वा गच्छेत्किंचिदुदङ्मुखः । जिज्ञासुश्चेत्परावृत्त्या तिष्ठेदाचार्यदर्शने” ॥

१० ततो दारकपात्रं कौपीनं बहिर्वासः कंथां दंडं च क्रमेणैकैकं प्रणवेनैव दद्यात् । ततः इंद्रस्य  
वज्रोऽसि वार्चघ्नः शर्म यच्छ यत्पापं तन्निवारय, इति दंडं संप्रार्थ्य, सखा मा गोपाय । इति  
दंडं धारयेत् ॥ आथर्वणी श्रुतिः— “ सखा मा गोपाय नः सखायोऽसींद्रस्य वज्रोऽसि ”  
इत्यन्येन मंत्रेण कृत्वोर्ध्वं वैणवं दंडं कौपीनं प्रतिग्रहेत् ” इति ।

भैत्रायणी श्रुतिरपि “ इंद्रस्य वज्रोऽसीति त्रीन्वैणवान्दंडान्दक्षिणे पाणौ धारयेदेकं वा ” इति ।

१५ आरुणिश्रुतिरपि “ काममेकं वैणवं दंडं धारयेत् ” ॥ इति ।

बोधायनः ( ३१।६ )— “ सखा मा गोपायेतिदंडमादत्ते, “ यद्रस्य परिरजस ” इति शिक्यं  
गृह्णाति, ‘ येन देवाः पवित्रेण ’ इति जलपवित्रं गृह्णाति, ‘ येन देवा ज्योतिषोर्ध्वा उदायन् ’  
इति कमंडलुं गृह्णाति, सप्तव्याहृतिभिः पात्रे गृह्णाति इति ” ।

अन्ये तु प्रकारांतरं वर्णयन्ति । नांदीश्राद्धं कृत्वा परेषुरूपोष्य सप्ताष्ट वा केशान्परि-

२० हृत्य कण्ठादुपरि वापयित्वा नखनिकुंतनं च कारयित्वा स्नात्वाऽऽचम्य पुण्याहं वाचयित्वा  
पुत्रादिदायातिरिक्तं स्वद्रव्यं होमार्थं दक्षिणार्थं च स्थापयित्वा ब्राह्मणेभ्यः सर्वस्वं दत्त्वा ततो  
दोरकौपीनाच्छादनानि प्रक्षाल्य सलक्षणं मुद्रासहितं वैणवं दंडं जलपात्रं च सन्निधाप्य देवा-  
यतनादौ स्थित्वा ब्रह्मांजलिं कृत्वा ॐ नमो ब्रह्मणे० बृहते करोमि इति त्रिर्जपित्वा ब्रह्मयज्ञवत्  
वेदादि जपित्वा “ ॐ नमो ब्रह्मणे नमः ॐ इंद्राय० ॐ सोमायः० ॐ प्रजापतये० ॐ

२५ आत्मने० ॐ अंतरात्मने० ॐ परमात्मने नमः ” इति सक्तुमुष्टित्रयं प्रणवेन प्राश्याचम्य  
“ ॐ आत्मने स्वाहा ॐ अंतरात्मने स्वाहा ॐ ज्ञानात्मने स्वाहा ॐ परमात्मने स्वाहा ॐ  
प्रजापतये स्वाहा ” इति नाभिं स्पृष्ट्वा जपेत् । ततः पयो दधि सर्पिः प्रत्येकं त्रिवारं प्रणवेन  
प्राश्याचम्य प्राङ्मुख उपविश्य प्राणायामत्रयं कृत्वा यथाशक्ति जपं कुर्यात्तत आदित्यास्त-  
मयात्पूर्वमेव वक्ष्यमाणं ‘ पुरुषसूक्तहोमार्थमग्निं प्रतिष्ठापयेत् । पुरुषसूक्तहोमविरजाहोमो तंत्रेण

१० करिष्य ’ इति संकल्प्य स्वे स्वेऽग्रावाज्यभागांतं कृत्वा “ भूः स्वाहा ” इति । पूर्णाहुतिं  
जुहुयात्ततः सायंसंध्यामुपास्य सायमग्निकार्यं कृत्वा अग्नेर्दक्षिणतो दर्भान्संस्तीर्य कृष्णा-  
जिनं च वस्त्रेणाच्छाद्य तत्रासीनो गायत्रीं जपन्जागरणं कुर्यात् । ततो ब्राह्मे मुहूर्ते  
उत्थाय स्नात्वाऽचम्य स्वाग्नौ चरुं श्रपयित्वाऽऽभिचार्य बन्धिव्यासाद्य व्याहृतिं पुरुषसूक्तं च  
जपेत् । प्रजापतये स्वाहा इंद्राय स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ब्रह्मणे स्वाहा इति जपित्वा पुण्याहं



वाचयित्वा सुवेणाज्यं गृहीत्वा अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा अग्नये स्वाहा इति हुत्वा प्रयासाय स्वाहा इति द्वादशाज्याहुतीः प्राणाय स्वाहा इति पंचाज्याहुतीर्हुत्वा स्वशाखापुरुषसूक्तेन प्रत्यृचं समिदन्नाज्याहुतिं क्रमेण जुहुयात्ततो विरजाहोममाज्येन चरुणा च कुर्यात् । स्विष्टकृतं हुत्वा उपरिष्ठात्तत्रं कृत्वा ॐ स्वाहा इति पूर्णाहुतिं हुत्वा सर्पिर्मिश्रं चरुं प्राश्याचम्य ब्रह्मोद्वासनं कृत्वा आचार्याय दक्षिणां दत्वा प्रातः संध्यामुपास्य प्रातर्होमं हुत्वा समासिंचंतु मरुतः समिद्रः सं बृह- ५  
स्पतिः । समाऽयमाग्निः सिंचत्वायुषा च बलेन चायुष्मंतं वर्चस्वंतं करोतु मा इत्युपस्थाय आयंतं योनिर्ऋत्विय इति त्रिरग्निमाजिघ्रेत्ततो दोरकौपीनकाषायवस्त्रदंडादिकं गृहीत्वा जलाशयं गत्वा स्नात्वा 'अस्मदाश्रमात्परमहंसाश्रमं प्रविशामि' इति संकल्प्य नाभिमात्रोदके प्राङ्मुखस्तिष्ठन्-  
सावित्रीं व्याहृतौ प्रवेशयामि इति संकल्प्य सावित्रीप्रवेशनं कुर्यात् । "ॐ भूः सावित्रीं प्रवेश-  
यामि तत्सवितुर्वरेण्यं । ॐ भुवः सावित्रीं प्रवेशयामि भर्गो देवस्य धीमहि । ॐ सुवः सावित्रीं १०  
प्रवेशयामि धियो यो नः प्रचोदयात् । ॐ भूः सावित्रीं प्रवेशयामि तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य  
धीमहि । ॐ सुवः सावित्रीं प्रवेशयामि धियो यो नः प्रचोदयात् । ॐ सुवः सावित्री० मि तत्सवितु-  
र्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् " इति व्याहृतौ सावित्रीं प्रवेशयेत् । ततः  
व्याहृतीः प्रणवे प्रवेशयामि इति संकल्प्य "ॐ भूः प्रणवे प्रवेशयामि ॐ भुवः प्रणवे प्रवेशयामि ॐ  
सुवः प्रणवे प्रवेशयामि ॐ भूर्भुवःसुवः प्रणवे प्रवेशयामि" इति व्याहृतौ प्रणवे समारोपयेत् । ततः १५  
अहं वृक्षस्य रेखिवा०' इति त्रिंशकोर्वेदानुवचनं । 'यश्छंदसामृषभो विश्वरूपः०' 'श्रुतं मे गोपाय' इति  
जपित्वा पुत्रेषणायाश्च वितेषणायाश्च लोकेषणायाश्च व्युत्थितोऽहमित्युक्त्वा ऊर्ध्वबाहुः सूर्याभि-  
मुखस्तिष्ठन् । 'ॐ भूः संन्यस्तं मया । ॐ भुवः संन्यस्तं मया । ॐ सुवः संन्यस्तं मया ।  
ॐ भूर्भुवः सुवः संन्यस्तं मया " इति मंद्रमध्यमोत्तमस्वरेण त्रिवारं प्रैषमंत्रमुच्चार्य 'अभयं सर्व-  
भूतेभ्यो मत्तः स्वाहा ' इति प्राच्यां दिश्युदकांजलिं प्रक्षिप्य शिखां छित्वा यज्ञोपवीतं निकृत्य २०  
उदकांजलिना गृहीत्वा 'ॐ भूः स्वाहा ' इत्यप्सु हुत्वा प्रैषमंत्रेण त्रिवारमभिमंत्रितमुदकं प्राश्य  
तीरं गत्वा वासः कटिसूत्रादिकं भूमौ विसृज्य जातरूपधरः सप्तपदं प्राचीमुदीचीं वा दिशं  
ब्रजेत् । आचार्योऽन्यो वा भो भगवन् तिष्ठ तिष्ठ लोकानुग्रहार्थं दंडादि गृहाण इति निवार्य  
कौपीनं काषायवस्त्रं च दद्यात् । प्रणवेन स्वीकृत्य परिधायाचम्य मस्तकप्रमाणं परशुशंख-  
मुद्रान्विताग्रं सुरभिपद्मजमुद्रान्वितं मध्यं नागमुद्रान्वितं मूलमुक्तलक्षणयुक्तमेकं वैणवं दंडं २५  
"इंद्रस्य वंज्रोऽसि वार्ष्णेनः० रय" इति मंत्रेण तं प्रार्थयन् 'सखा मां गोपाय' इति दक्षिणहस्तेन  
गृह्णीयात् । 'ॐ मिति ' कमंडलुं च गृह्णीयात् इति ।

" एवं संन्यासकल्पस्य नानात्वमृषिभिः स्मृतम् । तत्र व्यवस्था द्रष्टव्या संप्रदायानुसारतः " ॥  
अथ संन्यासोपदेशक्रम उक्तविधिना संन्यासं विधायात्मज्ञानाय गुरुसमीपं गच्छेत् ॥  
तथा च मुंडके श्रूयते " तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् " इति । ३०  
ततो विनीतो गुरुमुपगम्य दक्षिणं जानुं भूमिं नीत्वा पादग्रहणं च कृत्वा

" यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।

" तं हि देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये " ॥

इति मंत्रेण गुरुमीश्वरबुध्योपस्थायाधीमहि भगवो ब्रह्मेति ब्रूयात् । तस्मै साधनचतुष्टय-  
संपन्नायाधिकारिणे गुरुर्ब्रह्मोपदिशेत् । तथा च श्रूयते— " तस्मै स विद्वानुप- ३५

संपन्नाय सम्यक्प्रज्ञांतचित्ताय शमान्विताय येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्यां । तदेतत्सत्यामिति । ततो गुरुरात्मानमनुसंधाय जलपूर्णशंखं पुष्पादिभिरभ्यर्च्य द्वादशप्रणवैरभिर्मन्त्र्य प्रणवेन शिष्यशिरोऽभिषिञ्चेत् । ततः शं नो मित्र इति शान्तिं पठित्वा शिष्यशिरसि हस्तं दत्त्वा पुरुषसूक्तं जपेत् ।

५ तथा च ब्रह्मचरिशिष्टे— “अथास्य शिरसि पुरुषसूक्तेन पाणिमुपदधाति मम हृदये हृदयं ते ददामि मम चित्तमनुचितं तेऽस्तु मम वाचमेकव्रते जुषस्व बृहस्पतिस्त्वा नियुनक्तु मह्यमिति हृदयदेश” इति । ततः प्रणवमुपदिश्य तदर्थं बोधयेत् ॥ महावाक्योपदेशपूर्वकं धर्मं बोधयित्वा नाम दद्यात् । यतिनामानि—

“तत्त्वं पदार्थयोरैक्यं यत्पदं प्रतिपादयेत् । तन्नाम यतये कुर्याद्वाक्यनाम तदिष्यते ॥

१० “यतीनां ख्यातयशसामाचार्यः पूर्वभाविनाम् । नाम कुर्यान्न शिष्यस्य बुद्धिपूर्वं कदाचन ” ॥ इति संप्रदायविदः ॥

ब्रह्मचरिशिष्टेऽपि “अथास्मै नाम दद्याद्वैष्णवं नामाथवा यद्रोचत इति संप्रदायविद्वद्वचनम्

“योगपट्टं च दातव्यं वेदांताभ्यासतः परम् । ततो नाम प्रकर्तव्यं गुरुणा सर्वसंमतम् ।

“तीर्थाश्रमवनारण्यगिरिपर्वतसागराः । सरस्वती भारती च पुरी नाम यतेर्दश ॥

१५ “श्रीपादसंज्ञया वाक्यं नाम तस्य यथातथम् ” इति ।

अथातुरसंन्यासक्रमः ।

“यद्यातुरः स्यान्मनसा वाचा वा संन्यसेत्तदा । आतुराणां च संन्यासं न विधिर्नैव च क्रिया ॥

“प्रैषमात्रं समुच्चार्य संन्यासं तत्र पूरयेत् ” इत्यादिश्रुतिस्मृतिभ्यः स्वशक्त्यनुसारेण मनसा वाचा वा प्रैषोच्चारणादि कुर्वत आतुरस्य कृच्छ्रनां दीश्राद्धादि निखिलांगलोपेऽपि स संन्यास-

२० पूर्तिः । विलंबातुरस्य तु प्रैषमात्रमिति मात्रचोदनसंभवादंगकलापव्यावर्तकत्वेनाप्युपपत्तौ शक्त्याः-  
ऽगकलापव्यावर्तकत्वानुपपत्तेर्नां दीश्राद्धेष्टिविरजाहोमाद्यशक्तस्य इष्टदेवतायै पूर्णाहुतिरग्नि-  
समारोपणगायत्रीप्रवेशनप्रैषोच्चारणाभयदानानित्याहुः । अत्र याज्ञवल्क्यः—

“अशक्ताविष्टदेवतायै पूर्णाहुतिं हुत्वा असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति आहवनीये दारुमयाणि पात्राणि प्रज्वाल्य मृन्मयान्यप्सु प्रक्षिप्य ‘संमासिंचंतु मरुत’ इत्यग्निमुपस्थाय ‘या ते अग्न्य’

२५ इत्यनेन हस्तं प्रताप्यात्मन्यग्नीन्समारोप्य सर्वप्रायश्चित्तपूर्वकं सप्त पंच वा केशान्विमृज्य वाप-  
यित्वा यथाविधि स्नात्वाऽऽचम्य पात्रेण तोयमादायाप उपमृज्य दक्षिणेन पाणिनाऽप्सु जुहोति  
एष वा अग्रेयोनिर्यः प्राणः प्राणं गच्छ स्वां योनिमभिगच्छ स्वाहा इति प्रथमाहुतिः । आपो  
वै सर्वा देवताः सर्वाभ्य एवैनं देवताभ्यो जुहोतीति इति द्वितीयाहुतिः । ततो हुतशेषं ‘आशुः  
शिश्नान्’ इत्यनुवाकेनाभिर्मन्त्र्य पुत्रेषणा वित्तेषणा लोकैषणा मया त्यक्ता स्वाहा इति प्रथमं पिबेत् ।

३० ‘ओं भूर्भुवः सुवः ब्रह्मा ओं भूर्भुवः सुवरो मया संन्यस्तं स्वाहा’ इति द्वितीयं पिबेत् । ‘अभयं सर्व-  
भूतेभ्यो मत्तः स्वाहा’ इति तृतीयं पिबेत् । ततोऽन्यतोयमंजलिपूर्णमानीय प्रागादिदिक्षु प्रत्येकं  
निनयेत् । ‘ॐ भूः सावित्रीं प्रवेशयामि ॐ भुवः सावित्रीं प्रवेशयामि ॐ सुवः सावित्रीं प्रवेश-  
यामि ॐ भूर्भुवः सुवः सावित्रीं प्रवेशयामि’ इति सावित्रीप्रवेशनं कृत्वा अथोर्ध्वबाहुः  
सूर्याभिमुखो भूत्वा “ॐ भूः संन्यस्तं मया ॐ भुवः संन्यस्तं मया ॐ सुवः संन्यस्तं मया

ॐ भूर्भुवः सुवः संन्यस्तं ” मया इति प्रेषमुच्चारयेत् । तूष्णीं शिखां निकृत्य स्नात्वाऽचम्य यज्ञोपवीतमुत्पृथ्व्योदकांजलिना गृहीत्वा ‘ॐ भूः स्वाहा’ इत्यप्सु हुत्वा दिगंबरो भूत्वा पुत्रैषणातो मुक्तो वितैषणातो मुक्तोऽहम् लोकैषणातो मुक्तोहं इति ब्रुवन्मंत्रतो दंडाद्यादाय गच्छेत् । अत ऊर्ध्वं न पुत्रगृहं गच्छेत् मृते पुरुषसूतेन विष्णुबुध्याभिषिच्य यतिसंस्कारमेव कुर्यात् । इति आतुरस्य प्रेषमात्रेण संन्यासपूर्तिश्रवणात्तदुत्तरकालमेव मृतस्थोपदेशविकलस्यापि खननमेव संस्कारः । जीवतश्चेच्छिखां यज्ञोपवीतं च निकृत्य दंडकाषायवस्त्रादीनि चादाय सद्गुरुमन्विष्य तस्मादुपदेशं गृहीत्वा यतिधर्माननुतिष्ठेत् ॥

अथ संन्यासभेदाः । तत्र संवर्त्तः—

“चतुर्विधा भिक्षवस्तु कुटीचकबहूदका । हंसः परमहंसश्च यो यः पश्चात्स उत्तमः ”

दक्षः—

“वृत्तिभेदेन भिक्षाश्च नैव लिंगेन ते द्विजाः । लिंगं तु वैष्णवं तेषां त्रिदंडं सपवित्रकम्” ॥

एतत्त्रिदंडधारणं कुटीचकविषयम् । व्यासः—

“विरक्तिश्च द्विधा प्रोक्ता तीव्रा तीव्रतरेति च । सत्यामेव तु तीव्रायां न्यसेद्योगी कुटीचके ॥

“शक्तो बहूदके तीव्रतरायां हंसंजिते । मुमुक्षुः परमे हंसे साक्षाद्विज्ञानसाधने ॥

“कुटीचकः परिव्रज्यः ज्येष्ठवेश्मनि नित्यशः । भिक्षां बंधुभ्य आदाय भुंजीरन् शक्तिसंक्षये” ॥ १५

श्रुतिः—“कुटीचको ब्रह्मचारी कुटुंबं विमुजेत् ” इति । बोधायनः

“कुटीचकस्तु संन्यस्य स्वीयवेश्मनि नित्यशः । भिक्षामादाय भुंजीत स्वबन्धूनां गृहेऽथ वा ॥

“शिखायज्ञोपवीती स्यात्त्रिदंडी सकमंडलुः । सावित्रीं सहस्रकृत्व आवर्त्तयेच्छतकृत्वोऽपरिमितकृत्वो वा ” इति । हारीतः—

“त्रिदंडं वैष्णवं सौम्यं सततं समपर्चकम् । वेष्टितं कृष्णगोवालरज्जुवच्चतुरंगुलम् ॥ २०

“ग्रंथिकाराश्मिभिर्युक्तं सुशुभं शिष्यलक्षणम् । गृह्णीयात्सततं विद्वान्पात्रं चैव कमंडलुम् ॥

“आसनं दारवं प्रोक्ते स्वहस्तचतुरंगुलम् । कौपीनाच्छादनं वासः कन्यां शीतनिवारिणीम् ॥

“जलपात्रं पवित्रं च खनित्रं च कृपाणिकाम् । पादुके चापि गृह्णीयात् कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम् ॥

“शिखायज्ञोपवीती स्याद्देवताराधनं चरेत् । तर्पयित्वा तु देवांश्च मंत्रवद्भास्करं नमेत् ॥

“आसीनः प्राङ्मुखो मौनी प्राणायामत्रयं चरेत् । गायत्रीं च यथाशक्ति जप्त्वा ध्यायेत्परं पदम् ॥ २५

“स्थित्यर्थमात्मनो नित्यं भिक्षाटनमथाचरेत् । जपध्यानेतिहासैश्च दिनशेषं नयेद् बुधः ॥

“कृतसंध्यस्ततो रात्रिं नयेद्देवगृहादिषु । हृत्पुंडरीकनिलयं ध्यायेदात्मानमव्ययम् ॥

“यतिधर्मरतः शान्तः सर्वभूतसमो वशी । प्राप्नोति परमं स्थानं यत्प्राप्य न निवर्तते ॥

“त्रिदंडधृग्यो हि पृथक्सदाचरेच्छनैः शनैस्त्यक्तबहिर्मुखाक्षः ।

संमुच्य संसारसमस्तबंधनं स याति विष्णोरमृतात्मनः पदम् ” ॥ इति ।—

व्यासोपि—

“स्वाध्यायं चान्वहं कुर्यात् सावित्रीं सन्ध्ययोजयेत् ।

“यज्ञोपवीती सततं कुशपाणिः समाहितः । धौतकाषायवसनश्मश्रुछन्नतनूरुहः ॥

“आध्यात्मिकं च सततं वेदांताभिहितं चरेत् । पुत्रेषु वाऽथ निवसेद्ब्रह्मचारी यतिर्मुनिः ॥

“वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं स याति परमां गतिम् । स्वाध्यायं चान्वहं कुर्यात्सावित्रीं संध्ययोजयन् ॥  
 “ध्यायीत सततं देवमेकांते परमेश्वरम् । एकाग्रं वर्जयेन्नित्यं कामक्रोधं परिग्रहम् ॥  
 “एकवासा द्विवासा वा शिखायज्ञोपवीतवान् । कमंडलुधरो विद्वान्याति तत्परमं पदम्” ॥ इति ।  
 मेधातिथिः—“यावन्न स्युस्त्रयो दंडास्तावदेकेन पर्यटेत्” । हारीतः—

- ५ “नष्टे जलपवित्रे वा त्रिदंडे वा प्रमादतः । एकं तु वैणवं दंडं पालाशं बैल्वमेव वा ॥  
 “गृहीत्वाऽपि चरेत्तावद्यावल्लभ्येत् त्रिदंडकं” इति । यजु  
 “शिखिनस्तु श्रुतः केचित्केचिन्मुंडाश्च भिक्षुकाः । चतुर्धा भिक्षवो विप्राः सर्वे चैव त्रिदंडिनः” ॥  
 इत्यत्रिवचनं तद्गददंडाद्यभिप्रायम् । तथा च मनुः (१२।१०)—  
 “वाग्दंडश्च मनोदंडो कर्मदंडस्तथैव च । यस्यैते नियता बुद्धौ स त्रिदंडीति चोच्यते” ॥

१० दक्षः—

“वाग्दंडो मौनमेव स्यात्कर्मदंडस्त्वनिहता । मानसस्य तु दंडस्य स्वरूपं प्राणसंयमः ॥  
 “त्रिदंडिव्यपदेशेन जीवंति बहवो नराः । यो हि ब्रह्म न जानाति न त्रिदंड्यर्भको हि सः” ॥  
 व्यासः—

- “वैणवा ये स्मृता दंडा लिंगमात्रप्रबोधकाः । लिंगाभिव्यक्तये धार्या न पुनर्धर्महेतवे ॥  
 १५ “जितेंद्रियैर्जितक्रोधैर्धार्यास्ते तत्त्वदर्शिभिः । त्रिदंडस्य परित्यागे एकदंडस्य धारणम्” ॥ इति ।  
 कुटीचकबहूदकयोर्हंसपरमहंससंन्यासं विदधाति श्रुतिः । त्रिदंडं कमंडलुं शिष्यं पात्रं  
 जलपवित्रं शिखां यज्ञोपवीतं चेत्येतत्सर्वं भूः स्वाहेत्यप्सु परित्यज्यात्मानमन्विच्छेत्” इति ।  
 बोधायनः—“मुंडः कषायवासा वाङ्मनकर्मदंडैर्भूतानामद्रोही यज्ञोपवीतं त्रिदंडं कमंडलुं  
 पात्रं परित्यज्य विसृज्य सर्वकर्माणि सर्वसहः सर्वसंगनिवृत्त” इति । स्मृतिरपि—  
 २० “त्रिदंडं कुंडिकां चैव सूत्रं वाऽथ कपालिकम् । जंतूनां वारणं वस्त्रं सर्वं भिक्षुः परित्यजेत्” ॥ इति ।  
 बहूदकधर्मानाह पितामहः—

- “बहूदकः स विज्ञेयः सर्वसंगविवर्जितः । बंधुवर्गे न भिक्षेत स्वभूमौ नैव संविशेत् ॥  
 “निश्चलः स्थाणुभूतश्च सदा मोक्षपरायणः । न कुड्यां नोदके संगं कुर्यात् वस्त्रे च चेतसा ॥  
 “नागरे नासने नाग्नेनास्तरे न त्रिदंडके ॥” माधवीये पराशरे च—  
 २५ “बहूदकश्च संन्यस्य बंधुपुत्रादिवर्जितः । सप्तागारश्चरेद्भैक्षमेकान्नं च परित्यजेत् ॥  
 “गोवालरज्जुसंबंधं त्रिदंडं शिष्यमुद्धृतम् । जलपात्रं पवित्रं च खनित्रं च कृपाणिकम् ॥  
 “शिखां यज्ञोपवीतं च देवताराधानं चरेत्” ॥ इति ।

अथ हंसधर्मानाह पितामहः—

- “हंसस्तृतीयो विज्ञेयो भिक्षुर्भोक्षपरायणः । नित्यं त्रिषवणस्नायी त्वाद्रवासा भवेत्सदा ॥  
 ३० “चांद्रायणेन वर्त्तेत यतिधर्मानुशासनात् । वृक्षमूले वसेन्नित्यं गुहायां वा सरित्ते ॥  
 “हंसः कमंडलुं शिष्यं भिक्षापात्रं तथैव च । कंथां कौपीनमाच्छाद्यमंसवस्त्रं बहिःपटम् ॥  
 “एकं तु वैणवं दंडं धारयेन्नित्यमादरात् । दैवतानामभेदेन कुर्यात् ध्यानं समर्चयेत्” ॥

बोधायनः—

“हंसः कमंडलुं शिष्यं दंडपात्राणि बिभ्रतः । ग्रामतीर्थंकरात्रश्च नगरे पंचरात्रकाः ॥

“ त्रिषद्वात्रोपवासाश्च पक्षमासोपवासिनः । कुच्छ्रंसांतपनायैश्च यमैः कुशवपुर्धराः ” ॥

विष्णुः—

“ यज्ञोपवीतं दंडं च वस्त्रं जंतुनिवारणम् । तावान्प्रतिग्रहः प्रोक्तो नान्यो हंसपरिग्रहः ” ॥

व्यासः—

“ कौपीनाच्छादनं वासः कंथां शीतनिवारणीम् । अक्षमालां च गृह्णीयाद्वैणवं दंडमव्रणम् ” ॥ ५

स्मृतिरत्ने—

“ कौपीनयुगुलं वासः कंथां शीतनिवारिणीम् । पादुके च प्रगृह्णीयात् कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम् ॥

“ आसनोपानहच्छत्रं भाजनाजिनमौषधम् । यतिश्च प्रतिगृह्णीयादंडवस्त्रकमंडलून् ” ॥

अथ परमहंसधर्माः । अत्रिः—

“ कौपीनयुगुलं कंथा दंड एक परिग्रहः । यतेः परमहंसस्य नाधिकं तु विधीयते ॥ १०

“ यदि वा कुरुते रागादधिकस्य परिग्रहम् । रौरवं नरकं गत्वा तिर्यग्योनिषु जायते ॥

“ विशीर्णान्यमलान्येव चेलानि ग्रथितानि च । कृत्वा कंथां बहिर्वासो धारयेद्वातुरंजितम् ॥

“ काषायं ब्राह्मणस्योक्तं नान्यवर्णस्य कस्यचित् । मोक्षाश्रमे सदा प्रोक्तं धातुरक्तं तु योगिनाम् ॥

“ परः परमहंसस्तु तुर्याख्यः श्रुतिशासनात् । शांतो दांतः सत्वसमः प्रणवाभ्यासतत्परः ॥

“ श्रवणादिरतः शुद्धो निदिध्यासनतत्परः । ब्रह्मभावेन संपूज्य ब्रह्मांडमखिलं स्थितः ॥ १५

“ आत्मवृत्तश्चात्मरतिः समलोष्टाश्मकांचनः । तत्त्वंपदार्थबोधाच्च विष्णुरूपः स्वयं सदा ॥

“ निवसेत्परमो हंसो यत्र क्वापि कथंचन ” ॥

व्यासः—

“ परमहंसस्त्रिदंडं च रज्जुं गोवालनिर्मितम् । शिखां यज्ञोपवीतं च नित्यं कर्म परित्यजेत् ॥

“ यथायं मेखलादीनि गृहस्थाश्रमवांछया । पत्नी योक्त्रं यथेष्ट्यं ते सोमांते च यथा गृहान् ॥ २०

“ तद्वद्यज्ञोपवीतस्य त्यागमिच्छन्ति योगिनः ” ॥

माधवीये—

“ यदा तु विदितं तत्स्यात् परं ब्रह्म सनातनम् । तदैकदंडं संगृह्य उपवीतं शिखां त्यजेत् ” ॥

यत्त्वेकदंडी त्रिदंडी वेति बोधायनादिभिर्दंडविकल्पः स्मर्यते । यदपि ‘ मुंडः शिखी वेति ’

गौतमादिभिः (३१२१) “ शिखाविकल्पः स्मर्यते तत्सर्वं व्यवस्थितविषयं द्रष्टव्यम् । कुटीचकबहू- २५

दकयोस्त्रिदंडधारणं शिखाधारणं च । इतरयोस्तु एकदंडधारणं मुंडनं चेति उपवीतविकल्पोऽपि

व्यवस्थितविषय एव । त्रयाणामुपवीतधारणं परमहंसस्य नेति । विष्णुः—

“ कौपीनाच्छादनार्थं तु वासोऽयस्य परिग्रहः । कुर्यात्परमहंसस्तु दंडमेकं तथैव च ” ॥

पराशरः— “ तत्र परमहंसा एकदंडधरा मुंडाः अममा अपरिग्रहा अपयज्ञोपवीतिनो ज्ञाना-

ग्निरवा ज्ञानयज्ञोपवीतिनः ब्रह्मनिष्ठा आत्मरता आत्मवृत्ता आत्मानं सर्वं पश्यन्त ” इति । ३०

पिप्पलादशाखायाम्—

“ सशिखं वपनं कृत्वा बहिःसूत्रं त्यजेद्बुधः । यदक्षरं परं ब्रह्म तत्सूत्रमिति धारयेत् ॥

“ सूचनात्सूत्रमित्याहुः सूत्रं नाम परं पदम् । तत्सूत्रं विदितं येन स विप्रो वेदपारगः ॥

“ येन सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव । तत्सूत्रं धारयेद्योगी योगवित्तत्त्वदर्शिवान् ॥

“ बहिःसूत्रं त्यजेद्विद्वान्योगमुत्तममास्थितः । ब्रह्मभावमिदं सूत्रं क्रियांगं ताद्वि वै स्मृतम् ॥

“ शिखाज्ञानमयी यस्य ह्युपवीतः तु तन्मयम् । ब्राह्मण्यं सकलं तस्य चेति ब्रह्मविदो विदुः ॥”

आरण्युपनिषदि— “ अरणि प्राजापत्यः प्रजापतेर्लोकं जगाम तं गत्वोवाच । केन भगवान्कर्माण्यशेषतो विमुजानीत । तं होवाच प्रजापतिस्तव पुत्रान् भ्रातृन्बन्ध्वादीन्शिखां यज्ञो-

५ पवीतं यागं सूत्रं स्राध्यायं च भूर्लोकं भुवर्लोकं सुवर्लोकं महर्लोकं जनलोकतपोलोकसत्यलोकं च अतलपातालवितलसुतलरसातलतलतलमहातलब्रह्माण्डं च विमुजेत् दंडमाच्छादनकौपीनं परिग्रहेच्छेषं विमुजेत् ” इति । विसर्गस्य चाशायाः दंडादिग्रहे च ग्रहणमात्रं कायिकं तत्र चाशाया विसर्गस्तुल्य एवेत्यभिमुक्ताः । काठके—“यज्ञोपवीतं वेदांश्च सर्वं तद्वर्जयेत् ” इति ।

परमहंसोपनिषदि— “ असौ स्वपुत्रमित्रकलत्रबन्ध्वादीन् शिखायज्ञोपवीतं च स्वाध्यायं

१० च सर्वकर्माणि च संन्यस्यायं ब्रह्माण्डं च हित्वा कौपीनं दंडमाच्छादनं च स्वशरीरोपभोगार्थाय लोकस्योपकारार्थाय च परिग्रहेत् ” इति ।

“ ज्ञानदंडो धृतो येन एकदंडी स उच्यते । काष्ठदंडो धृतो येन सर्वांशी ज्ञानवर्जितः ॥

“ स याति नरकान्धोरान्महारौरवसंज्ञितान् ॥

“ एकदंडं समाश्रित्य जीवंति बहवो नराः । नरके रौरवे घोरे कर्मत्यागात्पतन्ति ते ” ॥

१५ मनुः—

“ नियतो विचरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे वसत् । समः सर्वेषु भूतेषु न लिंगं धर्मकारणम् ॥

“ फलं कतकवृक्षस्य यथैवांबुप्रसादकम् । न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति ” ॥

यथा कतकफलनामग्रहणादेव न वारि प्रसीदति तथाऽऽत्मज्ञानमंतरेण दंडादिलिंगग्रहणादेव न प्रसीदतीत्यर्थः । स एव ( ४।२०० )

२० “ अलिङ्गी लिङ्गिवेषेण यो वृत्तिमुपजीवति । स लिंगीनां हरत्येनः तिर्यग्योन्यां च जायते ” ॥ इति ।

कात्यायनः— “ एकदंडधरा मुंडाः ” इति । जमदग्निः—

“ दंडात्मनोस्तु संयोगः सर्वदैव विधीयते । न दंडेन विना गच्छेद्विषुक्षेपत्रयं बुधः ॥

“ जलांबरादिषु क्षिते न किञ्चिद्दोषभागभवेत् ॥

“ शिष्यादिभिर्विनीतोऽपि नीत एव स आत्मना । हस्तपादादिवच्छिष्य इति शिष्टानुशासनम् ” ॥ इति ।

२५ वण्डादिलक्षणम् । दंडलक्षणं भविष्यत्पुराणे दर्शितम्—

“ दंडं तु वैणवं दंडं सत्वचं समपर्वकम् । पुण्यस्थानसमुत्पन्नं नानाकल्माषशोभितम् ॥

“ अदग्धमहतं कीटैः पर्वग्रथिविराजितम् । स्वयंभूतं तु मेदिन्यां शाखावर्जमृजुं शुभम् ॥

“ नासादघ्नं शिरोधघ्नं भ्रुवोर्वा भिभ्रूयाद्यतिः ” ॥

देवलः— “ आददीत प्रवृत्तेभ्यः साधुभ्यो धर्मसाधनम् । नाददीत निवृत्तेभ्यः प्रमादेनापि किञ्चन ॥

३० “ रथ्यायां बहु वस्त्राणि भिक्षा सर्वत्र लभ्यते । भूमिशय्याऽस्ति विस्तीर्णा यतयः केन दुःखिताः ” ॥

यतिधर्मसमुच्चये—

“ क्षौमं शाणमयं वाऽपि वासः कांक्षेत कौशिकम् । अजिनं वाऽपि धर्मज्ञः साधुभ्यस्तानपीडयन् ॥

“ सचेतः स्यादचेतो वा कंथाप्रावरणोऽपि वा । एकं वस्त्रेण वा विद्वान्वृतं भिक्षुश्चरेद्यथा ॥

“ नात्यर्थं सुखदुःखाभ्यां शरीरमुपतापयेत् । स्तूयमानो न हृष्येत निन्दितो न शपेत्परम् ” ॥

३५ वृद्धयाज्ञवल्क्यः—

“अध्यात्मपुस्तकं विप्रैर्दत्तं गृहीत भिक्षुकः । न तावद्द्रव्यमादाय लेखयेद्दोषदर्शनात् ” ॥

अथ यत्याह्निकधर्माः । बोधायनः—

“उषःकाले समुत्थाय शौचं कृत्वा यथाविधि । दन्तान्विशोध्य चाचम्य पर्ववर्जं यथाविधि ॥

“स्नात्वा चाचम्य विधिवत्तिष्ठन्नासीन एव वा । उदये विधिवत्संध्यामुपास्य प्रणवं जपन् ॥

“अनभिरनिकेतः स्याद्ग्राममन्त्रार्थमाश्रयेत् । उपेक्षको संचयको मुनिर्भावसमन्वितः” ॥ ५

अथेमानि व्रतानि भवंति ।

“अहिंसा सत्यमस्तेयं मैथुनस्य च वर्जनम् । त्याग इत्यैव पंचैवोपव्रतानि भवंति ॥

“अक्रोधो गुरुशुश्रूषा अप्रमादः शौचमाहारशुद्धिश्च ” इति । पराशरः—

“कामं क्रोधं तथा दर्पं लोभमोहादयश्च ये । तांस्तु दोषान्परित्यज्य परिव्राण्णिर्ममो भवेत् ” ॥

व्यासः—

“रागद्वेषविमुक्तात्मा समलोष्टाश्मकांचनः । प्राणिहिंसानिवृत्तश्च मुनिः स्यात्सर्वनिस्पृहः ।

“मोक्षशास्त्रेषु निरतो ब्रह्मसूत्री जितेंद्रियः । दंभाहंकारानिर्मुक्तो निंदापैशुन्यवर्जितः ॥

“आत्मज्ञानगुणोपेतो यतिर्माक्षमवाप्नुयात् । अभ्यसेत्सततं वेदं प्रणवारुयं सनातनम् ॥

“स्नात्वाऽऽचम्य विधानेन शुद्धिर्देवाल्यादिषु । प्रायात्रेऽपररात्रे च मध्यरात्रे तथैव च ॥

“संध्यास्वह्निविशेषेण चिंतयेन्नित्यमीश्वरम् ॥

“कृत्वा हृत्पद्मनिलये विष्णवारुयं विश्वसंभवम् । आत्मानं सर्वभूतानां परस्तात्रमपस्थितम् ।

“सर्वस्याधारमव्यक्तमानंदं ज्योतिरव्ययम् । प्रधानपुरुषातीतमाकाशमजरं शिवम् ॥

“तस्मात् ध्यानरतो नित्यमात्मविद्यापरायणः । ज्ञानं समभ्यसेद् ब्रह्म येन मुच्येत बंधनात् ” ॥

मनुः ( २।१०० )

“वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा । सर्वान्संसाधयेदर्थानक्षिण्वन्योगतस्तनुम्” ॥ २०

अर्थान्श्रवणादीन् ।

“इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम् । संनियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं निगच्छति ॥ ( २।९३ )

“न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति । हविषा कुष्णवर्त्मैव भूय एवाभिवर्धते ॥ ( ९४ )

“यच्चैनान्प्राप्नुयात्सर्वान्यच्चैनान्केवलंस्त्यजेत् । प्रापगात्सर्वकामानां परित्यागो विशिष्यते ॥ ९५

“न तथैतानि शक्यंते संनियंतुमसेवया । विषयेषु प्रदुष्टानि यथा ज्ञानेन नित्यशः ॥ ( ९६ ) २५

“श्रुत्वा स्पष्टा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेंद्रियः ॥ ( ९८ )

“यस्य बाह्मनसे शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा । स वै सर्वमाप्नोति वेदांतोपगतं फलम् ॥ ( २।१६० )

“नारुंतुदः स्यादात्तोऽपि न परद्रोहकर्मधीः । यथा चोद्विजते वाचा नालोक्यं तामुदीरयेत्” ॥ ( १६१ )

अरुंतुदः परमर्मप्रकाशनः ।

“संमानाद्ब्रह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव । अमृतस्येव चाकांक्षेद्वमानस्य सर्वदा ॥ ( १६२ ) ३०

“सुखं ह्यवमतः शेते सुखं च प्रतिबुध्यते । सुखं चरति लोकेऽस्मिन्नवमंता विनश्यति ॥ ( १६३ )

“अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कंचन । न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥ ( ६।४७ )

“कुर्ध्यंतं न प्रतिकुध्येदाकुष्टः कुशलं वदेत् । सप्तद्वारावकीर्णं च न वाचमचृतां वदेत्” ॥ ( ४८ )

धर्मोऽर्थः कामः धर्मकामौ अर्थकामौ धर्माथौ धर्मार्थकामश्चेति सप्तद्वाराणि । तद्वकीर्णा

तत्संबंधां मोक्षाश्रितामेव वाचं वदेत् । न त्रिवर्गाश्रितामित्यर्थः । मनुरेव ( ६४९ )—

“अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः । आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेद्दिह” ॥

निरामिषः रसवद्भोज्यरहितः । सुखार्थी मोक्षार्थी

“इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च । अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ (६६०) —

“उपेक्षेत गतिं नृणां कर्मदोषसमुद्भवाः । निरये चैव पतनं यातनाश्च यमक्षये ॥ (६१)

५ “विप्रयोगं प्रियैश्चैव संप्रयोगं तथा प्रियैः । जरसा च त्रिभवनं व्याधिभिश्चोपपीडितम् ॥ (६२)

“देहादुत्क्रमणं चास्मात्पुनर्गमं च संभवम् । योनिकोटिसहस्रेषु स्मृतिश्चास्यांतरात्मनः” ॥ (६३)

देहेषु चैवोपपत्तिः । संसृतिः अंतरात्मनो जीवस्य ।

“अधर्मप्रभवं चैव दुःखयोगं शरीरिणाम् । धर्मार्थप्रभवं चैव सुखसंयोगमक्षयम् ॥ (६४)

“सूक्ष्मतां चान्ववेक्षेत योगेन परमात्मनः । देहेषु चैवोपपत्तिमुत्तमेष्वधमेषु च ॥ (६५)

१० “अस्थिस्थूणास्नायुयुतं मांसशोणितलेपितम् । चर्मावनुद्धं दुर्गंधिपूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥ (७६)

“जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् । रजस्वलमनित्यं भूतवासमिमं त्यजेत् ॥ (७७)

भूतावासं शरीरग्रहं तस्मिन्नहंतां न कुर्यात् । यथा गृहे तिष्ठन्गृही गृहमन्यो न भवति एवं देहे तिष्ठन्देही देहमन्यो न स्यादित्यभिप्रायः । उक्तमेवार्थं दृष्टांताभ्यां प्रपंचयति ।

“नदीकूलं यथा वृक्षो वृक्षं वा शकुनिर्यथा । तथात्यजन्निमं देहं कृच्छ्रग्रामाद्विमुच्यते ॥ (७८)

१५ “प्रियेषु खेषु सुकृतमप्रियेषु च दुष्कृतम् । विमुज्य ध्यानयोगेन ब्रह्माप्येति सनातनम् ॥ (७९)

“अनेन विधिना सर्वान् त्यक्त्वा संगान्शनैः शनैः । सर्वद्वंद्वैर्विप्रमुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥ (८१)

“सम्यग्दर्शनसंपन्नः कर्मभिर्न निबध्यते । दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥ (७४)

“एक एव चरेन्नित्यं सिद्ध्यर्थमसहायकः । सिद्धिमेकस्य पश्यन्निह न जहाति न हीयते ॥ (६४२)

एकस्य सिद्धिं पश्यन्नसहायस्य सिद्धिर्भवतीति जानन् सिद्धिं न जहाति । स एव— (६४५)

२० “कपालं वृक्षमूलानि कुचेलमसहायता । समता चेति सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम्” ॥ कपालं

भिक्षार्थमलाबुपात्रं वृक्षमूले निवास इति यावत् । कुचेलं शीर्णवस्त्रधारित्वं मुक्तस्य संन्यासिनः ॥

याज्ञवल्क्यः ( प्रा. ५८ )

“सर्वभूतहितः शांतस्त्रिदंडी सकमंडलुः । एकारामः परिव्रज्य भिक्षार्थं गृहमाविशेत्” ॥

एकारामः परिव्राजकांतरेणासहायः संन्यासिनीभिस्त्रिभिश्च ‘स्त्रीणां चैकः’ इति बोधायनेन स्त्रीणा-

२५ मपि प्रव्रज्यास्मरणादिति विज्ञानेश्वरः । दक्षः—

“नगरं हि न कर्त्तव्यं ग्रामोऽपि मिथुनं तथा । एतत्त्रयं प्रकुर्वाणः स्वधर्माच्यवते यतिः ॥

“एको भिक्षुर्यथोक्तस्तु द्वावेव मिथुनं स्मृतम् । त्रयो ग्रामः सप्ताख्यातं ऊर्ध्वं तु नगरायते ॥

“राजवार्तादि तेषां च भिक्षावार्ता परस्परम् । स्नेहपैशून्यमात्सर्यसंनिकर्षाच्च संशयः ” ॥ इति ।

“एकाकी निस्पृहस्तिष्ठेन्न केनापि सहावसेत् । दयाञ्जारायणेत्येव प्रतिवाक्यं सदा यतिः ” ॥

३० मेधातिथिः—

“भिक्षाटनं जपो ध्यानं स्नानं शौचं सुरार्चनम् । कर्तव्यानि षडेतानि यतीनां नृपदंडवत् ॥

“ध्यानं शौचं तथा भिक्षा नित्यमेकांतशीलता । भिक्षोः कर्माणि चत्वारि पंचमं नोपलभ्यते” ॥

व्यासः—



“कन्थाकौपीनवासा यो दंडधृग्ध्यानतत्परः । एकाकी रमते नित्यं तं देवा ब्राह्मणं विदुः” ॥  
भगवद्गीतायाम् ( १३।१०-११ )

“विविक्तदेशसेवित्वपरतिर्जनसंसदि । अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ॥

“एतत् ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥

“असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः । नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥ ( १८।४९ ) ५

“बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्याऽऽत्मानं नियम्य च । शब्दादीन् विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ  
व्युदस्य च ॥ ( ५१ )

“विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः । ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥ ( ५२ )

“अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् । विमुच्य निर्ममः शांतो ब्रह्मभूयाय कल्पते” ॥ ( ५३ )

संवर्त्तः—

“एकाकी चिंतयेद्ब्रह्म मनोवाक्कायकर्मभिः । मृत्युं च नाभिनंदेत जीवितं वा कदाचन ॥

“कालमेव प्रतीक्षेत यावदायुः समाप्यते ” ॥

मनुः ( ६।४४ )—

“नाभिनंदेत मरणं नाभिनंदेत जीवनम् । कालमेव प्रतीक्षेत निर्वेशं भूतको यथा ” ॥

निर्वेशं भूतिः ।

“दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् । सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ” ॥

संवर्त्तः—

“अजिह्वः पंडकः पंगुरंधो बधिर एव च । मुग्धश्च मुच्यते भिक्षुः षड्भिरेतैर्न संशयः ॥

“इदमिष्टमिदं नेति योऽन्नपि न सज्जति । इदं सत्यमिदं मिथ्या तमजिह्वं प्रचक्षते ॥

“अद्यजातां तथा नारीं तथा षोडशवार्षिकीम् । शतवर्षी च यो दृष्ट्वा निर्विकारः स पंडकः ॥ २०

“भिक्षार्थमटनं यस्य विण्मूत्रकरणाय च । योजनान्न परं गच्छेत् सर्वथा पंगुरेव च ॥

“तिष्ठतो व्रजतो वाऽपि मनश्चक्षुश्च न त्यजेत् । चतुर्युगात्परं सम्यक् परिव्राट् सोऽथ उच्यते ॥

“श्रुत्वा यो न शृणोतीह बधिरः स प्रकीर्तितः ॥

“सांनिध्ये विषयाणां यः समर्थो विकलेन्द्रियः । सुप्तवद्वर्तते नित्यं स भिक्षुर्मुक्त उच्यते ” ॥

दक्षः—

“बुधो ह्याभरणं भारं मलमालेपनं तथा । मानयन्तं च निदन्तं सममेव तु मन्यते ॥

“परमश्रेयसोपेतः परमात्मपरायणः । स्थूलसूक्ष्मशरीराभ्यां मुच्यते दशषट्कवित् ॥

“त्रिदंडं कुंडिकाकन्थां भैक्षभाजनमासनम् । कौपीनाच्छादनं वासः षडेतानि परिग्रहेत् ॥

“स्थावरं जंगमं बीजं तैजसं विषमायुधम् । षडेतानि न गृह्णीयाद्यतिर्मूत्रपुरीषवत् ॥

“रसायनक्रियावादं ज्योतिषं क्रयविक्रयम् । विविधानि च शिल्पानि वर्जयेत्परदारवत् ॥ ३०

“भिक्षाशनं जपस्नानं ध्यानं शौचं सुरार्चनम् । कर्त्तव्यानि षडेतानि सर्वथा नृपदंडवत् ॥

“नटादिप्रेक्षणं ब्रूतं प्रमदां सुहृदं तथा । भक्ष्यं भोज्यमुदक्यां च षण्ण पश्येत्कदाचन ॥

“स्कंधावारे खले सार्थे पुरे ग्रामे असद्गृहे । न वसेत्तु यतिः षट्सु स्थानेष्वेतेषु कहिर्चित् ॥

“रागं द्वेषं मदं मायां द्रोहं मोहं परात्मसु । षडेतानि यतिर्नित्यं मनसाऽपि न चिंतयेत् ॥

“आसनं पात्रलोपश्च संचयः शिष्यसंग्रहः । दिवास्वापो वृथाजल्पो यतेर्बन्धकराणि षट्” ॥  
आसनादीनां लक्षणमाह । स एव—

“एकाहात्परतो ग्रामे पंचाहात्परतः पुरे । वर्षेभ्योऽन्यत्र संस्थानमासनं तदुदाहृतम् ॥

“उक्तानां यतिपात्राणामेकस्यापि न संग्रहः । भिक्षोर्भैक्षभुजश्चापि पात्रलोपः स उच्यते ॥

५ “गृहीतस्य त्रिदंडादेर्द्वितीयस्य परिग्रहः । कालांतरोपभोगार्थः संचयः परिकीर्तितः ॥

“शुश्रूषा लाभपूजार्थं यशोर्थं वा परिग्रहः । शिष्याणां न तु कारुण्यात् स ज्ञेयः शिष्यसंग्रहः ॥

“विद्यादीनां प्रकाशत्वादविद्या रात्रिरुच्यते । विद्याभ्यासे प्रमादो यः स दिवा स्वाप उच्यते ॥

“अध्यात्मिकीं कथामुक्ता भैक्षचर्या पुरस्कृतिः । अनुग्रहः परप्रश्नो वृथाजल्पः स उच्यते ॥

“नाध्येतव्यं न वक्तव्यं न श्रोतव्यं कथंचन । एतैः सर्वैः सुनिष्पन्नो यतिर्भवति नेतरः” ॥

१० नाध्येतव्यमित्यादि कर्मकांडविषयम् ॥ ‘उपनिषदमावर्त्तयेत्’ इति श्रुतेः ।

बृहस्पतिः—

“न तीर्थवासी नित्यं स्यान्नोपवासपरो यतिः । न चाध्यायनशीलः स्यान्न व्याख्यानपरो भवेत्” ॥

अत्रिः—

“अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्या परिग्रहः । भावशुद्धिर्हरेर्भक्तिः संतोषः शौचमार्जवम् ॥

१५ “अस्तिक्यं ब्रह्मसंपर्शं स्वाध्यायः समदर्शनम् । अनौद्धत्यमदीनत्वं प्रसादः स्थैर्यमार्दवं ॥

“अस्नेहो गुरुशुश्रूषा श्रद्धा क्षांतिर्दमः शमः । उपेक्षा धैर्यमाधुर्यं तितिक्षा करुणा तथा ॥

“ह्रीस्तथा ज्ञानविज्ञाने योगो लब्धाशनं धृतिः ॥

“स्नानं सुरार्चनं ध्यानं प्राणायामो हरिस्तुतिः । भिक्षाटनं जपः संध्या त्यागः कर्मफलस्य च ॥

“एष स्वधर्मो विख्यातो यतीनां नियतात्मनाम् ॥

२० “निर्द्वंद्वो नित्यसत्त्वस्थः सर्वत्र समदर्शनः । तुरीयः परमो हंसः साक्षान्नारायणो यतिः ॥

“प्रपंचमखिलं यस्तु ज्ञानाग्नौ जुहुयाद्यतिः । आत्मन्यग्नीन्समारोप्य सोऽग्निहोत्री न चेतारः ॥

“आश्रमत्रयमुत्सृज्य प्राप्यैव परमाश्रमम् । ततः संवत्सरस्यांते प्राप्य ज्ञानमनुत्तमम् ॥

“अनुज्ञाप्य गुरुं चैव चरेद्धि पृथिवीमिमाम् । संरक्षणार्थं जंतूनां रात्रावहनि संध्ययोः ॥

“शरीरत्याज्ययं चैव समीक्ष्य वसुधां चरेत्” ॥

२५ कण्वः—

“एकरात्रं वसेद्ग्रामे नगरे पंचरात्रकम् । वर्षाभ्योऽन्यत्र वर्षासु मासांश्च चतुरो वसेत्” ॥

चातुर्मास्यविधिः । मेधातिथिः—

“संरक्षणार्थं जंतूनां वसुधातलचारिणाम् । आषाढादींश्च चतुरो मासानां कार्तिकाद्यतिः ॥

“धर्मद्वये जलसंपन्ने ग्रामांते निवसेच्छुचिः” ॥

३० व्यासः—“अविमुक्तेऽप्रविष्टानां विहारस्तु न विद्यते । न देहो भविता तत्र दृष्टं शास्त्रं पुरातनम्” ॥

शंखः—“ऊर्ध्वं वार्षिकाभ्यां मासाभ्यां नैकस्थानवासी” इति । अशक्तौ पुनर्मासचतुष्टयमपि

स्थातव्यम् । “न चिरमेकत्र वसेदन्यत्र वर्षाकालाच्छ्रावणादयश्चत्वारो मासा वार्षिकाः” ॥ इति

स्मरणात् इति विज्ञानेश्वरः

विष्णुः—“ग्रामांते निर्जने देशे नित्यकालनिकेतनः । पर्यट्टेकीटवद्भूमिं वर्षास्वेकत्र संवसेत् ॥

“वृद्धानामातुराणां च भिक्षूणां संगवार्जिनाम् । ग्रामे वाऽथ पुरे वाऽपि वासो नैकत्र दुष्यति” ॥

आश्वलायनः—

“एकरात्रं वसेद्ग्रामे नगरे पंचरात्रकम् । नदीतीर्थेषु पुण्येषु संवसेद्वावहं यतिः” ॥

यमः—

“एकवासा अवासा वा एकदृष्टिरलोलुपः । आदूषयन्सतां मार्गं ध्यानसक्तो महीं चरेत् ॥ १

“जलेजीवा स्थलेजीवा आकाशेजीवमालिनि । जीवमालाकुले लोके वर्षा त्वेकत्र संवसेत्” ॥

अत्रिः—

“शुचौ देशे तथा भिक्षुः स्वधर्ममनुपालयन् । पर्यटेत सदा योगी वीक्षयन्वसुधातलम् ॥

“न रात्रौ न च मध्याह्ने संध्ययोर्नैव पर्यटेत् । न शून्ये न च दुर्गे वा प्राणबाधाकरे न च ॥

“यत्र प्रभुर्जगन्नाथस्तत्र योगी वसेत्सदा । भिक्षार्थं प्रविशेद्ग्रामं वासार्थं वा दिनत्रयम् ॥ १०

“एकरात्रं वसेद्ग्रामे पत्तने तु दिनत्रयम् । पुरे दिनद्वयं भिक्षुर्नगरे पंचरात्रकम् ॥

“वर्षास्वेकत्र तिष्ठेत् स्थाने पुण्ये जलावृते । आत्मवत्सर्वभूतानि पश्यन्भिक्षुश्चरेन्महीम् ॥

“अंधवत्कुब्जवच्चैव बधिरोन्मत्तमूकवत् ॥

“नामगोत्रादि चरणं देशं वासं श्रुतं कुलम् । वयोवृत्तं बलं शीलं ख्यापयन्न वसेद्यतिः” ॥

अरुणी श्रुतिः—“वर्षासु ध्रुवशीलोऽष्टसु मासेषु एकाकी यतिश्चरेद्वावेवाचरेत्” इति ॥ १५

गौतमः ( ३।१०-१२; २० )—

“अनिचयो भिक्षुरूध्वरेता ध्रुवशीलो वर्षासु” इति “नद्वितीयामपत्तौ रात्रिं ग्रामे वसेत्” इति ।

वर्षासु वर्षतोर्ध्रुवशीलः स्यान्न देशांतरं गच्छेत् पत्तौ तद्वर्जयित्वा ऋत्वंतरेषु यत्र ग्रामे एकरात्रि-

मुषितं न तत्र द्वितीयां रात्रिं वसेत्प्रतिदिनं ग्रामाद्ग्रामं गच्छेदित्यर्थः । स एव—(३।१७-२४)

“कौपीनाच्छादनार्थं वासो विभृयात् । प्रहिणमेके निर्णिज्य नाविप्रयुक्तमौषधिवनस्पतीनामङ्ग- २०

मुपाददीत वर्जयेत् बीजवधं समो भूतेषु हिंसानुग्रहयोरनारंभी” इति । प्रहिणं जीर्णतया अन्यै-

स्त्यक्तम् निर्णिज्य प्रक्षाल्य विभृयात् । कुतश्चित् न कौपीनाच्छादनार्थं प्रतिगृह्येति एके मन्यन्ते ।

औषधिवनस्पतीनामंगफलपत्राद्यप्रवृत्तं ततः अप्रच्युतं न गृह्णीयात् । स्वयं शीर्णं तु गृह्णीया-

द्वीजानि व्रीह्यादीनि तेषां वयं मुसलादिना अवघातं वर्जयेन्न कुर्यान्न कारयेच्च हिंसायामनुग्रहे

च भूतेषु समः यो हिनस्ति योऽनुगृह्णाति तत्र समो निर्विकारः अनारंभी किञ्चिदप्यारंभी २५

कुर्यात् ऐहलौकिकं पारलौकिकम् चेत्यर्थः । आपस्तम्बोऽपि ( २।२१।१०-१७ )—“अनग्नि-

रनिकेतस्याशर्मा अशरणो मुनिः स्वाध्याय एवोत्सृजमानोवाचं ग्रामे प्राणवृत्तिं प्रतिलभ्यानीहो-

नामुत्रश्चरेत्तस्य मुक्तमाच्छादनं विहितं सर्वतः परिमोक्षमेके सत्यान्वृते सुखदुःखे वेदानिमं

लोकममुं च परित्यज्यात्मनात्मानमन्विच्छेदबुद्धेक्षेमप्रापणम् तच्छास्त्रैर्विप्रतिषिद्धम् बुद्धे

चेत्क्षेमप्रापणमिहैव न दुःखमुपलभेत एतेन परं व्याख्यातम्” इति ॥ अनग्निः अग्निकार्यारहितः ३०

इत्यर्थः । अनिकेतः स्म भूतवासस्थानरहितः । शर्मजन्यसुखं तदस्य नास्तीत्यशर्मा । किञ्चिदपि

शरणत्वेन न प्रपन्नः न वा कस्यचिच्छरणभूत इत्यशरणः । स्वाध्यायः प्रणवोपनिषज्जपः

तत्रैव वाचं विसृजेदन्यत्र मौनव्रतः । स्याद्यावता प्राणा श्रियन्ते सा प्राणवृत्तिः । अनीहो ना

मुत्रः ऐहिकामुष्मिककर्मारहितः मुक्त अयोग्यतया परैरपि त्यक्तकामाच्छादनं कौपीना-

च्छादनं वासः सर्वतः विधितः निषेधतश्चास्य परिमोक्षमेके ब्रुवते । एतदेव प्रपंचयति ३५

संत्याज्यते इति । सत्यं वक्तव्यमिति यो नियमः तं परित्यज्य तथा तत्र वक्तव्यमनृतं तद्धि सत्यात् विशिष्यते इत्यादिके विषये अनृतं वक्तव्यमिति यो नियमः तं च परित्यज्य इमं लोकं ऐहलौकिकं कर्म अमुं च पारलौकिकं च परित्यज्यात्मानमन्विच्छेत् । ज्ञानबलाबलं बलोनानादृत्य विधिनिषेधानां स्वैरचारिणामेषां कित्राण तत्र हि बुद्धेक्षेमप्रापणम् ” इति आत्मनि  
 ५ बुद्धे अवगते सति तदेव ज्ञानं सर्वमशुभं प्रक्षाल्य क्षेमं प्रापयति तदेतत् निराकरोति तच्छास्त्रैर्विप्रतिषिद्धं “ कुध्यन्त न प्रतिकुध्येदाकुष्ठः कुशलं वदेत् ” इत्यादिभिर्यतेरेव कर्तव्यकर्मप्रतिपादनपरमैर्नवादिवचनैर्विरुद्धम् । बुद्धे क्षेमप्रापणम् इत्येतच्च प्रत्यक्षविरुद्धमित्याह । बुद्धे चेदिति इहैव शरीरे दुःखं नोपालभेत ज्ञानी तच्चैतदस्ति नहि ज्ञानिनां मूर्धाभिषिक्तं मन्योक्षुद्रुःखमेवं सोढुं प्रभवति । तस्माच्छ्रवणमनननिदिध्यानासनैः साक्षात्कुतात्मास्वरूपः स्वाश्रमं प्रकृत्य  
 १० विहितानि कर्माणि कुर्वन् प्रतिषिद्धेषु कटाक्षमप्यनिक्षिपन्त्यतिर्मुच्येत इति हरदत्तेन व्याख्यातम् ।  
 याज्ञवल्क्यः (प्रा. ६५-६६) —

“ नाश्रमः कारणं धर्मे क्रियमाणो भवेद्धि सः । अतो यदात्मनोऽपध्यं परेषां न तदाचरेत् ॥  
 “ सत्यमस्तेयमक्रोधो ह्रीः शौचं धीर्धृतिर्दमः । संयतेंद्रियता विद्या धर्मः सर्व उदाहृतः ॥  
 “ अवेक्ष्या गर्भवासाश्च कर्मजा गतयस्तथा । आधयो व्याधयः क्लेशा जरा रूपविपर्ययः ॥ (६३)  
 १५ “ भवो जातिसहस्रेषु प्रियाप्रियविपर्ययः । ध्यानयोगेन संपश्येत्सूक्ष्म आत्मात्मनि स्थितः ॥ (६४)  
 “ संनिरुध्येंद्रियग्रामं रागद्वेषौ प्रहाय च । भयं हित्वा च भूतानाममृती भवती द्विजः ” ॥ (६१) इति ।  
 आरुण्युपनिषदि — “ ब्रह्मचर्यमहिंसा चापरिग्रहं च सत्यं च यत्नेन हि रक्षेत ” इति ।  
 कामक्रोधलोभमोहदंभदर्पासुयाममताहंकारानृतादीनपि त्यजेदिति च । जाबालिः —  
 “ न भाषेत स्त्रियं कांचित्पूर्वदृष्टां न च स्मरेत् । कथां च वर्जयेत्तासां न पश्य लिखितामपि ” ॥  
 २० विष्णुपुराणे ( ३१।२५-२८ )

“ पुत्रद्रव्यकलत्रेषु त्यक्तस्नेहो नराधिप । चतुर्थमाश्रमं स्थानं गच्छेन्निर्धूतमत्सरः ॥  
 “ त्रैवर्गिकांस्त्यजेत्सर्वानारम्भानवनीपते । मित्रादिषु समो मैत्रः समस्तेष्वेव जंतुषु ॥  
 “ जरायुजांडजादीनां वाङ्मनःकायकर्मभिः । युक्तः कुर्वीत न द्रोहं सर्वसंगं च वर्जयेत् ॥  
 “ एकरात्रस्थितिर्ग्रामे पंचरात्रस्थितिः पुरे । तथा तिष्ठेद्यथा प्रीतिर्द्वेषो वा नास्य जायते ॥  
 २५ “ कामं क्रोधं तथा दर्पं लोभमोहादयश्च ये । तांस्तु दोषान्परित्यज्य परिव्राण्णिर्ममो भवेत् ॥  
 “ मांसासृक्पूयविष्णुमूत्रस्नायुमज्जास्थिसंहतौ । देहे चेत्प्रीतिमान्मूढो नरके भविता हि सः ” ॥

व्यासः —

“ रागांधौ हि जनः सर्वो न पश्यति हिताहितम् । रागं तस्मान्न कुर्वीत यदिच्छेदात्मनो हितम् ॥  
 “ अपकारिणि कोपश्चेत्कोपे कोपः कथं न ते । धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रसह्य परिपंथिनीम् ।  
 ३० “ क्षमातीर्थं तपस्तीर्थं तीर्थमिंद्रियनिग्रहः । सर्वभूतदयातीर्थं ध्यानं तीर्थमनुत्तमम् ।  
 “ एतानि पंच तीर्थानि सप्तषष्ठानि सर्वदा । देहे तिष्ठति सर्वत्र तेषु स्नानं समाचरेत् ।  
 भगवद्गीतासु ( ६।२४-२६ )

“ संकल्पप्रभवान्कामास्त्यक्त्या सर्वानशेषतः । मनसैर्वेंद्रियग्रामं विनियम्य समं ततः ।  
 “ शनैः शनैरुपरमेद्बुध्या धृतिगृहीतया । आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिंतयेत् ॥  
 ३५ “ यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम् । ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव बशं नयेत् ॥

“वृत्तिहीनं मनः कृत्वा क्षेत्रज्ञं परमात्मनि । एकीकृत्य विमुच्येत योगोऽयं मुख्य उच्यते”

अत्रिः—

“स्नानं त्रिषवणं पात्रनियमाः स्युस्त्रिदंढिनाम् । नेतत्परमहंसानां युक्तानामात्मदर्शनाम् ॥

“मौनं योगासनं योगस्तितिक्षैकांतशीलता । निस्पृहत्वं समत्वं च सप्तैतान्येकदंढिनाम्” ॥

व्यासः—

“गुरुमूलाः क्रियाः सर्वा भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः । तस्मात् सेव्यो गुरुर्नित्यं मुक्त्यर्थं सुसमाहितैः ।

“न कुर्यान्नियमारंभमनिमिषेयवकं गुरुम् । छायाभूतोऽपरित्यागी नित्यमेव वसेत् गुरौ ॥

“अद्वय्या परया युक्तः सदा द्वादशसंध्ययोः । दंडप्रणामान्कुर्वीत देवतागुरुसंनिधौ ” ॥

मन्वाद्युक्ता ब्रह्मचारीधर्मा गुरुशुश्रूषादयो यतिभिः कर्तव्याः ।

“ब्रह्मचारिणो ये धर्मा गुरुशुश्रूषणादयः । तेऽपि सर्वे यतीनां स्युः ” इति ॥ १०

बह्वचपरिशिष्ट अतिदेशात् । ते च धर्माः ब्रह्मचर्यप्रकरणेऽभिहिताः । शंखः— “पर्यटनशीलः स्यादात्मज्ञानार्थं तदवाप्योर्धमेकस्थानरतिस्तदभ्यासपरो नैकत्र देशे मूत्रपुरीषाविति ” ॥

विष्णुः—

“वृद्धानामातुराणां च भिक्षूणां संगवर्जिनाम् । ग्रामे वाऽथ पुरे वाऽपि वासो नैकत्र दुष्यति ” ॥

परमहंसोपनिषदि—“सौवर्णादीनां न परिग्रहेद्यस्माद्भिक्षुर्हिरण्यं रसेन दृष्टं चेत् स ब्रह्महा ॥ १५

भवेत् । यस्माद्विरण्यं रसेन स्पृष्टं चेत्स पौलकसो भवेत् । यस्माद्भिक्षुर्हिरण्यं रसेन ग्राह्यं चेत्स

आत्महा भवेत्तस्माद्भिक्षुर्हिरण्यं रसेन दृष्टं न स्पृष्टं च न ग्राह्यं च सर्वे कामा मनोगता व्यावर्तते ।

दुःखेनोद्भिन्नः सुखे निस्पृहस्त्यागो रागे सर्वत्र शुभाशुभयोरनभिस्नेहो न द्वेष्टि न मोदं च सर्व-

षामिन्द्रियाणां गतिरुपरमते य आत्मन्येव वा स्थायते यत्पूर्णानंदैकबोधस्तद्ब्रह्माहमस्तीति कृत-

कृत्यो भवति कृतकृत्यो भवति इति । अमृतबिंदूपनिषदि—

२०

“मनो हि द्विविधं प्रोक्तं शुद्धं चाशुद्धमेव च । अशुद्धं कामसंकल्पं शुद्धं कामविवर्जितम् ॥

मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः । बंधाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम् ” ॥ इति ।

व्यासः—

“ग्रामांते वृक्षमूले वा वने देवालयेऽपि वा । नद्यास्तीरे पुण्यदेशे अग्निहोत्रगृहेऽपि वा ॥

“सुशुभे विजने देशे वसेज्जंतुविवर्जिते ” ॥

२५

अथ दिगम्बरलक्षणम् । आचार्यमाह स एव—

“न तस्य विद्यते कार्यं न लिङ्गं वा विपश्चितः । निर्ममो निर्भयः शांतो निर्द्विदः पर्णभोजनः ॥

“नीवीकौपीनवासाः स्यान्नग्नो वा ध्यानतत्परः । एवं ज्ञानपरो योगी ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

“लिङ्गे सत्यपि खल्वस्मिन्ज्ञानमेव हि कारणम् । न मोक्षायैह भूतानां लिङ्गग्रामो निरर्थकः ॥

“तस्मादलिङ्गो धर्मज्ञो ब्रह्मव्रतमनुव्रतः । गूढधर्माश्रितो विद्वानज्ञातचरितं चरेत् ॥

३०

“संदिग्धः सर्वभूतानां वर्णाश्रमविवर्जितः । अंधवज्जडवच्चापि मूकवच्च महीं चरेत् ॥

“तं दृष्ट्वा शांतमनसं स्पृहयन्ति दिवौकसः । लिङ्गभावात्तु कैवल्यमिति ब्रह्मानुशासनम् ” ॥

कात्यायनः—“अव्यक्तलिङ्गा अव्यक्ताचारा अनुन्मत्ता उन्मत्तवदाचरन्तः शिखायज्ञोपवीत-

त्रिदंडकमंडलुकपालानां च त्यागिनः शून्यागारा देवगृहवासिनो न तेषां धर्मो नाधर्मो न

सत्यं नापि चानृतम् । सर्वसहाः सर्वसमाः समलोष्ठाश्मकांचनाः । उपपन्नमात्राहाराश्चातुर्वर्ण्यं ३५

भैक्षचर्या चरन्त आत्मनं मोक्षयन्तः ” इति ।

व्यासः—

“अयाचितं यथालाभं भोजनाच्छादनं भवेत् । परेच्छया च दिग्वासाः स्नानं कुर्यात्परेच्छया ॥

“स्वप्नेऽपि योगयुक्तः स्याज्जाग्रतीव विशेषतः । ईदृक्चेष्टः स्मृतः श्रेष्ठो वरिष्ठो ब्रह्मवादिनाम् ॥

“येन केनचिदाच्छन्नो येन केनचिदाशितः । यत्र कचनशायी स्यात्तं देवा ब्राह्मणं विदुः” ॥

५ याज्ञवल्क्यः ( आचारे ८ )— “अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्” इति । भागवते—

“स लिंगानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेदविधिगोचरः । बुधो बालकवत्कीडेत् कुशलो जडवच्चरेत् ॥

“वदेदुन्मत्तवद्विद्वान् गोचर्या नैगमश्चरेत् । यदृच्छयोपपन्नान्नमद्याच्छ्रेष्ठमुतापरम् ॥

“तथासनस्तथाशय्यां यथा प्राप्तं भजेन्मुनिः । शौचमाचमनं स्नानं न तु चोदनया चरेत् ॥

१० “अन्यांश्च नियमान्ज्ञात्वा यथाहं लीलयेस्वरः” ॥ वासिष्ठे—

“धर्माधर्मौ सुखं दुःखं तथा मरणजन्मनी । धिया येनेति संत्यक्तं महात्यागी स उच्यते ॥

“सर्वेच्छाः सकलां शंकाः सर्वेहाः सर्वनिश्चयाः । धिया येन परित्यक्ता महात्यागी स उच्यते ॥

“यावती दृश्यकलना सकलेयं विलोक्यते । सा येन सुष्ठु संत्यक्ता महात्यागी स उच्यते ॥

“देहेऽहमिति या बुद्धिः सा संसारनिबन्धिनी । न कदाचिदियं बुद्धिरादेयाऽत्र मुमुक्षुणा ॥

१५ “पदार्थमात्रतानिष्ठा सा संसारनिबन्धिनी । न किञ्चिन्मात्रचिन्मात्ररूपोऽस्मि गगनादणुः ॥

“इति या शाश्वती बुद्धिः सा संसारविमोचिनी” ॥ मनुः—

“शास्त्रसज्जनसंपर्कैः प्रज्ञामादौ प्रवर्द्धयेत् । प्रथमा भूमिकैवोक्ता योगस्य न च योगिनः ॥

“विचारणा द्वितीया स्यात्तृतीया संगनामिका । विलासिनी चतुर्थी स्याद्वासना विलयात्मिका ॥

“विशुद्धचिन्मयानन्दरूपा भवति पञ्चमी । अर्धसुप्तप्रबुद्धाभो जीवन्मुक्तोऽत्र तिष्ठति ॥

२० “असंवेदनरूपा च षष्ठी भवति भूमिका । आनन्दैकघनाकारा सुष्ठुसिद्धशी स्थितिः ॥

“तुर्यावस्थोपशान्ता च मुक्तिरेव हि केवलम् । समता स्वस्थता सौम्या सप्तमी भूमिका भवेत् ॥

“तुर्यातीता तु याऽवस्था परा निर्वाणरूपिणी । सप्तमी सा परिप्रोक्ता विषयत्यागजीविता ॥

“अंतःप्रत्याहतिवशाच्चैत्यं चेति विभावितम् । मुक्त एव न संदेहो महासमतया तया ॥

“यद्भोगसुखदुःखांशैरपरावृष्टपूर्णधीः । आत्मारामो नरस्तिष्ठेत्तन्मुक्तत्वमिहोदितम् ॥

२५ “भावनां सर्वभावेभ्यः समुत्सृज्य समुत्थितः । शशांकशीतलः पूर्णो भाति भासेव भास्करः ॥

“क्रियमाणं कृतं कर्म कुलश्रीदेहशल्मः । ज्ञानानिलसमुद्भूता प्रोड्डीय कापि गच्छति ॥

“सर्वैव हि कला जंतोरनभ्यासेन नश्यति । इयं ज्ञानकला त्वतः सकृज्जाता विवर्धते ॥

“वृद्धिमेति बलादेव सुक्षेत्रव्युत्पत्तशालिवत् । यावद्विषयभोगाशा जीवाख्या तावदात्मनः ॥

“अविवेकेन संपन्ना साऽप्याशाऽत्र न तु स्यतः । विवेकवशतो याता क्षयमाशा यदा तदा ॥

३० “आत्मा जीवत्वमुत्सृज्य ब्रह्मतामेत्य नाम यः । चिन्मात्रत्वं प्रयातस्य तीर्णमृत्योरचेतसः ॥

“यो भवेत्परमानन्दः केनासावुपमीयते ॥

“प्रज्ञातशास्त्रार्थविचारचापलो निवृत्तनानारसकाव्यकौतुकः ॥

“निरस्तनिःशेषविकल्पविलवः समः सुखं तिष्ठति शाश्वतात्मकः ॥

“वर्णधर्माश्रमाचारशास्त्रयन्त्रेण बोधितः । निर्गच्छति जगज्जालात्पंजरादिव केसरी ॥

३५ “वाचामतीतविषयो विषयाशामयोज्ज्वलाः । कामभ्युपगतः शोभां शरदीव नभस्थलाम् ॥

“ गंभीरश्च प्रसन्नश्च गिराविव महाहृदः । परानंदरसात् स्तब्धो रमते स्वात्मनात्मानि ॥

“ सर्वकर्मफलत्यागी नित्यतृप्तो निराश्रयः । न पुण्येन न पापेन नेतरेण विलिप्यते ॥

“ स्फटिकं प्रतिबिंबेन यथा नायाति रंजनम् । तज्ज्ञः कर्मफलेनातस्तथा नायाति रंजनम् ॥

“ विहरन् जनतावृंदं देहकर्ता न पूजनैः । खेदालहादौ न जानाति प्रतिबिंबगतैरिव ” इति ।

अथ ज्ञानस्य मोक्षहेतुत्वम्—

५

“ तत्त्वमस्यादिवाक्यार्थं यज्जीवपरमात्मनोः । तदात्मविषयज्ञानं तादिदं मुक्तिसाधनम् ” ॥  
ज्ञानान्मोक्ष इत्यत्र तैत्तिर्यकश्रुतिः ( आरण्यके ब्रह्मवल्याम् ) । “ ब्रह्मविदाप्नोति परम् ।  
तदेषाभ्युक्ता । ब्रह्मणा विपाश्चितेति ” । कठवल्ल्याम्—

“ अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् । महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥

“ नाविरतो दुश्चरितान्नाशातो नासमाहितः । नाशांतमानसो वापि प्रज्ञानेनैवमाप्नुयात् ॥ १०

“ एके बहूनां यो विदधाति कामन् तमात्मस्थं येनुपश्यन्ति धीराः ॥

“ तेषां शांतिः शाश्वती नेतरेषाम् ” ।

मुडकोपनिषदि—

“ तमेवैकं जानथात्मानमन्या वाचो विमुंचथ । अमृतस्यैषसेतुरिति ” ॥

“ भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्ष्टे परावरे ॥ १५

“ यथा नद्यः स्यंदमानाः समुद्रे संगच्छते नामरूपे विहाय ।

“ तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥

“ स यो ह वै तत् परं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति ” इति ।

अमृतविंदूपनिषदि—

“ तदेव निष्फलं ब्रह्म निर्विकारं निरंजनम् । तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा ब्रह्म संपद्यते ध्रुवम् ” २०

कैवल्यश्रुतौ—

“ उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशांतम् ॥

“ ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षी तमसः परस्तात् ॥

“ सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मानि । संपश्यन्ब्रह्म परमं याति नान्येन हेतुना ” ॥

सुबालोपनिषदि—

२५

“ शांतो दांत उपरतास्तितिक्षुः समाहितो भूत्वा आत्मन्येवात्मानं पश्यति स सर्वस्यात्मा भवति ” ॥

श्रुत्यंतरेऽपि—

“ आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पुरुषः । किमिच्छन्कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत् ॥

“ अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम् तथाऽऽसं नित्यमगंधवच्च यत् ॥

“ अनाद्यनंतं महतः परं ध्रुवं निचाप्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते । ज्ञानाग्निः शुभाशुभे दहति ” इति च । ३०

मनुरपि ( ६।७४ )—

“ सम्यग्दर्शनसंपन्नः कर्मभिर्न निबध्यते । दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥

“ बीजान्यग्न्युपदग्धानि न रोहन्ति यथा पुनः । ज्ञानदग्धैस्तथा क्लेशैर्नात्मा संबध्यते तथा ” ॥

भगवद्गीतायाम् ( ४।३७ )

“यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन । ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा” ॥

अथ शौचविधिः । बह्वचपरिशिष्टे—

“अंतर्धाय तृणैर्भूमिं शिरः प्रावृत्य वाससा । वाचं नियम्य यत्नेन निष्ठीवोच्छ्वासवर्जितः ॥

“कुर्यान्मूत्रपुरीषे तु शुचौ देशे समाहितः ॥

५ “उभे मूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्यादुदङ्मुखः । रात्रौ तु दक्षिणे कुर्यादुभे संध्येऽथ वा दिवा ॥

“शतहस्तं परित्यज्य मूत्रं कुर्याज्जलाशयात् । शतद्वयं पुरीषे तु तीर्थे चैव चतुर्गुणम्” ॥

यमः—“उभे मूत्रपुरीषे तु पूर्वं गृहीत मृत्तिकां पश्चाद्ब्रूहि यो विप्रः सचैलो जलमाविशेत् ॥

“तीर्थे शौचं न कुर्वीत कुर्वीतोद्धृतवारिणाम्” ॥

पैठीनसिः—“अनुदकमूत्रपुरीषकरणे सचैलस्नानम्” इति ।

१० शातातपः—“शुचिदेशात्तु संग्राह्या मृत्तिकाऽश्मादिवर्जिता” ॥ इति

“अपकृष्य च विण्मूत्रं काष्ठलोष्ठवृणादिना । उदस्तवासा उत्तिष्ठेत् दृढविधृतमेहनः” ॥

याज्ञवल्क्यः (आचारे-९)—

“गृहीतशिश्नश्चोत्थाय मृद्भिर्भ्युद्धृतैर्जलैः । गंधलेपक्षयकरं शौचं कुर्यादतंद्रितः” ॥

जलपात्राभावे व्यासः—

१५ “अरन्निमात्रं जलं त्यक्त्वा कुर्याच्छौचमनुद्धृतैः । पश्चात्तु शोचयेत्तीरमन्यथा त्वशुचिर्भवेत्” ॥

रत्निः अरत्निः । शातातपः—

“एका लिंगे करे तिस्रः सव्ये द्वे हस्तयोर्द्वयोः । मूत्रशौचं समाख्यातं शुक्ले मूत्रवदिष्यते ॥

“पंचापाने दशैकस्मिन्नुभयोः सप्त मृत्तिकाः । पुरीषशौचनिर्दिष्टा देयास्तिस्रः पदद्वये ॥

“दातव्यमुदकं तावन्मृदभावो यथा भवेत् । एतच्छौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणः ॥

२० “वानप्रस्थस्य त्रिगुणं यतीनां च चतुर्गुणं । मूत्रशौचं पुरस्कृत्य बृहच्छौचं समाचरेत् ॥

“पश्चाच्च पादशौचं तु शौचविद्भिर्रुदाहृतम् । न्यूनाधिकं न कर्तव्यं शौचं शुद्धिमभीप्सिता” ॥

“अधिकं नैव दुष्यतीति” न्यायान्न्यूनं न कर्तव्यमित्यभिप्रायः ॥

दक्षः—“यद्विवा विहितं शौचं तदर्धं निशि कीर्तितम् । तदर्धमातुरे प्रोक्तमातुरस्यार्धमध्वनि” ॥

देवलः—

२५ “धर्म्यं वै दक्षिणं हस्तमधःशौचेन योजयेत् । तथैव वामहस्तेन नाभेरूर्ध्वं न शोधयेत्” ॥ इति ।

“कटिशौचं ततः कुर्यान्मूत्रादिस्पर्शशंकया । धृत्वा च धौतं कौपीनं गंडूषान्द्वादशाचरेत् ॥

“आचम्य प्रयतो भूत्वा प्राणायामान्ब्रूयाचरेत्” ॥

अथ दन्तधावनम् । वृद्धशातातपः—

“मुखे पर्युषिते नित्यं भवत्यप्रयतो नरः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुर्याद्वै दंतधावनम्” ॥

३० विष्णुः—

“कंटकीक्षीरवृक्षोत्थं द्वादशांगुलमव्रणम् । कनिष्ठिकाग्रवत् स्थूलं कूर्चाग्रं समपर्वकम् ॥

“सत्वचं दंतकाष्ठं स्यात्तदग्रेण प्रधावयेत् । प्राङ्मुखश्चोपविष्टस्तु भक्षयेद्वाग्यतो नरः ॥

“प्रक्षाल्य च शुचौ देशे दंतधावनमुत्सृजेत् ॥

“अलाभे दंतकाष्ठस्य प्रतिषिद्धदिने तथा । अपां द्वादशगंडूषैर्मुखशुद्धिर्भविष्यति” ॥

३५ व्यासः—“चतस्रो घटिकाः प्रातरुणोदय इष्यते । यतीनां स्नानकालोऽयं गंगाम्भः सदृशः स्मृतः ॥



“ प्रातर्मध्यान्हयोः स्नानं वानप्रस्थगृहस्थयोः । यतीनां त्रिषवणस्नानमेकं तु ब्रह्मचारिणः ” ॥  
स्कादि—

“ अयमेव परो धर्मस्त्वदमेव परं तपः । इदमेव परं तीर्थं विष्णुपादांबु यः पिबेत् ॥  
“ स चैवावभृथस्नातः स च गंगाजलाप्लुतः । विष्णुपादोदकं कृत्वा शंखे यः स्नाति मानवः ॥  
“ यतिपादोदकं राजन्हन्ति पापं पुराकृतम् । सप्तजन्मार्जितं सम्यक् श्रद्धया शिरसा धृतम् ॥ ५  
“ गुरुपदिष्टमाग्रेण स्नानं कुर्याद्यथाविधि ” ॥

अत्र संप्रदायविदः दंडं दक्षिणकरे गृहीत्वा वामांसे वस्त्रं कृत्वा गुरोर्दक्षिणभागे स्थित्वा गुरुमभिवंद्य जलाशयं गत्वा शुचिदेशे कमंडलुमपसंस्थाप्य विष्णुं जले स्मरेत्

“ ततो दंडस्य मूलेन तथाऽग्रेण स्पृशेज्जलम् । कुर्याज्जलस्य च दिशां देवानां वंदनं क्रमात् ॥  
“ ततो गुरुणां ज्येष्ठानां यतीनां वंदनं तथा । ततः संस्थापयेद्दंडमूर्ध्वाग्रं जलमध्यतः ॥ १०  
“ अथवा शुचिवस्त्रादौ स्थापयेत्प्रागुदङ्मुखम् । ततो मृदं समादाय प्रक्षाल्य विभजेत् त्रिधा ॥  
“ तत एकेन भागेन पादशौचं समाचरेत् । आचम्यान्येन भागेन कटिशौचं समाचरेत् ॥  
“ जलांतस्तिमृभिर्मृद्भिः कटिं प्रक्षालयेत्ततः । कौपीनं तिसृभिर्मृद्भिः पुटं प्रत्येकमेव तु ॥  
“ आचम्य विधिना पश्चात्प्राणायामत्रयं चरेत् । ततस्तु क्षालयेत्सम्यक् मृज्जलाभ्यां कमंडलुम् ॥  
“ वामहस्तस्य पृष्ठे तु संस्थाप्य स्नानमृत्तिकाम् । दंडं कमंडलुं चैव स्पृष्ट्वाऽऽचामेद्यथाविधि ॥ १५

“ दक्षिणोरौ स्नानमृदं संस्थाप्य विभजेत्त्रिधा । चुलुके जलमादाय तद्वामेन पिधाय च ॥  
“ प्रणवेन द्विषड्वारमभिमन्त्र्य च तेन ताम् । संप्रोक्ष्य प्रणवेनैव द्विषट्कृत्वाभिमन्त्रयेत् ॥  
“ ततः प्रथमभागात्तु गृहीत्वा स्वल्पिका मृदम् । करावालिप्य सूर्याय प्रदर्श्य क्षालयेत्करौ ॥  
“ पुनः किञ्चित्समादाय हस्तयोरुपलिप्य च । सूर्याय च प्रदर्श्योर्ध्वं मुखं कक्षं विलेपयेत् ॥  
“ जलेनाधोमुखं कक्षे समालिप्य जलं स्पृशेत् । एवं वारत्रयं कुर्यात् कक्षयोरुपलेपनम् ॥ २०  
“ द्वितीयां किञ्चिदादाय हस्तयोरुपलिप्य च । सूर्याय तु दर्शयित्वा लिपेत्कालभुजौ हृदि ॥  
“ जलं स्पृशेत्ततश्चैव किञ्चिदादाय मृत्तिकाम् । हृदमारभ्य चा नाभेरालिप्य सलिलं स्पृशेत् ॥  
“ पुनश्चैवं समादाय पृष्ठमारभ्य लेपयेत् । आ पादात्तु जलं स्पृष्ट्वा दक्षिणेन करेण तु ॥  
“ तृतीयं भागमादाय वामेनोरुं विशेषयेत् । ‘ यस्य प्रसादात् ’ इत्यादिमन्त्रेण त्रिगुरुं नमेत् ॥

“ प्रवाहाभिमुखो नयामन्यत्र रविसंमुखः । त्रिर्निर्मज्ज मृदं स्कंधे संस्थाप्य प्रागुदङ्मुखः ॥ २५  
“ तथैव द्विस्त्रिराचम्य प्राणान् प्रोक्ष्याभिमन्त्र्य च । मृत्तिकां पूर्वदत्तां च स्कंधादादाय हस्तयोः ॥  
“ उपलिप्य ललाटं च बाहुं हृदयमेव च । एवं वारत्रयः कृत्वा गृहीत्वा शेषमृत्तिकाम् ॥  
“ प्रणवेनाप आलोड्य कुर्यात्पद्धारमज्जनम् । द्विराचम्य त्रिराचम्य प्राणानष्टोत्तरं शतम् ॥  
“ जपित्वा प्रणवं ब्रह्म चिंतयत् स्नानमाचरेत् । नाम्नां तु केशवादीनामेकैकं नाम संस्मरन् ॥  
“ मंडक्त्वा द्वादशवारं तु शिरोवदनबाहुषु । हृदयेषु निषिंचेत्तु तिस्रः शंखाख्यमुद्रया ॥ ३०  
“ गुरुपादोदकं सिंचेच्छिर आदौ तु पूर्ववत् । ततस्तु त्रिः पिबेदेवं विष्णोः पादोदकेन च ॥  
“ ततः प्रक्षाल्य कौपीनं निपीड्य परिधाय च । ऊरु प्रक्षाल्य मृत्तोयैर्हस्तौ प्रक्षालयेन्मृदा ॥  
“ एकपादं स्थले कृत्वा द्विराचम्य यथाविधि । प्राणायामत्रयं कृत्वा द्विषड्वाराभिमन्त्रितैः ॥

“जलैः संप्रोक्ष्य वस्त्रादिनांगवस्त्रेण मार्जयेत् । कौपीनसहितं दोरमादौ बध्नीत वाग्यतः ॥

“कौपीनमंगवस्त्रं च जलैरासिच्य निक्षिपेत् । कौपीने मृज्जले क्षिप्त्वा पादौ प्रक्षालयेन्मृदा ॥

“तत आचम्य विधिवत्प्राणायामान्बडाचरेत् । अज्ञानकृतहिंसादिप्रत्यवायनिवृत्तये ॥

“पुंड्रं धृत्वा ततः प्राणानायम्य न्यासपूर्वकम् । प्रणवार्थानुसंधानं पंचीकरणपूर्वकम् ॥

“प्रणवं तु जपेदष्टशतमष्टोत्तरं तु वा । सहस्रं वा लिखेदप्सु पद्ममष्टदलं तथा ॥

“संचित्य सगुणं विष्णुं तत्र पंचोपचारतः । संपूज्य तर्पयेत्तत्र नीरेणाष्टोत्तरं शतम् ॥

“ततो दक्षिणहस्तस्थं तोयं द्वादशवारतः । अभिमन्त्र्य शिरः प्रोक्ष्य तथाऽन्यदभिमन्त्रितम् ॥

“जलं पिबेदथाचम्य दोरं प्रक्षालयेन्मृदा । कर्णयोस्तच्च संस्थाप्य कौपीनं क्षालयेन्मृदा ॥

“आचम्य दंडमूले तु प्रणवेनाथ तर्पयेत् । द्विषड्वारं तथाऽग्रे तु तर्पयित्वा समुत्थितः ॥

१० “मूलाग्राभ्यां तु दंडस्य जलं स्पृष्ट्वा गुहं नमेत् । कृत्वाऽभिषेकं देवस्य ततो यायान्मठं प्रति ॥

“गुर्वादिवन्दनं कृत्वा दंडं नभसि धारयेत् । प्रक्षाल्य पादावाचम्य देवपूजां प्रकल्पयेत् ॥

“गुरुपदिष्टमार्गेण न्यासध्यानादिपूर्वकम् ” ॥

“स्वयं पतिततुलसीपत्राद्यैः स्वयमाहृतैः । पूजयेन्मोक्षदं विष्णुं ज्ञानदं च महेश्वरम् ” ॥

विष्णुपूजाक्रमः । तथा च शौनकः—

१५ “ज्ञानं महेश्वरादिच्छेन्मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात् । प्रणम्य दंडवद्भूमौ नमस्कारेण चार्चयेत्” ॥

कात्यायनः—“त्रिकालमेककालं वा पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ” ॥

व्यासः—“अन्यानीतैश्च कुसुमैरर्चयेज्जगदीश्वरम् ॥

“पक्वं च तुलसीपत्रं पुष्पं पर्युषितं च यत् । आनीय तत्प्रयत्नेन पूजयेज्जगदीश्वरम् ॥

“भावपुष्पैर्यज्योगी ब्राह्मैर्वा श्रद्धया शिवम् । विष्णोः पादोदकं जुष्टं नैवेद्यस्य च भक्षणम् ॥

२० “निर्माल्यधारणं चैव महापातकनाशनम् ॥

“यः पूजयेद्धरिं चक्रे सालग्रामसमुद्भवे । राजसूयसहस्रेण तेनेष्टं प्रतिवासरम् ॥

“विना तीर्थैर्विना दानैर्विना यज्ञैर्विना मतिम् । मुक्तिं याति नरोऽवश्यं सालग्रामशिलार्चनात् ॥

“यजेदामरणं लिंगं विरक्तः परमेश्वरम् । अग्नौ क्रियावतामप्सु व्योम्नि सूर्यं मनीषिणम् ॥

“काष्ठादिष्वेव मूर्खाणां हृदि लिंगेषु योगिनाम् । जपमालां गृहीत्वा तु प्रणवार्थमनुस्मरन् ॥

२५ “जपेद्द्वादशाहस्रं प्रणवस्य प्रयत्नतः । सहस्रं श्रवणार्थं तु योगाभ्यासी शतं जपेत् ॥

“निर्विकल्पसमाधिस्थो न जपेत्किंचिदद्वयात् ” ॥

बोधायनः—“वृक्षमूलिको भवेत्संन्यासी ” इति । वृक्षो वेदः । तस्य मूलं प्रणवः ।

प्रणवात्मको वेदः प्रणवं ध्यायन्ब्रह्मभूयाय कल्पते ” इति । व्यासः—

“वेदो वृक्षस्तथा मूलं प्रणवो यस्य सोऽस्ति सः । वृक्षमूलो यतिः प्रोक्तस्त्यक्तवेदोऽपरिग्रहः ॥

३० “अभ्यसेत्सततं वेदं प्रणवारुच्यं सनातनम् । आध्यात्मिकं च सततं वेदांताभिहितं च यत् ॥

“यद्यनुत्पन्नविज्ञानो विरक्तः प्रीतिसंयुतः । यावज्जीवं जपेद्युक्तः प्रणवं ब्रह्मणो वपुः ” ॥

मनुः ( १२।१२ )—“आत्मज्ञाने शमे च स्याद्वेदाभ्यासे च यत्नवान् ” ।

अत्र वेदाभ्यासः प्रणवाभ्यासः श्रूयते—

“आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् । ध्याननिर्मननाभ्यासात्पाशं दहति पंडितः ॥

ओमितिब्रह्म ओमितीदं सर्वं । एतदक्षरं परं ब्रह्म अस्य पादाश्चत्वारो वेदाः । चतुष्पादिदमक्षरं परं ब्रह्म ।

“सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।

“यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि ” ।

“ओमित्येतदालंबनं श्रेष्ठमेतदालंबनं परम् । एतदालंबनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ ५

“यस्तु द्वादशसाहस्रं नित्यं प्रणवमभ्यसेत् । तस्य द्वादशभिर्मासैः परं ब्रह्म प्रकाशते ॥

“श्रवणान्मननाच्चैव निदिध्यासनतस्तथा । आराध्यं सर्वथा ब्रह्म पुरुषेण हितैषिणा ॥

“ब्रह्मचर्यममानित्वमहिंसा सत्यमार्जवम् । वेदांतश्रवणं ध्यानं भिक्षोः कर्माणि नित्यशः ॥

“त्वंपदार्थविवेकाय संन्यासः सर्वकर्मणाम् । श्रुत्या विधीयते यस्मात्तत्त्यागी पतितो भवेत् ” ॥

संवर्तः—

“योगाभ्यासपरो नित्यमात्मविद्यापरायणः । स ह्याश्रमैर्विजिज्ञास्यः समस्तैरेवमेव तु ॥

“द्रष्टव्यस्त्वथ मंतव्यः श्रोतव्यश्च द्विजातिभिः । श्रवणादिक्रिया तावत्कर्तव्येह प्रयत्नतः ॥

“यावद्यथोक्तविज्ञानमाविर्भवति भास्वरम् ” इति । पुराणे—

“दिने दिने तु वेदांतश्रवणाद्भक्तिसंयुतात् । गुरुशुश्रूषया लब्धात्कृद्वाशीति फलं लभेत् ॥

“वेदांतश्रवणादेव नश्यत्येवोपपातकम् । तथा पातकसंघाश्च नित्यं वेदांतसेवनात् ” ॥ इति । १५

व्यासः— “काम एव मनुष्याणां विरोधो ब्रह्मबोधने ॥

“तस्मात्कामं त्यजन् धीरो ज्ञानमाप्नोति मोक्षदम् । ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मणः” ॥ इति ।

अथ भिक्षाचर्या । तत्र मनुः ( ६।५५-५७ )—

“एककालं चरेद्भिक्षुं न प्रसज्येत विस्तरे । भैक्षप्रसक्तो भिक्षुर्हि विषयेऽतीव सज्जति ॥

“विधूमे सन्नमुसले व्यंगारे भुक्तवज्जने । वृते शरावसंपाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत् ॥ २०

“अलाभे न विषादी स्यात् लाभे चैव न हर्षयेत् । प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रासंगाद्विनिर्गतः” ॥

उदरपूरणावधिः मात्रा । तत्र संगो मात्रासंगः ततो निवृत्त इत्यर्थः । स एव ( ६।५८-६० )—

“अभिपूजितलाभांश्च जुगुप्सेतैव सर्वशः । अभिपूजितलाभैस्तु यतिर्मुक्तोऽपि बध्यते ” ॥

मुक्तः असक्तः । अभिपूजितलाभाः आत्मने परैरतिबहुमानपूर्वकं यदीयते तदभिपूजितं तस्य

लाभः प्राप्तिः । तदभोज्यम् । तस्मिन्भुक्ते कचिद्वनभिपूजितग्रहणे वैमनस्यं स्यात् । अथवा अभि- २५

पूजिताः धनादिना प्रतीताः । तैर्दत्तमपि न भोक्तव्यम्—

“अल्पान्नाभ्यवहारेण रहस्थानासनेन च । ह्रीयमाणानि विषयैरिन्द्रियाणि निवर्तयेत् ॥

“इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च । अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥

“न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्रांगविद्यया । नानुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित्” ॥ ( ५० )

उत्पातो भूकंपादिः । निमित्तं अधरस्पन्दादिः । नक्षत्रविद्या ज्योतिःशास्त्रम् । अंगविद्या ३०

चिकित्सा । अनुशासनं शिष्यपरिग्रहः । वादस्तर्कः । स एव ( ६।५१ )

“न तापस्यैर्ब्राह्मणैर्वा वयोभिरपि वा श्वभिः । आकीर्णं भिक्षुकैर्वाऽन्यैरगारमुपसंवजेत् ” ॥ इति ।

याज्ञवल्क्यः ( प्रा. ५९ )—

“अप्रमत्तश्चरेद्भैक्षं सायान्हेऽनभिलक्षितः । रहितैर्भिक्षुकैर्ग्रामे यात्रामात्रमलोलुपः ” ॥

अनभिलक्षितः ज्योतिःशास्त्रादिज्ञानेनाचिन्हितः । व्यासः—

“प्राणयात्रानिमित्तं च व्यंगारे भुक्तवर्जिते । काले प्रशस्तवर्णानां भिक्षार्थं पर्यटेद्गृहान् ॥

“भैक्षेण वर्तयेन्नित्यं नैकान्नादी वै क्वचित् ।

५ “यस्तु मोहेन वाऽऽलस्यादेकान्नादी भवेद्यतिः । न तस्य निष्कृतिः काचित् धर्मशास्त्रेषु कुत्रचित् ।

“एकान्नं वर्जयेन्नित्यं कामं क्रोधं प्रतिग्रहम् ॥

“सप्तागारं चरेद्भैक्षमलाभे तु पुनश्चरेत् । गोदोहमात्रं तिष्ठेत् कालं भिक्षुरधोमुखः ” ॥

हारीतः—

“सायंकाले तु विप्राणां गृहाण्यभ्यवपद्य तु । स्थित्यर्थमात्मनो नित्यं भिक्षाटनमथाचरेत् ” ॥

१० बोधायनः—( ध. सू. २।१०।४२, ४४, ५० ) “ब्राह्मणानां शालीनयायावराणामपवृत्ते वैश्वदेवे भिक्षां लिप्सेत । गोदोहमात्रमाकांक्षेदद्भिः संस्पृश्यौषधवत्प्राश्नीयात् ।

“अयाचितमसंकलतमुपपन्नं यदृच्छया । आहारमात्रं भुंजीत केवलं प्राणयात्रिकम् ” ॥ (५२) इति ।

अथाप्युदाहरन्ति ।

“अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्ष्याः षोडशारण्यवासिनः । द्वात्रिंशतं गृहस्थास्यापरिमितं ब्रह्मचारिणः ॥

१५ “भैक्षं वा सर्ववर्णेभ्य एकान्नं वा द्विजातिषु । अपि वा सर्ववर्णेभ्यो न चैकान्नं द्विजातिषु ” ॥ इति ।

स एव ( ५४ )

“ऊर्ध्वं नाभेरधोनाभेः परिधायैकमंबरम् । द्वितीयमुत्तरं वासः पात्री दंडे च वाग्यतः ॥

“सव्येनादाय पात्रं तु त्रिदंडं दक्षिणे करे । योऽसौ विष्णवाख्य आदित्यः पुरुषोत्तरवस्थितः ॥

“सोयं नारायणो देव इति ध्यात्वा प्रणम्य तम् । ततो ग्रामं व्रजेन्मंदं युगामात्रावलोककः ॥

२० “ध्यायन्हरिं च तच्चित्त इमं मंत्रमुदीरयेत् ॥

“विष्णुस्तिर्यगधोर्ध्वं मे वैकुण्ठो विदिशं दिशम् । पातु मां सर्वतो रामो धन्वी चक्री च केशवः ॥

“प्राणयात्रिकमन्नं तु भिक्षेत विगतस्पृहः । गोदोहमात्रं तिष्ठेच्च वाग्यतोऽधोमुखस्तथा ” ॥

स्मृतिरत्ने—

“स्नात्वा शुचिः शुचौ देशे कृतजप्यः समाहितः । भिक्षार्थं प्रविशेद्ग्रामे यतिर्लैच्छकुलान्यपि ॥

२५ “एकान्नं तु न भुंजीत बृहस्पतिसमोऽपि सन् । मेध्यं भैक्षं चरेन्नित्यं सायान्हे वाग्यतः शुचिः ” ॥

माधुकरभेदाः । उशनाः—

“माधूकरमसंकलतं प्राक्प्रणीतमयाचितम् । तात्कालिकोपपन्नं च भैक्षं पंचविधं स्मृतम् ॥

“मनः संकल्परहितान्गृहान्निः सप्त पंच वा । मधुवदाहरणं यत्तु माधूकरमिति स्मृतम् ॥

“शयनोत्थापनात्प्राग्यत् प्रार्थितं भक्तिसंयुतैः । तत्प्राक्प्रणीतमित्याह भगवानुशना मुनिः ॥

३० “भिक्षाटनसमुद्योगात्प्राक्केनापि निर्मत्रितम् । अयाचितं तु तद्भैक्ष्यं भोक्तव्यं मनुरब्रवीत् ॥

“उपस्थाने च यत्प्राक्तं भिक्षार्थं ब्राह्मणेन हि । तात्कालिकमिति ख्यातं तद्वत्तव्यं मुमुक्षुणा ॥

“सिद्धमन्नं भक्तजनैरानीतं यन्मठं प्रति । उपपन्नं तदित्याहुर्मुनयो मोक्षकाङ्क्षिणः ” ॥

“भिक्षाः पञ्चविधा ह्येताः सोमपानसमाः स्मृताः ” । पितामहः—

“अयाचितमसंकलतमुपपन्नं यदृच्छया । जोषयीत सदाभिज्यं ग्रासमागतमस्पृहः ” ॥

३५ कतुः—

“संप्रार्थितमुपस्थानादसंकल्लप्तमयाचितम् । तत्सदैकान्त्रमापद्याद्भैक्षान्माधूकराद्वरम् ॥

“अयाचितं यथालाभं भोजनाच्छादनं भवेत् । निमंत्रितोऽथवाऽश्रियात्स्वगुणं न प्रकाशयेत्” ॥

पराशरः—

“यतीनामातुराणां तु वृद्धानां दीर्घरोगिणाम् । एकात्रे नैव दोषोस्ति एकस्यैव दिनेदिने ॥

“सुजीर्णोऽति कृशो रोगी दशातो विकलेंद्रियः । पुत्रमित्रगुरुभ्रातृपत्नीभ्यो भैक्षमाहरेत् ॥ ५

“नापोमूत्रपुरीषाभ्यां नाग्निर्दहनकर्मणा । न वायुस्पर्शदोषेण नान्नदोषेण मस्करी ” ॥

वसिष्ठः—“सप्तागाराण्यसंकल्पितानि चरेद्भैक्ष्यम् ” इति ॥ संवर्तः—

“अष्टौ भिक्षाः समादाय स मुनिः सप्त पंच वा । अद्भिः प्रक्षाल्य ताः सर्वास्ततोऽश्रियाच्च वाग्यतः” ॥

इति । यत्पुनर्वसिष्ठवचनम् (१०।२४)—“ब्राह्मणकुले यल्लभेत तत्तुंजीत सायंप्रातर्मासवर्जितम्”

इति तदशक्तविषयम् । ‘एककालं चरेद्भैक्ष्यम्’ इति मन्वादिस्मरणात् ॥

१०

यमः—

“यश्चरेत्सर्ववर्णेषु भैक्ष्यमभ्यवहारकः । न स किंचिदुपाश्रियात् यावद्भैक्ष्यमिति स्थितिः” ॥

काठकब्राह्मणे—“चतुर्वर्णेषु भैक्ष्यचर्यं चरेत् पाणिपात्रेणाशनं कुर्यादौषधवत्प्राश्रियात्प्राणधार-

णार्थं यथा मेदोवृद्धिर्न जायते” इति ॥ मैत्रावरुणिश्रुतिः—“भिक्षार्थं ग्रामंप्रविशेदा सायं प्रद-

क्षिणेनाविकित्सन्सार्ववर्ण्यं भैक्षाचरणमभिशस्तपतितवर्जम् ” इति । आरुणीश्रुतिः—“यतयो १५

भिक्षार्थं ग्रामं प्रविशंति पाणिपात्रमुदरपात्रं वा ओं हि ॐ हि ॐ हि एतदुपनिषदं विन्यसे-

द्विद्वान्य एवं वेद औषधवदशनमाचरेत् ” इति ॥ पराशरः—

“ग्रामैकत्रावासिनो नगरतीर्थावसयेयुः पंचरात्रवासिनं उदरादिपात्रिण अभिशस्तपतित-

वर्जं चातुर्वर्ण्यं भैक्ष्यं चरंतः आत्मत्वेनावतिष्ठंत ” इति ॥ सर्ववर्णेषु भैक्षाचरणमापद्विषयम् ।

यदाह बोधायनः—

२०

“ब्राह्मणक्षत्रियविशां मेध्यानामन्नमाहरेत् । असंभवे तु पूर्वस्या आददीतोत्तरोत्तरम् ॥

“सर्वेषामप्यभावे तु भुक्तद्वयमनश्नता । भैक्षं शूद्रादपि ग्राह्यं रक्ष्याः प्राणा विजानता” ॥

वसिष्ठोऽपि (१०।२४) “ब्राह्मणकुले यल्लभते तत् भुंजीत ” इति । मैत्रावरुणीश्रुतिः—

“त्रिषु वर्णेष्वेकागारं भैक्ष्यमश्रियान्माधूकरी वो ” इति कलौ सर्ववर्णभैक्षाचरणनिषेधः ।

आपदि सर्ववर्णेषु भैक्ष्यचरणमपि कलौ निषिद्धम् ।

२५

“यतेस्तु सर्ववर्णेषु न भिक्षाचरणं कलौ ” इति स्मरणात् ॥ गौतमः—

“हविः प्राश्य यथाऽऽचम्य निराहारो भवेद्गृही । प्राश्याचम्य तथा भिक्षुर्निराहारो गृहे गृहे ॥

“पात्रमस्य भवेत्पाणिस्तेन नित्यं गृहानटेत् ” ॥ मुंडकोपनिषदि—“पाणिपात्रमुदरपात्र वा

गेहे गेहे विशेत् कवलमात्रेण नापरं गृहीयात्पदे पदे भुंजन् गच्छेत्कुलान्कुलेषु सर्वाशी ” इति ।

उदरपात्रस्वरूपं दर्शितं यतिधर्मसमुच्चये

३०

“आस्येन तु यदाहारं गोवन्मुगयते मुनिः ” इति ॥ शौनकः—

“पाणिपात्रं चरन्योगी नासकृद्भैक्षमाचरेत् । तिष्ठन् भुंजन् चरन्भुंजन्मध्ये नाचमनं तथा ” ॥

गोमुखप्रतिकरपात्रवृत्त्येत्थं समाक्रान्तमनुपानहौ । सर्वदोपानहौ भिक्षुर्न त्यजेरशक्तौ पात्रांतरेण

भिक्षाचरणमाह विष्णुः—

“संस्कृत्य प्रणवेनाथ भिक्षापात्रं यथाविधि । भास्कराभिमुखो भूत्वा संस्मरन्मनसा हरिम् ॥

“सव्येनादाय पात्रं तु दण्डं वै दक्षिणेन तु” ॥ कण्वः—

“नमस्कृत्य तथाऽऽदित्यं समाक्रामन्नुपानहौ । सर्वदौपानहौ भिक्षुर्न त्यजेत्तु कदाचन ॥

“उदपात्रं च भिक्षा च दृष्येदृत उपानहौ” ॥

५ बोधायनः—“भिक्षापात्रविशुद्ध्यर्थमुपमुच्याप्युपानहौ । ततो ग्रामं व्रजेन्मदं युगमात्रावलोककः” ॥

अत्रिः—“अनित्यं वै वृजेद्वेहं नित्यं गेहं विवर्जयेत् । अनावृते विशेद्वारि गेहे नैवावृते व्रजेत् ॥

“न वीक्षेद्वाररंघ्रेण भिक्षां लिप्सेत्कचिद्यतिः । न कुर्याद्वै कचिद् घोषं न द्वारं ताडयेत्कचित् ॥

“नैव सव्यापसव्येन भिक्षाकाले व्रजेद्ब्रह्मन् । अनित्यातिक्रमे योगी प्राणायामशतं जपेत् ॥

“अट्टपापतिनं साधुं यतिर्यः परिवर्जयेत् । स तस्य सुकृतं दत्त्वा दुष्कृतं प्रतिपद्यते ॥

१० “तथैव च गृहस्थस्य निराशो भिक्षुको गतः । हुतं दत्तं तपोधीनं सर्वमादाय गच्छति ॥

“असंस्कृता तु या कन्या उदक्या चोदिता तु या । तथा दत्तं न गृह्णीयात्प्राण्यंगेनायसेन वा” ॥

शौनकः—

“पीडयित्वा य आत्मानं भिक्षां चेत्संप्रयच्छति । सा भिक्षा हिंसिता ज्ञेया नादद्यात्तादृशीं यतिः” ॥

अत्रिः—

१५ “हितं मितं सदाऽश्रीयाद्यत्सुखेनैव जीर्यति । धातुः प्रकृप्यते येन तदन्नं वर्जयेद्यतिः ॥

“उदक्या चोदितं चान्नं द्विजानां शूद्रचोदितम् । प्राण्यंगे वायसे कूपं तदन्नं वर्जयेद्यतिः ॥

“पित्रर्थं कल्पितं पूर्वमन्नं देवादिकारणात् । वर्जयेत्तादृशीं भिक्षां परबाधाकरीं तथा” ॥

बोधायनः—

“भिक्षां न दद्युः पंचाहं सप्ताहं वा कदाचन । यस्मिन्गृहे जना मौल्यात्त्यजेच्चांडालवेश्मवत् ॥

२० “एकत्र लोभाद्यो भिक्षुः पात्रपूरणामिच्छति । दाता स्वर्गमवाप्नोति भोक्ता भुंजीत किल्मिषम् ॥

“या तु पर्युषिता भिक्षा नैवेद्ये कल्पिता तु या । तामभोज्यां विजानीयाद्दाता तु नरकं व्रजेत् ॥

“आयसेन तु पात्रेण यदन्नमुपदीयते । भोक्ता विष्टासमं भुंक्ते दाता तु नरकं व्रजेत् ॥

“स्वयमाहृतपर्णेषु स्वयं शीर्णेषु वा पुनः । भुंजीत न वटाश्वत्थकरंजानां च पर्णके ॥

“कुंभितिन्दुकयोर्वाऽपि कोविदारार्कयोस्तथा । आपद्यपि न कांस्ये तु मलाशी कांस्यभोजनः ॥

२५ “सौवर्णे राजते ताम्रमये वा त्रपुसीसयोः” ॥

भिक्षापात्राण्याह मनुः ( ६।५४-५३ )—

“अलाबुं दारुपात्रं वा मृण्मयं वैणवं तथा । एतानि यतिपात्राणि मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥

“अतैजसानि पात्राणि तस्य स्युर्निर्वणानि च । तेषामद्भिः स्मृतं शौचं चमसानामिवाध्वरे” ॥

याज्ञवल्क्यः ( प्रा. ६० )—

३० “यतिपात्राणि मृदेणुदार्वालाकुमयानि च । सलिलं शुद्धिरतेषां गोवालैश्चापि वर्षणम्” ॥

शुद्धिः तत्र भोजने कृते मृज्जलगोवालवर्षणैः शुद्धिरित्यर्थः । यदाह देवलः—“तद्भक्षं गृहीत्वा एकांते तेन पात्रेण वा अन्येन वा तूष्णीं मात्रया भुंजीत” ॥ इति

कलौ भिक्षापात्रभोजनं निषेधति पितामहः—

“द्वापारादियुगेष्वेव पात्रभोजी भवेद्यतिः । कलौ नैव तु भुंजीत स्वपात्रे योगवित्तमः” इति ।

कण्वः—“ताम्रपर्णी च पाषाणम्” इति । अत्रिः—

“क्षमं पात्रं च पाषाणं ताम्रपर्णी पुटं तथा । उक्तानि यतिपात्राणि ब्रह्मणा विश्वयोनिना” ॥

व्यासः—

“प्रक्षाल्य पात्रे भुंजीयादद्भिः प्रक्षालयेत्तु तत् । अथवाऽन्यदुपादाय पात्रे भुंजीत नित्यशः ॥ ५

“भुक्त्वा तु संत्यजेत्पात्रं यात्रामात्रमलोलुपः । प्रक्षाल्य पाणिपादौ च समाचम्य यथाविधि ॥

“आदित्यं दर्शयित्वाऽन्नं भुंजीत प्राङ्मुखोत्तरः । भुक्त्वा प्राणाहुतीः पंच ग्रासानष्टौ समाहितः ॥

“आचम्य देवं ब्रह्माणं ध्यायीत परमेश्वरम्” ॥

बोधायनः ( २।१०।४६-५० )—“तस्य प्राणो गार्हपत्योऽपानोऽन्वाहार्यपचनो व्यान आहवनीय उदानापानौ सभ्यावसथ्यौ पंच वा एते अग्नय आत्मस्थाः आत्मन्येव जुहोति स एष १०  
आत्मयज्ञ आत्मनिष्ठ आत्मप्रतिष्ठ आत्मानं क्षेमं नयतीति विज्ञायते भूतेभ्यो दयापूर्वं संविभज्य शेषमद्भिः संस्पृश्यौषधवत्प्राश्नीयात्” ॥

आश्वलायनः—

“उपावृतस्ततो भैक्ष्यं गत्वा तीर्थमकर्ममम् । प्रक्षाल्यांतर्हिते देशे भिक्षापात्रं विधाय तु ॥

“मृत्तोयेन पृथक् पादौ हस्तौ प्रक्षालयेत्तथा । आचम्याथ त्रिराचम्य प्राणास्तु पुनराचरेत् ॥ १५

“आपोशनं विधिं कृत्वा पंचप्राणाहुतिश्चरेत्” ॥ महाभारते—

“उक्तान्यकालपक्वानि काषायकटुकानि च । नास्वादयेत् भुञ्जानो रसांश्च मधुरांस्तथा” ॥

आश्वलायनः—“लाक्षां लशुनं हिङ्गुं ताबूलं पुष्पभंजनम् । मधुमांसमपूपादि तैलं चापि विवर्जयेत्” ॥

यमः—“प्रोक्षितं प्रणवेनैव हृतमध्यात्मकादिषु । शरीरं प्राणवत्स्पृश्येदन्नं तु प्राणलेपवत् ॥

“गंगातोयाभिषिक्तां तु भिक्षामश्नाति योगवित् । तत्र क्रतुशतैरिष्ट्वा फलं प्राप्नोति मानवः ॥ २०

“सांतपनं सहस्रं तु चांद्रायणशतानि च । अश्वमेधाष्टकं चैव तद्विष्णोः शेषमुत्तमम्” ॥

छांदोग्यश्रुतिः—

“आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः । स्मृतिलभे सर्वत्रग्रंथीनां विप्रमोक्षः” इति ॥

विष्णुः—

“भैक्षं यवागुं तक्रं वा पयो यावकमेव वा । फलं मूलं विपकं वा कणापिण्याकसक्तपः ॥ २५

“इत्येते वै शुभाहारा योगिनां सिद्धिकारकाः” ॥

यमः—

“आहारस्य चतुर्भागमर्थं वाऽप्याहरेद्यतिः । युवा चैवारुजः शक्तः प्रसंगं तत्र वर्जयेत् ॥

“अन्नसंगाद्बलं दर्पो विषयासक्तिरेव च । कामक्रोधस्तथा लोभः पतनं नरके तथा ॥

“अष्टौ ग्रासा मुनेः प्रोक्ताः षोडशारण्यवासिनः । द्वात्रिंशत्तु गृहस्थस्य यथेष्टं ब्रह्मचारिणः” ॥ ३०

तत्र ग्रासप्रमाणं व्याघ्र आह—

“चतुरंगुलमुत्सेधं चतुरंगुलमायतम् । एतद्ग्रासप्रमाणं तु व्याघ्रेण परिभाषितम्” ॥

जाबालिः—

“निमंत्रितस्तु संन्यासी यदि भैक्षं समाचरेत् । लोभात्तत्र प्रवर्तते पतते च न संशयः ॥

“यत्किञ्चिदीयमानं तु गृहिणीकरसंस्थितम् । भिक्षां भिक्षुर्न गृह्णीयात् कङ्क्योनिषु जायते ” ॥

भिक्षां प्रशंसति यमः—

“अब्बिन्दुर्यः कुशाग्रेण मासि मासि समश्नुते । न्यायतो यस्तु भिक्षाशी पूर्वोक्ता तु विशिष्यते ॥

५ “तप्तकाञ्चनवर्णेन गवां मूत्रेण यावकम् । पिबेद्वादशवर्षाणि न तद्भैक्षसमं भवेत् ॥

“शाकभक्षश्च यो भक्षेत् योऽन्यो यावकभक्षकः । सर्वे भिक्षाभुजस्तस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥

“न भैक्षं परपाकाञ्चनं च भैक्षं प्रतिग्रहः । सोमपानसमं भैक्ष्यं तस्माद्भैक्षेण वर्तयेत् ” ॥

शातातपः—

“भिक्षा माधूकरी नाम सर्वपापप्रणाशिनी । भिक्षाहारो निराहारो भिक्षा नैव प्रतिग्रहः ॥

१० “श्रोत्रियाञ्चनं च भैक्ष्यं च हुतशेषं च यद्भविः । आ नखाच्छोधयेत्पापं तुषाग्निरिव काञ्चनम् ॥

“गंगायाः सलिलं पुण्यं शालग्रामशिला तथा । भिक्षाञ्चनं पञ्चगव्यं च पवित्राणि युगे युगे ॥

“भक्तात्परे चोपवास उपवासादयाचितम् । अयाचितात्परं भैक्षं तस्माद्भैक्षेण वर्तयेत् ” ॥

मेधातिथिः—

“बह्वञ्चनं पच्यते यत्र मन्यते यतिमानवाः । अनुद्विग्नाः प्रयच्छन्ति तं ग्रामं यत्नतो व्रजेत् ” ॥

१५ क्रतुः—

“पञ्चसप्तगृहाणां तु भिक्षामिच्छेत्क्रियावताम् । गोदोहमात्रमाकाङ्क्षेन्निष्क्रान्तो न पुनर्व्रजेत् ॥

“विना दंडोदपात्रं तु न गच्छेद्यतिसत्तमः । भिक्षाकाले दंडमेव नोदपात्रं कदाचन ” ॥

दत्तात्रेयः—

“भैक्षादन्यं न याचेत न चैवोपविशेत्कचित् । उद्यतां नावमन्येत न चैनां श्रावयेत्पुनः ॥

२० “आत्मसंमितमाहारमाहरेदात्मवान्यतिः । अत्यंतक्षुधितस्यापि समाधिर्नैव जायते ॥

“मिताशनो भवेन्नित्यं भिक्षुर्मोक्षपरायणः । कामदर्पादयो दोषा न भवन्ति मिताशिनः ” ॥

विष्णुः—

“यदि भैक्षं समादाय पर्युषेयोगवित्तमः । स पर्युषितदोषेण भिक्षुर्भवति वै क्रिमिः ॥

“सुवृत्तस्य गृहे भिक्षेन दुष्टेष्वेव नित्यशः । अभावे बहुगेहानां तेषु भिक्षेदलोलुपः ॥

२५ “अन्यपात्रे हविर्भुक्ते हव्यकव्येष्वनुज्ञया । राजते ताग्रसौवर्णे तत्रायं नास्ति वै विधिः ॥

“सौवर्णेषु च पात्रेषु ताग्ररौप्यमयेषु च । भुञ्जन्भिभुर्न हृष्येत दृष्यते तत्परिग्रहात् ॥

“भुञ्जीत पर्णपुटके पात्रे वा वाग्यतो मुनिः । भुक्त्वा पात्रं यतिर्नित्यं क्षालयेन्मन्त्रपूर्वकम् ॥

“न दुष्येत्तस्य तत्पात्रं यज्ञेषु चमसा इव । अथाचम्य निरुद्धासुरपतिष्ठेत भास्करम् ॥

“जपध्यानविशेषेषु दिनशेषं नयेद् बुधः । कृतसंध्यस्ततो रात्रिं नयेद्देवगृहादिषु ” ॥

३० वक्षः—“इतिहासपुराणाभ्यां षष्ठसप्तमकौ नयेत् ” ॥

अंगिराः—

“पुराणश्रवणाद्भक्तिर्मुखस्यापि प्रवर्तते । भक्त्या विनिश्चिता मुक्तिस्तस्मात्पौराणमभ्यसेत् ” ॥

“तद्भ्यासात्परं ब्रह्मभावमापद्यते मुनिः ” ॥



**बृहस्पतिः—**

- “ बंधान्मोक्षविभागज्ञो बंधाश्चेन्मोक्षणेच्छया । उपायान्वेषणे युक्तः को न मुच्येत बंधनात् ॥  
 “ यथा चित्तं समासक्तं जंतोर्विषयगोचरे । यदि नारायणेऽप्येवं को न मुच्येत बंधनात् ॥  
 “ तत्कर्म यन्न बंधाय सा विद्या या विमुक्तये । आयासाय परं कर्म विद्यान्या शिल्पनैपुणम् ॥  
 “ लोहितार्कमुपासीत संध्यामा तारकोदयात् । हृत्पद्मकोटरावासं चिन्मात्रं ज्योतिषं हरिम् ॥ ५  
 “ ध्यायेन्नारायणं ह्यादौ त्रीन्कृत्वा प्राणसंयमान् । तावत् ध्यायेत्पुनर्यावन्निद्रावशमुपागतः ॥  
 “ सुप्तोत्थितः पुनर्ध्यायेत् तिष्ठन् ध्यायेज्जपन् बुधः । प्रागरात्रेऽपररात्रे च मध्यरात्रे समाहितः ।  
 “ संध्यास्वन्निविशेषेण चिंतयेन्नित्यमीश्वरम् । कृत्वा हृत्पद्मनिलये विष्णुवार्यं विश्वसंभवम् ॥  
 “ आत्मानं सर्वभूतानां परस्तात्तमसि स्थितम् । सर्वस्याधारमव्यक्तमानंदं ज्योतिरव्ययम् ॥  
 “ पुराणं पुरुषं शंभुं ध्यायेन्मुच्येत बंधनात् । मत्वा पृथक् स्वमात्मानं सर्वस्मादेव केवलम् ॥ १०  
 “ आनन्दमक्षरं ज्ञानं ध्यायीत च पुनः पुनः । तस्मात् ध्यानरतो नित्यमात्मविद्यापरायणः ॥  
 “ ज्ञानं समभ्यसेद्ब्रह्म येन मुच्येत बन्धनात् ” ।

**अथ चातुर्मास्यविधिः । तत्र श्रूयते—**“वर्षासु ध्रुवशीलः” इति ॥

**अग्निः—**

- “ चतुरोऽयं वसेन्मासान्वाषिक्तान् द्वावथापि वा । वृद्धाननुक्रमेणैव नमस्कृत्य विधानतः ॥ १५  
 “ अनेन विधिना भिक्षुराषाढ्यां सुसमाहितः । स्थानाभावं व्रजेत्तावथावद्भवति पंचमी ॥  
 “ प्रायश्चित्ते नियुज्येत पंचमोर्ध्वं व्रजेद्यदि । कक्षोपस्थशिखावर्जमृतुसंधिषु वापयेत् ॥  
 “ चातुर्मास्यस्य मध्ये तु वर्जयेद्वपनं यतिः । आषाढ्यां पूर्णमास्यां तु कारयेद्वपनं यतिः ॥  
 “ तेषु मासेषु केशादीन् ऋतुसंधौ न वापयेत् । नदीं च न तरेत्तेषु क्रोशादूर्ध्वं न च व्रजेत् ॥  
 “ वापयेद्यदि केशादीनुत्तरेद्यदि वा नदीम् । प्राणायामान् त्रिंशत्कृत्वा जपेत्त्रिकशतत्रयम् ॥ २०  
 “ वर्षाभेदे यतिः कुर्याद्यदि कश्चिदनापदि । प्राजापत्येन कृच्छ्रेण मुच्यते नात्र संशयः ” ॥

**अत्र संप्रदायविद्वद्वचनम्—**

- “ गुरुन्नत्वा शिरस्यंतःक्षालनं तदनंतरम् । आचम्य वाग्यतो यत्नात् सवासा क्षौरमाचरेत् ॥  
 “ अंतर्धाय तृणं किञ्चित् तत्र निक्षेपयेद्यतिः । क्षुरं संदंशनं चैव तथा नखनिकुंतनम् ॥  
 “ अभिमंज्य द्विषद्भारं प्रणवैः प्रोक्षयेज्जलम् । क्षुरमादाय तारेण श्मश्रुकेशान्निकृत्य च ॥ २५  
 “ नासा स्थितांस्तथा लोमान् यत्नेन प्रयतो यतिः । कारयेत् करपादस्य नखानां च निकुंतनम् ॥  
 “ द्विषद्भारं निमज्ज्याप्सु तीरं गत्वोपविश्य च । प्रतिस्थानं द्विषद्भारं करावारभ्य पादयोः ॥  
 “ मृदं दद्यान्मुखे चैव प्रतिवारं जलं तथा । ततो जलं प्रविश्याथ शिर आलिप्य सन्मृदा ॥  
 “ द्विषद्भारं निमज्ज्याथ प्रतिवारं मृदं तथा । पुनरुत्प्लुत्य तत्तीरं गत्वा गंडूषमाचरेत् ॥ ३०  
 “ पंचैकादशवारांश्च सम्यगाचम्य यत्नतः । प्राणायामांस्तथा कुर्यात्पंचैकादशसंख्यया ॥  
 “ क्षौरस्नानं यतीनां तु व्यासाद्यैश्च प्रकीर्तितम् ” ॥ इति

**अग्निः—**“ वपनानंतरं स्नात्वा पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ” इति ।

**यतिधर्मसमुच्चये—**

“देवं कृष्णं मुनिं व्यासं भाष्यकारं गुरोर्गुरुम् । गुरुं देवं गणाध्यक्षौ दुर्गा देवीं सरस्वतीम् ” ॥

गणो गणेशः । अध्यक्षः क्षेत्रपालः । तत्र मध्ये कृष्णसनत्कुमारसनकसनंदनसनत्सुजातान् । तदक्षिणतो व्यासमुमंतुजैमिनिवैशंपायनपैलान् । वामतो भाष्यकारपद्मपादविश्वरूपतोऽटकहस्ता-  
मलकाचार्याश्च पूजयेत् । भगवतः पुरतः गुरुपरमगुरुपरमेष्ठिगुरुन्यांश्चाचार्यान्पूजयेत् । यथा-  
५ दिशं लोकपालान्भगवत्पार्श्वयोर्ब्रह्मशंकरौ च प्रणवादिनमोन्तैस्तत्तन्नामभिः पूजयेत् । ततो गोपी-  
चंदनमृत्तिकादंतकाष्ठदोरकादि दद्यात् । मासचतुष्टयपर्याप्तं मृत्तिकादंतकाष्ठादि संगृह्णीयात् ।

\*अग्निः—

“असतिप्रतिबन्धे तु मासान्वै वार्षिकानिह । निवत्स्यामीति सङ्कल्प्य मनसा बुद्धिपूर्वकम् ॥

“प्रायेण प्रावृषि प्राणिसङ्कुलं वर्त्म दृश्यते । आषाढ्यादिचतुर्मासं कार्तिकान्तं तु संवसेत् ॥

१० “माधवश्चतुरो मासान् सर्वभूतहिताय वै । स्वापं यास्यति शेषाङ्के लक्ष्म्या सह जगत्पतिः ॥

“सुप्तश्चैवोत्थितो यावन्न भवेत्स सनातनः । अहं तावन्निवत्स्यामि सर्वभूतहिताय वै” ॥ इति ।

ज्ञातातपः—

“निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्र यत्र भवेद्यतिः । तत्र तत्र कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्करं तथा ” ॥ इति ।

अग्निः—

१५ “पिता भ्राता स्वसा माता स्नुषा ज्याया सुतस्तथा । ज्ञातिबन्धुसुहृद्वर्गो दुहितातत्सुतादयः ॥

“यस्मिन् देशे वसन्त्येते न तत्र दिवसं वसेत् । मुहूर्तमपि नासीत् देशे सोपद्रवे यतिः ॥

“उपद्रवे तु मनसि समाधिर्नोपजायते । चातुर्मास्ये च कार्तिक्यां क्षौरं कुर्यान्न चान्तरा ॥

“देशकालविरोधे तु भाद्रपद्यामपि क्वचित् ।

“चतुःक्रोशान्तरा यत्र नदी भवति कुत्रचित् । पक्षान्ते तत्र गन्तव्यमापस्तम्बवचो यथा ॥

२० “सर्वदा वन्दनं कुर्याद्गुरोर्ज्येष्ठयतेस्तथा । आ पञ्चमी नमस्कुर्यादतिक्रान्ते च पर्वणि ॥

“त्रिमुहूर्ताधिकं ग्राह्यं पर्वक्षौरप्रमाणयोः । प्रणतं न यतिर्ब्रूयादाशिषं व्यासशासनात् ॥

“नारायणोति च ब्रूयात्प्रणताय विवृद्धये ” ॥ इति

व्या अप्यागताचारादिकं संप्रदायमूलं यथासंप्रदायं वेदितव्यम् ।

हारीतः—

२५ “सर्वेषामाश्रमाणां तु संन्यासी ह्युत्तमाऽश्रमी । स एवात्र नमस्यः स्याद्भक्त्या सन्मार्गवर्तिभिः ॥

“ब्रह्मिष्ठः परमो हंसः साक्षान्नारायणः स्मृतः । यतिं यः पूजयेन्नित्यं विष्णुस्तेन प्रपूजितः ॥

“अष्टाक्षरेण मन्त्रेण यतिर्यत्र नमस्कृतः । स्मृतं नारायणो हन्ति प्राणिनां पापपञ्जरम् ॥

“अष्टाक्षरेण मन्त्रेण नमो नारायणात्मना । नमस्यो भक्तिभावेन विष्णुरूपी यतिर्यतः ॥

“स्वधर्मस्थान् यतिन्विद्धान् देवांश्च प्रणमेद्यतिः । नान्यमाश्रमिणं किञ्चित्प्रशस्तमपि तन्नमेत् ॥

३० “अपि शास्त्रसमायुक्तं सदाचारसमान्वितम् । साधुवृत्तं गृहस्थाद्यं न नमस्येत् क्वचिद्यतिः” ॥ इति ।

प्राणायामविधिः । मनुः ( ६।७२ )

“प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणामिश्च किल्बिषम् । प्रत्याहारेण संसर्गात् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्” ॥

इति ॥ वसिष्ठः—

“ प्रणवेनैव कुर्याच्च प्राणायामान्यतिर्मुहुः । रेचकं नाममार्गेण पूरकं दक्षिणे तथा ॥

“ कुंभकं तु तयोर्हीनं मध्यमं हृदि तिष्ठति । चतुर्विंशतिमावृत्तिं षट्त्रिंशत्द्वादशाय वा ॥

“ प्रणवस्य स्मरेत्स स्यात् प्राणायमोऽतिनिर्मलः ” ॥ इति ।

वैवस्वतः—

“द्वादशावर्तितं यत्तु प्रणवस्य मनो हृदि । प्राणायामो यतेः प्रोक्तः प्राणानायम्य चोमिति” ॥ इति । ५

कूर्मपुराणे—

“ प्राणस्तु देहजो वायुरायामस्तन्निरोधनम् । मात्रात् द्वादशको मन्दश्चतुर्विंशतिमात्रकः ॥

“ मध्यमः प्राणसंरोधः षट्त्रिंशन्मात्रको मतः । सगर्भमाहुः सजपमगर्भमजपं बुधाः ॥

“ रेचकः पूरकश्चैव प्राणायामोऽथ कुंभकः । रेचकोऽजस्रनिश्वासात्पूरकस्तन्निरोधकः ॥

“ साम्येन संस्थितिर्या सा कुंभकः परिगीयते ” इति ॥ १०

शौनकपरिशिष्टे—सूत्रम् “ यावत्यो रेचकमात्रास्तावत् द्विगुणान् पूरके विद्यात्कुंभके चातु-  
र्गुण्यमष्टमात्रो रेचकः षोडशमात्रः पूरको द्वात्रिंशन्मात्रः कुंभक इति शिशुप्राणायामः । द्वादश-  
मात्रको रेचकः चतुर्विंशतिमात्रः पूरक अष्टाचत्वारिंशन्मात्रः कुंभक इति मध्यमः । षोडशमात्रो  
रेचको द्वात्रिंशन्मात्रः पूरकोऽष्टषष्टिमात्रः कुंभक इति प्राणायामः । अकारकालो मात्राप्रायश्चित्तं  
चैतत्सर्वेषु दुष्कृतेष्विति ” । श्लोकः—

“ रेचकं दक्षिणे न्यस्येत्पूरकं वामनासिके । अङ्गुष्ठाङ्गुलिभिश्चैवं प्राणायामं समाचरेत् ” ॥ १५

अथ यतेनिषिद्धानि ।

“ प्राणायामैकनिष्ठस्य न किञ्चिदपि दुर्लभम् ” । इति ॥

तत्र व्यासः—

“ द्वावेतौ समवीर्यौ तौ सुरा तांबूलमेव च । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तांबूलं वर्जयेद्यतिः ॥ २०

“ माद्यति प्रमदां दृष्ट्वा सुरां पीत्वाऽपि माद्यति । तस्माद्दृष्टमदां नारीं दूरतः परिवर्जयेत् ॥

“ शिल्पं व्याख्यानियोगश्च कामो रागः परिग्रहः । अहङ्कारो ममत्वं च चिकित्साकर्म साहसम् ॥

“ एकान्नं मदमात्सर्यं गन्धपुष्पविभूषणम् । तांबूलाभ्यञ्जने क्रीडा भोगे कांक्षा रसायनम् ॥

“ सन्धिश्च विग्रहो यानं मञ्चकं शुक्लवस्त्रकम् । शुल्कोत्सर्गो दिवास्वापो भिक्षाधारस्तु तैजसः ॥

“ एतानि वर्जयेन्नित्यं यतिर्मूर्खपुरीषवत् । न स्नानमाचरेद्भिक्षुः पुत्रादिनिधने श्रुते ॥ २५

“ पितृमातृक्षयं श्रुत्वा स्नात्वा शुध्यति साम्बरः ।

“ अन्नदानपरो भिक्षुः भिक्षादानपरो गृही । उभौ तौ मन्दबुद्धित्वात्पूतीनरकशायिनौ ॥

“ यस्तु प्रव्रजितो भूत्वा पुनः सेवेत मैथुनम् । षष्ठिवर्षसहस्राणि विद्यायां जायते क्रामिः ॥

“ न किञ्चिद्भैक्षजादन्यदपानादन्तधावनम् । विना भोजनकाले न जातुचिद्भक्षयेद्यतिः ” ॥ इति ।

अङ्गिराः—

“संन्यासं चैव यः कृत्वा पुनरुत्तिष्ठते द्विजः । न तस्य निष्कृतिः कार्या स्वधर्मात् प्रच्युतस्य च ॥

“ आरूढो नैष्ठिकं कर्म पुनरावर्तयेद्यतिः । आरूढपतितो ज्ञेयः सर्वधर्मबाहिष्कृतः ॥

“ चण्डालाः प्रत्यवसिताः परिव्राजकतापसाः । तेषां जातान्यपत्यानि चण्डालैः सह वासयेत् ” ॥ इति ।

“नैष्ठिकानां वनस्थानां यतीनामवकीर्णिनाम् । शुद्धानामपि लोकेऽस्मिन् प्रत्यासत्तिर्न विद्यते” ॥ इति ।

वक्षः—

“पत्रिज्यां गृहीत्वा तु यः स्वधर्मे न तिष्ठति । श्वपादेनाङ्कयित्वा तं राजा शीघ्रं प्रवासयेत्” ॥ इति ॥

यमः—

५ “यस्तु प्रव्रजिताज्जातः प्रव्रज्यावसितश्च यः । तावुभौ ब्रह्मचण्डालौ प्राह वैवस्वतो यमः” ॥ इति ।

संवर्तः—

“संन्यस्य दुर्मतिः कश्चित् प्रत्यापत्तिं व्रजेद्यतिः । स कुर्यात् कुच्छ्रमश्रान्तः षणमासात् प्रत्यनन्तरम्” ॥ इति ।

बह्वचपरिशिष्टे—

१० “पतत्यसौ ध्रुवं भिक्षुर्यस्य भिक्षोर्द्वयं भवेत् । धीपूर्वरेत उत्सर्गो द्रव्यसङ्ग्रह एव च” ॥ इति ।  
“अत्रानुक्त आचमनादिसाधारणो धर्मः तत्तदवसरे वक्ष्यते ।

व्यासः—

“मोक्षाश्रमं यश्चरते यथोक्तं शुचिः सुसङ्कल्पितबुद्धियुक्तः ।

“अनिन्धनं ज्योतिरिव प्रशान्तं स ब्रह्मभावं व्रजते द्विजातिः ॥ इति ।

१५

॥ इति यतिधर्माः ॥

इति श्रीवैद्यनाथदीक्षिताविरचिते स्मृतिमुक्ताफले

वर्णाश्रमधर्मनिरूपणं नाम प्रथमः परिच्छेदः ॥

समाप्तोऽयं वर्णाश्रमधर्मक्राण्डः ॥

